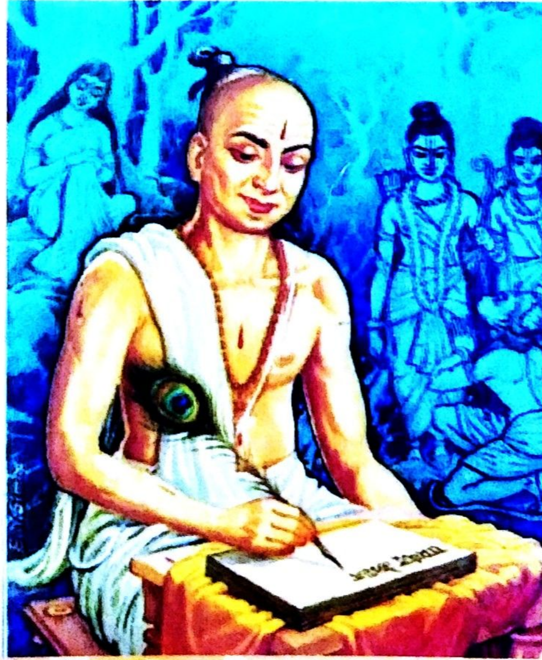
महाकविभवभूति विरचितम्

उत्तररामचरितम्

(विस्तृत भूमिका, अन्वय, अनुवाद 'चन्द्रिका'
हिन्दी व्याख्या, व्याकरणात्मक टिप्पणी, संस्कृत व्याख्या सहित)

व्याख्याकार
डॉ. राकेश शास्त्री





चौखम्भा ओरियन्टालिया
प्राच्यविद्या, आयुर्वेद तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक
दिल्ली-110007 (भारत)

विषयानुक्रमणिका

•••

पात्र–परिचय

पुरुष पात्र

1. सूत्रधार– नाटक को आरम्भ करने वाला डायरेक्टर।
2. नट– सूत्रधार का सहयोगी।
3. राम– दशरथ पुत्र, नाटक के नायक ।
4. लक्ष्मण– राम के अनुज।
5. शत्रुघ्न– लक्ष्मण के अनुज।
6. जनक– राम के श्वसुर।
7. अष्टावक्र– ऋषि।
8. वाल्मीकि– आदि कवि, रामायण के रचयिता।
9. सौधातकि– वाल्मीकि का शिष्य।
10. दण्डायन– वाल्मीकि का शिष्य।
11. कुश एवं लव– राम के पुत्र।
12. चन्द्रकेतु– लक्ष्मण के पुत्र।
13. सुमन्त्र– चन्द्रकेतु के सारथि।
14. विद्याधर– देवयोनि का पुरुष।
15. सीता– राम की पत्नी, नाटक की नायिका।
16. कंचुकी– अन्तःपुर का वृद्ध ब्राह्मण।
17. दुर्मुख– राम का गुप्तचर।
18. शम्बूक– शूद्र तपस्वी।
19. अन्य मुनिकुमार एवं सैनिक आदि।

स्त्रीपात्र–

(क) सीता– नायिका, जनक–पुत्री, राम–पत्नी।
(ख) कौशल्या– राम की माता।
(ग) अरुन्धती– वसिष्ठ पत्नी।
(घ) वासन्ती–वनदेवी, सीता की सखी।
(ङ) आत्रेयी– ब्रह्मचारिणी।
(च) तमसा– नदी ।
(छ) मुरला– नदी ।
(ज) गंगादेवी– नदी ।
(झ) पृथ्वी– सीता की माता।
(ञ) गोदावरी– नदी ।
(ट) विद्याधरी– विद्याधर की पत्नी।
(ठ) प्रतिहारी– अन्तःपुर द्वार की रक्षिका

•••

।। श्रीः।।

भूमिका

(1) काव्य का स्वरूप– साहित्यशास्त्रियों[1] ने काव्य को प्रथम दृष्ट्या दो भागों में विभाजित किया है– दृश्यकाव्य एवं श्रव्यकाव्य। इनमें भी दृश्यकाव्य जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, देखे जाने के कारण इसे 'दृश्यकाव्य' कहा जाता है। अभिनेता, कथा अथवा काव्य की भावना के अनुसार उसके पात्रों की वेशभूषा को धारण करके मंच पर नाटक के उन पात्रों के आचरण एवं वाणी का, अपनी योग्यता एवं अभ्यास से अत्यन्त सुन्दर अनुकरण करते हैं, जिसे देखकर सहृदय सामाजिक स्वयं को उसी काल एवं परिस्थितियों में अनुभव करता है, जिसमें नाटक की कथावस्तु निबद्ध होती है।

इतना ही नहीं, कलाकारों की अभिनेयता के कौशल से उस कथा का एक पात्र वह दर्शक स्वयं भी हो जाता है और तन्मयता से अनुभव करके वह अत्यधिक आनन्दित अनुभव करता है। काव्य की भाषा में इसे ही 'रूपक' कहते हैं।[2] इसीप्रकार पात्रों की अवस्था का अनुकरण करने के कारण विद्वानों द्वारा इसे 'नाट्य' संज्ञा भी प्रदान की गयी है।[3]

यह दृश्य–काव्य रूपक और उपरूपक भेद से दो प्रकार का होता है। पुनः रूपक के दस भेदों[4] तथा उपरूपक के अट्ठारह भेदों

---

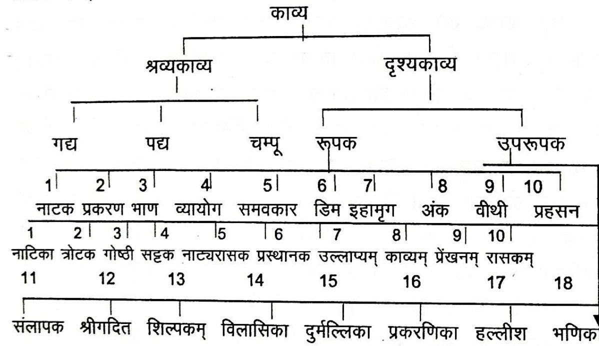
[1]. दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।
दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम्।। साहित्यदर्पण– 6/1 ।

[2]. रूपकं तत्समारोपात्। दशरूपक– 1/4 ।

[3]. अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्। वही 1/7 ।

[4]. नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगांकवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश।। साहित्यदर्पण–6/3 ।

का उल्लेख किया गया है,[1] जबकि श्रव्यकाव्य– गद्य, पद्य और चम्पू भेद से तीन प्रकार का होता है। केवल श्रव्य होने से इसे इस संज्ञा से अलंकृत किया गया है। महाकवि बाण की कादम्बरी गद्यकाव्य का और काव्यकार कालिदास का 'रघुवंश' पद्य काव्य का एवं त्रिविक्रमभट्ट **का** 'नलचम्पू' चम्पूकाव्य के सुन्दर उदाहरण कहे जा सकते हैं, जिनका संक्षेप में इसप्रकार उल्लेख किया जा सकता है–



इसमें भी श्रव्य–काव्य की अपेक्षा दृश्य–काव्य प्राचीन समय से ही अधिक लोकप्रिय रहा है। इसीलिए विद्वानों में **'काव्येषु नाटकं रम्यम्'** इत्यादि उक्ति प्रचलित रही है। कहने का अभिप्राय यही है कि काव्यों में नाटक अत्यधिक रमणीय होता है। नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरतमुनि ने भी जनसामान्य से जुड़ा होने के कारण 'नाट्य' की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है–

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगे न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।[2]

डॉ. दासगुप्त इस मत से सहमत प्रतीत होते हैं कि वेदमन्त्रों में नाटकीय तत्त्व संवाद, संगीत, नृत्य और अभिनय प्रचुरमात्रा में विद्यमान

1. साहित्यदर्पण– षष्ठ परिच्छेद, 4–6।
2. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि–1/116।

हैं, साथ ही, तात्कालिक जनजीवन में धार्मिक अवसरों पर, संगीत समारोह एवं नृत्य आदि महोत्सवों से नाटकों का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था।[1]

उनका मानना है कि नाटक में ज्ञान, शिल्प, कला, नूतन–योजना, कार्यकुशलता आदि सभी का अत्यन्त सुन्दर समन्वय दृष्टि–गोचर होता है। इसीकारण श्रव्यकाव्य की अपेक्षा नाटकों का अत्यधिक महत्त्व है। इस प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि यहाँ पर नाटक से अभिप्राय रूपक से ही ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि काव्यशास्त्रियों ने दृश्यकाव्य को 'नाट्य', 'रूपक' और 'रूप' इन सभी शब्दों के माध्यम से कहना स्वीकार किया है, इनमें अभिनेता अपने ऊपर अभिनेय पात्रों के रूप का आरोप कर लेते हैं, इसलिए इसे 'रूपक' कहा जाता है।[2] आचार्य धनंजय के अनुसार– 'अवस्था की अनुकृति ही नाट्य होता है।'[3]

(2) नाटक का स्वरूप– आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण के षष्ठ परिच्छेद में कारिका संख्या–7 से लेकर कारिका संख्या 10 तक नाटक के स्वरूप पर विस्तार से विचार किया है। तदनुसार –

'नाटक की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध होती है। इसको कम से कम पाँच और अधिकतम दस अंकों में निबद्ध किया जाता है। धीरोदात्त गुणों से युक्त, प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न, प्रतापी, गुणवान् कोई भी राजा, देवता आदि अथवा दिव्यादिव्य गुणों से युक्त रामकृष्णादि नाटक का नायक होता है। नाटक का नायक धीरोदात्त, धीरललित धीरोद्धत अथवा धीरप्रशान्त कोई भी हो सकता है।' उत्तररामचरितम् नाटक के नायक धीरोदात्त गुणों से युक्त है।

नाटक में शृंगार अथवा वीर रसों में से किसी एक की प्रधानता होती है। अन्य सभी रस अंगरूप में प्रयुक्त होते हैं। मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और निर्वहण, इन नाट्यसंधियों का प्रयोग किया जाता है।

1. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, डॉ.एस.एन.दासगुप्त, वोल्यूम–1, पृ.–44।
2. रूपकं तत्समारोपात्, रूपारोपात्तु रूपकम्।
3. अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्। दशरूपकम्।

कथावस्तु के विकास के लिए यहाँ गाय की पूँछ को उदाहरणरूप में दिया गया है। कथावस्तु का आकार गाय की पूँछ के आकार के समान शुरू में छोटा, बीच में बढ़े हुए विस्तार वाला और अन्त में एक स्थान पर इकट्ठा होकर समाप्त होने वाला होता है।

इसके अलावा इसमें विलास, धैर्य, समृद्धि और अनेकप्रकार के दूसरे गुणों का भी प्रयोग किया जाता है।[1] इसमें चार या पाँच पुरुष पात्रों की प्रधानता होती है। उल्लेखनीय है कि नाटक के अन्तर्गत युद्ध, वध, भोजन, शाप, मलत्याग, रतिक्रिया, शयन, अधरपान, स्नान और लेपन आदि क्रियाओं के प्रदर्शन का पूर्णतया निषेध होता है।

यदि हम व्यावहारिक दृष्टि से अवलोकन करें तो संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त नाटकों में प्रायः उक्त सभी विशेषताएँ देखी जा सकती हैं। **जैसे–** अभिज्ञान शाकुन्तलम् का नायक दुष्यन्त 'धीरोदात्त' गुणों से युक्त है। इसीप्रकार वेणीसंहार नाटक का नायक भीम 'धीरोद्धत' नायक की श्रेणी में आता है, जबकि शूद्रक के मृच्छकटिक नाटक में चारुदत्त 'धीरप्रशान्त' नायक के रूप में प्रयुक्त हुआ है तथा शूद्रक के 'मृच्छकटिक' नाटक का नायक चारुदत्त धीरललित कोटि में आता है।

(3) नाटक का उद्भव एवं विकास

नाटक अथवा रूपक की उत्पत्ति कब हुई? इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। कुछ विद्वान् इसे ईश्वरीय देन स्वीकार करते हैं तो अन्य इसकी उत्पत्ति वेदों से मानते हैं। उनके अनुसार– त्रेता युग के आरम्भ में इन्द्र आदि देवताओं ने मिलकर, ब्रह्माजी से सभी वर्णों के लिए मनोरंजन, सुलभ कराने वाले साधन का निर्माण करने की प्रार्थना की। इस पर ब्रह्मा ने चारों वेदों का स्मरण करके, ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रसों को ग्रहण करके, नाट्यवेद नामक 'पंचम वेद' का निर्माण किया और इसका अभिनय 'इन्द्र–ध्वज' नामक महोत्सव के अवसर पर किया गया –

1. नाट्यशास्त्र–6/7–11 ।

एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदानुस्मरन्
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदां सम्भवम्।
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च
यजुर्वेदाभिनयान् रसा– नाथर्वणादपि।।[1]

विद्वानों द्वारा इसे **दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त** की संज्ञा प्रदान की गयी। दूसरे मत के अनुसार– ऋग्वेद में अनेक संवाद–सूक्तों का प्रयोग हुआ है, **जैसे–** इन्द्र–मरुत् संवाद[2], अगस्त्य–लोपामुद्रा संवाद,[3] सरमा–पणि संवाद,[4] विश्वामित्र–नदी संवाद,[5] इन्द्र–इन्द्राणी–वृषाकपि संवाद,[6] पुरुरवा–उर्वशी संवाद[7] और यम–यमी संवाद[8]। यदि सूक्ष्मदृष्टि से विचार करें तो इन संवादों में हमें अभिनेयात्मकता का गुण विशेषरूप से दृष्टिगोचर होता है। विद्वन्मान्यता है कि ये वैदिक संवाद–सूक्त ही कालान्तर में परिमार्जित एवं परिष्कृत होकर नाटकरूप में परिणत हो गए।[9] इसप्रकार इन्हीं संवाद–सूक्तों से नाटकों का विकास हुआ, इसी कारण इस सिद्धान्त को वैदिक–संवाद सूक्तवाद अथवा **विकासवाद का सिद्धान्त** भी कहा जाता है।

इस सिद्धान्त को मानने वालों में प्रो. मैक्समूलर, प्रो. सिल्वाँ लेवी, प्रो. फॉन श्रोएडर एवं डॉ. हर्टल आदि प्रमुखरूप से उल्लेखनीय हैं। प्रो. लेवी के अनुसार– सामवेद में संगीत के तत्त्व विद्यमान हैं तथा अथर्ववेद में नृत्य के तत्त्व हैं। अतः वैदिक युग में नाटकों के सभी उपकरण प्राप्त होते हैं। इसके अलावा प्रो. ऑल्डेनबर्ग, विण्डिश एवं

1. नाट्यशास्त्र– 1/12, 16, 17 ।
2. ऋग्वेद–1/165, 170 ।
3. वही– 1/179 ।
4. वही– 10/108 ।
5. वही– 3/33 ।
6. वही– 10/86 ।
7. वही– 10 /95 ।
8. वही– 10/10 ।
9. कालिदास और भवभूति के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. सुरेन्द्र देव शास्त्री, पृष्ठ–5 ।

डॉ. पिशेल आदि विद्वानों ने भी इन संवाद–सूक्तों में नाटकीय तत्त्वों की उपस्थिति को स्वीकार किया है।

ऋग्वेद के सूक्तों से पता चलता है कि 'सोमविक्रय' के समय एक प्रकार का अभिनय किया गया था, जिसका उद्देश्य दर्शकों का मनोरंजन करना था। अश्वमेधादि यज्ञों के अवसरों पर तथा उनके अन्तर्गत होने वाले अनुष्ठानों के मध्य में प्राप्त होने वाले अवकाश के समय शुनःशेपादि के प्रसिद्ध आख्यानों का कथन किया जाता रहा है।

इस आधार पर यह कल्पना भी की जा सकती है कि उपर्युक्त प्रसंगों के अवसर पर वैदिक देवताओं के चरित्र विषयक नाटकों का भी अभिनय किया जाता रहा होगा, आरम्भ में हो सकता है कि ये नाटक सर्वांगपूर्ण न रहे हों, फिर भी यह बात तो निःसंदेहरूप से कही जा सकती है कि इनमें संस्कृत नाट्यकला के बीज अवश्य विद्यमान रहे होंगे।[1]

वाजसनेयि–माध्यन्दिन–शुक्ल–यजुर्वेद संहिता एवं तैत्तिरीय ब्राह्मण में 'शैलूष' शब्द की उपलब्धि, इस कथ्य के प्रमाणरूप में प्रस्तुत की जा सकती है। इस शब्द का अर्थ 'नट' होता है। इसके अतिरिक्त कौषीतकि ब्राह्मण[2] में नृत्य, गीत और संगीत को मुख्य विद्याओं में परिगणित किया गया है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि वैदिक एवं ब्राह्मण–काल में नट एवं नाट्य–कला का अस्तित्व विद्यमान था।

इसके अतिरिक्त प्रो. रिजवे का मानना है कि– विश्व की सभी संस्कृतियों में प्रायः मृत आत्माओं के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने की परम्परा दृष्टिगोचर होती है, जिन्हें प्रसन्न करने के लिए आज भी अनेक प्रकार के अभिनय एवं प्रदर्शनों का आयोजन किया जाता है।

---

1. कालिदास और भवभूति के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. सुरेन्द्र देव शास्त्री, पृष्ठ–5 ।

2. द्रष्टव्य– लेखककृत शांखायन ब्राह्मण, (भाग–1, 2) प्रकाशक, चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली–7। 2020।

इसलिए इन्हीं अभिनेयात्मक आयोजनों को नाटकों का आरम्भिक रूप स्वीकार किया जा सकता है।

प्राचीनग्रन्थ आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में हम **'इन्द्रध्वज'** जैसे अभिनय की प्रस्तुति का अवलोकन करते हैं। इसीप्रकार के आयोजन आज भी भारतीय परम्परा में वसन्त पंचमी तथा होली जैसे महोत्सवों के अवसरों पर देखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त वैदिक यज्ञों तथा धार्मिक अनुष्ठानों के अवसर पर भी संवादात्मक एवं अभिनेयात्मक आयोजनों को देखा जा सकता है। इस आधार पर बहुत अधिक सम्भावना की जा सकती है कि ये आयोजन ही नाटकों के उद्भव में मुख्य कारण रहे होंगे।

इसी प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि डॉ. पिशेल ने नाटकों में प्रयुक्त सूत्रधार तथा संस्थापक शब्दों के प्रयोग के आधार पर कठपुतलियों के नृत्य से नाटक के उद्भव को अपनी स्वीकृति प्रदान की है। उनके मत में– प्राचीन समय में भारतवर्ष में कठपुतली का नृत्य हिन्दू समाज में प्रचलित था। इसी के विकसित रूप को नाटक के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

इसके विपरीत प्रो. ल्यूडर्स और कोनोव का मानना है कि छाया नाटकों में किए जाने वाले छाया–चित्रों के प्रदर्शन से नाटकों की उत्पत्ति को माना जाना चाहिए। उनके मत में– महाभारत में भी इस प्रकार के संकेत उपलब्ध होते हैं।

जबकि प्रो. हिलेब्राण्ट तथा स्टेनकोनो का मन्तव्य है कि– लोगों में प्रचलित स्वांगों के साथ ही महाभारत एवं रामायण की कथाओं के आधार पर ही नाटकों की उत्पत्ति हुई है, इसप्रकार की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त प्रो. विंडिश और प्रो. वेबर ने संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त होने वाले 'यवनिका' अथवा 'जवनिका' शब्द के आधार पर भारतीय नाटक को यूनानी प्रभाव से जोड़ने का प्रयास किया है, क्योंकि डॉ. वेबर का मानना है कि यूनानियों के सम्पर्क में आने के कारण भारतवर्ष में अभिनय की प्रकृति को प्रोत्साहन की प्राप्ति हुई,

किन्तु संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ.कपिलदेव द्विवेदी ने डॉ. वेबर के इस मत का विस्तारपूर्वक खण्डन किया है।[1] इसके अतिरिक्त प्रो. कीथ भी भारतीय नाटकों पर यूनानी प्रभाव को सिरे से नकारते हैं।[2]

संस्कृत नाटक के उद्भव एवं विकास विषयक उपर्युक्त मान्यताओं के उल्लेख के पश्चात् यदि हम भारतीय परम्परा के विषय में चिन्तन करते हैं तो हम आचार्य भरत द्वारा प्रणीत **नाट्यशास्त्र** में वर्णित नाटक की उत्पत्ति सम्बन्धी कथा को आधार मान सकते हैं। तदनुसार–

एक बार सभी देवताओं ने ब्रह्माजी से इसप्रकार की मनोरंजनात्मक वस्तु के निर्माण की प्रार्थना की, जो सभी के लिए श्रव्य तथा दृश्य हो, जिसका उपयोग समाज के सभी चारो वर्णों द्वारा किया जा सके। उनकी प्रार्थना को स्वीकार करके विधाता ब्रह्मा ने ऋग्वेद से संवाद लेकर, सामवेद से संगीत को ग्रहण करके तथा यजुर्वेद से अभिनय को एवं अथर्ववेद से रसतत्त्व को लेकर पंचम वेद नाट्यवेद की संरचना की –

नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदांगसम्भवम्।
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वनादपि।। (नाट्यशास्त्र–1/16, 17)

नाटक की उत्पत्ति विषयक उक्त सिद्धान्तों का संक्षेप में उल्लेख करने के पश्चात् प्रश्न यह उठता है कि उपर्युक्त सिद्धान्तों में से कौन सा सिद्धान्त सर्वाधिक उपयोगी कहा जा सकता है? इस सम्बन्ध में यह बात स्पष्टरूप से कही जा सकती है कि–

कथावस्तु, संगीत, अभिनय तथा रस इन चारों तत्त्वों की स्थिति हमें वेदों में देखने को मिल जाती है। यथा– ऋग्वेद के संवाद–सूक्तों में नाटक की कथावस्तु के दर्शन होते हैं। सामवेद में संगीत की उपस्थिति को देख सकते हैं। इसीप्रकार यजुर्वेद में मन्त्रों के उच्चारण तथा हस्तचालन आदि में अभिनय तथा अथर्ववेद में रस की स्थिति को सहज ही देखा जा सकता है।

---

[1] संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ. कपिल देव द्विवेदी, पृ.–269 ।
[2] . संस्कृत नाटक, कीथ, (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ– 46–49 ।

इसके अतिरिक्त अथर्ववेद के अनेक सूक्तों में वीर रस[1] और शृंगार रस[2] की पर्याप्त उपस्थिति देखी जा सकती है। भारतीय नाटकों में भी इन दोनों ही रसों की मुख्यता रही है। इसकारण आचार्य भरतमुनि का यह कथन –'चतुर्वेदांगसम्भवम्' अर्थात् चारों वेदों से नाटक की उत्पत्ति, सटीक ही प्रतीत होता है। इसलिए कहा जा सकता है कि –

चारों वेदों से उत्पन्न होने वाले, इस **पंचम नाट्यवेद** का आरम्भ में अभिनय यज्ञ आदि के अवसरों पर किया जाता रहा। बाद में ये दूसरे धार्मिक अनुष्ठानों के भी अंग बन गए। उसके बाद लोक प्रियता के कारण इनका अभिनय 'पर्व' आदि के अवसर पर भी होने लगा। इन्द्र महोत्सव को हम इसी शृंखला की कड़ीरूप में देख सकते हैं। बाद में, यही नाटक पर्वों, उत्सवों, रासलीला आदि अवसरों पर भी अत्यधिक लोकप्रियता को प्राप्त हुए।

इसप्रकार पर्ववाद तथा रासलीला वाद को नाटक के विकास की महत्त्वपूर्ण कड़ी की भूमिका के रूप में देख सकते हैं, किन्तु इस विषय में यह भी विशेषरूप से ध्यातव्य है कि केवल इसी को नाटक की उत्पत्ति के एकमात्र कारण के रूप में नहीं देखा जा सकता है। मनोरंजन का महत्त्वपूर्ण माध्यम होने के कारण, बाद में यह समाज में अत्यधिक लोकप्रियता को प्राप्त हुआ। इसके अलावा यह भी सत्य है कि ऋग्वेद में प्रयुक्त संवाद–सूक्तों की भी नाटक की उत्पत्ति में महती भूमिका अवश्य रही होगी, किन्तु एकमात्र उसी को ही यहाँ कारण नहीं कह सकते हैं।

इस प्रसंग में यह भी विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में यह निर्विवाद तथ्य है कि नाटकों का आरम्भ वस्तुतः सर्वप्रथम भारत में ही हुआ। मैक्डॉनल, मैक्समूलर, कीथ, पिशेल तथा लेवी आदि विद्वानों ने भी इस मन्तव्य से अपनी सहमति प्रदर्शित की है। इसके अलावा संस्कृत नाटक के विकास की

---

[1] . अथर्ववेद– 2/12, 3/6, 4/3, 18/34।
[2] अथर्ववेद– 3/25, 9/2, 19/52 ।

परम्परा का विधिवत् अध्ययन करने के लिए वैदिककाल से लेकर वर्तमान समय तक की दीर्घकालीन अवधि को हम निम्नप्रकार से छः भागों में विभाजित कर सकते हैं–

(क) प्राचीन युग– यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में **शैलूष** जाति के एक व्यक्ति के माध्यम से व्यावसायिक दृष्टि से नाटकों के अभिनय का कथन हुआ है। इस जाति के लोग अपनी आजीविका चलाने के लिए यज्ञ आदि के अवसरों पर लय तथा तालबद्ध नृत्य प्रस्तुत करते हुए, गीतों को गाते थे तथा दर्शकों का मनोरंजन करते थे। इन्हें यहाँ सूत्र, नर्तन तथा शैलूष कहा गया है, जिसे हम बाद में **नट** भी कहते रहे हैं, इसका कार्य वस्तुतः गीतों को प्रस्तुत करना था।[1] इस समय को प्राचीनयुग की संज्ञा दी जा सकती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय तक नाटकों की संरचना नहीं हुई थी।

(ख) विकासोन्मुख युग – इस युग में रामायण और महाभारत से लेकर महाकवि भास तक के समय को सम्मिलित कर सकते हैं। इस समय में विभिन्न नाटकों के नामों का उल्लेख मिलता है। यद्यपि उन नाटकों की उपलब्धता, महाकवि भास को छोड़कर वर्तमान समय तक नहीं हो सकी है।

इसी प्रसंग में यह भी विशेषरूप से कथनीय है कि रामायण एवं महाभारत काल में भी नाट्यकला पर्याप्तरूप से विकसित थी, क्योंकि इन दोनों ही ग्रन्थों में नट, नर्तक एवं गायक आदि शब्दों का उल्लेख हुआ है।[2] रामायण में कथन किया गया है कि जहाँ राजा नहीं होता, वहाँ नट एवं नर्तक प्रसन्न नहीं होते हैं।[3] साथ ही, यहाँ नट एवं नर्तकों के समाज में गोष्ठी एवं मनोरंजन का भी कथन किया गया है।

---

1. यजुर्वेद – 30/6 ।
2. वाल्मीकि रामायण– 1/4/9,, 2/67/15, 2/69/4, 2/83/15 ।
   महाभारत वनपर्व–15/13 ।
   इत्यब्रवीत् सूत्रधारः सूतः पौराणिकस्तथा (वही–1/51/15।
3. वाल्मीकि रामायण– 2/67/15 ।

महाभारत के विराटपर्व में रंगशाला का उल्लेख, इस समय में नाटकों की विकासोन्मुख स्थिति को पुष्ट करता प्रतीत होता है।

इसके अलावा हरिवंशपर्व में एक स्थल पर **वज्रनाभ** नामक राक्षस की नगरी में रामायण एवं **कौबेर–रम्भाभिसार** नामक नाटकों के अभिनय का भी कथन किया गया है।[1] यद्यपि ये दोनों ही नाटक वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं हैं। उल्लेखनीय है कि वाल्मीकि रामायण में 'व्यामिश्र' शब्द का प्रयोग ऐसे नाटकों के लिए किया गया है, जिनमें अनेक भाषाओं का सम्मिश्रण होता था।[2]

इसके अतिरिक्त ई.पू. चतुर्थ शताब्दी में स्थित आचार्य पाणिनि की अष्टाध्यायी में **नट–सूत्रों** का उल्लेख हुआ है।[3] जहाँ **शिलालिन्** और **कृशाश्व** आदि आचार्यों द्वारा बनाए हुए नट–सूत्रों का कथन किया गया है। इसका अभिप्राय यही है कि इस समय तक नाटकों का इतना अधिक प्रचार हो गया था कि विद्वानों को नटों की शिक्षा के लिए सूत्र–ग्रन्थों के प्रणयन की आवश्यकता अनुभव होने लगी थी। आचार्य पाणिनि ने भी **'जाम्बवती जय'** अथवा **'पाताल विजय'** नामक नाटकों की संरचना की थी, जिसकी पुष्टि में यह श्लोक उद्धृत किया जा सकता है–

स्वस्ति पाणिनये तस्मै येन रूद्रप्रसादतः।
आदौ व्याकरणं प्रोक्तं ततो जाम्बवतीजयम्।।

उल्लेखनीय यह भी है कि महर्षि पतंजलि के महाभाष्य में उनके द्वारा विरचित **'कंस–वध'** और **'बलि–बन्धन'** इत्यादि नाटकों के प्रदर्शन किए जाने का उल्लेख हुआ है।[4] यद्यपि ये दोनों ही नाटक वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं हैं, जिससे यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि महाभाष्यकार के समय तक जनसामान्य के समक्ष

---

1. महाभारत हरिवंश पर्व– 19/17 अध्याय।
2. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड– 1/27 ।
3. पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः।। अष्टाध्यायी– 4/3/110 एवं
   कर्मन्द कृशाश्वादीनि । 4/3/111 ।

नाटकों का अभिनय, उनके मनोरंजन का सर्वश्रेष्ठ एवं लोकप्रिय साधन था। महर्षि पतंजलि का समय ई.पू. 150 के लगभग माना गया है और महाभाष्यकार उनके पश्चात् हुए।

लगभग इसी समय स्थित आचार्य भरतमुनि ने कुल छत्तीस अध्यायों में नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों को आधार बनाकर अपने नाट्य शास्त्र नामक विशालग्रन्थ की संरचना की। ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ उनके समय तक उपलब्ध नाटकों को आधार बनाकर लिखा गया, क्योंकि इस ग्रन्थ में उन्होंने नाटक विषयक सभी सिद्धान्तों का विस्तार से प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ के साथ ही उन्होंने **त्रिपुरदाह, असुर पराजय** तथा **समुद्रमंथन** नामक तीन नाटकों का उल्लेख भी किया है।

इसी प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि आचार्य कौटिल्य ने अपने राजनीति के प्रसिद्ध ग्रन्थ **अर्थशास्त्र** में अध्यक्षप्रचार नामक अध्याय के अन्तर्गत दूसरी विद्याओं का विवेचन करते हुए, नाट्यविद्या का भी विस्तार से सांगोपांग वर्णन किया है।[1] इसके अतिरिक्त विनय–पिटक नामक बौद्धग्रन्थ में बौद्धभिक्षुओं द्वारा नाटक का अवलोकन करने के अनन्तर नर्तकी के साथ बातचीत करने का निषेध किया गया है।

इसके बाद ई.पू. 450 के लगभग महाकवि भास का प्रादुर्भाव होता है। इनके नाटकों की खोज का श्रेय श्री टी. गणपति शास्त्री को जाता है, जिन्होंने 1909 ई. में त्रावणकोर के पद्मनाभपुरम् के निकट मनलिक्कमाथम नामक स्थान से इनके कुल 13 नाटकों की पाण्डु–लिपियों को प्राप्त किया। इसी कालखण्ड में मृच्छकटिक के रचयिता महाकवि शूद्रक का भी परिगणन किया गया है। इस सम्पूर्ण कालखण्ड के नाटककारों को विकासोन्मुख युग के नाटककारों की श्रेणी में रखा जा सकता है, क्योंकि इनके नाटकों में हमें नाटकों का आरम्भिकरूप देखने को मिलता है।

[1]. अर्थशास्त्र, कौटिल्य, अध्याय–16, 41 ।

(ग) पूर्ण विकास का युग– इसी शृंखला में ई.पू. प्रथम शती में स्थित नाट्यशिरोमणि नाटककार कालिदास के नाम का उल्लेख किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि उन्होंने अपने प्रथम नाटक मालविकाग्निमित्रम् में भास के अतिरिक्त **कविपुत्र** तथा **सौमिल्लक** नामक अन्य दो नाटककारों के नामों का भी उल्लेख किया है, किन्तु वर्तमान समय में उनके किसी नाटक की उपलब्धता नहीं है।

इसलिए महाकवि कालिदास को ही इस शृंखला की अगली कड़ी के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। वसन्तोत्सव के अवसर पर मंचन की गयी, अपनी प्रथम नाट्यकृति मालविकाग्निमित्रम् की प्रस्तावना में सूत्रधार के मुख से विद्वत्परिषद् के समक्ष अभिनीत करने का कथन कराते हुए भास, सौमिल्ल एवं कविपुत्रादि पूर्ववर्ती नाटककारों के नामों का उल्लेख किया है।[1]

इस प्रसंग में प्रयुक्त सूत्रधार और पारिपार्श्विक के वार्तालाप में नाटककार ने जहाँ एक ओर अपने पूर्ववर्ती भास आदि प्रसिद्ध कवियों को स्मरण किया है, वहीं दूसरी ओर उन्होंने **'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्'**[2] इत्यादि का कथन करके, भासादि के नाटकों की अपेक्षा अपने नाटकों की श्रेष्ठता को भी अप्रत्यक्षरूप से अभिव्यक्ति प्रदान की है।

कहने का अभिप्राय यही है कि महाकवि भास के नाटकों एवं आचार्य भरत के नाट्य–शास्त्र आदि से प्रभावित होकर ही नाटककार कालिदास ने भी अपनी नाट्य–कृतियों के प्रणयन का मानस बनाया और संस्कृत नाट्य–जगत् में अपना नाम अमर कर लिया। यद्यपि उनकी प्रथम एवं द्वितीय नाट्यकृतियों मालविकाग्निमित्रम् एवं विक्रमोर्वशीयम् ने विद्वानों को इतना प्रभावित नहीं किया, किन्तु अन्तिम कृति अभिज्ञान शाकुन्तलम् ने तो सहृदयों को मानो चमत्कृत ही कर

[1] .मा तावत् प्रथितयशसां भास–सौमिल्ल–कविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमान–कवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं परिषदो बहुमानः। मालविकाग्निमित्रम्– प्रस्तावना।

[2] . मालविकाग्निमित्रम्–1/2 ।

दिया और वे मानो 'कालिदास का शाकुन्तल', 'कालिदास का शाकुन्तल' कहते हुए भावविभोर हो गए।[1]

जिसका परिणाम यह हुआ कि बाद में होने वाले काव्यकार कालिदास एवं उनके भी बाद होने वाले ऋतुसंहारीय कालिदास ने अपना नाम भी 'कालिदास' ही रख लिया, क्योंकि इस नाम की ख्याति ही उस समय तक इतनी अधिक हो गयी थी कि कोई भी स्वयं को इस नाम से बुलवाने का प्रबल इच्छुक था। उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि नाटककार कालिदास के नाम एवं प्रसिद्धि से प्रभावित होकर न केवल काव्यकार ने अपना नाम ही 'कालिदास' रखा, अपितु उन्होंने इनके काव्यों में प्रतिपादित भारतीय संस्कृति के तत्त्वों एवं सिद्धान्तों का, अपने काव्यों में समावेश करके इनका अनुमोदन भी किया।

अन्त में स्थित ऋतुसंहारीय कालिदास का प्रयोजन केवल ऋतुओं का शृंगारिक वर्णन करना ही प्रमुख रहा। अतः काव्य गुणों की दृष्टि से न्यून होने के कारण, इनकी सामान्य कृति को ही महाकवि कालिदास की प्रथम रचना के रूप में स्वीकार कर लिया गया,[2] जबकि ऋतुसंहार की रचना करने वाले ऋतुसंहारीय कालिदास नाटककार एवं काव्यकार दोनों कालिदासों से सर्वथा भिन्न रहे। इसप्रकार इन तीनों कालिदासों को एक मानकर जहाँ हम इनमें से किसी के साथ भी न्याय नहीं कर सके, वहीं दूसरी ओर कालिदास के काल–निर्धारण के जंजाल में फँसकर अपनी शक्ति का व्यर्थ में ही प्रयोग करते रहे।

इसी प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि संस्कृत नाट्यपरम्परा में महाकवि कालिदास की नाट्यकृतियाँ, नाट्यकला के पूर्ण विकास को प्रदर्शित करती हैं। भाषा, भाव और कल्पना आदि सभी दृष्टियों से विद्वानों ने इन नाटकों को अद्वितीय कहा है। नाटककार कालिदास का समय ई.पू. प्रथम शताब्दी माना गया है।

---

1. एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयोरैश्वर्यम्।
यदि वांछसि प्रिय सखे! शाकुन्तलं सेव्यताम्।
(गेटे के कथन का प्रो. मिराशी द्वारा संस्कृत अनुवाद)

[2] ...लिदास दर्शन, डॉ. शिवप्रसाद भारद्वाज, पृ.–79 ।

नाटककार कालिदास के पश्चात् नाटककार अश्वघोष का नाम् आता है। इनका समय ईसा की प्रथम शताब्दी माना गया है, क्योंकि ये महाराज कनिष्क के राजकवि थे। सन् 1910 ई. में प्रो. ल्यूडर्स ने मध्य एशिया के **तूरफान** नामक स्थान से इनके तीन नाटकों की खोज की। इनमें **शारिपुत्रप्रकरण** नाटक पूर्ण है, जिसमें नौ अंकों का नियोजन किया गया है। अन्य दो अपूर्ण हैं, जिनके नाम भी ज्ञात नहीं हैं।

नाट्यकला के पूर्ण विकास की अग्रिम कड़ी के रूप में दिङ्नाग की कुन्दमाला, विशाखदत्त का मुद्राराक्षस, हर्ष की रत्नावली, प्रियदर्शिका तथा नागानन्द नामक नाटक आते हैं। साथ ही, इस कालखण्ड की कृतियों में भवभूति के उत्तररामचरित, मालतीमाधव एवं महावीरचरित का भी उल्लेख किया जा सकता है। इनमें भी मुद्राराक्षस नाटक अन्य नाटकों की परम्परा से पूर्णरूप से अलग हटकर निबद्ध किया गया है, जिसमें नाटककार विशाखदत्त ने चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त विषयक राजनीतिक घटनाक्रम को कथावस्तु के रूप में ग्रहण करके, अपने क्रान्तिकारी नाटककार होने को परिपुष्ट किया है।

नाटककार कालिदास के बाद दूसरा स्थान नाटककार भवभूति का माना जाता है। यद्यपि कुछ विद्वान् करुण रस की दृष्टि से भवभूति को सर्वोत्कृष्ट नाटककार की श्रेणी में रखने के पक्षधर रहे हैं। इन्होंने रामायण की दुःखान्त घटना को आधार बनाकर, 'उत्तररामचरितम्' की संरचना की और अन्त में इसे सुखान्त स्वरूप प्रदान किया। इन्हीं का अनुकरण महाकवि दिङ्नाग ने अपने कुंदमाला नाटक में भी किया। महाकवि भवभूति के नाटकों में हमें भावप्रवणता का सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है, जिसकी विद्वानों द्वारा भूरि–भूरि प्रशंसा की गयी है।

(घ) ह्रासोन्मुख युग–महाकवि भवभूति के पश्चात् हमें संस्कृत नाट्यजगत् में नाट्यकौशल की अपेक्षा पाण्डित्य प्रदर्शन अधिक देखने को मिलता है, क्योंकि यहाँ न तो हमें महाकवि शूद्रक के समान मौलिक दृष्टि परिलक्षित होती है और न ही विशाखदत्त के समान सामान्यजनों की अभिव्यक्ति। इतना ही नहीं, यहाँ हमें नाटककार

कालिदास, भवभूति और हर्ष के नाटकों के समान नाट्यकुशलता, भावप्रवणता एवं काव्यप्रतिभा के भी दर्शन नहीं होते हैं।

महाकवि भट्टनारायण के वेणीसंहार नाटक से इस युग का प्रारम्भ स्वीकार किया जा सकता है तथा मुरारि एवं राजशेखर पर्यन्त इसी ह्रासोन्मुख युग के दर्शन होते हैं। गौडी शैली में विरचित ये नाटक कथानक और काव्य प्रतिभा दोनों ही दृष्टियों से निश्चय ही श्रेष्ठ रचना मानी जा सकती हैं, किन्तु अभिनेयता की दृष्टि से उसे विद्वानां द्वारा सफल नहीं कहा गया है। इसका मुख्य कारण इसमें प्रयुक्त इनकी कृत्रिम शैली ही रही है। साथ ही नाटकीय सिद्धान्तों का अक्षरशः पालन करने की प्रवृत्ति ने भी इसके नाट्यकौशल को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है।

इसके पश्चात् मुरारि का **अनर्घराघव** नामक नाटक जो 540 श्लोकों के विशाल कलेवर में लिखा गया है, विद्वानों ने इसे नाटक की श्रेणी में कम श्रव्यकाव्य की कोटि में अधिक रखा है। इसलिए इस नाटक को भी इस ह्रासोन्मुख युग की ही कृति स्वीकार किया जा सकता है। हम देखते है कि इसके बाद महाकवि राजशेखर ने भी इसी सरणि का अनुकरण किया है, क्योंकि बालरामायण, बालभारत, कर्पूर मंजरी और विद्धशालभंजिका नामक चारों नाटक में उन्होंने लम्बे–लम्बे वर्णनों, बड़े शार्दूलविक्रीडित एवं स्रग्धरा जैसे छन्दों का प्रयोग करके, इन्हें न केवल पाठकों के लिए दुरुह बना दिया है, अपितु अभिनेयता को तो दूर की कोड़ी ही रखा है। वस्तुतः ये सभी नाटक महाकवियों की पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति के ही प्रबल परिचायक कहे जा सकते हैं।

तत्पश्चात् ग्यारहवीं शती में प्रबोधचन्द्रोदय के रचयिता श्री कृष्णमिश्र ने तो अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके, नाटक के प्रमुख उद्देश्य को ही भुला दिया है। इसीप्रकार की प्रवृत्ति हमें यशपाल के **मोहपराजय** एवं जयदेव के **प्रसन्नराघव** तथा **कर्णपूर चैतन्य, चन्द्रोदय** नामक नाटकों में भी परिलक्षित होती है, क्योंकि यहाँ

भी बड़े–बड़े छन्दों का प्रयोग करके, इन्होंने अपने पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति को अधिक नियोजित किया है।

(ङ) ह्रास का युग– इस कालखण्ड का आरम्भ बारहवीं शती से लेकर यवनों के प्रभुत्व के साथ–साथ होता है। इससे पूर्व संस्कृत विषयक सृजन को राज्याश्रय प्राप्त था, किन्तु इस समय में इसका लगभग अभाव होने के कारण इस अवधि में विशिष्ट वर्ग के लिए ही नाटकों का प्रणयन किया गया। इसकारण इन्हें प्रसिद्धि भी प्राप्त नहीं हो सकी। साथ ही, इस काल–खण्ड में जनसामान्य की भाषा भी संस्कृत न होने के कारण, उनके लिए ये दुरुह हो गए। यही कारण है कि इस अवधि में लोकप्रिय नाटकों का लेखन नहीं हुआ।

पुनरपि इस अवधि में विग्रहराज देव का **'हरिकेलि'**, सुभट का **'दूतांगद,'** मदन का **'पारिजात मंजरी,'** जयसिंह सूरि का **'हम्मीर–मद–मर्दन'** भास्कर का **'उन्मत्तराघव'**, रामदेव व्यास का **'रामाभ्युदय'**, **'पाण्डवाभ्युदय'** और **'सुभद्रा परिचय'** तथा रामचन्द्र दीक्षित का **'जानकी परिचय'** नामक नाटक विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इनका प्रणयन सत्रहवीं शती तक किया गया।

(च) आधुनिक युग – इसका प्रारम्भ 18 वीं शती से लेकर वर्तमान तक के समय के रूप में परिगणित किया गया है। विद्वानों ने इसे पुनर्जागरण का काल बताया है। इस अवधि में लिखे गए नाटकों को प्राचीन परम्परा के आधार पर ही प्रणयन करने का प्रयास रहा है, फिर भी 19वीं शती में जिन नाटकों की संरचना की गयी, उनमें हमें राष्ट्रीय भावनाओं की प्रधानता देखने को मिलती है, किन्तु इस काल–खण्ड में संस्कृत सामान्य जन से दूर हो गयी थी। इसलिए इस समय में अत्यल्प ही नाटक लिखे गए।

इस अवधि में लिखे गए नाटकों में 'अम्बिकादत्त व्यास' का **'सामवतम्'**, रामचन्द्र का **'शृंगारसुधार्णव'**, वाचस्पति भट्टाचार्य का **'चैत्रयज्ञ'** 19 वीं शती में लिखी गयीं प्रसिद्ध रचनाएँ हैं, जबकि 20 वीं शती के नाटकों एवं नाटककारों के नाम इसप्रकार हैं–

महामहोपाध्याय शंकरलाल का 'सावित्रीचरित', 'ध्रुवाभ्युदय', श्रीनिवासचारी का 'ध्रुवचरित', पंचानन का 'अमरमंगल', मूलशंकर माणिकलाल का 'छत्रपति साम्राज्य', 'प्रताप–विजय', 'संयोगिता स्वयंवर', वायमहालिंग शास्त्री का 'प्रताप विजय', 'पृथ्वीराज', 'गाँधी विजय', 'भारत विजय', आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय नाटक हैं। प्रस्तुत कृति के लेखक का एक नाट्य संग्रह **'संस्कृत नाट्य निकुँज'** भी हंसा प्रकाशन, जयपुर से 2019 ई. प्रकाशित हो चुका है, जिसमें शिक्षाप्रद कथावस्तु को ग्रहण करके, कुल सात लघु नाटकों को निबद्ध किया गया है, जिसके हिन्दी अनुवाद के साथ शीघ्र ही चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली से प्रकाशित कराने की योजना है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि वेदों से आरम्भ हुई संस्कृत नाट्यपरम्परा वस्तुतः लौकिक संस्कृत में पर्याप्त समृद्ध हुई तथा यही वर्तमान समय में भी अक्षुण्णरूप से विद्यमान है, क्योंकि आज भी विद्वानों द्वारा अनेक नाटकों का प्रणयन किया जा रहा है। हाँ इतना अवश्य है कि नाटककार कालिदास एवं भवभूति जैसे उद्भट कवियों ने इनमें जो अभूतपूर्व योगदान प्रदान किया वह तो 'न भूतो, न भविष्यति' जैसा ही है।

4. संस्कृत नाटकों का वैशिष्ट्य– प्राचीन एवं अर्वाचीन नाटकों का सूक्ष्मदृष्टि से अवलोकन करने पर हम देखते हैं कि इनमें हमें सामान्यरूप से कुछ विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं, जिनका हम यहाँ अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

- **सुखान्त होना–** इसे संस्कृत नाटकों की महत्त्वपूर्ण विशेषता के रूप में देखा जा सकता है। यद्यपि मनुष्य के जीवन में सुख और दुःख दोनों की ही स्थिति समानरूप से होती है, किन्तु यह भी कटु सत्य है कि वह दुःखों से दूर ही रहना चाहता है। उसकी इसी प्रवृत्ति के कारण संस्कृत नाटक हमें सुखान्त ही देखने को मिलते हैं। महाकवि भट्टनारायण ने दुर्योधन जैसे आततायी का वध करने से इसे सुखान्त नाटक की कोटि में रखना ही उचित समझा है।

- **रस की प्रधानता का होना–** उल्लेखनीय है कि संस्कृत नाटकों में रसों की निष्पत्ति पर अत्यधिक बल दिया गया है। यहाँ हमें श्रृंगार एवं वीर इन दोनों रसों की ही प्रमुखता दृष्टिगोचर होती है। इतना ही नहीं किसी भी कवि अथवा नाटककार की सफलता उसकी रसप्रवणता में ही मानी गयी है। यह नाटक करुणरस प्रधान रहा है।
- **विदूषक की परिकल्पना –** प्राचीन नाटकों में हमें यह विशेषता प्रमुखरूप से देखने को मिलती है। यद्यपि मंचन में हास्य रस की अनुभूति कराने में विदूषक जैसे किसी भी पात्र का प्रमुख योगदान कहा जा सकता है। संस्कृत नाटकों में इसे प्रायः नायक के मित्र के रूप में प्रतिपादित किया गया है, जो कथानक की प्रगति में अपना योगदान प्रदान करता है, किन्तु यहाँ यह भी विशेषरूप से ध्यातव्य है कि यह पात्र वस्तुतः यूनान के नाटकों के 'क्लाउन' से भिन्न रहा है। भवभूति के सभी नाटकों में विदूषक का अभाव रहा है।
- **अन्वितित्रय का अभाव–** उल्लेखनीय है कि संस्कृत नाटकों में काल एवं स्थान की एकता का कठोरता से पालन नहीं किया गया है, क्योंकि कार्य की एकता ही, यहाँ प्रमुखतया परिलक्षित होती है, जबकि यूनानी नाटकों में इस पर विशेषरूप से बल दिया गया है।
- **पात्रों की संख्या का अनिश्चित होना–**संस्कृत नाटकों में पात्रों की संख्या का निश्चित होना आवश्यक नहीं है। यहाँ सामाजिक दृष्टि से पात्रों की श्रेणी भी अलग–अलग होती हैं, **जैसे–** उच्च वर्ग के पात्र, मध्यम वर्ग के पात्र, निम्न वर्ग के पात्र। इसीप्रकार उनकी दिव्य श्रेणी तथा अदिव्य श्रेणियाँ भी देखने को मिलती हैं, किन्तु यूनानी नाटकों में ऐसा नहीं है। वहाँ पात्रों की संख्या अत्यल्प ही होती है।
- **आदर्शवाद की स्थापना–** संस्कृत नाटकों में हमें आदर्शवाद की स्थापना के दर्शन होते हैं, क्योंकि इनमें प्रायः आदर्श चरित्र वाले पात्रों का नियोजन किया जाता है, क्योंकि यहाँ इनका उद्देश्य मात्र लोगों का मनोरंजन करना ही नहीं है, अपितु ये तो दर्शकों के हृदय को शुद्ध करने वाले तथा उन्हें कल्याणकारी मार्ग की ओर ले जाने वाले होते हैं।

■ **कथावस्तु का ऐतिहासिक एवं कथाग्रन्थों पर आधारित होना** – प्रायः देखने को मिलता है कि संस्कृत में नाटकों की कथावस्तु अधिकांशरूप से ऐतिहासिक होती है, क्योंकि इनकी कथावस्तु का आधार रामायण, महाभारत, पुराण या अन्य इतिहास ग्रन्थ होते हैं। इसके अलावा *'बृहत्कथा'* जैसा विशालकाय कथाग्रन्थ भी अनेक नाटकों की कथावस्तु का आधार रहा है।

■ **बीच–बीच में प्राकृत भाषा का प्रयोग किया जाना**– संस्कृत नाटकों की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इनमें उच्च एवं मध्यम श्रेणी के पात्र तो संस्कृत भाषा के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं, जबकि निम्न श्रेणी के पात्र तथा सभी स्त्री पात्र, प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं, किन्तु ये दोनों ही क्रमशः संस्कृत तथा प्राकृत को समझ सकते हैं। उल्लेखनीय यह भी है कि प्राकृत के भी अनेक प्रकार के भेदों का एक ही नाटक में प्रयोग किया जाता है। **जैसे–** महाराष्ट्री, शौरसेनी तथा मागधी।

■ **गद्य एवं पद्य का प्रयोग**– संस्कृत नाटकों के अध्ययन से हम यह भी देखते हैं कि संवादों में यहाँ गद्य और पद्य दोनों का ही प्रयोग किया जाता है, प्रकृति वर्णन, नैतिक शिक्षा तथा सुभाषित आदि का कथन करने के लिए यहाँ पद्यों का प्रयोग होता है। अनेक बार सामान्य भावाभिव्यक्ति भी पद्यात्मक रूप में कर दी जाती है।

■ **विशिष्ट रचनापद्धति का प्रयोग** – इसके अतिरिक्त संस्कृत नाटकों में हमें विशिष्ट प्रकार की रचना शैली के भी दर्शन होते हैं। जिसमें नान्दीपाठ, स्थापना एवं प्रस्तावना आदि के प्रयोग प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त नाटक की कथावस्तु को प्रभावशाली बनाने के लिए विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका आदि **अर्थोपक्षेपकों** का प्रयोग भी किया जाता है। साथ ही, नाटक के अन्त में भरत–वाक्य का भी नियोजन करते हैं। प्रस्तुत विवेच्य नाटक में **नान्दी, प्रस्तावना, विष्कम्भक** और अन्त में महर्षि वाल्मीकि के आशीर्वाद स्वरूप **भरत–वाक्य** के रूप में शुभकामना भी की गयी है।

■ **प्रकृति के साथ घनिष्ठता का होना**– उल्लेखनीय है कि संस्कृत नाटकों में प्रकृति को मानव के अनुरूप प्रयुक्त किया गया है, क्योंकि महाकवि भवभूति तथा नाटककार कालिदास दोनों ने ही अपने–अपने नाटकों में प्रकृति को मानव की भावनाओं के साथ दुःखी एवं सुखी वर्णित किया है।

■ **अभिनय संकेतों के प्रयोग द्वारा भावाभिव्यक्ति करना**– इसके अतिरिक्त संस्कृत नाटकों में रोचकता एवं अभिनेयता की वृद्धि के लिए अनेक प्रकार के अभिनय संकेतों को भी अपनाया गया है। **जैसे–** आकाश की ओर देखकर बिना किसी पात्र के ही संवाद का प्रयोग **'आकाशे'** इस अभिनय संकेत द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इसीप्रकार **जनान्तिक, सरोषम्, नेपथ्य, सक्रोधम्, स्वगतम्, विहस्य, ससम्भ्रमम्, अपवारितम्** आदि। प्रस्तुत नाटक में महाकवि ने भावाभिव्यक्ति को प्रभावी तथा रोचक बनाने की दृष्टि से इनमें से अधिकाँश अभिनय संकेतों का प्रयोग किया है।

■ **अशिष्ट प्रदर्शनों पर प्रतिबन्ध होना**– संस्कृत नाटकों की यह महत्त्वपूर्ण विशेषता कही जा सकती है कि यहाँ अशिष्ट प्रदर्शन जैसे– मृत्यु, भोजन, युद्ध, चुम्बन एवं आलिंगन आदि क्रियाओं पर पूर्णतया प्रतिबन्ध लगाया गया है, क्योंकि इनका मंच पर प्रदर्शन नहीं किया जाता है, अत्यधिक आवश्यक होने पर इन क्रियाओं की मात्र सूचना ही दी जाती है।

■ **नाट्यशालाओं के आकारों का निर्धारण होना** –ध्यातव्य है कि नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरतमुनि ने संस्कृत नाटकों के अभिनय हेतु अनेक प्रकार की नाट्यशालाओं की परिकल्पना की। तदनुसार– नाटक का मंचन करने के लिए नाट्यशाला वर्गाकार, आयताकार तथा त्रिभुजाकार होनी चाहिए। इसी प्रसंग में उन्होंने इनकी लम्बाई, चौड़ाई के सम्बन्ध में भी उल्लेख किया है।

■ **रूपक एवं उपरूपकों की संरचना किया जाना**– यदि हम सूक्ष्मदृष्टि से विचार करें तो संस्कृत नाटक का क्षेत्र अत्यधिक विशाल रहा है। यहाँ हमें रूपकों के दस भेदों का उल्लेख देखने को मिलता

है, **नाटक तो इनमें केवल एक भेद मात्र है,** किन्तु बाद में इन सभी के लिए नाटक शब्द का ही प्रयोग होने लगा। इतना ही नहीं, यहाँ तो उपरूपकों के भी अट्ठारह भेदों का परिगणन किया गया है, जिसे संस्कृत नाट्यशास्त्र की मौलिक परिकल्पना कही जा सकती है।

- **स्वाभाविकता पर विशेष ध्यान देना–** संस्कृत नाटकों की महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि यहाँ पर सरसता, स्वाभाविकता तथा प्रभावोत्पादकता पर विशेष बल दिया गया है। यही कारण है कि स्त्री पात्रों के अभिनय को यहाँ स्त्रियों द्वारा ही कराया जाता है, पुरुष पात्रों का इसके लिए प्रयोग नहीं करते हैं।

- **विशिष्ट कथावस्तु का विधान करना–** संस्कृत के नाटकों की विशेषता यह भी है कि यहाँ सम्पूर्ण कथावस्तु को अंकों में विभाजित किया जाता है, जिसकी अधिकतम संख्या यहाँ दस मानी गयी है। यह कथावस्तु आधिकारिक एवं प्रासंगिक दो प्रकार की होती है। इसमें भी प्रासंगिक कथावस्तु के पताका और प्रकरी दो भेद बताए गए हैं। ऐसा करने से कथावस्तु में रोचकता का आधान होता है। आचार्य धनंजय ने **दशरूपक** नामक नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ में इस सबके विषय में विस्तार से उल्लेख किया है।

5. महाकवि भवभूति– संस्कृत नाटककारों में महाकवि भवभूति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि उन्होंने कुल तीन नाटकों की रचना की है, किन्तु उन सभी में **उत्तररामचरित** सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति है, उसमें भी तृतीय अंक करुणरसं की दृष्टि अपना विशिष्ट स्थान रखता है, जिसमें उन्होंने व्यक्ति के हृदय की गहन अनुभूतियों का मनो–वैज्ञानिक दृष्टि से सजीव चित्रण किया है। भाषा पर इनका असाधारण अधिकार था, इसीलिए इन्होंने अपने लिए **'वश्यवाक्'** विशेषण का प्रयोग किया है। हम यहाँ महाकवि भवभूति के विषय में विस्तार से विचार कर रहे हैं।

i) **व्यक्तित्व–** यह प्रसन्नता का विषय है कि हमारे विवेच्य महाकवि ने अपने तीनों नाटकों की प्रस्तावना में वंश–परिचय एवं जीवनवृत्त के सम्बन्ध में किंचित् उल्लेख किया है। तदनुसार– ये

दक्षिण भारत में स्थित पद्मपुर के निवासी और कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का पाठ करने वाले ब्राह्मण थे। इनका काश्यप गोत्र था एवं इनके पितामह का नाम भट्टगोपाल और पिता का नाम नीलकण्ठ तथा माता का नाम जतुकर्णी था। इनका मूल नाम श्रीकण्ठ था, किन्तु विविध शास्त्रों के विशेषज्ञ ये कवि के रूप में भवभूति के नाम से प्रसिद्ध हुए। कुछ विद्वान् भवभूति पद को इनकी उपाधि मानने के पक्षधर रहे हैं। अपने गहन ज्ञान के आधार पर ये 'पदवाक्य प्रमाणज्ञ' भी माने जाते थे।

महाकवि की कृतियों का सूक्ष्मदृष्टि से अध्ययन करने पर, उनके व्यक्तित्व का भी सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। जैसें– महाकवि को अपने वैदुष्य पर अत्यधिक गर्व था। अपनी कृतियों में उन्होंने इसप्रकार के भावों को अभिव्यक्ति प्रदान की है, किन्तु उन्हें इस बात का अत्यन्त कष्ट था कि जितना सम्मान उन्हें कवि समाज में मिलना चाहिए था, वह उन्हें आरम्भिक जीवन में प्राप्त नहीं हो सका। प्रस्तुत कथ्य की पुष्टि उनके मालती माधव में प्रयुक्त 'ये नाम केचिदिह नः'[1] इत्यादि श्लोक से भी होती है, जिससे उनके जीवन में किंचित् नैराश्य भी अभिव्यंजित होता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम दो कृतियों से काव्य जगत् में उन्हें विशेष ख्याति प्राप्त नहीं हुई, किन्तु उत्तररामचरितम् की रचना के बाद, उनकी प्रसिद्धि सर्वत्र प्रसारित हुई, जिसके कारण अपनी प्रौढ़ा–वस्था में उन्हें राजा यशोवर्मा का आश्रय प्राप्त हुआ। उनके नाटक 'कालप्रियानाथ' की यात्रा के अवसर पर ही मंचन किए गए। किसी राजा के समक्ष नहीं।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत कृति के अध्ययन से यह भी प्रतीत होता है कि उनका दाम्पत्य–जीवन आरम्भ में सुखी था। यही कारण है कि दाम्पत्य–जीवन का जैसा सरल, स्वाभाविक, सजीव एवं मर्यादित चित्र यहाँ पर अंकित किया गया है, वह अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। उन्होंने

---

[1]. मालती माधव– 1/8।

स्त्री को घर की लक्ष्मी,[1] जीवनसंगिनी तथा पवित्रता की मूर्ति कहा है। भवभूति के ग्रन्थों की सबसे बड़ी विशेषता, इनमें विदूषक का अभाव रहा है, जिससे उनके गम्भीर व्यक्तित्व की प्रतीति भी पाठकों को सहज ही हो जाती है।

इसीप्रकार अपने जीवन में वे सच्चरित्रता, निष्ठा तथा मर्यादा के प्रबल पक्षपाती थे। धर्म एवं संस्कारों के प्रति उनकी गहन आस्था थी। साथ ही, प्रस्तुत कृति में वात्सल्यमय चित्रों की सुन्दर एवं मार्मिक प्रस्तुति के आधार पर, उनके कोमल पितृहृदय होने की भी पुष्टि होती है, जिसे सन्तति के प्रति उनके द्वारा किए जाने वाले स्नेह की अनुभूति के रूप में देखा जा सकता है। भवभूति की तीनों कृतियों से उनके भाग्यवादी दृष्टिकोण की पुष्टि भी होती है।

इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों के अनुसार भवभूति अपने सरस दिनों में ही विधुर हो गए थे,[2] बारम्बार विधुर अवस्था का मार्मिक चित्रण करना उक्त कथ्य की पुष्टि करता प्रतीत होता है।

ii) **कृतित्व–** भवभूति के कुल तीन नाटक मिलते हैं– मालती माधव, महावीर चरित, एवं उत्तररामचरित। इनमें मालती माधव कवि की प्रथम तथा उत्तररामचरित अन्तिम कृति मानी गयी है। यद्यपि कुछ विद्वान् महावीर चरित को प्रथम कृति के मानने के पक्षधर हैं, किन्तु मानव जीवन में रस की प्रधानता को दृष्टिगत रखते हुए, सर्वप्रथम श्रृंगार प्रधान कृति मालती माधव को रखना ही उचित प्रतीत होता है। महावीर चरित एवं उत्तर रामचरित में कवि स्वयं को **वश्यवाक्** और **परिणतप्रज्ञ** कहता है। इसलिए मालतीमाधव को ही प्रथमकृति मानना समीचीन है।

साथ ही, कवि ने महावीर चरित तथा उत्तर रामचरित, इन दोनों ही कृतियों में रामकथा को कथावस्तु के रूप में स्वीकार किया है, इस दृष्टि से और शैली की क्रमशः सरलता एवं गम्भीरता को ध्यान में

1. उत्तररामचरितम्–1/8।
2. उत्तररामचरितम्, टीकाकार, पं. ब्रह्मानन्द शुक्ल, साहित्यभण्डार, मेरठ, भूमिका, पृष्ठ–18।

रखते हुए, मालती माधव को प्रथम और उत्तर रामचरित को अन्तिम कृति मानना ही संगत प्रतीत होता है।

यहाँ हम मालतीमाधव एवं महावीरचरित दोनों कृतियों का अत्यन्त संक्षेप में परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं–

(क) **मालतीमाधव–** यह दस अंकों में निबद्ध रूपक का प्रकरण नामक भेद है, जिसमें मालती और माधव तथा मकरन्द और मदयन्तिका के प्रणय तथा परिणय का वर्णन किया गया है, इनमें माधव विदर्भराज के मन्त्री देवराज का पुत्र है तथा मालती पद्मावती के राजा के मन्त्री भूरिवसु की पुत्री है। इसके अतिरिक्त पद्मावती नरेश का नर्मसचिव नन्दन भी मालती पर आसक्त है और राजा के सहयोग से मालती से विवाह करने का इच्छुक है। मदयन्तिका नन्दन की बहन और मालती की सखी है। इसीप्रकार दोनों मन्त्रियों की मित्र कामन्दकी जो अब संन्यासिनी हो गयी है, मालती एवं माधव का विवाह निर्विघ्न कराने की पक्षधर है, जिसमें वह अपनी शिष्या सौदामिनी के सहयोग से सफलता भी प्राप्त करती है।

प्रथम नाटक होने से वस्तुतः इसमें महाकवि का पाण्डित्य अधिक प्रदर्शित हुआ है। लम्बे–लम्बे समासों से युक्त गद्य कादम्बरी की याद दिलाते हैं। गद्यों की भरमार के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने नाटक को काव्यात्मक नाटक का रूप दे दिया हो। इसके ऊपर शूद्रक के मृच्छकटिकम् का प्रभाव स्पष्टरूप से देखा जा सकता है।

(ख) **महावीरचरित–** सात अंकों में निबद्ध इस नाटक में राम के विवाह से लेकर राज्याभिषेक तक की रामायण कथा को निबद्ध किया गया है। शिव के धनुष को तोड़कर, राम सीता से विवाह कर लेते हैं, जिससे रावण क्रुद्ध हो जाता है। रावण का मन्त्री माल्यवान् परशुराम को राम के विरुद्ध उकसाता है। इसके बाद राम और परशुराम के वाक्‌युद्ध के साथ, युद्ध भी होता है और परशुराम पराजित हो जाते हैं। तत्पश्चात् माल्यवान् के षड़यन्त्र से शूर्पनखा कैकेयी की दासी मन्थरा के रूप में कैकेयी का पत्र राम को देती है, जिसमें दशरथ के वरदान के अनुसार राम को चौदह वर्षों के वनवास तथा भरत के राजा होने

की बात का उल्लेख हुआ है। उसके बाद, सीता–हरण, जटायु–रावणयुद्ध, विभीषण का राम से मिलन तथा बालिवध्र एवं सुग्रीवमैत्री का वर्णन किया गया है। राम–रावण युद्ध के बाद रावण का वध हो जाता है। अन्त में, सीता की अग्नि परीक्षा एवं राम का अयोध्या लौटना और उनका राज्याभिषेक वर्णित हुआ है।

प्रस्तुत महाकवि की दूसरी कृति होने से उनकी कृत्रिम शैली में अपेक्षाकृत सुधार दृष्टिगोचर होता है। इसीलिए यहाँ लम्बे समासों का प्रायः अभाव रहा है, किन्तु पद्यों में श्लिष्ट बन्धों का पहले के समान प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत नाटक में गतिशीलता का पूर्णतया अभाव है। इसके विपरीत कवित्व का सुन्दर प्रदर्शन हुआ है। भावों के अनुकूल सरल एवं क्लिष्ट भाषा को भी देखा जा सकता है।

(ग) **उत्तररामचरितम्**– सात अंकों में निबद्ध इस नाटक में कवि ने रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा को ग्रहण किया है, जिसमें सीता के परित्याग से लेकर, राम के विलाप, लव एवं कुश की प्राप्ति और निर्दोष सीता को राम द्वारा स्वीकार किए जाने का वर्णन किया गया है। अंकों के अनुसार यह कथा अत्यन्त संक्षेप में इसप्रकार है–

प्रथम अंक– 'चित्रदर्शन' नामक इस अंक में चित्रवीथी के अन्तर्गत राम, अपने भाई लक्ष्मण के सहयोग से पत्नी सीता को विवाह से लेकर अग्निशुद्धि पर्यन्त चित्रों का दर्शन कराते हैं तथा लोकापवाद के कारण सीता का परित्याग कर देते हैं। यद्यपि इसके लिए वे मन ही मन अत्यधिक दुःखी भी हैं। यहाँ चित्रदर्शन का मूल उद्देश्य सीता का मनोरंजन करना है, जो अपने पिता के लौटने से दुःखी है। इसमें करुण दृश्यों का संकलन किया गया है। इससे भावी सीता–वियोग का संकेत भी मिलता है। इसी में जृम्भकास्त्र के दृश्य भी हैं और सीता की सन्तान में स्वयं इन अस्त्रों के संक्रान्त होने की बात भी कही गयी है, जो सप्तम अंक में कुश–लव को पहचानने में सहायक रही है। इसी प्रकार यहाँ पर राम का सीता के प्रति असीम प्रेम भी अभिव्यक्त हुआ है। साथ ही, तृतीय अंक में निरूपित दृश्यों की पृष्ठभूमि भी तैयार की गयी है।

द्वितीय अंक 'पंचवटी प्रवेश' नामक इस अंक में वन में लव और कुश के जन्म, राम का अश्वमेध यज्ञ, लक्ष्मण के पुत्र द्वारा अश्वमेध के अश्व की रक्षा करना तथा शम्बूक वध की कथा को ग्रहण किया गया है। यहाँ प्रस्तुत घटनाएँ सीता निर्वासन से बारह वर्षों के बाद की हैं। सीता के पुत्रों को वाल्मीकि आश्रम में शिक्षा मिलती है। इसी बीच राम अश्वमेध यज्ञ आरम्भ करते हैं, जिसमें सहधर्मिणी के रूप में सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा स्थापित करते हैं। राम, शम्बूक नामक शूद्रमुनि के वध के लिए दण्डकारण्य जाते हैं, मरने पर उसे दिव्य पुरुष का रूप मिल जाता है। इस अंक में कवि ने दण्डकारण्य की भयावह प्रकृति का काव्यात्मक वर्णन किया है।

तृतीय अंक 'छाया' नामक इस अंक में राम का जनस्थान में स्थित पंचवटी में फिर से आगमन होता है और वे वहाँ पर घटित पूर्वकालिक घटनाओं को याद करके, मूर्च्छित होते हैं, गंगा के आशीर्वाद से अदृश्य हुई सीता, अपने हाथ के स्पर्श से उन्हें होश में लाती है। इस अंक में सीता के वियोग में अत्यधिक दुःखी राम के जीवन की रक्षा के लिए **वनदेवी वासन्ती** तथा सीता के साथ पात्र रूप में नियोजित **तमसा** को अगस्त्य पत्नी लोपामुद्रा की आज्ञा से रखा गया है। इसी अंक में राम के माध्यम से अश्वमेध यज्ञ में पत्नीरूप में सीता की स्वर्ण द्वारा बनायी हुई प्रतिमा रखने की सूचना भी मिलती है।

चतुर्थ अंक 'कौसल्या जनक योग' नामक इस अंक के अन्तर्गत वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में महर्षि वसिष्ठ, अरुन्धती, महाराज जनक और कौसल्या आदि का आगमन होता है तथा इसी अंक में बालक लव के दर्शन होते हैं और अश्वमेधीय अश्व को पकड़ने के लिए, उसके प्रस्थान की कथा को ग्रहण किया गया है।

पंचम अंक 'कुमार विक्रम' नामक इस अंक में लव और लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु का युद्ध होता है, राम के पुत्र लव द्वारा **जृम्भकास्त्र** का प्रयोग किया जाता है। इस अंक में वीररस से परिपूर्ण संवाद हृदया–वर्जक कहे जा सकते हैं।

षष्ठ अंक 'कुमार प्रत्यभिज्ञान' नामक इस अंक में लव तथा चन्द्रकेतु में दिव्य अस्त्रों द्वारा भयंकर युद्ध होता है, जिसकी सूचना विष्कम्भक द्वारा दी जाती है और राम के आगमन पर, इसे बन्द करा दिया जाता है। तभी कुश भी आ जाता है, इन दोनों बालकों को देखकर, राम इनके सीतापुत्र होने का अनुमान लगाते हैं।

सप्तम अंक 'सम्मेलन' नामक इस अन्तिम अंक में, वाल्मीकि के आश्रम में 'गर्भनाटक' का अभिनय, सीता को निर्दोष सिद्ध करना तथा लव, कुश और राम का मिलन वर्णित हुआ है। यहाँ पर गर्भनाटक का प्रयोग कृति को सुखान्त बनाने के लिए किया गया है। गंगा के किनारे नाटक का अभिनय अप्सराओं द्वारा भरत मुनि के निर्देशन में किया जाता है, जिसमें राम और उनकी समस्त प्रजा को भी आमन्त्रित किया गया है। इसमें सीता के निर्वासन से लेकर लव–कुश के जन्म पर्यन्त की घटनाओं का अभिनय किया जाता है। अभिनय देखते हुए राम मूर्च्छित हो जाते हैं, जिनकी मूर्च्छा को स्वयं सीता आकर दूर करती है। अन्त में राम का सीता और लव–कुश से मिलन हो जाता है। इस अंक में सीता के चरित्र की उत्कृष्टता को चित्रित किया गया है।

iii) **स्थितिकाल–** संस्कृत के दूसरे कवियों के समान भवभूति के काल–निर्धारण में कोई विशेष कठिनाई नहीं है, क्योंकि कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों के आधार पर, इनकी पूर्व एवं अपर सीमा का निर्धारण सहज ही किया जा सकता है। प्रचलित मतों के आधार पर विद्वानों ने भवभूति का समय सप्तम शती के अन्तिम चरण तथा अष्टम शती के प्रथम चरण के मध्य (680 ई. से 750 ई.) सुनिश्चित किया है।[1] हम यहाँ इस विषय में विस्तार से चिन्तन कर रहे हैं–

पूर्वसीमा– सप्तम शती के पूर्वार्द्ध (606–648 ई.) में स्थित महा कवि बाण ने हर्षचरित के आरम्भ में अपने पूर्ववर्ती कवियों का उल्लेख किया है, जिनमें भवभूति का कथन नहीं किया गया है। इस आधार पर

1 . संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ–397।

इन्हें बाण का परवर्ती अर्थात् 650 ई. के बाद मानना उचित प्रतीत होता है।

अपरसीमा– आचार्य मम्मट, महिमभट्ट, क्षेमेन्द्र (1100 ई.), धनंजय (995 ई.) ने अपनी रचनाओं में भवभूति के उद्धरणों को प्रस्तुत किया है तथा 20वीं शती में विद्यमान धनपाल ने तिलकमंजरी में भवभूति की प्रशंसा की है। नवम शती के राजशेखर ने अपने को भवभूति का अवतार कहा है।[1] काव्यालंकारसूत्रवृत्ति के प्रणेता आचार्य वामन ने भवभूति के दो श्लोकों[2] को उद्धृत किया है। वामन का समय विद्वानों ने अष्टम शती का उत्तरार्द्ध एवं नवम शती का प्रथम चरण स्वीकार किया है। इसलिए भवभूति को 750 ई. से परवर्ती नहीं माना जा सकता है।

इसके अलावा कल्हण की राजतरंगिणी (लगभग1158 ई.) में भवभूति के आश्रयदाता यशोवर्मा को काश्मीर के राजा ललितादित्य द्वारा पराजित बताया गया है।[3] 733 ई. के लगभग स्थित वाक्पतिराज ने अपनी कृति गउडवहो में कान्यकुब्ज के महाराज यशोवर्मा के राज्य काल में एक खगास सूर्यग्रहण का कथन किया है तथा याकोबी ने इसका समय 14 अगस्त, 733 ई. माना है।[4] इस आधार पर भवभूति और वाक्पति राज को यशोवर्मा का आश्रित कवि स्वीकार किया जा सकता है।

इस समय तक भवभूति की कीर्ति सर्वत्र फैल चुकी थी, क्योंकि वाक्पतिराज ने भवभूति की प्रशंसा में एक श्लोक को उद्धृत किया है।[5]

1 . बभूव वल्मीकभवः पुरा ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया, स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः।। बा.रामा.–1/16

2 . (क) दोर्लीलांचित..... इत्यादि। महावीर चरित–1/54।
(ख) इयं गेहे लक्ष्मी......इत्यादि। उत्तररामचरित–1/38।

3 . कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम्।। राजतरंगिणी–4/144 ।

4 . संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय। पृष्ठ–543।

5 . भवभूतिजलनिधिनिर्गतकाव्यामृतरसकणा इव स्फुरन्ति।
यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथानिवेशेषु।। संस्कृत रूपा., गउडवहो–799।

गउडवहो की संरचना 740 ई. के लगभग मानी गयी है।[1] इस आधार पर कहा जा सकता है कि महाकवि भवभूति का आविर्भाव 680 ई. से 750 ई. के मध्य हुआ होगा।

iv) **उत्तररामचरितम् के मूलस्रोत व परिवर्तन**— उल्लेखनीय है कि महाकवि भूवभूति ने यद्यपि वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में सर्ग 42 से लेकर 97 तक प्रयुक्त रामकथा को प्रस्तुत नाटक की कथा का आधार बनाया है, किन्तु वहाँ पर सीता के पृथ्वी में अन्तर्धान होने से यह कथा दुःखान्त प्रयुक्त हुई है, जिसे सुखान्त करने के लिए उन्होंने पद्मपुराण के पातालखण्ड के अध्याय 1 से 68 अध्याय में आयी कथा को भी इसमें स्वीकार किया है, क्योंकि वहाँ पर अन्त में रामसीता का मिलन हो जाता है।

ऐसा होने पर भी उन्होंने इसे नाटकीयरूप देने एवं इसमें करुण रस का प्रवाह लाने के लिए, अनेक स्थानों पर कुछ परिवर्तन भी किए हैं और कुछ नवीन पात्रों की कल्पना करके, इसे सुखान्त बनाने का सफल प्रयास किया है, जिसका हम यहाँ अंकों के अनुसार क्रमशः संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं—

प्रथम अंक— यहाँ प्रयुक्त 'चित्रवीथी' की कल्पना कवि की अपनी है। इसीप्रकार मूलकथा में 'भद्र' नामक सभासद राम को लोक में फैले सीता विषयक अपवाद की सूचना देता है, जबकि यहाँ पर यह सूचना दुर्मुख नामक गुप्तचर द्वारा दी गयी है।

द्वितीय अंक— मूल कथा में सीता के पुत्रों का जन्म वाल्मीकि के आश्रम में होता है तथा सीता भी वहीं पर रहती है, जबकि यहाँ पर गंगा के जलप्रवाह में लव—कुश का जन्म होता है और सीता पाताल में निवास करती है। इसीप्रकार मूल कथा में जृम्भकास्त्रों की शिक्षा वाल्मीकि देते हैं, जबकि इस कथा में ये लव—कुश को जन्म से ही सिद्ध हैं।

[1] . संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर ऋषि। पृष्ठ— 525 ।

तृतीय अंक— 'छाया' नामक यह अंक वस्तुतः कवि की पूर्णरूप से मौलिक कल्पना है, जिसमें अदृश्य सीता, राम के जनस्थान आने पर, पूर्व स्थानों को देखने से होने वाली, उनकी विकल स्थिति में मूर्च्छित होने पर अपने हाथ के स्पर्श से उन्हें होश में लाती है। इस अंक में प्रयुक्त सभी पात्र कवि की अपनी कल्पना से प्रसूत रहे हैं।

चतुर्थ अंक— इसके अलावा सम्पूर्ण चतुर्थ अंक भी कवि की अपनी कल्पना पर आधारित रहा है, जिसमें वाल्मीकि आश्रम में जनक आदि का आगमन हुआ है। यहाँ प्रयुक्त कौसल्या एवं जनक संवाद, लव को देखना तथा अश्वमेध के घोड़े को पकड़ना आदि सम्मिलित हैं।

पंचम अंक— इस अंक में प्रयुक्त चन्द्रकेतु एवं लव का वार्तालाप, जृम्भकास्त्र का प्रयोग और राम के पौरुष की लव के द्वारा निन्दा करना आदि प्रसंग भी कवि—कल्पित रहे हैं, जिनसे नाटक में रोचकता का संचार हुआ है।

षष्ठ अंक— इसके बाद लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु और लव का दिव्य अस्त्रों के माध्यम से युद्ध नियोजित किया गया है। तत्पश्चात् राम का आगमन होना और युद्ध की समाप्ति आदि, राम का लव और कुश के प्रति स्नेह प्रदर्शन, ये सभी प्रसंग कवि की कल्पना प्रसूत रहे हैं।

सप्तम अंक— इसीप्रकार अन्तिम 'गर्भ नाटक' नामक अंक भी कवि की मौलिक कल्पना ही कहा जा सकता है। यहाँ पर संसार के सभी चराचर प्राणियों के समक्ष सीता को निर्दोष सिद्ध किया गया है। नाटक के अन्त में अरुन्धती और सम्पूर्ण जनमत के सामने राम निर्दोष सीता को स्वीकार कर लेते हैं, जिससे नाटक सुखान्त हो जाता है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि इस नाटक की संरचना के पीछे महाकवि का मुख्य उद्देश्य करुणरस की प्रवाहमयता को नियोजित करना एवं दूसरे सभी रसों को करुणमूलक

सिद्ध करना था।[1] इसीलिए उन्होंने प्रत्येक घटना के मूल में करुण की भावना को ही महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है, जिसके लिए उन्होंने मूलकथा में तथा यथास्थान घटनाओं के क्रम में अनेकानेक परिवर्तन करते हुए, नए दृश्यों एवं नए पात्रों को नियोजित किया है। इसी से प्रस्तुत नाटक सुखान्त बन सका है।

v) **उत्तररामचरितम् का नामकरण**– ध्यातव्य है कि महाकवि ने प्रस्तुत नाटक का नामकरण अत्यन्त चिन्तनपूर्वक किया है। इससे इसके घटना–चक्र पर अत्यन्त सुन्दर प्रकाश पड़ा है, क्योंकि नाटक का नामकरण करते हुए, उन्होंने इस सिद्धान्त का पूर्णरूप से पालन किया है कि– किसी भी नाट्यकृति का नाम ऐसा होना चाहिए, जिससे उसमें प्रतिपादित अर्थ की प्रतीति हो रही हो।[2] इस दृष्टि से प्रस्तुत नाटक का नाम उत्तरारामचरित पूर्णरूप से सार्थक प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध में नाम की विभिन्न व्युत्पत्तियों को करते हुए, विद्वानों ने पर्याप्त विचार किया है, जिसका हम यहाँ संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

(क) ऐसा नाटक जिसमें राम का उत्तर अर्थात् जीवन के बाद का चरित वर्णित किया गया हो,[3] वह उत्तररामचरित है। इस दृष्टि से यदि देखें तो राम का पूर्वचरित इनके द्वारा इससे पूर्व विरचित 'महावीर चरित' में चित्रित किया गया है। उसके बाद के चरित्र का वर्णन इस नाटक मे करने से इसके नाम की सार्थकता सिद्ध होती है।

(ख) अथवा इसकी दूसरी व्युत्पत्ति इसप्रकार सम्भव है– जिसमें राम का उत्कृष्ट चरित्र वर्णित किया गया हो,[4] वह नाटक, क्योंकि यहाँ पर लोक के आराधन के लिए राम ने अपनी प्रिया सीता का भी परित्याग कर दिया, इस दृष्टि से राम के चरित्र की उत्कृष्टता सिद्ध होती है।

1. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी। पृष्ठ–403।
2. नाम कार्यं नाटकस्य गर्भितार्थप्रकाशकम्।
3. रामस्य उत्तरं चरितं यस्मिन् नाटके वर्णितमिति, तत् उत्तररामचरितम्।
4. रामस्य उत्कृष्टं चरितं प्रतिपादितं तन्नाटकम् उत्तररामचरितम्।

(ग) अथवा राम के जिस चरित का पठन एवं श्रवण करके लोग इस संसार–सागर से पार उतर जाते हैं,[1] ऐसा राम का चरित, जिस नाटक में चित्रित किया गया है, वह नाटक। इस व्युत्पत्ति में महाकवि की संसार सागर से पार उतरने की प्रबल भावना भी अभिव्यक्त हुई है।

(घ) इसके अलावा जिस नाटक में भगवती सीता का सर्वोत्कृष्ट चरित वर्णित हुआ हो,[2] वह नाटक। विशेषरूप से तृतीय अंक की दृष्टि से यह अर्थ अधिक रमणीय प्रतीत होता है, यों तो प्रस्तुत नाटक की प्रत्येक पंक्ति उनके उत्कृष्टतम चरित की साक्षी रही है। सहृदय सामाजिक भी करुण की मूर्ति या साक्षात् विरहव्यथा रूप सीता की प्रत्येक क्रिया से, उसके द्वारा प्रयुक्त प्रत्येक शब्द से अत्यधिक प्रभावित रहा है।

(ङ) इसीप्रकार जिस नाटक में राम और सीता दोनों का ही चरित समानरूप से वर्णित किया गया हो,[3] वह नाटक। इस अर्थ में कवि की सीता और राम दोनों के प्रति ही अभेदबुद्धि प्रमुखता लिए हुए है।

(च) इसके अतिरिक्त प्रस्तुत कृति के नामकरण में राम को विष्णु का अवतार मानकर भी एक व्युत्पत्ति इसप्रकार की जा सकती है। उत्तरो गोपतिर्गोप्ता' इत्यादि विष्णुसहस्रनाम के श्लोक के अनुसार विष्णु का एक नाम **उत्तर** भी बताया गया है, जिससे उत्तरश्चासौ रामः, इति उत्तररामः अर्थात् विष्णुरूपः तस्य चरितम्, इति यत्र, उत्तररामचरितम्।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि महाकवि भवभूति ने प्रस्तुत कृति का नाम उत्तर–रामचरितम् अत्यन्त चिन्तनपूर्वक किया है, जो उनके अद्भुत वैदुष्य का भी द्योतक रहा है। यद्यपि उत्तररामचरितम् पद 'अधिकृत्य कृतम्', इस व्युत्पत्ति के आधार पर 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' सूत्र से 'अण्' प्रत्यय

1. उत्तरन्ति, संसारार्णवतः जनाः येन तत्, उत्तरं रामचरितम्।
2. उत्तरं सर्वोत्कृष्टं रामायाः सीतादेव्याः चरितम्, यत्र तत् नाटकम्।
3. रामा च रामश्च रामौ, तयोः वर्णितं उत्कृष्टं चरितं यत्र, उत्तररामचरितम्।

करके, 'लुबाख्यायिकयो बहुलम्' इस वार्तिकसूत्र से उसका लोप होकर, सिद्ध होता है।

vi) **उत्तररामचरितम् में प्रकृति–चित्रण–** महाकवि भवभूति संस्कृत साहित्य के उन अंगुलीगण्य महान् कवियों में से एक हैं, जिन्होंने प्रकृति के कोमल एवं कठोर दोनों ही पक्षों का चित्रात्मक शैली में अत्यन्त मनोरम वर्णन किया है। भीषण प्रकृति के लिए प्रसिद्ध विदर्भ प्रान्त में जन्म लेने के कारण, भीषण प्राकृतिक दृश्य भी उन्हें रुचिकर प्रतीत हुए हैं। इस प्रसंग में दण्डकारण्य का एक दृश्य प्रस्तुत है, जिसमें हिंसक पशुओं की प्रचण्ड गर्जना तथा स्वेच्छा से सोए हुए, भयानक फूत्कार करने वाले भुजंगों की श्वास से अग्नि के प्रज्वलित होने का वर्णन किया गया है–

निष्कूजस्तिमिताः क्वचित्क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वनाः,
स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नयः।
सीमानः प्रदरोदरेषु विरलत्स्वल्पाम्भसो यास्वयं,
तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रवः पीयते।।2/16।।

प्रकति के कठोर पक्ष का एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है, जहाँ पर कुँजों में उल्लुओं की घू–घू, कीचकों में हवा के भरने से होने वाली ध्वनि से भयभीत कौओं के मूक हो जाने वाले कौंच पर्वत का वर्णन किया गया है, जहाँ पर मोरों के केकारव से भयभीत सर्प चन्दन के वृक्षों पर लिपट रहे हैं–

गुंजत्कुंजकुटीरकौशिकलघटाघुत्कारवत्कीचक–
स्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुलः क्रौंचाभिधोऽयं गिरिः।
एतस्मिन्प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिताः कूजितै–
रुद्वेल्लन्ति पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः।।29।।

इसके अतिरिक्त तृतीय अंक में तो वन के वृक्ष, मृग, मोर और हाथी आदि भी सीता–राम के बन्धु–बान्धव ही हैं।[1] सीता के हाथों से सींचा गया कदम्ब का वृक्ष, अब विकसित फूलों वाला हो गया है, जिस पर सीता के हाथों से नीवार अन्न खिलाकर बड़ा किया गया मोर, बैठकर केकारव कर रहा है, मानो बन्धु के प्रेम का अनुभव करता हुआ, अपनी माता सीता को याद कर रहा हो–

अनुदिवसमवर्धयत्प्रिया ते,
यमचिरनिर्गतमुग्धलोलबर्हम्।
मणिमुकुट इवोच्छिखः कदम्बे,
नदति स एष वधूसखः शिखण्डी।।3/18।।

इसप्रकार के सभी वर्णन कवि के कोमल प्रकृति विषयक प्रेम को सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। प्रस्तुत कृति में तो वनदेवी वासन्ती की आज्ञा का पालन करके, वृक्ष भी अपने आराध्य राम को पुष्पों तथा फलों से अर्घ्य प्रदान करते हुए दिखायी देते हैं तथा वायुएँ पुष्पों की भीनी–भीनी सुगन्ध को साथ में लेकर उनका स्वागत करती हैं। इतना ही नहीं, प्रस्तुत कृति में जब राम रुदन करते हैं तो पत्थरों का हृदय भी पसीज जाता है। उनके मूर्च्छित होने पर प्रकृति ही उनके जीवन की रक्षा भी करती है–

वीचीवातैः सीकरक्षोदशीतैरा–
कर्षद्भिः पद्मकिंजल्कगन्धान्।
मोहे मोहे रामभद्रस्य जीवं
स्वैरं स्वैरं प्रेरितैस्तर्पयेति।।3/2।।

इसके अतिरिक्त सीता द्वारा पुत्रवत् पालन किया गया, करिकलभ सीता के कानों से उनके लवली लता के पल्लव को ही अपनी सूँड से खींच लेता है, जिसे महाकवि की प्रकृति नटी का मानव के साथ अन्तरंग सम्बन्ध कहा जा सकता है–

येनोद्गच्छद्विसकिसलयस्निग्धदन्ताङ्कुरेण,
व्याकृष्टस्ते सुतनु! लवलीपल्लवः कर्णमूलात्।
सोऽयं पुत्रस्तव मदमुचां वारणानां विजेता,

[1] .(क) सीतादेव्या स्वकरकलितैः सल्लकीपल्लवाग्रै–
रग्रे लोलः करिकलभको यः पुरा वर्धितोऽभूत्।3/6।।
(ख) यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बान्धवो मे, यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम्।
एतानि तानि बहुकन्दरनिर्झराणि, गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि।।3/8।।

यत्कल्याणं वयसि तरुणे भाजनं तस्य जातः।।3/15।।

इसके अतिरिक्त भवभूति के प्रकृति चित्रण में हम यह भी देखते हैं कि उन्होंने तृतीय अंक में चित्रित प्रकृति के सभी उपादानों हाथी, मोर, आदि को युगलरूप में ही वर्णित किया है, यहाँ कोई अकेला है, तो केवल राम और सीता, जो मानो उन्हें यह संदेश दे रहे हों कि हे राजा राम! तुम्हारे द्वारा सीता का परित्याग उचित नहीं था, बिना संगिनी के तो जीवन ही निरर्थक है, जिससे भवभूति की प्रकृति का मानव के साथ गहन सम्बन्ध प्रतीत होता है, जो उसे कुछ अनुचित करने पर सन्देश भी प्रदान करती है।

इसीप्रकार अपनी प्रिया को प्रसन्न करने की कला में निपुण सीता द्वारा पाले गए युवा हाथी की क्रियाओं का चित्रण भी दर्शनीय है, जो महाकवि के प्रकृति विषयक गहन प्रेम को उद्घाटित करता है–

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु संपादिताः,
पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसंक्रान्तयः।
सेकः शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुन–
र्यत्स्नेहादनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम्।।3/16।।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि भवभूति का मन प्रकृति चित्रण में अत्यधिक रमा है, उनकी प्रकृति मानव की सहचरी रही है, जो उसके सुख में सुख तथा दुःख में दुःख का अनुभव करके, मानो उसी के समान आँसू बहाती है। न केवल प्रकृति का मृदुल पक्ष, अपितु कठोर पक्ष भी महाकवि को अत्यधिक प्रिय रहा है, यही कारण है कि उन्होंने प्रकृति के कठोर पक्ष के भी वैसे ही अन्तरंग चित्र प्रस्तुत किए हैं, जैसे कोमल प्रकृति के। यह महाकवि का प्रकृति विषयक अनन्य प्रेम ही है कि उन्होंने यहाँ पर प्रकृति के उपादानों पृथ्वी, नदी, वनदेवी आदि को भी पात्ररूप में नियोजित किया है, जो पूर्णरूप से मानव की भावनाओं से जुड़े हुए हैं।

पशु (करि–कलभ, मृग–शावक) पक्षी (मयूर), वृक्ष (कदम्ब) आदि तो यहाँ नायिका सीता के पुत्र ही हैं, जिनके थोड़ा भी कष्ट में होने पर, उसे वैसी ही वेदना का अनुभव होता है, जैसा पुत्र को कष्ट में

देखकर एक माता को होता है और वह इसे सुनने के साथ ही विकल हो जाती है तथा उसके आक्रान्ता हाथी पर विजयी होने को सुनने से प्रसन्न भी होती है।

vii) उत्तररामचरितम् में प्रयुक्त भाषा–शैली– महाकवि भवभूति की तीनों कृतियों का अवलोकन करने पर हम देखते हैं कि उनका भाषा पर असाधारण अधिकार है। यही कारण है कि उन्होंने अपनी तीनों ही कृतियों में स्वयं के लिए **'वश्यवाक्'** विशेषण का प्रयोग किया है, क्योंकि प्रसाद, माधुर्य एवं ओज गुणों का भावों के अनुसार प्रयोग करने में वे सिद्धहस्त हैं। उनके वर्णनों में हमें असाधारण निपुणता के दर्शन होते हैं। व्यक्ति के मन की भावनाओं का सूक्ष्मचित्र प्रस्तुत करने में उन्हें निपुणता प्राप्त है। यही कारण है कि वे गम्भीरतम भावों को भी सरल एवं सुबोध भाषा में प्रस्तुत करने में कुशल हैं। वस्तुतः वे बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक जो हैं।

ध्यातव्य है कि उन्होंने मालतीमाधव और महावीरचरित में विशेषरूप से गौड़ी रीति को स्वीकार किया है, जबकि उत्तररामचरितम् में करुणरस की प्रधानता होने के कारण वैदर्भी रीति को अपनाया है। इस दृष्टि से उदाहरणरूप में सम्पूर्ण तृतीय अंक को उद्धृत किया ज़ा सकता है। प्रसादगुण युक्त वैदर्भी रीति के उदाहरण यहाँ भरे पड़े हैं, जबकि वीररस तथा कठोर प्रकृति के वर्णनों में उन्होंने गौड़ी रीति का प्रयोग किया है। इसप्रकार हम देखते हैं कि उत्तररामचरितम् में गौड़ी तथा वैदर्भी रीति का मणिकांचन संयोग हुआ है। वीररस के प्रसंग में गौड़ी रीति का उदाहरण द्रष्टव्य है–

पातालोदरकुंजपुंजिततमःश्यामैर्नभो जृम्भकै–
रुत्तप्तस्फुरदारकूटकपिलज्योतिर्ज्वलद्दीप्तिभिः।
कल्पाक्षेपकठोरभैरवमरुद्व्यस्तैरभिस्तीर्यते
लीनाम्भोदतडित्कडारकुहरैर्विन्ध्याद्रिकूटैरिव।।5/14।।

इसीप्रकार प्रकृति वर्णन करते हुए मध्याह्न वर्णन में कवि ने गौड़ी रीति का प्रयोग किया है।[1] देवी वासन्ती ने सीता–परित्याग करने पर राम को उलाहना देते हुए प्रसादगुण युक्त वैदर्भी शैली को स्वीकार किया है, जिसका उदाहरण प्रस्तुत है–

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं,
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमंगे।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
तामेव शान्तमथवा किमतः परेण।।3/26।।

इसी प्रसंग में यह बात विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि महाकवि का भाषा पर असाधारण अधिकार है। उनकी भाषा में सरलता–क्लिष्टता, कोमल–कठोर, समासरहित–समासयुक्त आदि विरोधी गुण भी हमें पर्याप्तरूप में दृष्टिगोचर होते हैं। इसके अतिरिक्त उनका शब्दकोष भी अगाध है। इसीलिए प्रसंग एवं भाव के अनुकूल शब्दावली के चयन में वे अग्रणी दिखायी देते हैं। शृंगार, करुण एवं शान्त रसों के प्रयोग में उनकी भाषा स्वतः ही अत्यन्त सरल और सुबोध हो जाती है, जबकि वीर, बीभत्स, रौद्र एवं अद्भुत रसों में यही भाषा क्लिष्टता को धारण कर लेती है। शृंगाररस का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

समयः स वर्तत इवैष यत्र मां
समनन्दयत्सुमुखि गौतमार्पितः।
अयमागृहीतकमनीयकंकण–
स्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः।।1/18।।

इसके अतिरिक्त महाकवि की भाषा में हमें इसप्रकार की अद्भुत शक्ति भी देखने को मिलती है, जिससे वे विशेषरूप से करुण रस के प्रसंगों में वज्र के समान कठोर हृदय व्यक्ति को भी रुलाने की सामर्थ्य रखते हैं और वीररस के वर्णनों में निर्जीव में भी उत्साह का संचार कर देते हैं। मनोभावों के वर्णन में तो मानो वे मनोवैज्ञानिकों को भी

[1]. उत्तररामचरितम्–2/9।

चमत्कृत कर देते हैं। राम की मनोव्यथा को प्रस्तुत करने वाला एक उदाहरण प्रस्तुत है–

वेलोल्लोलक्षुभितकरुणोज्जृम्भणस्तम्भनार्थं,
यो यो यत्नः कथमपि समाधीयते तं तमन्तः।
भित्वा भित्वा प्रसरति बलात्कोऽपि चेतोविकार–
स्तोयस्येवाप्रतिहतरयः सैकतं सेतुमोघः।।3/36।।

यहाँ मर्यादा को लाँघने वाले, अन्तःकरण को मथ देने वाले, न रोके जा सकने वाले वेगयुक्त शोक के, जलों के समूह द्वारा रेतीले पुल को तोड़कर फैलाने के समान, अन्दर प्रवेश करके, बलपूर्वक उसे भेदते हुए, फैलने का तलस्पर्शी वर्णन किया गया है।

viii) **उत्तररामचरितम् में अलंकार–योजना**– महाकवि भवभूति की प्रस्तुत कृति में प्रायः सभी प्रमुख अलंकारों का नियोजन किया गया है। भाव एवं भाषा पर असाधारण अधिकार होने से यहाँ पर अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। उनके उपमा प्रयोग तो वस्तुतः नई विधा की सृष्टि करने वाले रहे हैं। इसीप्रकार यहाँ प्रयुक्त अनेक अर्थान्तरन्यास अलंकार भी कवियों में सुभाषितरूप में प्रसिद्ध हो गए हैं, जिनका हम पृथक् शीर्षक में विवेचन करेंगे। यहाँ केवल इतना ही कथ्य है कि–

महाकवि ने उत्तररामचरित में कुल अड़तीस अलंकारों का प्रयोग किया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, काव्यलिंग, अर्थान्तरन्यास उनके सर्वाधिक प्रिय अलंकार रहे हैं। इसके अलावा यहाँ पर तुल्ययोगिता, स्वभावोक्ति, अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, निदर्शना, विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति, दीपक, व्यतिरेक, संदेह, श्लेष तथा अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रचुरमात्रा में प्रयोग हुआ है। उन्होंने उपमा का सर्वाधिक 74 बार, उत्प्रेक्षालंकार का 38 बार, काव्यलिंग का 26 बार, रूपक अलंकार का 21 बार और अर्थान्तरन्यास का 15 बार प्रयोग किया गया है।[1]

[1] .संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ–421 ।

उक्त अलंकारों में से उपमा[1] एवं अर्थान्तरन्यास[2] का हमने पृथक् शीर्षक में उल्लेख किया है। शेष अलंकारों काव्यलिंग[3], उत्प्रेक्षा[4], अर्थापत्ति[5], संदेह[6], अतिशयोक्ति[7], परिकर[8], स्वभावोक्ति[9], रूपक[10], अनुमान[11] आदि अलंकारों के विषय में हम यहाँ संकेतभर देते हुए कुछ ही अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

(क) **काव्यलिंग अलंकार**[12]– महान् लोगों की आपत्तियों के आश्चर्यजनक होने में गंगा और पृथ्वी के समान दैवी शक्तियों द्वारा सहयोग दिए जाने से हेतु रूप में वाक्य के प्रयोग के कारण यहाँ काव्यलिंग का चमत्कार दर्शनीय है–

ईदृशानां विपाकोऽपि, जायते परमाद्भुतः।
यत्रोपकरणीभावमायात्येवंविधो जनः।।3/3।।

(ख) **उत्प्रेक्षालंकार**[13]– यहाँ पर कवि द्वारा विरह–व्यथा से दुर्बल सीता की सम्भावना, करुण की साक्षात् मूर्ति एवं शरीर को धारण किए हुए, विरह की व्यथा के रूप में करने के कारण उत्प्रेक्षालंकार का प्रयोग हुआ है–

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं,
दधती विलोलकबरीकमाननम्।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी–

1. उत्तररामचरितम्– 3/15, 19, 22।
2. उत्तररामचरितम्– 1/10, 13, 2/1, 7, 4/11।
3. उत्तररामचरितम्– 3/3, 20 ।
4. उत्तररामचरितम्– 3/4, 14 ।
5. उत्तररामचरितम्– 3/8 ।
6. उत्तररामचरितम्– 3/11 ।
7. उत्तररामचरितम्– 3/12 ।
8. उत्तररामचरितम्– 3/13 ।
9. उत्तररामचरितम्– 3/16, 21 ।
10. उत्तररामचरितम्– 3/17 ।
11. उत्तररामचरितम्– 3/22 ।
12. हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंगमुदाहृतम्।
13. सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।

विरहव्यथेव वनमेति जानकी ।।3/4।।

(ग) **संदेह अलंकार**[1]– प्रस्तुत श्लोक में कवि ने सीता के स्पर्श से प्राप्त हुए आनन्द में तीन प्रकार से संदेह किया है, इसलिए यहाँ संदेह अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है–

आश्च्योतनं नु हरिचन्दनपल्लवानां?
निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजो नु सेकः?
आतप्तजीवितमनः परितर्पणोऽयं,
संजीवनौषधिरसो हृदि नु प्रसिक्तः।।3/11।।

(घ) **अतिशयोक्ति अलंकार**[2]– यहाँ पर सीता के हाथ के स्पर्श से से प्राप्त होने वाले आनन्द का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करने से इस अलंकार की प्रस्तुति दर्शनीय है–

स्पर्शः पुरा परिचितो नियतं स एव,
संजीवनश्च मनसः परितोषणश्च।
सन्तापजां सपदि यः परिहृत्य मूर्च्छा–
मानन्दनेन जडतां पुनरातनोति।।3/12।।

(ङ) **रूपक अलंकार**[3]– यहाँ सन्तति को आनन्द की ग्रन्थि बताते बताते हुए उपमान एवं उपमेय में अभेद की स्थापना की गयी है, इसलिए रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है–

अन्तःकरणतत्त्वस्य, दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति पठ्यते।।3/17।।

(च) **स्वभावोक्ति अलंकार**[4]– निम्न श्लोक में सीता द्वारा पाले गए युवा हाथी की स्वाभाविक चेष्टाओं का वर्णन किया गया है। अतः स्वभावोक्ति अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है–

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु संपादिताः,
पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसंक्रान्तयः।

1. सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः।
2. सिद्धत्वेऽध्यवसायस्याहतिशयोक्तिर्निगद्यते।
3. तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।
4. स्वभावोक्तिरसौ चारु यथावद् वस्तुवर्णनम् ।

सेकः शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुन–

र्यत्स्नेहादनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम्।।3/16।।

ix) **महाकवि भवभूति की उपमा[1] योजना**–ध्यातव्य है कि हमारे विवेच्य महाकवि भवभूति ने उपमाओं के प्रयोग के विषय में नवीन विधा को जन्म दिया है। अनेक स्थलों पर उनकी उपमाएँ मौलिक, मनोरम, नूतनता लिए हुए तलस्पर्शी रही हैं, जिनमें सहृदय सामाजिक असीम आनन्द का अनुभव करता है। उनकी उपमाओं में हमें विविधता के दर्शन होते हैं। यहाँ हम कुछ ही उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। सर्वप्रथम **मूर्त की मूर्त** से दी गयी उपमा द्रष्टव्य है, जहाँ पर बहते हुए आँसुओं की उपमा कवि ने टूटी हुई मोतियों की माला रूप उपमान से दी है, जो अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है–

अयं तावद्बाष्पस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो,
विसर्पन्धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः।
निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटया,
परेषामुन्नेषो भवति चिरमाध्मातहृदयः।।1/29।।

इसीप्रकार अन्यत्र अमूर्त की उपमा के लिए अमूर्त उपमान का चयन भी अवलोकनीय है, जहाँ सीता के लोकापवाद की उपमा के लिए पागल कुत्ते के विष के प्रसरण को उपमानरूप में स्वीकार किया है–

हा हा धिक्! परगृहवासदूषणं यद्,
वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः।
एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाका–
दालर्कं विषमिव सर्वतः प्रसक्तम्।।1/40।।

इसके अतिरिक्त कुछ स्थलों पर उन्होंने अमूर्त की उपमा के लिए मूर्त उपमान का प्रयोग भी किया है, **जैसे–** राम के करुणरस की उपमा के लिए पुटपाक का प्रयोग, वस्तुतः हृदयस्पर्शी एवं राम के हृदय की अन्दर–अन्दर उबल रही वेदना का साक्षात् कराने वाला है–

[1]. प्रस्फुटं सुन्दरं साम्यमुपमेत्यभिधीयते।

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।।3/1।।

कुछ स्थलों पर वे मूर्त की उपमा के लिए अमूर्त उपमान का प्रयोग भी करते हैं, **जैसे–** उन्होंने सीता की उपमा के लिए कारुण्य की साक्षात् मूर्ति एवं शरीरधारिणी विरह व्यथा का उपमान के रूप में प्रयोग किया है, जो राम के विरह से दुर्बल सीता की मानसिक एवं शारीरिक दोनों ही स्थितियों के चित्रण में सहायक सिद्ध हुआ है–

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं,
दधती विलोलकबरीकमाननम्।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी–
विरहव्यथेव वनमेति जानकी ।।3/4।।

इसके अलावा अन्यत्र स्वेद में लिप्त बाहु को चन्द्रमा की कौमुदी से परिस्नुत चन्द्रकान्त मणि बताया है (1/34), अरुन्धती की उपमा के लिए उषा (4/10) का उपमान रूप में चयन उसकी पवित्रता आदि भावों का परिचायक होकर सहृदय के मन एवं मस्तिष्क में एक अद्भुत आनन्द का संचार करने वाला है। अन्यत्र एक स्थल पर महा कवि गुरु के विद्यादान करने की उपमा के लिए मणि और मृत्पिण्ड उपमान का चयन करते हैं, जिसे अत्यन्त मनोरम कहा जा सकता है–

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जड़े,
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्युपहन्ति वा।
भवति हि पुनर्भूयान् भेदः फलं प्रति तद्यथा,
प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः।।2/4।।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण के आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि महाकवि की उपमाओं में नवीनता एवं मौलिकता के साथ भावों का अद्भुत साम्य देखा जा सकता है। वे सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को भी उपमा के माध्यम से सहृदय सामाजिक के समक्ष साक्षात्रूप में प्रस्तुत कर देते हैं। वास्तव में उनकी उपमा बेजोड़ रही हैं। यद्यपि समालोचकों ने कालिदास की उपमाओं की **'उपमा कालिदासस्य'** कह

कर उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है तथापि भवभूति भी उपमाओं के प्रयोग के विषय में इसी प्रशंसा के हकदार कहे जा सकते हैं।

x) **महाकवि भवभूति के अर्थान्तरन्यास**– इसी प्रसंग में यह तथ्य विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि महाकवि ने उत्तररामचरित में अर्थान्तरन्यास अलंकारों के अत्यधिक प्रभावशाली प्रयोग किए हैं।[1] इस अलंकार में सामान्य का विशेष से या विशेष का सामान्य से समर्थन किया जाता है,[2] जिनके विषय में हम यहाँ संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

(क) विशेष का सामान्य से समर्थन–

वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि, को नु विज्ञातुमर्हति।।2/7।।

(ख) विशेष का सामान्य से समर्थन–

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा,
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति।
शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतां,
गुणाः पूजास्थानं गणिषु न च लिंग न च वयः।।4/11।।

(ग) विशेष का सामान्य से समर्थन–

स राजा तत्सौख्यं स च शिशुजनस्ते च दिवसाः,
स्मृतावाविर्भूतं त्वयि सुहृदि दृष्टे तदखिलम्।
विपाके घोरेऽस्मिन्न खलु न विमूढा तव सखी,
पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति।।4/12।।

(घ) सामान्य का विशेष से समर्थन–

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।।1/10।।

(ङ) विशेष का सामान्य से समर्थन–

उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः?

---

1. उत्तररामचरितम्– 1/10, 13, 28, 2/1, 2, 7, 19, 4/11, 12, 6/30।
2. सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्र सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।। मम्मट

तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः।।1/13।।

(च) विशेष का सामान्य से समर्थन–

शम्बूक एष शिरसा चरणौ नतस्ते,
सत्संगजानि निधनान्यपि तारयन्ति।।2/11।।

उपर्युक्त उदाहरणों में अर्थान्तरन्यास अलंकार का प्रयोग दर्शनीय है। इसप्रकार के अनेकानेक उदाहरण प्रस्तुत विवेच्य कृति में प्रयुक्त हुए है, जिनका हमने परिशिष्ट में विस्तार से उल्लेख किया है। अतः इस आधार पर कहा जा सकता है कि भवभूति उपमा आदि अलंकारों के साथ–साथ अर्थान्तरन्यास अलंकार के तलस्पर्शी प्रयोगों में भी सिद्धहस्त रहे हैं।

xi) **उत्तररामचरितम् में छन्दः–योजना**– प्रस्तुत विवेच्य कृति की छन्द की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि यहाँ पर प्रयुक्त लगभग 256 श्लोकों में महाकवि ने कुल उन्नीस छन्दों का प्रयोग किया है। बड़े छन्दों की अपेक्षा उन्हें छोटे छन्द अधिक प्रिय रहे हैं, यही कारण है कि यहाँ उन्होंने अनुष्टुप् छन्द का कुल 84 बार प्रयोग किया है। अनुष्टुप् के बाद शिखरिणी उनका सर्वाधिक प्रिय छन्द है, जिसका उन्होंने 30 बार प्रयोग किया है।

जबकि अन्य छन्दों में वसन्ततिलका छब्बीस बार, बड़े छन्दों में परिगणित शार्दूलविक्रीडित पच्चीस बार, मन्दाक्रान्ता तेरह बार प्रयोग किए है, मालिनी का सोलह बार, प्रहर्षिणी का बारह बार, हरिणी का नौ बार, इन्द्रवज्रा और उपजाति का सात–सात बार, शालिनी, मंजु–भाषिणी व पुष्पिताग्रा छन्दों का पाँच–पाँच बार। इसीप्रकार रथोद्धता एवं पृथ्वी इन दोनों छन्दों का केवल तीन–तीन बार एवं द्रुतविलम्बित और आर्या का दो–दो बार तथा औपच्छन्दसिक और वंशस्थ छन्दों का तो केवल एक–एक बार ही प्रयोग किया गया है।[1]

किन्तु इसी प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि स्रग्धरा छन्द का उन्होंने एक बार भी प्रयोग नहीं किया है। करुणरस की अभिव्यक्ति में

---

1. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ.कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ– 423।

शिखरिणी छन्द का प्रयोग अत्यन्त प्रभावी बन पड़ा है, जिसका यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है–

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशा–
द्वियोगे दीर्घेऽस्मिञ्झटिति घटनात्स्तम्भितमिव।
प्रसन्नं सौजन्याद्दयितकरुणैर्गाढ़करुणं
द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव।।3/13।।

xii) **उत्तररामचरितम् में करुण रस–** जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं कि करुण रस से आप्यायित उत्तररामचरितम् के प्रणयन के कारण संस्कृत नाट्य जगत् में उनका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो यह भी कहा जा सकता है कि श्रृंगार रस के विषय में जो स्थान कालिदास का रहा है, वही स्थान महाकवि भवभूति का करुणरस के प्रस्तुतिकरण में है।

व्यक्ति की अन्तःस्थिति का और उसमें भी उसके करुणभाव का, जितना सुन्दर चित्रण उत्तररामचरित में किया गया है, वैसा अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। करुणरस के वर्णन–वैशिष्ट्य के कारण तो उनके विषय में कहा जाता है कि– भवभूति का काव्य केवल मानवों को ही नहीं, अपितु पत्थरों को भी रुला देने की क्षमता रखता है।[1] प्रस्तुत कथ्य की पुष्टि में यहाँ कुछ ही उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं–

लोकनिन्दा के कारण सीता का परित्याग करने के बाद, जन–स्थान में जाने पर राम के हृदय की स्थिति का कारुणिक चित्र दर्शनीय है–

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढ़घनव्यथः।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।।3/1।।

परित्यक्ता, शोकसन्तप्त सीता का कारुणापूर्ण चित्र कवि ने उसे शरीरिणी विरह व्यथा कहकर प्रस्तुत किया है–

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं,
दधती विलोलकबरीकमाननम्।

[1]. ग्रावा अपि रोदिति दलित वज्रस्य हृदयम्।

करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी–
विरहव्यथेव वनमेति जानकी ।।3/4।।

रावण द्वारा सीता को छद्मविधि से हरण किए जाने पर, उसके वियोग में राम की दयनीय स्थिति का चित्र तो न केवल मनुष्यों को, अपितु पत्थरों को भी रुलाए दे रहा है–

अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना,
तथा वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि।
जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै–
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलित वज्रस्य हृदयम्।।1/28।।

इसीप्रकार प्रथम अंक में लोकाराधन के लिए सीता के त्याग का निर्णय मन में कर लेने के बाद, उसके वियोग के चिन्तन मात्र से राम की विकल स्थिति का चित्रण भी दर्शनीय है, जहाँ पर उनके हृदय में यह वेदना वज्र की कील के समान हो गयी है–

दुःखसंवेदनायैव, रामे चैतन्यमागतम्।
मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलायितं हृदि।।1/47।।

सम्पूर्ण तृतीय अंक तो करुणरस के पूर्ण परिपाक का खुला दस्तावेज ही है, जहाँ पर लगभग प्रत्येक पद्य सीता या राम की गहन वेदना को अभिव्यक्त करता हुआ प्रतीत होता है–

दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा तु न भिद्यते,
वहति विकलः कायो मोहं न मुंचति चेतनाम्।
ज्वलयति तनुमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदि न कृन्तति जीवितम्।।3/31।।

यहाँ पर राम के हृदय के फटने, किन्तु टुकड़े–टुकड़े न होने, शरीर के मूर्च्छित होने, किन्तु निर्जीव न होने तथा शरीर के वियोगाग्नि में जलने, किन्तु भस्मसात् न होने से करुण की अत्यन्त हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति हुई है।

इसीप्रकार राम के हृदय के फटने, अंगों के शिथिल होने, संसार के सूना प्रतीत होने, हृदय के जलने तथा घोर अन्धकार में आत्मा के

डूबने का करुण–क्रन्दन वस्तुतः करुणरस के पूर्ण परिपाक को करने वाला है–

हा हा देवि स्फुटति हृदयं, ध्वसते देहबन्धः,
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा,
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि।।3/38।।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण के आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि महाकवि भवभूति ने अपनी अन्तिम कृति उत्तररामचरित में करुणरस के अनेकानेक चित्रों को प्रस्तुत किया है, जिनके आधार पर समालोचकों ने उनकी प्रशंसा में ठीक ही कहा है कि–

'कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते'

xiii) **उत्तररामचरितम् में रस योजना–** महाकवि भवभूति वस्तुतः रससिद्ध कवि हैं। इसीलिए उन्होंने करुणरस की मार्मिक अभिव्यक्ति के साथ ही, शृंगार, वीर, अद्भुत, वात्सल्य आदि रसों के प्रस्तुतीकरण में भी अभूतपूर्व सफलता अर्जित की है, जिनका हम यहाँ संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

(क) **शृंगार रस–** ध्यातव्य है कि उत्तररामचरित का शृंगार उत्कृष्ट कोटि का रहा है, क्योंकि यहाँ पर नायक–नायिका की अतीत की स्मृतियों को चित्रित करके, उनके प्रगाढ़ प्रेम को प्रस्तुत किया गया है। महाकवि के शृंगार–चित्रण में प्रेमी–प्रेमिका के पूर्वराग का चित्रण नहीं हुआ है, अपितु यहाँ पर उन्होंने इसके प्रस्तुतीकरण में दाम्पत्य–प्रेम के उच्च्य आदर्श की प्रस्तुति की है। **जैसे–**

'चित्रदर्शन' नामक प्रथम अंक में चित्रकूट को जाने वाले मार्ग में यमुना के तट पर स्थित श्याम नामक वटवृक्ष के नीचे मार्ग की थकावट के कारण दृढ़ आलिंगनबद्ध होकर राम के वक्षःस्थल पर सीता के शयन के वर्णन में सम्भोग शृंगार के पूर्णपरिपाक को देखा जा सकता है, क्योंकि यहाँ पर यमुना का तट, वटवक्ष की छाया उद्दीपन, श्रम, आलस्य, निद्रा व्यभिचारी तथा प्रगाढ़ आलिंगन में लीला विलास आदि अनुभावों का प्रयोग हुआ है–

अलसललितमुग्धान्यध्वसम्पातखेदा–
दशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि।
परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यंगकानि,
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता।।1/24।।

इसीप्रकार सीता के कमनीय कंगनयुक्त हाथ एवं उनके कपोलों पर फैले हुए केश, कलियों के समान सुन्दर दन्तपंक्ति से युक्त सुन्दर मुख आदि का राम द्वारा स्मरण भी शृंगार की सृष्टि करने वाला है।[1] इसके अतिरिक्त गोदावरी के तट के वृक्षों की छाया में विहार तथा वहाँ पर कपोलों से कपोलों को सटाकर, परस्पर आलिंगनबद्ध होकर इधर–उधर की बातें करते हुए, सम्पूर्ण रात्रि का व्यतीत करना भी मनभावन शृंगार रस की पुष्टि करता है–

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा–
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो–
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्।।1/27।।

इसीप्रकार सीता के सुमधुर वचनों का राम के कानों को अमृत के समान प्रतीत होना,[2] सीता के कोमल स्पर्श से राम को अपूर्व आनन्द की प्राप्ति[3] होने आदि प्रथम एवं तृतीय अंक के अनेक वर्णनों में सहृदय को विप्रलम्भ शृंगार की अनुभूति होती है, जिनके आधार पर कुछ विद्वानों ने तो इसमें शृंगाररस को ही प्रमुखता प्रदान की है।

(ख) **वीर रस–** करुण एवं विप्रलम्भ शृंगार के अलावा हम देखते हैं कि चतुर्थ, पंचम तथा षष्ठ अंकों में अनेकानेक स्थलों पर लव एवं चन्द्रकेतु की उक्तियों एवं विष्कम्भक में प्रयुक्त विद्याधर तथा विद्याधरी द्वारा किए गए लव–चन्द्रकेतु के युद्ध–वर्णन प्रसंगों में वीररस का भी पूर्ण परिपाक हुआ है। कुछ ही उदाहरण प्रस्तुत हैं–

1. उत्तररामचरितम्–1/20।
2. उत्तररामचरितम्–1/36।
3. उत्तररामचरितम्–1/35।

श्रीराम के सैनिकों के चमकते हुए शस्त्रों को देखकर, धनुष की डोरी चढ़ाते हुए लव की वीररस पूर्ण उक्ति द्रष्टव्य है—

ज्याजिह्वयावलयितोत्कटकोटिदंष्ट्र—
मुद्भूरिघोरघनघर्घरघोषमेतत्।
ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र—
जृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम्।।4/29।।

इसीप्रकार पंचम अंक में चन्द्रकेतु द्वारा लव के शौर्य का कथन भी वीररस की ही सृष्टि करने वाला है, जहाँ पर उसके मुख के क्रोध से लाल होने, पाँचों शिखाओं के हिलने तथा शत्रु सेना पर बाणों की वृष्टि करने का सुन्दर एवं मनमोहक वर्णन किया गया है—

किरति कलितकिंचित्कोपरज्यन्मुखश्री—
रविरतगुणगुंजत्कोटिना कार्मुकेण।
समरशिरसि चंचत्पंचचूडश्चमूना—
मुपरि शरतुषारं कोऽप्ययं वीरपोतः।।5/2।।

उपर्युक्त संक्षिप्त वर्णन के आधार पर महाकवि की वीररस पूर्ण कविता की सृष्टि में अद्भुत कौशल की पुष्टि होती है। विस्तार भय से यहाँ अधिक उदाहरण प्रस्तुत नहीं किए जा रहे हैं।

(ग) **अद्भुत रस**— उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत विवेच्य नाटक में अद्भुतरस का भी प्रशंसनीय नियोजन किया गया है। लव और चन्द्रकेतु के युद्धप्रसंग में दिव्यास्त्रों के प्रयोग करने से अनेक स्थलों पर इस रस की मनभावन प्रस्तुति हुई है। षष्ठ अंक में विद्याधर एवं विद्याधरी के युद्धवर्णन प्रसंग में चन्द्रकेतु के आग्नेयास्त्र से अग्नि की वृष्टि होना। तत्पश्चात् लव के वरुणास्त्र से आकाश का मेघाच्छन्न होना, बिजलियाँ चमकना एवं जलधाराओं का सम्पात आदि के विस्तृत वर्णन अद्भुतरस की सृष्टि करने वाले हैं।

इसीप्रकार द्वितीय अंक में राम द्वारा शम्बूक के वध किए जाने पर उसका दिव्यरूप में प्रकट होना, ब्राह्मण का मृत बालक जीवित होना एवं सप्तम अंक में जृम्भकास्त्रों के आविर्भाव आदि के वर्णनों में अद्भुतरस सहज ही अनुभव किया जा सकता है।

(घ) **हास्य रस**— यद्यपि महाकवि की गम्भीर प्रकृति तथा विदूषक के नियोजन के अभाव में यहाँ हास्यरस की लेशमात्र भी सम्भावना नहीं थी, किन्तु फिर भी कवि ने सम्भवतः शास्त्रीय परम्परा का निर्वाह करते हुए, चतुर्थ अंक में नियोजित विष्कम्भक के अन्तर्गत दण्डायन और सौधातकि के वार्तालाप प्रसंग में वसिष्ठ को लक्ष्य करके कही गयी उक्ति[1] तथा चतुर्थ अंक में ब्राह्मण बालकों द्वारा वर्णित अश्ववर्णन में इस रस के दर्शन सरलता से किए जा सकते हैं—

पश्चात्पुच्छं वहति विपुलं, तच्च धूनोत्यजस्रं,
दीर्घग्रीवः स भवति, खुरास्तस्य चत्वार एव।
शष्पाण्यत्ति, प्रकिरति शकृत्पिण्डकानाम्रमात्रान्,
किं व्याख्यानैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि यामः।।26।।

(ङ) **वात्सल्य रस**— ध्यातव्य है कि हमारे विवेच्य नाटक में वात्सल्य की अभिव्यक्ति के लिए भी अनेक प्रसंगों का प्रयोग हुआ है, जिससे कवि के वात्सल्यपूर्ण हृदय का भी परिचय प्राप्त होता है। इनमें सीता को आलम्बन बनाकर, जनक के पुत्री विषयक प्रेम का, कुश और लव को आधार बनाकर, कौशल्या और जनक के वात्सल्य का तथा चन्द्रकेतु, लव और कुश को आलम्बन बनाकर राम के वात्सल्य का मन मोहक चित्रण किया गया है। उल्लेखनीय है कि महाकवि ने अनुपम कवित्व शक्ति के माध्यम से इन सभी वात्सल्यों को करुण का अंग बनाकर प्रस्तुत किया है। यहाँ प्रयुक्त प्रधान करुणरस के विषय में हम पूर्व में अलग से शीर्षक के अन्तर्गत विचार कर चुके हैं।

xiv) **उत्तररामचरितम् में प्राकृत प्रयोग**— उल्लेखनीय है कि हमारे विवेच्य भवभूति ने अपनी अन्तिम कृति उत्तररामचरितम् में केवल शौरसेनी प्राकृत का ही प्रयोग किया है, जिसे यहाँ पर सीता, कौसल्या, मुनि बालक सौधातकि, गुप्तचर दुर्मुख और विद्याधरी ही बोलते हैं। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि प्रस्तुत कृति में कवि ने प्राकृत भाषा में एक भी श्लोक का प्रयोग नहीं किया है, केवल वार्तालाप के

[1]. मया पुनर्ज्ञातं कोऽपि व्याघ्र इव एष इति।

लिए ही उक्त पात्रों द्वारा प्राकृत का प्रयोग किया गया है। यद्यपि मालतीमाधव में दो प्राकृत के श्लोकों का प्रयोग किया गया है[1], किन्तु उनकी प्राकृत और संस्कृत दोनों ही समान हैं। मालतीमाधव में कवि ने प्राकृत भाषा में लम्बे और दीर्घ समासयुक्त वाक्यों का प्रयोग भी पर्याप्तरूप में किया है।

xv) **उत्तररामचरितम् के चित्रदर्शन का महत्त्व**– नाटक के आरम्भ में कवि द्वारा प्रस्तुत अंक का नियोजन सोद्देश्य किया गया है, जिसे निम्न बिन्दुओं में समझा जा सकता है'

क) राम के उत्तरचरित की कड़ी को जोड़ने के लिए कवि ने यहाँ उनके पूर्व चरित में सीता की अग्निशुद्धि तक का चरित्र प्रस्तुत किया है।

ख) इसके अतिरिक्त प्रस्तुत अंक का मुख्य और महत्त्वपूर्ण प्रयोजन सीता–निर्वासन की पृष्ठभूमि तैयार करना रहा है, क्योंकि इन्हीं चित्रों को देखकर सीता के मन में पंचवटी प्रदेशों के विहरण तथा गंगा में अवगाहन की दोहद विषयक इच्छा जाग्रत हुई है, जिसने उनके निर्वासन को राम के लिए आसान बना दिया है।

ग) इसके लिए कवि ने यहाँ पर पूर्णगर्भा सीता को दोहद की उत्पत्ति तथा दुर्मुख से लोकापवाद के समाचार को दिलाया है, जिससे सरलता से कवि का सीता निर्वासन रूप उद्देश्य पूरा हो गया है।

घ) इसी अंक में कवि ने कुलगुरु वसिष्ठ के लोकाराधन रूप आदेश का पालन कराते हुए सीता निर्वासन की पृष्ठभूमि तैयार की है।

ङ) इसके अतिरिक्त जृम्भकास्त्रों की सीता की भावी सन्तति को राम के आशीर्वाद से प्राप्ति करायी गयी है, जो षष्ठ अंक में नायक राम में कौतूहल को जाग्रत करने वाली तथा सप्तम अंक में सीता, कुश एवं लव को पहचानने में विशेषरूप से सहायक सिद्ध हुई है।

च) इसी अंक में नायक राम का लोकाराधक विषयक परम उज्ज्वल चरित भी पाठक के समक्ष प्रस्तुत हुआ है।

[1]. मालतीमाधवम्– 6/10, 11।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि महाकवि भवभूति ने नाटक के आरम्भ में चित्रदर्शन का नियोजन विशेष प्रयोजनवश किया है, जिसके आधार पर ही सम्पूर्ण नाटक की विशाल एवं करुणार्द्र सृष्टि का निर्माण सम्भव हो सका है। इसलिए यह अंक महाकवि की सूक्ष्मदृष्टि तथा उत्कृष्ट नाट्यकौशल के रूप में भी देखा जा सकता है।

xvi) **उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक का महत्त्व**– कुछ विद्वानों ने हमारे विवेच्य नाटक में प्रयुक्त **'छाया'** नामक तृतीय अंक की नाटकीय उपयोगिता पर आपत्ति की है, जबकि सूक्ष्मदृष्टि से देखने पर हमें इस अंक की उपयोगिता स्वतः ही स्पष्ट हो जाती है, जिसका हम यहाँ संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

तृतीय अंक में एक ओर तो राम अपने वनवास काल की प्रियमित्र पंचवटी के परिचित स्थानों को देखकर, सीता के सान्निध्य की स्मृतियों में तल्लीन होकर, विलाप करते हुए बार–बार मूर्च्छित हो जाते हैं, वहीं दूसरी ओर छाया सीता उनके इस प्रेममय स्मरण के कारण, अपने सभी कष्टों तथा मन के मालिन्य को सर्वथा भूलकर अपने जीवन को धन्य समझती है। राम अदृश्य सीता का अनुभव तो करते हैं, किन्तु उसे देख नहीं पाते हैं।

इस अंक का एक महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक पक्ष एवं उपयोगिता यह भी है कि निरपराध सीता का अकारण परित्याग करने वाले, राम ने अपने निश्छल रुदन को प्रदर्शित करके, उसके अपमानित तथा दुःख भरे हृदय को शान्त करने में भी पूर्ण सफलता अर्जित की है, जो इन दोनों के भावी मिलन में और नाटक को सुखान्त करने में सहयोगी रहा है।

इसके अतिरिक्त करुणरस का जैसा सतत् प्रवाह इस अंक में दिखायी देता है, वैसा अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। वस्तुस्थिति तो यह है कि राम एवं सीता की मानसिक स्थिति का जैसा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इस अंक में हुआ है, वैसा किसी भी दूसरे कवि की कृतियों में नहीं हो पाया है। इसीलिए तो भवभूति को समालोचकों द्वारा महान् मनोवैज्ञानिक की संज्ञा प्रदान की गयी है।

इसके अतिरिक्त यह अंक सीता के परित्याग विषयक अनेक घटनाओं की सूचना देने वाला भी है। अदृश्य सीता का राम से वार्तालाप एक अद्भुत कल्पना कहा जा सकता है, जो छाया नृत्यों से प्रभावित प्रतीत होती है, किन्तु सहृदय में यह कल्पना रोचकता एवं जिज्ञासा का संचार करने वाली भी है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण के आधार पर स्पष्टरूप से कहा जा सकता है कि दृश्य–वैचित्र्य, मनोभावों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, छाया नाटक की सृष्टि, करुणरस का नैरन्तर्य एवं दाम्पत्य जीवन की अन्तरंगता, पशु–पक्षी, वृक्षादि प्रकृति के सभी उपादानों, यहाँ तक कि शिलातल आदि स्थानों से घनिष्ठ प्रेम, मित्रता का आदर्श, मातृत्व का विशिष्ट प्रदर्शन, कर्तव्य निष्ठा आदि अनेकानेक विशेषताओं को प्रस्तुत करने के कारण तृतीय अंक का विशिष्ट महत्त्व रहा है।

xvii) **उत्तररामचरितम् के गर्भांक का महत्त्व**– यह अंक वस्तुतः नाटक की समाप्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसके पीछे कवि का उद्देश्य अद्भुतरस का नियोजन करते हुए, नाटक को सुखान्त बनाना रहा है, जिसमें उन्होंने अभूतपूर्व सफलता भी अर्जित की है। प्रस्तुत गर्भांक महाकवि की काव्य प्रतिभा एवं अलौकिक कल्पना शक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है, इस अंक के महत्त्व को हम निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं–

क) इसके नियोजन से कवि ने नाट्यजगत् में एक नई विधा नाटक में भी नाटक की सृष्टि की है, जिसे अभूतपूर्व कहा जा सकता है तथा उनके क्रान्तिकारी विचारों का प्रतीत है।

ख) इसी अंक में महर्षि वाल्मीकि की आर्ष दृष्टि द्वारा प्रणीत नाटक का मंचन, गंगा के तट पर अप्सराओं द्वारा किया जाता है, जिसमें संसार के सभी लोग देवता, स्थावर और जंगम प्राणियों की उपस्थिति दर्शायी गयी है।

ग) इसका मुख्य प्रयोजन सीता की निर्दोषता सिद्ध करना तथा राम के साथ सीता तथा उनके दोनों पुत्रों कुश और लव को मिलाना रहा है, जिसमें कवि को अभूतपूर्व सफलता भी मिली है।

घ) प्रथम अंक चित्रदर्शन में बाँधी गयी भूमिका को इसी अंक में पूर्णरूप से परिणति प्राप्त हो सकी है। दूसरे शब्दों में, नाटक के प्रथम तथा तृतीय अंक में बोए गए, अनेक बीज वस्तुतः इसी अंक में अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित तथा फलित हुए हैं।

ङ) चित्रदर्शन के अवसर पर कही गयी, जृम्भकास्त्रों की बात का इसी अंक में उद्घाटन हुआ है। इसीप्रकार प्रथम अंक में राम द्वारा भगवती गंगा तथा वसुन्धरा को प्रदान की गयी, सीता को यहाँ उन्हीं के द्वारा सकुशल वापस लौटाया गया है, जिससे सहृदय आह्लादित हुआ है तथा नाटक के प्रयोजन को परिणति प्राप्त हुई है।

च) अदिव्य पात्रों के साथ दिव्य पात्रों का नियोजन, महाकवि के अद्भुत नाट्यकौशल को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाला है, जिससे अद्भुत रस की चर्वणा में सहृदय को सहायता प्राप्त हो सकी है।

छ) इस अंक का शिल्प भी अद्वितीय, विचित्र, सजीव तथा चित्ताकर्षक कहा जा सकता है, जिसमें संवाद छोटे तथा नितान्त सार्थक प्रयुक्त हुए है, जो दर्शक में प्रतिक्षण जिज्ञासा का आधान करने वाले हैं तथा महर्षि वाल्मीकि के प्रिय अनुष्टुप् छन्द की प्रधानता है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण के आधार पर गर्भांक नामक सप्तम अंक का महत्त्व स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है, जो महाकवि भवभूति के अप्रतिम नाट्यकौशल का मनोरम उदाहरण है।

xviii) **महाकवि भवभूति की नाट्यकला**– ध्यातव्य है कि महा कवि भवभूति का नाट्यकला विषयक ज्ञान अत्यधिक उत्कृष्ट था, इसीलिए उन्होंने अपने तीनों ही नाटकों में स्वयं को 'परिणतप्रज्ञ' कहा है। विशेषरूप से अन्तिम नाटक महाकवि की नाट्यकला का सर्वोत्कृष्ट निदर्शन है, जिसमें हमें नाट्यकला की दृष्टि से निम्न विशेषताएँ दृष्टि गोचर होती हैं–

(क) **घटना के संयोजन का सौष्ठव**– हम देखते हैं कि कथावस्तु की दृष्टि से हमारा विवेच्य नाटक पूर्णतया सफल रहा है, क्योंकि इसमें घटनाओं को इतने व्यवस्थित तथा सुन्दर ढ़ंग से नियोजित किया है कि वे सभी अत्यन्त स्वाभाविक प्रतीत होती हैं। यहाँ पर प्रथम अंक से

लेकर सप्तम अंक पर्यन्त सभी घटनाएँ आपस में जुड़ी हुई हैं। यही कारण है कि प्रथम अंक को हटा देने पर सप्तम अंक को समझना भी कठिन हो जाएगा। इसीप्रकार अदृश्यरूप में सीता का राम की दशा को देखना और जनस्थान में राम के प्राणों की रक्षा करना भी द्वितीय एवं तृतीय तीनों अंकों को आपस में जोड़ता प्रतीत होता है। चतुर्थ अंक में कौसल्या, जनक आदि की वाल्मीकि आश्रम में उपस्थिति आदि चार से लेकर षष्ठ अंकों को जोड़ रही हैं। अन्त में प्रयुक्त गर्भनाटक के अवसर पर सभी की उपस्थिति, वस्तुतः कवि के मुख्य उद्देश्य राम सीता मिलन को पूरा करने वाली है।

(ख) **मूलकथा में आवश्यक परिवर्तन–** कथा को नाटकीय रूप देने के लिए कवि उसमें अनेक परिवर्तन करता है, जिसके विषय में हम पूर्व में विस्तार से उल्लेख कर चुके हैं। यहाँ इतना ही कहना उचित होगा कि प्रस्तुत नाटक में कवि ने मुख्य कथा से केवल उतने ही अंश को ग्रहण किया है, जितने की उन्होंने आवश्यकता अनुभव की। शेष सभी स्थलों पर उन्होंने अपनी कल्पना से कथोपयोगी परिवर्तन किए हैं। सप्तम अंक में अद्भुत रस का आश्रय लेकर, नाटक को सुखान्त भी बनाया गया है।

(ग) **चित्रदर्शन का महत्त्व–** नाटक के आरम्भ में कवि ने चित्र दर्शन नियोजन किया है, जिसे नाटकीयता की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। जैसे– इससे खिन्नमना सीता का मनोरजंन हुआ है। यहाँ पर रामायण के करुणरस प्रधान सभी प्रमुख दृश्यों और घटनाओं को प्रस्तुत किया है। इसी को देखने से सीता में गंगा स्नान तथा वनदर्शन का दोहद उत्पन्न होता है, जिससे सीता का निर्वासन राम के लिए सुकर हो गया है। इससे सीता की अग्निपरीक्षा तथा उसके लोकापवाद के विषय में श्रोताओं को ज्ञान होता है। इस अवसर पर दिए गए जृम्भकास्त्र के वरदान, अन्तिम अंक में लव–कुश को पहचानने में सहायक सिद्ध हुआ है। इससे राम एवं सीता के दाम्पत्य प्रेम का भी ज्ञान होता है। इसी से राम–सीता के अतीत की घटनाओं तथा उनके प्रिय स्थानों का ज्ञान भी होता है।

(घ) **छाया अंक का नाटकीय महत्त्व–** इसके महत्त्व के विषय में पूर्व में विस्तार से उल्लेख किया जा चुका है। पुनरावृत्ति से बचने के लिए पुनः इसका कथन नहीं कर रहे हैं।

(ङ) **सप्तम अंक में गर्भनाटक का नाटकीय महत्त्व–** यहाँ प्रयुक्त गर्भनाटक महाकवि की पूर्णतया मौलिक कल्पना है। इसके नियोजन से सीता की पवित्रता की सार्वभौम रूप से सिद्धि होती है। राम का सीता और लवकुश से मिलन होता है। इसके द्वारा यह नाटक सुखान्त हुआ है। सीता के पाताल से प्रकट होने में अद्भुत रस का पूर्णपरिपाक हुआ है। इसके महत्त्व के विषय में भी पूर्व में विस्तार से उल्लेख किया जा चुका है।

(च) **घटनाओं एवं वर्णनों की सार्थकता–** उल्लेखनीय है कि यहाँ पर प्रत्येक घटना सार्थक और उद्देश्य के साथ प्रयुक्त हुई है। अत्यधिक सावधानी से नियोजित प्रत्येक घटना का अपना महत्त्व है, उसमें से किसी एक को भी हटा देने से कथानक में न्यूनता आ जाती है। चित्रवीथी दर्शन, छायादृश्य, लवदर्शन, लव–चन्द्रकेतु युद्ध, राम का लवकुश से मिलन एवं गर्भ–नाटक आदि दृश्य अत्यन्त सार्थक कहे जा सकते हैं, जो रस–निष्पत्ति में पूर्णरूप से सहायक रहे हैं।

(छ) **वर्णनों में स्वाभाविकता–** महाकवि के वर्णनों में हमें सर्वत्र स्वाभाविकता के दर्शन होते हैं, जिनमें चित्रवीथी दर्शन, पंचवटी दर्शन, अश्वमेधीय अश्व, लव–चन्द्रकेतु युद्ध, राम और लव का संवाद, तथा सीता का पाताल से प्रकट होना आदि विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

(ज) **पात्रों का चरित्र–चित्रण–** महाकवि भवभूति वस्तुतः चरित्र चित्रण करने में असाधारण रूप से निपुण हैं। यही कारण है कि प्रस्तुत नाटक में उनके पात्र सजीव और सक्रिय रहे हैं। वे भावहीन या हृदय हीन नहीं हैं। उनमें मानवता, कर्तव्यभावना के सभी गुण विद्यमान हैं। वे परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को बदलने में भी समर्थ हैं। ध्यातव्य है कि महाकवि ने मानवीय एवं दैघी पात्रों को भिन्न–भिन्न स्तर पर नियोजित किया है। मर्यादा के विपरीत व्यवहार कवि को स्वीकार्य नहीं

है। चरित्र–चित्रण की चर्चा पृथक् शीर्षक में करने से हम यहाँ अधिक विस्तार से उल्लेख नहीं कर रहे हैं।

(झ) **कथोपकथन, रस एवं शैली–** रस एवं शैली के विषय में अलग शीर्षक में विवेचन किया गया है। जहाँ तक कथोपकथन का प्रश्न है, भवभूति की कृतियों में संवाद सुन्दर तथा रस की निष्पत्ति में सहायक रहे हैं। यहाँ पर उनकी भाषा संयत और भावाभिव्यक्ति में सहयोगिनी रही है। अभिधा के समर्थक होने से कवि को विस्तृत वर्णन अधिक प्रिय हैं। इसीकारण कुछ स्थलों पर संवाद लम्बे भी हो गए हैं तथा कहीं–कहीं अरोचकता एवं गतिरोध भी आया है, जिसकी विद्वानों द्वारा अलोचना भी की गयी है।

(ञ) **अन्वितित्रय का प्रयोग–** यद्यपि संस्कृत नाटककारों ने अन्वितित्रय को अधिक महत्त्व प्रदान नहीं किया है, किन्तु भवभूति ने प्रत्येक अंक में इस ओर विशेष ध्यान दिया है, किन्तु सम्पूर्ण नाटक में इसका अभाव ही रहा है।

(ट) **उद्देश्य–** प्रस्तुत नाटक का उद्देश्य राजा द्वारा प्रजा का अनुरंजन कराना रहा है। इसी कार्य की पूर्ति के लिए राम ने अपनी प्रियतमा सीता का भी त्याग कर दिया है। कर्तव्यपालन का परिणाम सुखद ही होता है, इसका सन्देश भी इस नाटक में दिया गया है, क्योंकि नाटक के अन्त में नायक–नायिका का मिलन हो जाता है।

इसके अलावा कवि ने अपने नाटकों में पंच कार्यावस्था, पंच अर्थप्रकृति, मुखादि पंच सन्धियों तथा नाट्यसंकेतों आदि नाट्योपयोगी उपादानों का भी सुन्दर प्रयोग किया है, जिससे उनका नाट्यकला विषयक कौशल स्वतः ही सिद्ध हो जाता है।

xix) **महाकवि भवभूति की प्रेमविषयक दृष्टि–** प्रेम के विषय में महाकवि की दृष्टि सर्वथा नूतन रही है, क्योंकि यौवनकाल की उद्दाम कामभावना का वर्णन उन्होंने यदि मालतीमाधव में किया है, तो विश्वस्त हृदय के शुद्ध एवं सात्त्विक प्रेम का चित्र उत्तररामचरित में प्रस्तुत करके सहृदय को भावविभोर कर दिया है। हम यह भी देखते हैं कि यहाँ पर उनका कोई भी पात्र स्वच्छन्द प्रेम का पक्षपाती नहीं है।

समाज द्वारा निर्धारित मर्यादाओं का पूर्णरूप से पालन करते हुए ही वह अपनी प्रेमाभिव्यक्ति करता है, जिसे समाज द्वारा **दाम्पत्य प्रेम** की संज्ञा प्रदान की गयी है। यह प्रेम शारीरिक सौन्दर्य के प्रति स्थूल नहीं है, अपितु वार्धक्य में भी युवावस्था के समान ही नित्य नवीन बना रहने के कारण सूक्ष्म और पवित्रता लिए हुए है, उसमें लेशमात्र भी कमी नहीं आती है। राम–सीता का प्रेम यहाँ पर कुछ ऐसा ही है।

इस प्रेम में तो प्रिय के सान्निध्य मात्र से शरीर के सभी कष्ट दूर हो जाते हैं। प्रियतम के स्पर्शमात्र से व्यक्ति मानो अमृतसागर में गोते लगाने लगता है[1], जबकि प्रिय के विरह में प्रियतमा की अंगयष्टि सूख जाती है, तब वह करुणा की मूर्ति अथवा शरीर को धारण करने वाली विरहव्यथा ही प्रतीत होती है।[2] यही स्थिति प्रियतम की भी होती है, सभी प्रकार के सुखों तथा ऐश्वर्य सामग्री के होते हुए भी वह उनका भोग न करके, अपनी प्रियतमा की याद में अन्दर ही अन्दर आँसू बहाता रहता है और उसका शरीर केतकी के पुष्प के भीतरी भाग के समान मानो सूख जाता है।[3]

महाकवि भवभूति द्वारा प्रतिपादित यह प्रेम पूर्णतया पवित्र तथा अन्तरंग है, जिसमें प्रियतम द्वारा प्रयोग की गयी तथा उससे सम्बन्धित वस्तुओं को देखकर, उन्हें छूकर प्रियतम की उपस्थिति का, उसके सान्निध्य एवं स्पर्श का अहसास होता है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वही हमारे समक्ष उपस्थित हो।[4] यह पवित्र प्रेम प्रिय से सम्बन्धित वस्तुओं को देखकर फिर से जाग्रत हो जाता है, तभी तो पंचवटी दर्शन से राम के अन्दर लम्बे समय से छिपी हुई विरह की अग्नि भड़क उठती है और उन्हें विकल कर डालती है।[5]

---

1. उत्तररामचरितम्–3/39।
2. उत्तररामचरितम्–3/4।
3. उत्तररामचरितम्–3/5।
4. उत्तररामचरितम्–3/8।
5. उत्तररामचरितम्–3/9।

प्रस्तुत कृति में हमें जिस पवित्र दाम्पत्य प्रेम के दर्शन होते हैं, वह पूर्णरूप से निस्वार्थ है, इसमें प्रिय की प्रसन्नता में ही अपनी प्रसन्नता निहित है तथा उसकी प्रिय वस्तु अपने लिए भी सुख देने वाली है। तभी तो सीता द्वारा पुत्र के समान पाले–पोसे गए करि–शावक, मृग–शावक, मोर तथा कदम्ब को देखकर राम आनन्द की अनुभूति करते हैं।[1]

इस प्रेम में तो प्रिया से विलग होने पर, जैसे ही प्रियतम को एकान्त स्थान मिलता है, उसकी पुटपाक रूप[2] में दबी हुई विरहवेदना रुदन और प्रलापों के माध्यम से मानो बाहर फूट पड़ती है। यही है दाम्पत्य–प्रेम का तलस्पर्शी चित्र, जो महाकवि ने हमारे विवेच्य उत्तर रामचरित में और उसके भी तृतीय अंक में विशेषरूप से वर्णित किया है, जिसमें दोनों प्रेमी एक क्षण के लिए भी विलग नहीं हो पाते हैं और यदि परिस्थिति वश हो भी जाते हैं, तो वे त्यागमय जीवन को व्यतीत करते हैं। सांसारिक भोग उनके लिए निरर्थक हो जाते हैं।

xx) उत्तररामचरित में प्रतिपादित भारतीय संस्कृति–

उल्लेखनीय है कि महाकवि ने महावीर चरित एवं उत्तरराम चरित में रामायणकालीन संस्कृति समाज एवं संस्कृति को चित्रित किया है। उस समय का समाज उन्नत अवस्था में विद्यमान था। उसमें धार्मिक दृष्टि की प्रमुखता थी। वर्ण–व्यवस्था का पालन कठोरतापूर्वक किया जाता था। प्रजा में वेदादि के अध्ययन, अस्त्र–शस्त्र आदि के प्रशिक्षण को प्राप्त करने एवं कलात्मक प्रवृत्तियों में विशेषरुचि थी। बड़े–बड़े यज्ञों का आयोजन किया जाता था। स्वयं राम ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया था। यज्ञ में पत्नी का साथ में बैठना अनिवार्य था। इसीलिए राम ने सीता की अनुपस्थिति में उसकी स्वर्णमयी प्रतिमा को पास में स्थापित किया है। जप, तप, संस्कार और दार्शनिक विचारों को महत्त्व प्रदान किया जाता था।

[1]. उत्तररामचरितम्–3/15, 19, 37, ।
[2]. उत्तररामचरितम्–3/1।

आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत ब्रह्मचारी गुरुकुलों में रहकर ही संयमित जीवन व्यतीत करते हुए, विद्या का अध्ययन करते थे। वेदत्रयी के अध्ययन की परम्परा थी, जिससे पहले बालक का उपनयन संस्कार आवश्यक था। क्षत्रिय बालक आयुर्वेद, धनुर्वेद तथा गन्धर्ववेद का अध्ययन भी करते थे। गृहस्थ धर्म का पालन करने वाले अग्निहोत्री होते थे।

समाज में स्त्रियों का स्थान बहुत श्रेष्ठ नहीं था। राम द्वारा सीता का परित्याग समाज की इसी दृष्टि का परिचायक कहा जा सकता है। प्रजा की रुचि स्त्री–निन्दा एवं स्त्रीविषयक अफवाहों में अधिक थी, जिसे प्रायः प्रत्येक काल में देखा जा सकता है, किन्तु सम्मानित व्यक्ति स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से अवश्य देखते थे। आत्रेयी आदि कुछ स्त्रियाँ विदुषी भी थीं, जिन्होंने वेद, दर्शनादि गूढ़ विषयों का अध्ययन किया था। पिण्डदानादि के कारण परिवार में पुत्र–प्राप्ति का अत्यधिक महत्त्व था।

अतिथि–सत्कार का प्रचलन था। ब्राह्मण वेदादि शास्त्रों में निपुण थे। प्रजा का पालन करना ही राम का प्रमुख कर्तव्य था, प्रजा की भावना का उसे आदर करना पड़ता था। उसकी इसी भावना को दृष्टि में रखते हुए राम को निरपराध होते हुए भी सीता का त्याग करना पड़ा था। प्रजा के समक्ष उसे एक आदर्शरूप को प्रस्तुत करना होता था। तभी तो राम अपनी पत्नी सीता का त्याग करने के बाद राजमहल में बारह वर्ष पर्यन्त, किसी भी प्रकार के अपने दुःख की अभिव्यक्ति नहीं कर पाए हैं। इस दृष्टि से राजतन्त्र होते हुए भी लोकतन्त्र प्रभावी था।

इसके अतिरिक्त समाज में शूद्रों का स्थान अत्यन्त निम्न था, उन्हें तप करने की अनुमति नहीं थी, इसीलिए राम जनस्थान में तप कर रहे **शम्बूक** का निरपराध होते हुए भी वध कर डालते हैं। राजा पर भी ब्राह्मण वर्ग का वर्चस्व था, उनकी इच्छा के विपरीत वह कुछ भी नहीं कर सकता था। रामायणकाल में कला अपनी उन्नत अवस्था में थी। उत्तररामचरित के प्रथम अंक में प्रयुक्त चित्रवीथी तथा सप्तम

अंक का गर्भनाटक इस कथ्य की पुष्टि में सहायक हैं। इसीप्रकार पुष्पक विमान के वर्णन से वैमानिक विद्या की स्थिति की भी प्रतीति होती है। लोगों की भाग्य, कर्मफल, पुनर्जन्म एवं दूसरे दार्शनिक विषयों के प्रति गहन आस्था थी।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि महाकवि भवभूति ने उत्तररामचरित में भारतीय–संस्कृति का सुन्दर चित्रण करते हुए, उसके अनेकानेक पक्षों पर सूक्ष्म दृष्टिपात किया है, क्योंकि वे भारतीय–संस्कृति के प्रबल समर्थक थे। इस कारण उनकी राष्ट्रीय भावनाओं की भी पुष्टि होती है।

xxi) **महाकवि की न्यूनताएँ**– कुछ विद्वान् महाकवि भवभूति की कृतियों में कमियों का उल्लेख करते हैं, जिनका हम यहाँ विस्तारपूर्वक कथन कर रहे हैं–

(क) आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में हास्यरस के लिए विदूषक नामक पात्र के नियोजन का निर्देश दिया है, जो नायक का मित्र भी होता है, किन्तु हमारे विवेच्य भवभूति ने अपनी तीनों ही नाट्य कृतियों में विदूषक का प्रयोग ही नहीं किया है। विद्वानों की दृष्टि में विशेषरूप से मालती माधव में तो यह अभाव अत्यन्त खटकता है।

(ख) समालोचकों के अनुसार भवभूति के नाटकों में अन्वितित्रय का होना अनिवार्य है, जबकि यहाँ पर इसका सर्वथा अभाव रहा है।

(ग) इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने पात्रों के वैविध्य के अभाव की भी महाकवि की न्यूनताओं में गणना की है, क्योंकि विशेष रूप से उत्तररामचरित में सभी पात्र आदर्शवादी रहे हैं। मृच्छकटिक आदि के समान, उनमें पात्रों के वैचित्र्य और वैविध्य का सर्वथा अभाव रहा है।

(घ) भाषा की दुरुहता को महाकवि की बड़ी न्यूनताओं में गिना है, क्योंकि यहाँ पर संवाद अत्यन्त लम्बे, उबाऊ तथा दुरुह प्रयुक्त हुए है, जिससे सहृदय को रस की प्रतीति में बाधा की अनुभूति होती है।

(ङ) भवभूति के आलोचकों की दृष्टि में यहाँ पर उनके तीनों नाटकों में कुल तैतालीस श्लोकों या फिर श्लोकांशों की आवृत्ति की

गयी है, जो उनके भाव एवं कल्पना के दारिद्र्य को अभिव्यक्त करता है।

(च) इसीप्रकार आलोचकों का मानना है कि विशेषरूप से उत्तररामचरितम् का वस्तुविन्यास शिथिल रहा है, क्योंकि यहाँ पर पंचम अंक को निकाल देने पर भी कोई बाधा नहीं है। उनकी दृष्टि में इस अंक को कवि ने केवल नाटक में सात अंकों की संख्या को पूरा करने के लिए ही प्रयुक्त किया है।

(छ) इसके अतिरिक्त भवभूति के कुछ अपाणिनीय प्रयोग भी आलोचकों की आलोचना के पात्र रहे हैं। जैसे– दूषणखरत्रिमूर्धानः (उत्तर.2/15) एवं ऋतंभराणि प्रजानानि (7 वा 8)।

(ज)इसीप्रकार उत्तररामचरित में कुछ स्थानों पर संवाद अत्यधिक लम्बे प्रयुक्त हुए हैं, जिन्हें उबाऊ कहा जा सकता है। **जैसे–** राम और वासन्ती संवाद, लव तथा चन्द्रकेतु विवाद आदि

(झ) भवभूति के आलोचकों का यह भी कहना है कि उन्होंने उत्तर– रामचरित के चतुर्थ अंक में समांस और अमांस मधुपर्क के प्रसंग का नियोजन किया है, जिसे वस्तुतः अनावश्यक ही कहा जा सकता है।

(ञ) इसके अलावा उत्तररामचरित में नायक राम की अधीरता भी समालोचकों की आलोचना का पात्र हुई है। उनके अनुसार नायक राम का बार–बार रुदन करना तथा मूर्च्छित होंना सर्वथा अनुचित रहा है।

(ट) इसीप्रकार पंचम अंक (5/34) में प्रयुक्त नायक राम पर लगाए गए, तीन लांछन भी आलोचकों को नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से चुभने वाले रहे हैं, क्योंकि नाटक के नायक का इसप्रकार के दोषों से सर्वथा रहित होना आवश्यक है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि महाकवि भवभूति की कृतियों में उनके आलोचकों द्वारा अनेक कमियों को गिनाया गया है, किन्तु उनकी उत्कृष्ट काव्यकला के समक्ष ये सभी दोष उपेक्षणीय ही रहे हैं।

xxii) कालिदास और भवभूति– संस्कृत नाट्य साहित्य में कालिदास के समकक्ष कहलाने का श्रेय, हमारे विवेच्य महाकवि भवभूति को ही प्राप्त है। कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक मानना है कि उत्तररामचरित में भवभूति कालिदास से भी आगे बढ़ गए हैं।[1] इसीप्रकार अन्यों का कहना है कि कालिदास तो केवल कवि ही हैं, जबकि भवभूति तो महाकवि हैं। इसके अलावा कालिदास के पक्षपाती आलोचक, उनकी उपमा स्वर्ग के पारिजात से हुए भवभूति को स्नुही (कण्टकाकीर्ण विशाल वृक्ष) की संज्ञा प्रदान करते है।

यह बात भी सत्य है कि भवभूति की कृतियों में कालिदास का प्रचुर प्रभाव परिलक्षित होता है। **जैसे–** उत्तररामचरित में प्रयुक्त चित्रदर्शन रघुवंश (14/25) से प्रभावित रहा है। इसीप्रकार शाकुन्तल में प्रयुक्त दुष्यन्त पुत्र भरत के मिलन की स्पष्ट छाप उत्तररामचरित के छठे अंक में लव–कुश के मिलन में देखी जा सकती है, जबकि छायारूप सीता की कल्पना की प्रेरणा उन्हें शाकुन्तल के छठे अंक में सानुमती अप्सरा के अदृश्यरूप से मिली हुई प्रतीत होती है। इसके अलावा राम की विरह से व्यथित दशा का स्रोत शाकुन्तल में वर्णित दुष्यन्त का विरह कहा जा सकता है।

यद्यपि सूक्ष्मदृष्टि से विचार करने पर कालिदास और भवभूति दोनों ही अपने–अपने क्षेत्र में अद्वितीय हैं और इन दोनों में कलात्मक अन्तर भी स्पष्ट परिलक्षित होता है, क्योंकि यदि कालिदास में व्यंजना का प्राधान्य है तो भवभूति में वाच्यार्थ की प्रगल्भता है। एक की रचना शैली सरल, स्वाभाविक एवं लाघव से युक्त है, तो दूसरे की वचन–भंगी, प्रायः प्रौढ़ एवं समास प्रधान रही है। कालिदास प्रायः मूर्त पदार्थ की उपमा मूर्त से देते हैं तो भवभूति प्रायः मूर्त की उपमा के लिए अमूर्त का चयन करते हैं। यहाँ वल्कलवसना शकुन्तला यदि शैवाल से आवृत कमल है, तो भवभूति की सीता मूर्तिमती करुणा या साक्षात् विरहव्यथा के रूप में प्रस्तुत की गयी है।

1. उत्तरेरामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।

कालिदास प्रायः प्रकृति के ललितरूप का वर्णन करते हैं तो भवभूति उसके घोर एवं प्रचण्ड पक्ष का भी ध्यान रखते हैं। इसीप्रकार करुण के क्षेत्र में भवभूति तथा शृंगार के क्षेत्र में कालिदास अद्वितीय हैं। कालिदास की कला स्वाभाविकता लिए हुए है तो भवभूति के वर्णन आदर्श से ओतप्रोत रहे हैं। कालिदास यदि नारी के बाह्य सौन्दर्य में डूबे हुए हैं, तो भवभूति उसके आन्तरिक सौन्दर्य के उद्घाटन में तल्लीन हैं।

इसप्रकार सूक्ष्मदृष्टि से देखने पर इन दोनों महाकवियों का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है, किसी को भी कम या अधिक बताना उचित एवं न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता है। इस सम्बन्ध में श्री द्विजेन्द्रलाल राय के विचार विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं–

विश्वास की महिमा में, प्रेम की पवित्रता में, भाव की तरंग–क्रीड़ा में, भाषा के गाम्भीर्य में और हृदय के माहात्म्य में उत्तररामचरित श्रेष्ठ है तो घटनाओं की विचित्रता में, कल्पना की कमनीयता में, मानव–चरित्र के सूक्ष्म विश्लेषण में, भाषा की सरलता और लालित्य में शाकुन्तलम् श्रेष्ठ है। इस प्रकार संस्कृत साहित्य के ये दोनों नाटक अद्वितीय हैं।

xxiii) महाकवि भवभूति का वैदुष्य– इसी प्रसंग में यह तथ्य विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि महाकवि भवभूति का शास्त्रीय एवं कला विषयक ज्ञान अगाध था। उनकी कृतियों के अध्ययन से स्पष्टरूप से प्रतीत होता है कि उन्होंने वेद, उपनिषद्, दर्शन, अर्थ–शास्त्र, नीतिशास्त्र, राजनीति, धनुर्वेद, कामशास्त्र, व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष, संगीत एवं नृत्य, मनोविज्ञान, चित्रकला, भूगोल तथा इतिहास आदि विषयों का अध्ययन किया था। व्याकरण, मीमांसा तथा न्याय के तो वे प्रकाण्ड विद्वान् थे, इसीलिए उन्होंने अपनी तीनों कृतियों में स्वयं को 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' कहा है। यहाँ हम उनके वैदुष्य की पुष्टि करने वाले कुछ ही उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं–

(क) उत्तररामचरित के चतुर्थ अंक में प्रयुक्त 'नामांसो मधुपर्को भवति' इत्यादि कथन से तथा महावीर चरित में सूर्यवंश के कुल

पुरोहित वसिष्ठ वर्णन प्रसंग में की गयी पुरोहित प्रशंसा ऐतरेय ब्राह्मण के चालीसवें अध्याय की छवि होने से उनके वेद विषयक गहन ज्ञान की पुष्टि होती है।

(ख) इसीप्रकार जनक के मुख से 'असूर्या नाम ते लोकाः' इत्यादि ईशावास्य श्रुति की व्याख्या उत्तररामचरित में कराने तथा इसी के षष्ठ अंक (उत्तर.–6/6) में महाकवि ने औपनिषदिक अद्वैतवाद का भी तात्त्विक वर्णन अतीव मनमोहक शैली में किया है, जिससे उनका उपनिषद् विषयक वैदुष्य अभिव्यक्त होता है।

(ग) इसके अतिरिक्त उनके योगशास्त्र के गहन ज्ञान की पुष्टि मालती माधव के पंचम अंक के अध्ययन से होती है। इसी स्थल पर कवि ने 'समधिक–दश–नाडी–चक्र–मध्य–स्थितात्मा' इत्यादि में योग तथा तन्त्र के मेल को प्रदर्शित किया है।

(घ) इसीप्रकार हमारे विवेच्य महाकवि की भाषा में अनेक स्थलों पर दर्शनशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों के दर्शन भी सहज ही किए जा सकते हैं, जिनसे उनके दर्शनशास्त्र विषयक गहन ज्ञान की पुष्टि होती है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि संस्कृत साहित्य के अद्वितीय महाकवि भवभूति का शास्त्रीय पाण्डित्य तथा वैदग्ध्य अनुपम तथा श्लाघनीय रहा है, जो हमें अन्यत्र सर्वथा अप्राप्त है। यही कारण है कि उन्हें अपने वैदुष्य पर अत्यधिक गर्व भी था, जिसकी उन्होंने 'वश्यवाक्' आदि कहकर अनेक स्थलों पर अभिव्यक्ति भी की है।

इसके अतिरिक्त विशेषरूप से उल्लेखनीय यह भी है कि उनके अनेक वर्णनों से ऋतुविज्ञान, वनस्पति विज्ञान, प्राणिविज्ञान (गज, अश्व, पक्षी,) भौतिकविज्ञान आदि अनेक आधुनिक विज्ञान विषयक वैदुष्य भी अभिव्यंजित हुआ है, जिनके विषय में हम यहाँ विस्तार भय से उल्लेख नहीं कर रहे हैं। अन्त में 'चन्द्रिका' व्याख्या में विशेष शीर्षक में इस सम्बन्ध में विस्तार से उल्लेख किया गया है।

xxiv) **महाकवि का नाट्य साहित्य में स्थान**– यद्यपि अपने जीवन के आरम्भिक काल में महाकवि भवभूति को विद्वानों में वह

प्रशंसा प्राप्त न हो सकी, जिसके वास्तव में वे हकदार थे तभी तो उन्हें अपनी प्रथम कृति मालतीमाधव में अपने हृदय की वेदना को यह कहते हुए लिखना पड़ा कि–

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।। मालतीमाधव–1/8।

अर्थात् जो विद्वान् हमारे इस प्रयत्न की अवहेलना करते हैं, उनके लिए हमारा यह प्रयास नहीं है, भले ही वे कितने भी बड़े विद्वान् क्यों न हों, किन्तु हमें विश्वास है कि निश्चय ही भविष्य में कोई हमारे समान चिन्तन वाला कोई व्यक्ति उत्पन्न होगा, जो हमारे इस प्रयत्न को पूरी तरह समझ सकेगा, क्योंकि यह पृथ्वी अत्यन्त विशाल है और काल भी अवधिरहित है।

किन्तु उत्तररामचरितम् की निर्मिति के बाद जहाँ एक ओर उन्हें विद्वान् राजा यशोवर्मा का आश्रय प्राप्त हुआ, वहीं दूसरी ओर उनके प्रशंसकों की संख्या में भी अप्रत्याशित वृद्धि हुई, क्योंकि उत्तररामचरितम् में एकमात्र करुणरस की प्रस्थापना करके, उन्होंने जहाँ एक ओर नाट्यजगत् में नई सरणि को जन्म दिया, वहीं दूसरी ओर नाट्यशास्त्र के इस सिद्धान्त को चुनौती देकर कि–

'नाटक में शृंगार या वीररस में से किसी एक रस की मुख्यता होनी आवश्यक है। दूसरे रस उसके अंग के रूप में प्रयोग किए जा सकते हैं।'

इसीप्रकार अपने सभी नाटकों में विदूषक का प्रयोग न करके, मानो क्रान्तिकारी विचारधारा का सूत्रपात किया, जिसमें उन्होंने करुणरस को अंगीरूप में प्रयोग करते हुए,[1] शेष रसों को अंग रूप में नियोजित किया है। इतना ही क्यों? उन्होंने तो शृंगार एवं वीररसादि को भी इसी एकमात्र करुण के भेदरूप में मानकर, अपनी मान्यता को

[1]. एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्....। उत्तररामचरितम्– 3/47।

सर्वथा भिन्न रूप में प्रस्तुत किया है। उनके अद्भुत वैदुष्य एवं महाकवित्व का ही परिणाम है कि परवर्ती अनेक आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में उनकी कृतियों से श्लोकों को उदाहरणरूप में प्रस्तुत किया तथा अन्य कुछ समालोचकों तथा महा कवियों ने उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की, तो अन्य कुछ कवियों ने स्वयं के कवित्व की तुलना के लिए भवभूति का उपमानरूप में प्रयोग किया।

उनमें से कुछ ही विद्वानों, समालोचकों तथा कवियों द्वारा की गयी प्रशस्तियों का संक्षेप में हम यहाँ उल्लेख कर रहे हैं, जिससे संस्कृत नाट्य साहित्य में महाकवि भवभूति का स्थान स्वतः ही निर्धारित हो जाता है–

(क) **स्पष्टभावरसा चित्रैः पदन्यासैः प्रवर्तिताः।**
नाटकेषु नटस्त्रीव भारतीभूतिना।।[1]

(ख) **भवभूतेर्शिखरिणी निरर्गलिततरंगिणी।**
रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति।।[2]

(ग) **कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते।** (अज्ञात)

(घ) **उत्तरेरामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।** (विक्रमार्क)

(ङ) **बभूव वल्मीकभवः कविः पुरा ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।**
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः।।[3]

(च) **कवयः कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकविः।** (अज्ञात)

(छ) **भवभूतेः सम्बन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति।**
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रीवा।।[4]

(ज) **भव्यां यदि भवभूति तात कामयसे तदा।**
भवभूतिपदे चित्तमविलम्बं निवेशय।। (अज्ञात)

---

1. तिलकमंजरी–धनपाल, 5/30।
2. सुवृत्ततिलक, क्षेमेन्द्र, 3/33।
3. बालरामायण– राजशेखर, 1/16।
4. आर्यासप्तशती–गोवर्धनाचार्य, 1/33 ।

यह सत्य है कि महाकवि भवभूति की कुछ कृतियों को नाट्यशास्त्र में प्रतिपादित सिद्धान्तों की दृष्टि से पूर्ण नहीं कहा जा सकता है, इसीलिए अनेक विद्वानों ने उनकी कुछ कमियों का उल्लेख भी किया, जिनकी ओर हमने पूर्व में न्यूनताएँ शीर्षक के अन्तर्गत उनकी ओर संकेत भी किया है तथापि उनके अनेकानेक काव्यगुणों तथा प्रशस्तियों की संख्या को देखते हुए, वस्तुतः वे नगण्य ही हैं। उक्त प्रकार की प्रशस्तियों की संख्या बहुत अधिक है, हमने तो यहाँ केवल कुछ को ही उद्धृत किया है। परवर्ती विभिन्न कवियों के मात्र उक्त कथनों के आधार पर, निश्चय ही संस्कृत नाट्यजगत् में उनका स्थान शीर्ष पर स्थापित करने में हमें लेशमात्र भी संकोच नहीं है।

6. चरित्र चित्रण– महाकवि भवभूति चरित्र–चित्रण में सिद्धहस्त हैं। अपनी गम्भीर प्रकृति के कारण ही उन्होंने प्रस्तुत नाटक के लिए राम, सीता जैसे आदर्श एवं पावन पात्रों का चयन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने आदिकवि वाल्मीकि के काव्य का गहन अनुशीलन किया था, इसीलिए उन्होंने मूर्त की अमूर्त से तुलना एवं करुणरस की सर्वोच्च स्थिति आदि को स्वीकार किया है।

यहाँ हम उत्तररामचरितम् के प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे हैं–

(क) **राम–** उल्लेखनीय है कि नायक रूप में चित्रित राम का चरित्र यहाँ पर अत्यन्त उदात्त, आदर्श एवं प्रसिद्ध परम्परा के अनुकूल रहा है। वस्तुतः इस नाटक में रामराज्य का आदर्शरूप, अपने पूर्ण वैभव के साथ दृष्टिगोचर होता है। राम यहाँ आदर्श राजा के रूप में चित्रित किए गए हैं, लोक की आराधना ही उनका व्रत है। यही कारण है कि इसके लिए उन्हें स्नेह, दया, सौख्य, यहाँ तक कि अपनी परम प्रिया जानकी को छोड़ने में भी लेशमात्र संकोच नहीं है–

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा।। 1/12।

उल्लेखनीय बिन्दु यह भी है कि लोकाराधन के लिए ही उन्होंने अपने हृदय पर पत्थर रखकर अपनी प्राणप्रिया सीता का परित्याग

क्षणभर में ही कर दिया, जिसे उनकी कर्तव्यनिष्ठा तथा कथनी–करनी की एकरूपता के रूप में देखा जा सकता है। तृतीय अंक में उनकी मनोव्यथा वनदेवी वासन्ती के सामने स्पष्टरूप से प्रकट हुई है, जिसे उनके पूर्व चरित से सर्वथा भिन्न, एक आदर्श पति के रूप में देख सकते हैं।

लोक के अस्तव्यस्त तथा अमर्यादितरूप से परिचित होते हुए भी लोकाराधन ने ही अपनी प्रियतम वस्तु को त्यागने के लिए, उन्हें बाध्य किया है। यहाँ पर उन्होंने लोक की खुलकर निन्दा भी की है। प्रस्तुत नाटक में वे धीरोदात्त[1] नायक, आदर्श राजा, पति, पिता और मित्र के रूप में चित्रित किए गए हैं। इसके अलावा उनमें विनम्रता का गुण भी पद–पद पर दृष्टिगोचर होता है। वे गुरुजनों की आज्ञा का पालन करने में भी अग्रणी हैं। साथ ही, प्रस्तुत नाटक में उन्हें आदर्श प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है। प्राणिमात्र से उन्हें अपार प्रेम है, यहाँ तक कि पंचवटी के पशु, पक्षियों तथा वृक्षलता आदि के लिए भी उनमें बन्धुत्व का भाव विद्यमान है, इसीलिए उन्हें वे पुत्रवत् स्नेह करते हैं।

उनके व्यक्तित्व में धीरता एवं गम्भीरता का गुण भी देखने को मिलता है, तभी तो वे सीता परित्याग की अपनी वेदना को प्रजारंजन करते समय अभिव्यक्त नहीं करते हैं, किन्तु जनस्थान में जाने पर एकान्त में पुटपाक रूप में पल रही, उस पीड़ा को वासन्ती के समक्ष प्रकट करके, स्वयं को हलका कर लेते हैं। षष्ठ एवं सप्तम अंक में उनका वात्सल्यमय स्वरूप भी देखा जा सकता है, जिसे वे कुश और लव के प्रति तलस्पर्शी अभिव्यक्ति द्वारा करते हैं।

उपुर्यक्त संक्षिप्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि महाकवि ने हमारे विवेच्य नाटक के नायक राम को सर्वगुण सम्पन्न बनाते हुए, प्रभावशाली व्यक्तित्व के रूप में दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि उनमें हमें एक भी दोष दिखायी नहीं देता है। वे व्यवहार कुशल तथा मर्यादा का पालन करने के पक्षधर हैं।

---

1 .महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढ़व्रतः।।

(ख) **सीता–** जहाँ तक इस नाटक की नायिका सीता का प्रश्न है, वह यहाँ पर एक पीड़िता नारी का प्रतीक है। राजा राम द्वारा पूर्ण गर्भावस्था में परित्यक्त होने पर भी, वह प्रतिवाद स्वरूप एक शब्द भी अपने मुख से नहीं कहती है। पतिपरायण, सतीसाध्वी वह राम की स्थिति तथा अन्तर्द्वन्द्व से पूर्णतया परिचित है। यही कारण है कि वह अपने दुःख से दुःखी कम है, अपितु राम की विषम दशा के चिन्तन से चिन्तित अधिक है। त्याग की तो वह मानो साक्षात् मूर्ति ही है। अपने प्रति राम के गहन प्रेम से अवगत होने के बाद, वह उन्हें क्षमा भी कर देती है, जो उनकी विशाल हृदयता तथा क्षमाशीलता का प्रत्यक्ष उदाहरण है। अपने पुत्रों को देखने के लिए वह व्याकुल है, जो उन्हें आदर्श माता के रूप में प्रस्थापित करता है।

इसप्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि महाकवि ने सीता को यहाँ एक आदर्श पतिव्रता, सतीसाध्वी नारी के साथ, आदर्श पत्नी, माता तथा सखी के रूप में चित्रित किया है। नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से वह एक प्रौढ़ा, स्वकीया मुग्धा नायिका के रूप में चित्रित की गयी है, जो यज्ञ की भूमि से देवकृपा से उत्पन्न हुई है। स्वयं वसुन्धरा उनकी माता एवं ब्रह्मवादी जनक उनके पिता हैं। वह सूर्यकुल की वधू है।

इसके अतिरिक्त यहाँ वह राम के घर की लक्ष्मी, उनके नेत्रों के लिए अमृतमयी शलाका है। पातिव्रतत्व तो उसमें कूट–कूटकर भरा है। वह हृदय से भावुक, वात्सल्यपूर्ण एवं कोमलता आदि गुणों से ओतप्रोत है। पंचवटी के वृक्षों, मोर, मृग, हाथी आदि के साथ वह पुत्र के समान व्यवहार करती है, उनका पालन–पोषण करती है तथा उन्हें युवावस्था में देखकर, एक आदर्श माता के समान आनन्द का अनुभव भी करती है। इसप्रकार कहा जा सकता है कि इस नाटक में कवि ने सीता को आदर्श नायिका के रूप में चित्रित करते हुए, दर्शकों के समक्ष उनका अत्यन्त प्रभावीरूप प्रस्तुत किया है, जो आरम्भ से अन्त तक सहृदयों की सहानुभूति बटोरने में पूर्णरूप से सफल रही है। उसके चरित्र में हमें एक भी अवगुण दृष्टिगोचर नहीं होता है।

(ग) लक्ष्मण– राम के वात्सल्य के भाजन, उनके अनुज, इन्हें कवि ने यद्यपि मंच पर अत्यल्प रूप में प्रथम अंक तथा सप्तम अंक में ही प्रस्तुत किया है, किन्तु फिर भी यहाँ ये सेवाभावी, आज्ञापालक, कर्तव्यनिष्ठ, शालीन, गम्भीर प्रकृति, राम के अनन्य भक्त, आदर्श पिता के रूप में चित्रित किए गए हैं। ये सहृदय भी हैं, तभी तो खिन्न सीता को प्रसन्न करने के लिए चित्रवीथिका में उनके मनोरंजन के प्रति सचेष्ट रहे हैं। गुरुजनों के समक्ष अपनी पत्नी उर्मिला की चर्चा न करना, उनकी शालीनता को प्रदर्शित करता है। रावण द्वारा अकार्य करने से खिन्न, इनका हार्दिक क्षोभ भी कवि द्वारा एक स्थल पर अभिव्यक्त किया गया है।[1]

सीता की स्मृति में राम का अश्रुमोचन, उन्हें लेशमात्र भी अच्छा नहीं लगता है और वे उन्हें 'आर्य किमेतत्?' कहकर टोक ही तो देते हैं, वस्तुतः इस नाटक में महाकवि ने इन्हें निर्दुष्ट रूप से चित्रित करते हुए वाल्मीकि से भी अधिक उत्कृष्टरूप में प्रस्तुत किया है। हाँ नायक राम के महान् व्यक्तित्व के समक्ष, इनका चरित्र कुछ दब सा गया है, जो स्वाभाविक भी है। पुनरपि अपनी अल्प उपस्थिति से भी ये सहृदय सामाजिकों को प्रभावित करने में पूर्णरूप से सफल हुए हैं।

(घ) जनक– नायिका सीता के पिता, मिथिला के अधिपति, दार्शनिक जगत् के प्रसिद्ध विद्वान्, महर्षि याज्ञवल्क्य के शिष्य, राम के श्वसुर, जनक की प्रस्तुत नाटक में यद्यपि उपस्थिति अत्यल्प ही रही है, किन्तु इन्होंने चतुर्थ अंक में आदर्श पिता के रूप में दर्शकों को अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित किया है। जहाँ पर वे सीता के शिशु–मुख का स्मरण करके व्यथित हो जाते हैं। निरपराध पुत्री सीता के राम द्वारा अकारण निष्कासन ने तो मानो उन्हें झकझोर दिया है, उनकी इसी पीड़ा को कवि ने सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान की है–

पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे,
निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति।।4/3।।

1 . उत्तररामचरितम्–1/28।

अर्थात् पुत्री के विषय में लगा हुआ लोकापवाद रूपी शोक उनके हृदय को अत्यन्त तीक्ष्णरूप से घायल और व्यथित करने वाला है, जो चिरकाल के बाद भी हृदय के मर्मस्थलों को 'आरे' के समान चीरता हुआ, शान्त नहीं हो रहा है। निश्चय ही, यहाँ पर आदर्श पिता का भावुक एवं कोमल हृदय ही प्रदर्शित हुआ है, जिसमें कवि ने उनकी मर्मान्तक पीड़ा को मनभावन अभिव्यक्ति प्रदान की है।

चतुर्थ अंक के विष्कम्भक से ज्ञात होता है कि ये अपनी पुत्री सीता के दैवदुर्विपाक के कारण वैखानस होकर अनेक वर्षों से **चन्द्रद्वीप नाम के तपोवन में तपोरत हैं।** ध्यातव्य है कि वे दार्शनिक होते हुए भी सहृदय हैं। यही कारण है कि अनेक वर्षों के व्यतीत होने पर भी पुत्री सीता की ऐसी परिणति उन्हें प्रतिक्षण सालती रहती है। इसीलिए सप्तम अंक में राम की माता कौशल्या के प्रति भी वे अपने आक्रोश को मूक अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए, उनसे सीधे कुशल प्रश्न भी नहीं करते हैं, कंचुकी गृष्टि के माध्यम से व्यंग्यपूर्वक बात कहते हैं–

आर्य गृष्टे! अप्यनामयमस्याः प्रजापालकस्य मातुः?

इसीप्रकार वे नागरिकों की निर्दयता तथा राम की क्षिप्रकारिता से भी वे अत्यधिक कुपित हैं तथा कंचुकी के मुख से सीता की अग्नि–शुद्धि के विषय में क्रोधित होकर कहते हैं कि–

आः! कोऽयमग्निर्नामास्मत्प्रसूतिपरिशोधने?

इसप्रकार कोमल एवं भावुक हृदय जनक के चरित्र का अवलोकन करके हम कह सकते हैं कि महाकवि ने अत्यल्प प्रयुक्त इनके चरित्र का चित्रण करते हुए, अपने मन की भावनाओं को ही अभिव्यक्ति प्रदान की है। राम के प्रति प्रदर्शित उनके क्रोध में भी यहाँ वात्सल्य भाव ही निहित रहा है–

हन्त! सर्वथा नृशंसोऽस्मि यच्चिरस्य दृष्टन् प्रियैर्सुहृदः प्रिय–दारानस्निग्ध इव पश्यामि।

तभी तो वाल्मीकि आश्रम में राम के दुबले–पतले शरीर को देखकर उनकी मनःस्थिति का अनुमान करके, वे मूर्च्छित हो जाते हैं।

(ङ) अरुन्धती– सूर्यवंशी राजाओं के कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ की धर्मपत्नी का चरित्र, हमें यहाँ पूर्णरूप से गरिमामय एवं उदात्त रूप में दृष्टिगोचर होता है। शास्त्रीय ज्ञान की गरिमा से सम्पन्न, उन्हें लौकिक व्यवहारों के सम्बन्ध में भी अपूर्व ज्ञान है। यही कारण है कि वे राजा जनक से मिलने में संकोच का अनुभव करती हुई कौशल्या को गुरु वसिष्ठ के आदेश का कथन करते हुए, स्वयं ही मिलने के लिए प्रेरित करती हैं।[1]उनकी मान्यता है कि व्यक्ति के उत्कर्ष में उसका पुरुष या स्त्री होना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना उसमें गुणों का होना, क्योंकि वे ही तो व्यक्ति को समाज में पूजनीय बनाते हैं।[2] कुल मिलाकर सरल स्वभाव वाली, अरुन्धती वृद्ध एवं अनुभवी स्त्री के रूप में सभी की आदरणीय रही हैं और इनका व्यवहार भी अत्यन्त गरिमापूर्ण आदर्श भारतीय नारी व पत्नी के रूप में सामाजिक को आकर्षित किए बिना नहीं रहता है।

(च) वासन्ती– वन की देवी वासन्ती को यहाँ सीता की अन्तरंग सखी के रूप में चित्रित किया है। सीता के प्रति उसका अनन्य प्रेम ही उसे राम को अनेक प्रकार की कठोर बातें कहने और प्रश्न करने के लिए बाध्य करता है,[3] जिनसे राम और सीता थोड़ा विचलित भी हुए हैं, किन्तु यह उसके चरित्र के लिए तथा निर्मल हृदय के लिए प्रशंसनीय ही कहा जा सकता है। उसका सीता के प्रति गहन प्रेम इससे भी अभिव्यक्त होता है कि राम द्वारा अश्वमेध यज्ञ में सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा के विषय में सुनकर उसे अत्यन्त संतोष होता है।

महर्षि अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा द्वारा सौंपे गए, कर्तव्य को इस पात्र ने भी पूर्णनिष्ठा के साथ पूरा किया है, जो इसे आदर्श सखी एवं नारी के रूप में प्रस्थापित करती है। इसके अतिरिक्त वह नीति निपुण तथा व्यवहार कुशल भी है, तभी तो आत्रेयी के दण्डकारण्य में

---

1. ननु ब्रवीमि द्रष्टव्यः स्वयमुपेत्यैव वैदेह इत्येवं वः कुलगुरोरादेशः।
2. गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वय।।4/11
3. उत्तररामचरितम्– 3/26, 27।

आने पर, वह उसके प्रति आदरभाव व्यक्त करते हुए अन्तर्मन से उसका स्वागत करती है।[1]

साथ ही, राम के दण्डकारण्य में आने पर, वन के मकरन्द की वृष्टि करने वाले वृक्ष तथा वन की सुगन्धित वायुओं को उसका स्वागत सत्कार करने के लिए कहती है, क्योंकि महाराज राम फिर से इस वन में जो आए हैं।[2] अन्त में संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि मात्र तृतीय अंक में प्रयुक्त इस पात्र ने सहृदयों के मन को अपने पुनीत व्यवहार से मोह लिया है, वह चित्रलिखित सा होकर सीता के अकारण परित्याग से, हृदय में संजोए हुए दर्द को राम को दिए गए उलाहनों तथा दूसरी बातों को अत्यन्त प्रशंसनीय दृष्टि से सुनता जाता है।

देवी स्वरूप होते हुए भी यह पात्र मानवीय भावनाओं से ओतप्रोत है। वस्तुस्थिति तो यह है कि सहृदय के समक्ष राम के हृदय के उन उद्‌गारों को भी अभिव्यक्त होने में इस पात्र से अत्यधिक सहायता प्राप्त हुई है, जो उनके मन में पुटपाक की तरह पक रहे थे।

(छ) लव– प्रस्तुत कृति के नायक राम एवं सीता के दो पुत्रों में यह छोटा पुत्र है, जो आकृति, वाणी, विनम्रता आदि में अपने पिता–माता के समान ही है। अपनी बालचेष्टाओं से देखने वाले को वह बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। इसीलिए राम की माता कौशल्या इसे राम के बालरूप में ही देखकर आनन्दित होती हैं।[3]

इसकी वेशभूषा से इसका क्षत्रिय बालक होना दूर से ही प्रतीत हो जाता है। इसमें हमें यहाँ विनम्रता, प्रत्युत्पन्नमतित्व, व्यवहार

---

1. यथेच्छाभोग्यं वो वनमिदमयं मे सुदिवसः,
सतां सद्भिः संगः कथमपि हि पुण्येन भवति।
तरुच्छाया तोयं यदपि तपसां योग्यमशनं
फलं वा मूलं वा तदपि न पराधीनमिह वः।।2/1।।
2. ददतु तरवः पुष्पैरर्घ्यं फलैश्च मधुश्च्युतः...। उत्तररामचरितम्– 3/24।
3. कुवलयदलस्निग्धश्यामः शिखण्डकमण्डनो
वटुपरिषदं पुण्यश्रीकः श्रियेव सभाजयन्।
पुनरपि शिशुर्भूतो वत्सः स मे रघुनन्दनो,
झटिति कुरुते दृष्टः कोऽयं दृशोरमृतांजनम्?।।4/19।।

कुशलता, स्वाभिमानी आदि गुण प्रत्यक्षरूप से दृष्टिगोचर होते हैं, जो सहृदय को अत्यन्त प्रभावित करते हैं और प्रस्तुत नाटक का यह पात्र उसके हृदय पर अमिट छाप छोड़ देता है।

इसके अतिरिक्त पिता राम के आशीर्वाद से इसे जृम्भकास्त्र जन्म से ही सिद्ध हैं, जिनका प्रयोग वह चन्द्रकेतु की सेना के विरुद्ध करता है। यह शस्त्र–विद्या के साथ–साथ शास्त्रीय ज्ञान में भी बढ़चढ़ कर चित्रित किया गया है। अश्व को पहचानने में इसके इसी ज्ञान की सहज ही पुष्टि हो जाती है।[1]

इसकी वाणी में हमें ओज के दर्शन होते हैं और अपनी ओजस्वी एवं निर्भीक वाणी में यह चन्द्रकेतु को स्पष्टरूप से कह देता है कि– क्षत्रियधर्म किसी व्यक्ति विशेष तक सीमित नहीं है। अनजाने में भी, इसकी अपने पिता राम के साथ व्यवहार की विनम्रता दर्शनीय है, जो वस्तुतः रामायण पुरुष एवं सूर्यवंशी राजा के साथ प्रदर्शित की गयी है। अश्वरक्षकों की गर्वोक्ति ने इसके क्षत्रिय तेज को ललकारा था, इसीलिए उसने राम के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को पकड़ लिया था। राम के दर्शन से उसका क्रोध अनायास ही शान्त भी हो जाता है तथा यह उनके कहने पर जृम्भकास्त्रों को वापस लौटा लेता है, जिससे इसकी आज्ञाकारिता भी प्रदर्शित हुई है।

संक्षेप में प्रस्तुत नाटक में इस पात्र ने अल्प समय में ही दर्शकों पर एक अमिट छाप छोड़ी है। इसमें हमें यहाँ पर शालीनता, चातुर्य, तेजस्विता, बुद्धिमत्ता, व्यावहारिकता, विनम्रता आदि अनेकानेक गुण देखने को मिलते हैं, जिन्होंने रघुकुल की कौशल्या एवं अरुन्धती जैसी तापसी स्त्रियों, राम, चन्द्रकेतु, सुमन्त्रादि सभी को प्रभावित किया है।

(ज) कुश– लव के अग्रज, इसकी प्रस्तुत नाटक में अधिक उपस्थिति नहीं है, किन्तु अत्यल्प उपस्थिति होने पर भी कवि ने इसका प्रभावशाली चरित्र दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। यह अपने छोटे भाई लव के प्रति उसका अग्रज होने का दायित्व पूर्णरूप से निर्वहण

1 . अश्वोऽश्व इति नाम पशुसमाम्नाये सांग्रामिके च पठ्यते तद् ब्रूत कीदृशः?

करता है। यह अद्भुत वीर, साहसी, बुद्धिमान् तथा प्रतिभाशाली क्षत्रिय कुमार है, जो जुड़वाँ होने के कारण लव से मात्र कुछ क्षण ही बड़ा है। राम इसे देखकर इसके अद्भुत पौरुष की कल्पना से भावविभोर हो जाते हैं[1]

प्रस्तुत कृति में महाकवि ने यहाँ इसे स्वाभिमानी तथा सदाशयता से परिपूर्ण चित्रित किया है। यह सूक्ष्मदृष्टि सम्पन्न है, तभी तो राम को प्रथम दृष्टि में ही देखकर, उनका सही–सही आकलन कर लेता है और उनके साथ अत्यन्त शिष्ट तथा विनम्र व्यवहार करता है। ज्येष्ठ होने के कारण यद्यपि उसमें व्यावहारिक ज्ञान अधिक है, किन्तु लव द्वारा समझाने पर वह उसकी बात मान लेता है। राम के अश्रुओं को देखकर पत्नी के न होने पर संसार के जंगल के समान होने की बात से उसके गाम्भीर्य की भी प्रतीति दर्शक को सहज ही हो जाती है।[2]

अन्त में संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि वृषभ के समान कन्धों वाले, युवा कबूतर के समान श्यामल वर्ण से युक्त, सिंह की गम्भीर दृष्टि से सम्पन्न, चंचलता रहित, मांसल शरीर युक्त कुश का व्यक्तित्व प्रस्तुत कृति में अत्यधिक प्रभावीरूप से चित्रित किया गया है। अत्यल्प समय तक उपस्थित होकर भी अपने उदात्त गुणों के कारण, सहृदयों के प्रति यह अपनी अमिट छाप छोड़ देता है।

(झ) चन्द्रकेतु– राम के प्रिय अनुज के पुत्र के रूप में इस पात्र को, यहाँ पर प्रस्तुत किया गया है, जो राजपुत्रोचित सभी गुणों से युक्त है। इसके प्रथम दर्शन ही यहाँ पर अश्वमेध यज्ञ के अश्व के रक्षक सेनानायक के रूप में हुए हैं। इस आधार पर इसे योग्य, वीर, साहसी तथा युद्धकला में निपुण कहा जा सकता है, जो शत्रु के प्रत्येक शस्त्र का उचित प्रत्युत्तर देने में समर्थ है। इसकी प्रतिभा और

1 . दृष्टिस्तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा,
धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम्।
कौमारकेऽपिगिरिवद्गुरुतां दधानो,
वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव।।6/19।।

2 . उत्तररामचरितम्– 6/30।

कुशलता को देखकर ही इसे अश्वमेध यज्ञ के अश्व की रक्षा के लिए नियुक्त किया गया है।

यह विनम्र एवं व्यवहार कुशल है, जिसे हम सुमन्त्र और राम के साथ उसके व्यवहार में देख सकते हैं। इसके अलावा यह शीघ्र ही मित्रता करने में निपुण दिखायी देता है, तभी तो लव को यह शीघ्र ही अपना मित्र बना लेता है। इसके अलावा यहाँ पर कवि ने इसे न्यायप्रिय रूप में भी चित्रित किया गया है, क्योंकि अनेक सैनिकों को अकेले लव के साथ युद्ध करते हुए देखकर, यह उन्हें रोकता है और लव को भी रथ पर सवार होकर लड़ने के लिए प्रेरित करता है। वस्तुतः उसकी दृष्टि में रथ पर सवार, एक योद्धा का पृथ्वी पर स्थित दूसरे योद्धा के साथ लड़ना न्यायोचित नहीं है। (न रथिनः पादचारमभियुंजन्ति)

वस्तुस्थिति तो यह है कि राजकुमार होते हुए भी इसका व्यवहार प्रस्तुत कृति में अत्यन्त शालीन, शिष्ट तथा सौजन्यपूर्ण रहा है। इसके कोमल हृदय होने की भी यहाँ पर पुष्टि होती है, तभी तो सुयोग्य वीर लव को प्रथम बार देखकर, उसका हृदय प्रेमरस से आप्यायित होकर रोमांचित हो उठता है।

इसीप्रकार इसकी अपने गुरुजनों के प्रति अगाध आस्था एवं श्रद्धा भी अभिव्यक्त हुई है। इसीलिए श्रद्धेय तात राम की गरिमा के विरुद्ध कहे गए, लव के एक शब्द को भी यह सहन नहीं कर पाता है। इसके अतिरिक्त मित्रभाव के निर्वहण में भी यह अग्रणी रहा है। तभी तो राम के आने पर उसका परिचय देते हुए, वह अपने मित्र लव के साथ उदार व्यवहार करने की ही प्रार्थना करता है।

अन्त में संक्षेप में कहा जा सकता है कि लक्ष्मण तथा उर्मिला के पुत्र चन्द्रकेतु में हमें गाम्भीर्य, सरलता, विनम्रता, साहस, बुद्धिमत्ता तथा अन्य सभी क्षत्रियोचित गुण दृष्टिगोचर होते हैं, जिनके कारण यह पात्र भी सहृदयों के चित्त में बस गया है।

(ञ) शम्बूक– शूद्र कुल में उत्पन्न होने पर भी आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करने के लिए, कठोर तप करने वाले धूमपायी शम्बूक मुनि को कवि ने अत्यन्त विनम्ररूप में चित्रित किया है, जो राम द्वारा शिरच्छेद करने पर भी उन्हीं के गुणगान करता है, क्योंकि इससे उसे दिव्य शरीर तथा उत्कृष्ट लोकों की प्राप्ति जो हो गयी है। वह श्रीराम के नारायण स्वरूप से सुपरिचित है, इसीलिए उनके प्रति कृतज्ञता भी अभिव्यक्त करता है। विनम्रता का तो इसे मानो पुँज ही वर्णित किया है, तभी तो यह दिव्य शरीर प्राप्त होने पर भी महर्षि अगस्त्य को प्रणाम करके ही दिव्य लोकों में प्रस्थान करने का इच्छुक है और इसके लिए यह राम से अनुमति लेना भी नहीं भूलता है।

(ट) अन्य पात्र– भवभूति की यह महती विशेषता रही है कि इस नाटक में उन्होंने प्राकृतिक उपादानों, जैसे– नदी, पृथ्वी, वृक्ष, पशु तथा पक्षियों, यहाँ तक कि वनदेवी को भी पात्ररूप में प्रस्तुत किया है। इसीलिए पात्ररूप में प्रयुक्त तमसा नामक नदी यहाँ सीता की भावनाओं से पूर्णतया परिचित एक आदर्श सखी तथा माता दोनों ही रूपों में चित्रित की गयी है। महर्षि अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा द्वारा, उसे जो दायित्व सौंपा गया था, उसे भी उसने अपनी पूर्ण कर्तव्यनिष्ठा से पूरा किया है।

इसके अतिरिक्त अन्य पात्रों में महर्षि अगस्त्य की पत्नी **लोपा–मुद्रा, मुरला, गंगा, गोदावरी, पृथ्वी** आदि सभी पात्र पवित्र नारी हृदय से युक्त, सीता के प्रति करुणा एवं मातृभाव लिए हुए हैं। यही कारण है कि लोपामुद्रा वनदेवी वासन्ती, गोदावरी तथा तमसा को राम के जीवन की रक्षा करने के लिए, सीता का पूरा ध्यान रखने के लिए नियोजित करती है। गंगा ने तो अनुकम्पा करके सीता को अदृश्य होने का वरदान ही दे दिया है, जिससे वनदेवता भी उसे देखने में असमर्थ हो जाते हैं, इसी वरदान के कारण तो वह अपने प्रियतम राम के जीवन की रक्षा करने में समर्थ हो सकी है और प्रस्तुत अंक में महाकवि का महत्त्वपूर्ण प्रयोजन भी पूरा हुआ है।

•••

।।श्रीः।।

प्रथमोऽङ्कः

इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो नमोवाकं प्रशास्महे
विन्देम देवतां वाचममृतामात्मनः कलाम्।।1।।

(**अन्वय–** पूर्वेभ्यः कविभ्यः इदम् नमः–वाकम् प्रशास्महे, आत्मनः अमृताम् कलाम् देवताम् वाचम् विन्देम।।1।।)

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः– अलमतिविस्तरेण। अद्य खलु भगवतः कालप्रियानाथस्य यात्रायामार्यमिश्रान्विज्ञापयामि– एवमत्रभवन्तो विदांकुर्वन्तु। अस्ति खलु तत्रभवान्काश्यपः श्रीकण्ठपदलांछनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतु–कर्णीपुत्रः।

यं ब्रह्माणमियं देवीवाग्वश्येवानुवर्तते।
उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते।।2।।

(**अन्वय–** यम् ब्रह्माणम् इयम् देवी–वाक् वश्या इव अनुवर्तते, तत् प्रणीतम् उत्तरम् रामचरितम् प्रयोक्ष्यते।।2।।)

तस्यासाधारणपाण्डित्यप्रकर्ष सूचयितुमाह– यमिति।

एषोऽस्मि कार्यवशादायोध्यकस्तदानींतनश्च संवृत्तः। (समन्ताद–वलोक्य) भो भोः यदा तावदत्रभवतः पौलस्त्यत्यकुलधूमकेतोर्महाराज–रामस्यायं पट्टाभिषेकेसमयो रात्रिंदिवमसंहृतनान्दीकः, तत्किमिदानीं विश्रान्तचारणाणि चत्वरस्थानानि।

(प्रविश्य)

नटः– भावः! प्रेषिता हि स्वगृहान्महाराजेन लंकासमरसुहृदो महात्मानः प्लवंगमराक्षसाः सभाजनोपस्थायिनश्च नानादिगन्तपावना ब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च यत्समाराधनायैतावतो दिवसान्प्रमोद आसीत्।

सूत्रधारः– आ, अस्त्येतन्निमित्तम्।

प्रथम अङ्क

प्राचीन कवियों को प्रणाम करके, हम यह कामना करते हैं कि ब्रह्मा जी की अंशभूत सनातन सरस्वती हमें प्राप्त होवे।।1।।

(नान्दी के अन्त में)

सूत्रधार– अत्यधिक विस्तार से बस करो, निश्चय ही, आज भगवान् कालप्रियानाथ की यात्रा के अवसर पर, मैं समादरणीय आप महानुभावों से इसप्रकार निवेदन करता हूँ कि– 'आप लोग यह जान लेवें कि काश्यप गोत्र में उत्पन्न, व्याकरण, मीमांसा एवं न्याय शास्त्र के ज्ञाता, 'श्रीकण्ठ' उपाधि से युक्त, भवभूति नाम वाले 'जतुकर्णी' के पुत्र आदरणीय कवि हैं।'

जिस ब्राह्मण भवभूति का 'यह ब्रह्मा है' यह मानकर, सरस्वती भी वशवर्तिनी सी होकर अनुगमन करती है। उनके द्वारा विरचित उत्तररामचरित का (आज) **अभिनय किया जाएगा।।2।।**

(अभिनय के) कार्यवश मैं अयोध्यावासी एवं उन्हीं राम के अभिषेक के समय वाला हो गया हूँ, (चारों ओर देखकर) अरे! अरे! रावण–कुल के लिए धूमकेतु के समान, महाराज राम के राज्याभिषेक के समय, जब रात और दिन 'नान्दी' का प्रयोग हो रहा है, तो फिर चारणों से शून्य क्यों हैं?

(प्रवेश करके)

नट– जिनके स्वागत के लिए इतने दिनों तक यह उत्सव हो रहा था, लंका–युद्ध के उन मित्र वानरों, राक्षसों एवं अभिनन्दन के लिए आए हुए, अनेक दिशाओं को पवित्र करने वाले, ब्रह्मर्षि तथा राजर्षियों को वस्तुतः महाराज ने आदर के साथ विदा कर दिया है।

सूत्रधार– ओह! तो यह कारण है।

नटः– अन्यच्च–

वसिष्ठाधिष्ठिता देव्यो गता रामस्य मातरः।

अरुन्धतीं पुरस्कृत्य यज्ञे जामातुराश्रमम्।।3।।

(**अन्वय**– वसिष्ठ–अधिष्ठिता देव्यः, रामस्य मातरः अरुन्धतीम् पुरस्कृत्य यज्ञे, जामातुः आश्रमम् गताः।।3।।)

सूत्रधारः– वैदेशिकोऽस्मीति पृच्छामि। कः पुनर्जामाता?

नटः–

कन्यां दशरथो राजा शान्तां नाम व्यजीजनत्।

अपत्यकृतिकां राज्ञे रोमपादाय तां ददौ।।4।।

(**अन्वय**– राजा दशरथः शान्ताम् नाम कन्याम् व्यजीजनत्, अपत्य–कृतिकाम् ताम् राज्ञे रोमपादाय ददौ।।4।।)

विभाण्डकसुतस्तामृष्यशृंग उपयेमे। तेन द्वादशवार्षिकं सत्रमारब्धम्। तदनुरोधात्कठोरगर्भामपि जानकीं विमुच्य गुरुजनस्तत्र यातः।

सूत्रधारः– तत्किमनेन? एहि, राजद्वारमेव स्वजातिसमयेनोप–तिष्ठावः।

नटः– तेन हि निरूपयतु राज्ञः सुपरिशुद्धामुपस्थानस्तोत्रपद्धति–भावः।

सूत्रधारः– मारिष!

सर्वथा व्यवहर्तव्यं, कुतो ह्यवचनीयता।

यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।।5।।

(**अन्वय**– सर्वथा व्यवहर्तव्यम्, हि अवचनीयता कुतः? जनः यथा स्त्रीणाम्, तथा वाचाम् साधुत्वे दुर्जनः।।5।।)

नटः– अतिदुर्जन इति वक्तव्यम्।

देव्या अपि हि वैदेह्याः साऽपवादो यतो जनः

रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चयः।।6।।

(**अन्वय**– यतः देव्याः वैदेह्याः अपि हि जनः स–अपवादः, रक्षस्–गृह–स्थितिः मूलम्, अग्नि–शुद्धौ तु अनिश्चयः।।6।।)

सूत्रधारः– यदि पुनरियं किंवदन्ती महाराजं प्रति स्यन्देत, ततः कष्टं स्यात्।

नट– और भी कारण है।

वसिष्ठ की अध्यक्षता में, भगवती अरुन्धती को आगे करके, श्रीराम की माताएँ, यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए, जामाता 'ऋष्यशृंग' के आश्रम में चली गयी हैं।।3।।

सूत्रधार– मैं परदेशी हूँ, इसीलिए पूछ रहा हूँ कि ये दामाद (जामाता) कौन हैं?

नट– राजा दशरथ की 'शान्ता' **नामक कन्या उत्पन्न हुई, अपत्यकृतिका** (गोद) **के रूप में उन्होंने उसे राजा रोमपाद को दे दिया।।4।।**

और विभाण्डक ऋषि के पुत्र ऋष्यशृंग ने उससे विवाह कर लिया। अब उन्होंने बारह वर्षों तक चलने वाला, यज्ञ आरम्भ किया है। उनके अनुरोध से कठोरगर्भा सीता को छोड़कर गुरुजन वहाँ पर चले गए हैं।

सूत्रधार– हमें तो इससे क्या प्रयोजन? आओ, हम तो अपनी जाति के आचरण के अनुसार राजद्वार में ही उपस्थित होते हैं।

नट– यदि ऐसा है, तो समादरणीय आप महाराज की स्तुति (उपस्थान) के योग्य दोषरहित प्रशस्ति का चिन्तन कर लेवें।

सूत्रधार– आर्य!

हमेशा ही स्तुति का व्यवहार करते रहना चाहिए, दोषराहित्य की सम्भावना भला कैसे की जा सकती है? क्योंकि दुर्जन जिसप्रकार स्त्रियों के चरित्र के विषय में शंका करता है, उसीप्रकार वह निर्दोष लोगों के बार में भी दोष निकालने की चेष्टा करता है।।5।।

नट– उसे तो अत्यधिक दुर्जन कहना चाहिए, क्योंकि–

परम पवित्र सीता के बारे में भी लोक यदि सापवाद है और इस अपवाद का मूल कारण उनका राक्षस के घर में निवास है, क्योंकि लोगों को उनकी अग्नि–शुद्धि में सन्देह है।।6।।

सूत्रधार– फिर तो यदि यह जनश्रुति महाराज के कानों में पड़ जाए, तो बड़ा कष्ट हो सकता है।

नटः– सर्वथा ऋषयो देवताश्च श्रेयो विधास्यन्ति। (परिक्रम्य) भो भोः क्वेदानीं महाराजः? (आकर्ण्य) एवं जनाः कथयन्ति–

स्नेहात्सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि,
नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान्।
देव्यास्ततो विमनसः परिसान्त्वनाय,
धर्मासनाद्विशति वासगृहं नरेन्द्रः।।7।।

(**अन्वय–** स्नेहात् सभाजयितुम् एत्य, अमूनि दिनानि उत्सवेन नीत्वा, जनकः अद्य विदेहान् गतः, ततः विमनसः देव्याः परिसान्त्वनाय नरेन्द्रः धर्मासनात् वासगृहम् विशति।।7।।)

(इति निष्क्रान्तौ)

इति प्रस्तावना

(ततः प्रविशत्युपविष्टो रामः सीता च)

रामः– देवि! वैदेहि! विश्वसिहि, ते हि गुरवो न शक्नुवन्ति विहातुमस्मान्।

किंत्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति।
संकटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता।।8।।

(**अन्वय–** किन्तु अनुष्ठान–नित्यत्वम् स्वातन्त्र्यम् अपकर्षति, हि आहित–अग्नीनाम् गृहस्थता प्रत्यवायैः संकटा।।8।।)

सीता– जानामि आर्यपुत्र! जानामि किन्तु सन्तापकारिणो बन्धु–जनविप्रयोगा भवन्ति।[1]

रामः– एवमेतत् एते हि हृदयमर्मच्छिदः संसारभावाः। येभ्यो बीभत्समानाः संत्यज्य सर्वान्कामानरण्ये विश्राम्यन्ति मनीषिणः।

(प्रविश्य)

कंचुकी– रामभद्र! (इत्यर्धोक्ते साशंकम्) महाराज!

रामः– (सस्मितम्) आर्य! ननु रामभद्र! इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तातपरिजनस्य, तद्यथाभ्यस्तमभिधीयताम्।

कंचुकी– देव! ऋष्यशृंगाश्रमादष्टावक्रः संप्राप्तः।

---

1. जाणामि अज्जउत्त! जाणामि। किंदु संदावआरिणो बन्धु जणविप्पओआ होन्ति।

नट– ऋषि और देवतागण सब प्रकार से कल्याण करेंगे। (घूमकर) अरे! अरे! इस समय महाराज कहाँ हैं? (सुनकर) लोग इसप्रकार कह रहे हैं–

राज्याभिषेक के उत्सव में प्रेमपूर्वक स्वागत करने के लिए, आए हुए जनक आज इतने दिन व्यतीत होने पर, अपने विदेह नगर को लौट गए हैं और उसके बाद, देवी सीता को सान्त्वना देने के लिए महाराज न्यायासन से उठकर, अन्तःपुर में प्रवेश कर रहे हैं।।7।।

(ऐसा कहकर निकल जाता है)

प्रस्तावना

(उसके बाद बैठे हुए राम और सीता प्रवेश करते हैं)

राम– देवि, वैदेहि! विश्वास करो, वस्तुतः जनक आदि वे गुरुजन हम लोगों को नहीं छोड़ सकते हैं।

किन्तु अग्निहोत्र आदि के अनुष्ठान की नित्यता स्वतन्त्रता को छीन लेती है, क्योंकि अग्निहोत्रियों की गृहस्थता अनेक विघ्नों के कारण संकटापन्न होती है।।8।।

सीता– आर्यपुत्र! मैं जानती हूँ, किन्तु बन्धुजनों के वियोग सन्ताप प्रदान करने वाले होते हैं।

राम– यह ऐसा ही है। ये सांसारिक भाव हृदय के मर्मस्थलों का भेदन करने वाले होते हैं, जिनसे घृणा करते हुए, विद्वान् लोग अपनी सभी कामनाओं का परित्याग करके, वन में विश्राम करते हैं।

(प्रवेश करके)

कंचुकी– रामभद्र! (इसप्रकार आधा कहने पर शंकित होकर) महाराज!

राम– (मुस्कराहटपूर्वक) आर्य! पूज्य पिताजी के सेवक आपका मेरे लिए 'रामभद्र' यह सम्बोधन ही अच्छा लगता है। इसलिए अभ्यास के अनुसार 'रामभद्र' ही कहिए।

कंचुकी– महाराज! ऋष्यशृंग के आश्रम से 'अष्टावक्र' आए हैं।

सीता– आर्य! ततः किं विलम्ब्यते।[1]

रामः– त्वरितं प्रवेशय।

(कंचुकी निष्क्रान्तः, प्रविश्य च)

अष्टावक्रः– स्वस्ति वाम्।

रामः– भगवन्! अभिवादये, इत आस्यताम्।

सीता– भगवन्, नमस्ते। अपि कुशलं सजामातृकस्य गुरुजन–स्यार्यायाः शान्तायाश्च?[2]

रामः– निर्विघ्नः सोमपीथी भावुको मे भगवानृष्यशृंगः आर्या च शान्ता?

सीता– अस्मानपि स्मरति?[3]

अष्टावक्रः– (उपविश्य) अथ किम्। देवि, कुलगुरुर्भगवान् वसिष्ठ–स्त्वामिदमाह–

विश्वंभरा भगवती भवतीमसूत,
राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि! पार्थिवानां
येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च।।9।।

(अन्वय– नन्दिनि! भगवती विश्वंभरा भवतीम् असूत, प्रजापति–समः राजा जनकः ते पिता, त्वम् च तेषाम् पार्थिवानाम् वधूः असि, येषाम् कुलेषु सविता गुरुः वयम् च (गुरवः)।।9।।)

तत्किमन्यदाशास्महे। केवलं वीरप्रसवा भूयाः।

रामः– अनुगृहीताः स्मः।

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।।10।।

(अन्वय– हि लौकिकानाम् साधूनाम् वाक् अर्थम् अनुवर्तते, पुनः आद्यानाम् ऋषीणाम् वाचम् अर्थः अनुधावति।।10।।)

---

1 . अज्ज। तदो किं विलम्बी अदि।

2 . भअवं णमो दे। अवि कुसलं सजामातुअस्स गुरुअणस्स अज्जाए सन्ताए अ?

3 . अम्हे वि सुमरिदे?

सीता– आर्य! तो विलम्ब किसलिए किया जा रहा है?

राम– उन्हें शीघ्र ही प्रवेश कराओ।

(कंचुकी निकलकर एवं प्रवेश करके)

अष्टावक्र–आप दोनों का कल्याण होवे।

राम– भगवन्! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप इधर बैठिए।

सीता– भगवन्! नमस्कार। जामाता ऋष्यश्रृंग के साथ माता कौशल्या, गुरुजन तथा शान्ता देवी कुशल तो हैं?

राम– सोमरस का पान करने वाले, मेरे बहनोई तथा भगवन् ऋष्यश्रृंग एवं आर्या शान्ता आनन्दपूर्वक तो हैं?

सीता– क्या वे हमारा भी स्मरण करते हैं?

अष्टावक्र–(बैठकर) हाँ देवि! इक्ष्वाकु वंश के गुरु भगवान् वसिष्ठ ने आपको यह कहा है–

हे आनन्दमयी सीते, सम्पूर्ण विश्व का भरण–पोषण करने वाली, भगवती वसुन्धरा ने तुम्हें उत्पन्न किया है और प्रजापति के समान राजा जनक तुम्हारे पिता हैं। इतना ही नहीं, तुम उन राजाओं की कुलवधू हो, जिनके कुल में भगवान् भास्कर तथा हम लोग गुरुजन हैं।।9।।

इसलिए हम तुम्हें क्या आशीर्वाद प्रदान करें, तुम तो वीर पुत्र को जन्म देने वाली बनो।

राम– हम अनुगृहीत हुए, क्योंकि

लौकिक सत्पुरुषों की वाणी तो अर्थ के पीछे चलती है, किन्तु आद्य ऋषियों की वाणी के पीछे अर्थ स्वयं चलता है।।10।।

राजा जनक की तुलना यहाँ प्रजापति ब्रह्मा से की गयी है, क्योंकि उनकी जीवन्मुक्तता जगत्प्रसिद्ध है। सीता की अनेकानेक विशेषताओं का कथन करके कवि ने उसकी भावी विपत्ति की ओर व्यंजना से संकेत भी किया है, जिसके लिए उसे मानसिक तथा शारीरिक रूप से तैयार रहना उचित होगा। इससे भगवान् वसिष्ठ की सर्वज्ञता भी अभिव्यंजित हुई है।

इसके अतिरिक्त यहाँ प्रयुक्त द्वितीय श्लोक में श्रीराम की ऋषियों के प्रति गहन श्रद्धाभाव की अभिव्यक्ति भी हुई है।

अष्टावक्रः– इदं च भगवत्याऽरुन्धत्या देवीभिः, शान्तया च भूयो भूयः संदिष्टम्– यः कश्चिद् गर्भदोहदो भवत्यस्याः, सोऽवश्यमचिरान् मानयितव्य' इति।

रामः– क्रियते यद्येषा कथयति।

अष्टावक्रः– ननान्दुः पत्या च देव्याः संदिष्टम्– 'वत्से, कठोर–गर्भेति नानीतासी। वत्सोऽपि रामभद्रस्त्वद्विनोदार्थमेव स्थापितः। तत्पुत्र–पूर्णोत्संगामायुष्मतीं द्रक्ष्याम, इति।

रामः–(सहर्षलज्जास्मितम्) तथास्तु भगवता वसिष्ठेन न किंचिदा–दिष्टोऽस्मि?

अष्टावक्रः– श्रूयताम्–

जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धास्त्वं
बाल एवासि नवं च राज्यम्।
युक्तः प्रजानामनुरंजने स्यास्त–
स्माद्यशो यत्परमं धनं वः।।11।।

(अन्वय– जामातृ–यज्ञेन वयम् निरुद्धाः, त्वम् बालः एव असि, राज्यम् च नवम्, प्रजानाम् अनुरंजने युक्तः स्याः, तस्मात् यशः (भविष्यति) यत् वः परमम् धनम् ।।11।।)

रामः– यथा समादिशति भगवान्मैत्रावरुणिः।

स्नेहं, दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा।।12।।

(अन्वय– लोकस्य आराधनाय स्नेहम्, च दयाम्, सौख्यम् च यदि वा जानकीम् अपि मुंचतः, मे व्यथा न अस्ति ।।12।।)

सीता– अत एव राघवधुरंधर आर्यपुत्रः।[1]

रामः– कः कोऽत्र भोः? विश्राम्यतामष्टावक्रः।

अष्टावक्रः– (उत्थाय परिक्रम्य च) अये, कुमारलक्ष्मणः प्राप्तः।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

---

[1]. अदो जेव्व राहवधुरन्धरो अज्जउत्तो!

अष्टावक्र– और भगवती अरुन्धती एवं कौशल्या आदि महा–रानियों ने बार–बार कहा है कि– 'गर्भिणी इस सीता की जो कुछ भी इच्छा (गर्भदोहद) हो, उसे अविलम्ब अवश्य पूरा करना चाहिए।'

राम– यदि वे कहती हैं, तो अवश्य पूरा किया जाएगा।

अष्टावक्र– ननन्द के पति ऋष्यशृंग ने महारानी सीता को सन्देश दिया है कि– 'पुत्रि! आसन्नगर्भा होने के कारण तुम्हें इस यज्ञ में नहीं बुलाया गया है और वत्स राम को तुम्हारे मनोविनोद के लिए ही वहाँ रखा है। इसलिए अब तो हम आयुष्मती तुम्हें पुत्र से भरी हुई गोद वाली को ही देखेंगे।

राम– (हर्ष एवं लज्जा से मुस्कराते हुए) वैसा ही होवे। भगवान् वसिष्ठ ने तो मुझे कोई आदेश नहीं दिया है?

अष्टावक्र–सुनिए,

हम लोग जामाता ऋष्यशृंग के यज्ञ के कारण रुके हुए हैं, तुम अभी बालक हो तथा राज्य भी नया है, इसलिए तुम्हें प्रजा का अनुरंजन करने में सावधान रहना चाहिए, क्योंकि उससे जो यश होगा वही तुम्हारा सर्वश्रेष्ठ धन है।।11।।

राम– भगवान् वसिष्ठ जो आज्ञा प्रदान करते हैं,

लोक के आराधन के लिए तो मुझे स्नेह, दया, सुख अथवा जानकी को छोड़ते हुए भी कोई कष्ट नहीं है।।12।।

सीता– इसीलिए तो आर्यपुत्र रघुवंश के राजाओं में अग्रणी हैं।

राम– अरे! यहाँ कौन है? समादरणीय अष्टावक्र को विश्राम कराओ।

अष्टावक्र– (उठकर और घूमकर) अरे! कुमार लक्ष्मण आ गए हैं।

(ऐसा कहकर निकल जाते हैं)

(प्रवेश करके)

उपर्युक्त श्लोक में कवि ने जानकी के परित्याग विषयक भावी सूचना की ओर संकेत किया है, जिससे उनकी व्यंजनाप्रधानशैली अभिव्यक्त हुई है।

लक्ष्मणः– जयति जयत्यार्यः! आर्य! अर्जुनेन चित्रकेरणास्मदुपदिष्टमार्यस्य चरितमस्यां वीथ्यामभिलिखितम्। यत्पश्यत्वार्यः।

रामः– जानासि वत्स! दुर्मनायमानां देवीं विनोदयितुम्। तत्कियन्तमवधिं यावत्?

लक्ष्मणः– यावदार्याया हुताशनशुद्धिः।

रामः– शान्तं (ससान्त्ववचनम्)

उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः?
तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः।।13।।

(**अन्वय–** उत्पत्ति–परिपूतायाः अस्याः पावन–अन्तरैः किम्? तीर्थ–उदकम् च, वह्निः च, अन्यतः शुद्धिम् न अर्हतः।।13।।)

देवि! देवयजनसम्भवे प्रसीद! एष ते जीवितावधिः प्रवादः।

क्लिष्टो जनः किल जनैरनुरंजनीय–
स्तन्नो यदुक्तमशुभं च न तत्क्षमं ते।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा
मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि ।।14।।

(**अन्वय–** क्लिष्टः जनः जनैः अनुरंजनीयः, किल च तत् ते नः यत् अशुभम् उक्तम्, तत् न क्षमम्, सुरभिणः कुसुमस्य स्थितिः मूर्ध्नि नैसर्गिकी सिद्धा, चरणैः अवताडनानि न।।14।।)

सीता– भवत्वार्यपुत्र, भवतु एहि। प्रेक्षामहे तावत्ते चरितम्।[1]

(इत्युत्थाय परिक्रामति)

लक्ष्मणः– इदं तदालेख्यम्।

सीता– (निर्वर्ण्य) क इते उपरि निरन्तरस्थिता उपस्तुवन्तीवार्यपुत्रम्?[2]

लक्ष्मणः– देवि! एतानि तानि सरहस्यानि जृम्भकास्त्राणि, यानि भगवतः कृशाश्वात्कौशिकमृषिमुपसंक्रान्तानि। तेन च ताटकावधे प्रसादीकृतान्यार्यस्य।

---

1. होदु! अज्जउत्त, होदु। एहि । पेक्खह्म द्राव दे चरिदम्।
2. के इदे उवरि णिरन्तरट्ठिदा उवत्थुवन्दि विअ अज्जउत्तम्?।

लक्ष्मण– जय हो, आर्य की जय हो। हमारे द्वारा आदेश देने पर 'अर्जुन' नामक चित्रकार ने इस चित्रवीथिका को चित्रित किया है। अतः आप इसे देखिए।

राम– वत्स! तुम खिन्न चित्त वाली, देवी का मनोरंजन करना जानते हो, तो बताओ मेरा चरित्र कहाँ तक चित्रित किया गया है?

लक्ष्मण– आर्या की अग्निशुद्धि पर्यन्त।

राम– शान्त! (सान्त्वना के स्वर में)

जन्म से ही पवित्र इसकी शुद्धि के लिए दूसरे पवित्र पदार्थों की क्या आवश्यकता है? क्योंकि स्वतः ही पवित्र तीर्थों का जल एवं अग्नि, दूसरे पदार्थ से शुद्धि के योग्य नहीं होते हैं।।13।।

हे यज्ञ से उत्पन्न देवि! प्रसन्न हो जाओ, क्योंकि यह तो तुम्हारा जीवन भर के लिए अपवाद है,

दुःखी व्यक्ति का उसके सम्बन्धियों द्वारा मनोरंजन किया जाना चाहिए, किन्तु तुम्हारे विषय में तो हमने अनुचित ही कहा है, वस्तुतः वह तुम्हारे योग्य नहीं है, क्योंकि सुगन्धित पुष्प की सिर पर स्थिति स्वभाव से सिद्ध होती है, उसे पैरों द्वारा कुचलना उचित नहीं होता है।।14।।

सीता– आर्यपुत्र! अपवाद की बात रहने दीजिए। आइए, जब तक आपके चरित्र को देखते हैं।

(ऐसा कहकर उठकर, घूमती है)

लक्ष्मण– यह, वह चित्र है।

सीता– (देखकर) निरन्तर खड़े हुए ये कौन हैं? जो आर्यपुत्र की स्तुति कर रहे हैं?

लक्ष्मण– हे देवि! ये रहस्यमय वे जृम्भकास्त्र हैं, जो कृशाश्व से ऋषि विश्वामित्र के पास आए एवं उन्होंने ताड़का वध के अवसर पर आर्य को प्रसादरूप में प्रदान किए।

राजा जनक द्वारा यज्ञ की भूमि को शुद्ध करने के लिए हल द्वारा जोतने से सीता की उत्पत्ति हुई थी, इसलिए उन्हें यहाँ देवयजनसम्भवा कहा गया है।

रामः— वन्दस्व देवि, दिव्यास्त्राणि।

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा, परः सहस्रं शरदां तपांसि।
एतान्यदर्शन्गुरवः पुराणाः, स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि।15

(**अन्वय**— ब्रह्म—आदयः पुराणाः गुरवः ब्रह्म—हिताय, सहस्रम् परः शरदाम् तपांसि तप्त्वा, स्वानि एव तपोमयानि तेजांसि एतानि अदर्शन्।।15।।)

सीता— नम एतेभ्यः।[1]

रामः— सर्वथेदानीं त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ति।

सीता— अनुगृहीतास्मि।[2]

लक्ष्मणः— एष मिथिलावृत्तान्तः।

सीता— अहो दलन्नवनीलोत्पलश्यामलस्निग्धमृसणशोभमानमांसलेन देहसौभाग्येन विस्मयस्तिमिततातदृश्यमानसौम्यसुन्दरश्रीरनादरत्रुटिशंकर—शरासनः शिखण्डमुग्धमुखमण्डलः आर्यपुत्र आलिखितः![3]

लक्ष्मणः— आः! आर्ये पश्य पश्य—

सम्बन्धिनो वसिष्ठादीनेष तातस्तवार्चति।
गौतमश्च शतानन्दो, जनकानां पुरोहितः।।16।।

(**अन्वय**—एषः तव तातः जनकानाम् पुरोहितः गौतमः शतानन्दः च सम्बन्धिनः वसिष्ठ—आदीन् अर्चति।।16।।)

रामः— सुश्लिष्टमेतत्।

जनकानां रघूणां च, सम्बन्धः कस्य न प्रियः।
यत्र दाता गृहीता च, स्वयं कुशिकनन्दनः।।17।।

(**अन्वय**— जनकानाम् रघूणाम् च सम्बन्धः कस्य न प्रियः? यत्र स्वयम् कुशिक—नन्दनः दाता गृहीता च (अस्ति)।।17।।)

---

1 . णमो एदाणम्।

2 . णगहीदह्मि।

3 . अम्हहे, दलन्तणवणीलुप्पलसामलसिणिद्धमसिणसोहमाण— मंसलेन देहसोग्गेण विहाअत्थिमिदतादसन्तसोम्मसुन्दरसिरी, अणदरत्थुडिदसंकरसरासणो, सिहण्डमुद्धमुहमण्डलो अज्जउत्तो आलिहिदो!

राम— हे देवि! इन दिव्य अस्त्रों को प्रणाम करो।

ब्रह्मा आदि पुरातन गुरुओं ने वेदों की रक्षा हेतु, हजारों वर्षों से भी अधिक समय तक तपस्या करके, अपने तपोरूप तेजपुंज का ही वस्तुतः इसरूप में साक्षात्कार किया था।।15।।

सीता— इन्हें नमस्कार है।

राम— निश्चय ही, अब ये तुम्हारी सन्तान को प्राप्त हो जाएँगे।

सीता— मैं अनुगृहीत हो गयी हूँ।

लक्ष्मण— यह मिथिला का वृत्तान्त है।

सीता— अहो! खिले हुए नीलकमल के समान, श्यामल, स्निग्ध, मसृण और मांसल शरीर की सुन्दरता के कारण, जिनकी मनोहर शोभा को पिताश्री आश्चर्यपूर्वक टकटकी लगाकर देख रहे हैं और जिन्होंने शिवजी के धनुष को तोड़ दिया है, ऐसे काकपक्षों से रमणीय एवं भोले भाले मुख वाले आर्यपुत्र ही इसमें चित्रित किए गए हैं।

लक्ष्मण— आर्ये! देखिए, देखिए,

ये आपके पिताश्री जनक—वंश के पुरोहित गौतम के पुत्र शतानन्द के साथ वसिष्ठ आदि सम्बन्धियों का पूजन कर रहे हैं।।16।।

राम— यह चित्र वस्तुतः सुसम्बद्ध है,

जनक एवं रघुवंश के राजाओं का यह सम्बन्ध भला किसे प्रिय नहीं है? जिसमें देने वाले तथा ग्रहण करने वाले, दोनों ही कुशिक नन्दन विश्वामित्र हैं।।17।।

यहाँ नायक राम द्वारा सीता की भावी सन्तति को जृम्भकास्त्र जन्म से ही सिद्ध होने का आशीर्वाद प्रदान किया गया है, जो लव और कुश के राम की सन्तति होने में सहायक रहे हैं। इससे चित्रदर्शन का कवि का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन भी सिद्ध हुआ है।

दूसरा प्रयोजन सीता को वनदर्शन तथा गंगा स्नान के दोहद की उत्पत्ति का होना रहा है, जिससे लोकापवाद के कारण उन्हें वन में लक्ष्मण द्वारा छोड़े जाने में भी कवि को सौकर्य रहा है।

सीता– एते खलु तत्कालकृतगोदानमंगलाश्चत्वारो भ्रातरो विवाह–दीक्षिता यूयम्, अहो! जनामि, तस्मिन्नेव प्रदेशे, तस्मिन्नेव काले वर्ते।[1]

रामः–

समयः स वर्तत इवैष यत्र मां
समनन्दयत्सुमुखि गौतमार्पितः।
अयमागृहीतकमनीयकंकण–
स्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः।।18।।

(**अन्वय–** सुमुखि! एषः सः समयः वर्तते इव, यत्र गौतम–अर्पितः आगृहीत–कमनीय–कंकणः अयम् तव करः मूर्तिमान् महोत्सवः इव माम् समनन्दयत्।।18।।)

लक्ष्मणः– इयमार्या। इयमप्यार्या माण्डवी। इयमपि वधुः श्रुतकीर्तिः।

सीता– वत्स, इयमप्यपरा का?[2]

लक्ष्मणः– (सलज्जस्मितम्, अपवार्य) अये, उर्मिलां पृच्छत्यार्या। भवतु । अन्यतः संचारयामि। (प्रकाशम्) आर्य! दृश्यतां द्रष्टव्यमेतत्। अयं च भगवान्भार्गवः।

सीता– (संसभ्रमम्) कम्पितास्मि![3]

रामः– ऋषे! नमस्ते।

लक्ष्मणः– आर्ये! पश्य। अयमार्येण– (इत्यर्धोक्ते)

रामः– (साक्षेपम्) अयि, बहुतरं द्रष्टव्यम्। अन्यतो दर्शय।

सीता– (सस्नेहबहुमानं निर्वर्ण्य) सुष्ठु शोभसे आर्यपुत्र! एतेन विनयमाहात्म्येन।[4]

लक्ष्मणः– एते वयमयोध्यां प्राप्ताः।

रामः– (सास्रम्) स्मरामि हन्त! स्मरामि।

---

1 . एदे क्खु तक्कालकिदगोदाणमंगला चत्तारो भादरो विआह दिक्खिदा तुह्मे! अह्मो! जाणामि तस्सिं जेव्व पदेसे, तस्सिं जेव्व काले वत्तामि।

2 . वच्छ, इअं वि अवरा का?

3 . कम्पिदह्मि !

4 . सुट्ठु सोहसि अ... एदिणा विणअमाहप्पेण।

सीता– ये उसी समय गोदान–संस्कार कराए हुए, विवाह के लिए दीक्षा लिए हुए, आप चारों भाई हैं। अहो! मुझे तो ऐसा लग रहा है कि मैं उसी स्थान और उसी समय में विद्यमान हूँ।

राम– हे सुमुखि! सीते, मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो यह वही समय है, जब कमनीय कंगन से सुशोभित, शतानन्द गौतम द्वारा दिए गए, तुम्हारे हाथ ने मुझे मूर्तिमान् महोत्सव के समान आनन्दित किया था।।18।।

लक्ष्मण– आर्या यह आप हैं और ये आर्या **माण्डवी** हैं तथा यह वस्तुतः वधू **श्रुतकीर्ति** हैं।

सीता– वत्स! और यह दूसरी कौन है?

लक्ष्मण– (लज्जा एवं मुस्कराहटपूर्वक दूसरी ओर मुख करके) अरे! आर्या **उर्मिला** को पूछ रही हैं। ठीक है, दूसरी ओर इनका ध्यान आकर्षित करता हूँ। (स्पष्टरूप से) आर्य! देखिए, यह देखने योग्य है और ये भगवान् भार्गव परशुराम हैं।

सीता– (घबराहट के साथ) मैं तो भय से काँप उठी हूँ।

राम– हे ऋषिवर! आपको प्रणाम है।

लक्ष्मण– आर्ये! देखिए, इन्हें आर्य ने..............

(ऐसा आधा कहने पर बीच में ही)

राम– (निषेध करते हुए) अरे! भाई, अभी बहुत कुछ देखना है, इसलिए कुछ दूसरा दिखाओ।

सीता– (स्नेह एवं सम्मानपूर्वक देखकर) आर्यपुत्र! आप इस विनय के प्रभाव (माहात्म्य) के कारण अत्यधिक सुशोभित हो रहे हैं।

लक्ष्मण– लीजिए, ये हम लोग अयोध्या में आ गए हैं।

राम– (अश्रुपूर्वक) स्मरण कर रहा हूँ, हाय! स्मरण कर रहा हूँ।

सम्पूर्ण उत्तररामचरित नाटक में कवि का मनोविज्ञान विषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है। प्रस्तुत चित्रदर्शन में भी कवि ने राम, सीता एवं लक्ष्मण के मनोविज्ञान को सुन्दर एवं रोचक शैली में अभिव्यक्ति प्रदान की है। साथ ही, महाकवि की चित्रकला आदि के प्रति भी गहन रुचि अभिव्यक्त हुई है।

जीवत्सु तातपादेषु, नूतने दारसंग्रहे।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां, ते हि नो दिवसा गताः।।19।।

(**अन्वय–** तात–पादेषु जीवत्सु, नूतने दार–संग्रहे मातृभिः चिन्त्य–मानानाम्, हि नः ते दिवसाः गताः।।19।।)

इयमपि तदा जानकी–

प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलै–
र्दशनकुसुमैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधती मुखम्।
ललितललितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमै–
रकृत मधुरैरम्बानां मे कुतूहलमंगकैः।।20।।

(**अन्वय–** प्रतनु–विरलैः, प्रान्त–उन्मीलन्–मनोहर–कुन्तलैः, दशन–कुसुमैः, मुग्ध–आलोकम् मुखम् दधती, (इयम्) शिशुः ललित–ललितैः ज्योत्स्ना–प्रायैः कृत्रिम–विभ्रमैः मधुरैः अंगकैः मे अम्बानाम् कुतूहलम् अकृत।।20।।)

लक्ष्मणः– एष मन्थरावृत्तान्तः।

रामः– (सत्वरमन्यतो दर्शयन्) देवि वैदेहि !

इंगुदीपादपः सोऽयं, शृंगवेरपुरे पुरा।
निषादपतिना यत्र, स्निग्धेनासीत्समागमः।।21।।

(**अन्वय–** शृंगवेर–पुरे अयम् सः इंगुदी–पादपः, यत्र पुरा स्निग्धेन निषाद–पतिना समागमः आसीत्।।21।।)

लक्ष्मणः– (विहस्य, स्वगतम्) अये। मध्यमाम्बावृत्तान्तोऽन्तरित आर्येण।

सीता– अहो, एष जटासंयमनवृत्तान्तः?[1]

लक्ष्मणः–

पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद् वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम्।
धृतं बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यकव्रतम्।।22।।

(**अन्वय–** पुत्र–संक्रान्त–लक्ष्मीकैः, वृद्ध–इक्ष्वाकुभिः यत् धृतम्, तत् पुण्यम् आरण्यक–व्रतम् आर्येण बाल्ये धृतम्।।22।।)

[1]. अह्मो, एषो जडासंजमणवुत्तन्तो?

जब पिताश्री जीवित थे और हमारा नया–नया विवाह हुआ था, माताएँ सभी प्रकार से हमारी चिन्ता करती थीं, हाय! आज हमारे वे सुखमय दिन व्यतीत हो गए हैं।।19।।

और उस समय यह जानकी भी,

अत्यन्त छोटे और विरल पुष्पों की कलिकाओं के समान, कमनीय दाँतों तथा कपोलों के प्रान्तभाग तक फैले हुए, सुन्दर केशों से युक्त, मनोरम मुख को धारण करती हुईं, अल्प आयु वाली, अत्यधिक सुन्दर चन्द्रिका के समान गौरवर्ण, स्वाभाविक हावभावों से युक्त, शिशुरूप वाली, अपने मधुर अंगों से मेरे तथा माताओं के कौतूहल को बढ़ाया करती थी।।20।।

लक्ष्मण– यह मन्थरा का वृत्तान्त है।

राम– (शीघ्र ही दूसरी ओर दिखाते हुए) हे देवि! वैदेहि!

शृंगवेरपुर में यह वही 'इंगुदी' का वृक्ष है, जहाँ पर पहले परम स्नेही निषादराज गुह के साथ हमारा परिचय हुआ था।।21।।

लक्ष्मण– (हँसकर, मन में) अरे! आर्य ने मंझली माता कैकयी के वृत्तान्त को छोड़ दिया है।

सीता– अहो! यह जटा धारण करने की घटना है।

लक्ष्मण– पुत्रों को राज्य का भार सौंपकर, इक्ष्वाकु वंश के वृद्ध राजागण, जिस वनवास के व्रत को धारण करते थे, उस पुण्य व्रत को आर्य द्वारा बाल्यकाल में ही धारण कर लिया गया था।।22।।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में पूर्णतया निश्चिन्त अपने बाल्यकाल का अत्यधिक महत्त्व है, जिसकी ओर कवि ने संकेत किया है।

उपर्युक्त श्लोक में कवि ने प्राचीन भारतीय संस्कृति के सुन्दर चित्र को प्रस्तुत किया है, जिसमें वृद्ध होने के बाद, घर के बड़े व्यक्ति के वन में जाकर निवास करने की बात कही गयी है। कवि का संस्कृति–प्रेम तथा राष्ट्रीय भावना भी अभिव्यक्त हुई है।

सीता– एषा प्रसन्नपुण्यसलिला भगवती भागीरथी।[1]

रामः– रघुकुलदेवते! नमस्ते।

तुरगविचयव्यग्रानुर्वीभिदः सगराध्वरे,
कपिलमहसा रोषात्प्लुष्टान्पितुश्च पितामहान्
अगणिततनूतापस्तपत्वा तपांसि भगीरथो,
भगवति! तव स्पृष्टानद्भिश्चिरादुदतीतरत्।।23।।

(**अन्वय–** भगवति! भगीरथः अगणित–तनू–तापः तपत्वा तपांसि तव अद्भिः स्पृष्टान् सगर–अध्वरे तुरग–विचय–व्यग्रान् उर्वी–भिदः कपिल–महसा रोषात् प्लुष्टान् पितुः च पितामहान् चिरात् उदतीतरत्।।23।।)

स त्वमम्ब! स्नुषायामरुन्धतीव सीतायां शिवानुध्याना भव।

लक्ष्मणः– एष भरद्वाजवेदितश्चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि वनस्पतिः कालिन्दीतटे वटः श्यामो नाम।

(रामः सस्पृहमवलोकयति)

सीता– स्मरति वा तं प्रदेशमार्यपुत्रः?[2]

रामः– अयि, कथं विस्मर्यते?

अलसललितमुग्धान्यध्वसम्पातखेदा–
दशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि।
परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यंगकानि,
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता।।24।।

(**अन्वय**–यत्र त्वम् अध्व–सम्पात–खेदात् अलस–ललित–मुग्धानि अशिथिल–परिरम्भैः, दत्त–संवाहनानि, परि–मृदित–मृणाली–दुर्बलानि अंगकानि, मम उरसि कृत्वा निद्राम् अवाप्ता।।24।।)

(रामः सस्पृहवलोकयति)

लक्ष्मणः– एष विन्ध्याटवीमुखे विराधसंवादः।

---

[1]. एसा पसण्णपुण्णसलिला भअवदो भाईरही।

[2]. सुमरेदि वा तं पदेसं अज्जउत्तो ?

सीता– ये निर्मल एवं पवित्र जल वाली, भगवती भागीरथी हैं।

राम– हे रघुकुल की देवि! आपको प्रणाम है,

हे भगवति गंगे! राजा भगीरथ ने अपने शरीर के अनेक कष्टों की परवाह न करके घोर तप करते हुए, सगर के यज्ञ के घोड़े को खोजने में व्याकुल, भूमि को खोदने वाले, महर्षि कपिल के क्रोध की अग्नि से दग्ध हुए, हमारे पिता के भी पितामह राजा सगर के पुत्रों का, आपके पवित्र जलों के सम्पर्क से दीर्घकाल के बाद उद्धार कर दिया था।।23।।

हे माता! वह तुम, वधू सीता के लिए अरुन्धती के समान, हमेशा ही कल्याणों को प्रदान करने वाली होना।

लक्ष्मण– चित्रकूट को जाने वाले मार्ग में यमुना के तट पर स्थित यह, भारद्वाज ऋषि द्वारा बताया गया श्याम नामक वटवृक्ष है।

(राम स्पृहापूर्वक देखते हैं)

सीता– क्या आर्यपुत्र उस स्थान का स्मरण कर रहे हैं?

राम– अरि! उसे भला कैसे भुलाया जा सकता है?

जहाँ पर तुम मार्ग में चलने की थकान से आलस्य युक्त, कोमल और मनोहर, दृढ़ आलिंगन में कसे हुए, मर्दित कमलनाल के समान, अपने दुर्बल अंगों को मेरे वक्षःस्थल पर रखकर सो गयी थीं।।24।।

(राम स्पृहापूर्वक देखते हैं)

लक्ष्मण– यह विन्ध्याटवी के मुहाने पर राक्षस विराध के संवाद का दृश्य है।

भगवती भागीरथी का विशेषरूप से संकेत कवि द्वारा विशेष प्रयोजन वश किया गया है, क्योंकि सीता के परित्याग के बाद भगवती गंगा ही उसके जीवन की रक्षा करती हैं तथा उसके प्रवाह में ही सीता प्रसव द्वारा दो जुडवाँ पुत्रों कुश तथा लव को जन्म देती है। नायक राम द्वारा कल्याणों को प्रदान करने विषयक आशीर्वाद की बात भी उसी से जुड़ी हुई है। व्यंजना से यहाँ कवि द्वारा उसी सम्पूर्ण भावी घटना की ओर संकेत किया गया है। कवि की व्यंजनाप्रधान शैली दर्शनीय है।

सीता– अलं तावदेतेन! पश्यामि तावदार्यपुत्रस्वहस्तधृतताल वृतान्तपत्रमात्मनोऽत्याहितं दक्षिणारण्यपथिकत्वम्।[1]

रामः–

एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेषु,
वैखानसाश्रिततरूणि तपोवनानि।
येष्वातिथेयपरमा यमिनो भजन्ते,
नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि।।25।।

(**अन्वय–** गिरि–निर्झरिणी–तटेषु वैखानस–आश्रित–तरूणि एतानि तानि तपोवनानि (सन्ति), येषु आतिथेय–परमाः नीवार–मुष्टि–पचनाः यमिनः गृहिणः गृहाणि भजन्ते।।25।।)

लक्ष्मणः– अयमविरलानोकहनिवहनिरन्तरस्निग्धनीलपरिसरारण्य–परिणद्धगोदावरीमुखरकन्दरः संततमभिष्यन्दमानमेघमेदुरितनीलिमा जन–स्थानमध्यगो गिरिः प्रस्रवणो नाम।

रामः–

स्मरसि सुतनु! तस्मिन्पर्वते लक्ष्मणेन,
प्रतिविहितसपर्यासुथस्योस्तान्यहानि?
स्मरसि सरसनीरां तत्र गोदावरीं वा,
स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि।।26।।

(**अन्वय–** सुतनु! तस्मिन् पर्वते लक्ष्मणेन प्रतिविहित–सपर्या–सुथस्योः तानि अहानि स्मरसि? वा तत्र सरस–नीराम् गोदावरीम् च तत् उपान्तेषु आवयोः वर्तनानि स्मरसि?।।26।।)

किं च–

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा–
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो–
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्।।27।।

---

[1]. अलं दाव एदिणा! पेक्खम्मि दाव अज्जउत्त सहत्तधरिदतालवुन्तादवत्तं अत्तणो अच्चाहिदं दक्खिणारण्णपहिअत्तणम्।

सीता– इसे दिखाने से रहने दो। मैं तो तब तक दक्षिणारण्य के यात्रा–प्रसंग को देख रही हूँ, जहाँ पर आर्यपुत्र ने अपनी कोई चिन्ता न करके, छत्र की भाँति अपने हाथ में ताड़ के पत्र को धारण किया था।

राम– पर्वतीय नदियों के किनारों पर स्थित, वानप्रस्थियों द्वारा सेवन किए जाते हुए वृक्षों वाले, ये वे तपोवन हैं, जिनमें अतिथि–सत्कार में निपुण, कुछ ही मुट्ठी निवार को पकाकर, संयमी गृहस्थ घरों में निवास करते हैं।।25।।

लक्ष्मण– यह घने वृक्षों की पंक्तियों से निरन्तर स्निग्ध एवं श्याम वर्ण वाले वन के भागों से युक्त, गोदावरी की तरंगों के टकराने के कारण मुखरित गुफाओं वाला और निरन्तर बरसने वाले मेघों के कारण और भी अधिक नीलिमा को धारण करने वाला, जनस्थान के मध्य भाग में स्थित 'प्रस्रवण' नाम का पर्वत है।

राम– हे सुन्दरि! क्या तुम उस 'प्रस्रवण' पर्वत में लक्ष्मण द्वारा की गयी, सेवा से प्रसन्न हम दोनों के उन सुखमय दिनों का, निर्मल जल से युक्त गोदावरी नदी का एवं उसके किनारे किए गए हमारे विहारों का स्मरण कर रही हो?।।26।।

और भी

जहाँ पर अत्यधिक अनुराग के सम्बन्ध से, कपोलों को पास–पास सटाकर, बिना क्रम के कुछ–कुछ बातें करते हुए, परस्पर एक दूसरे की भुजाओं के दृढ़ आलिंगन में बँधकर, बिना पता चले ही व्यतीत होने वाली, अनेक प्रहरों वाली रात्रि बीत जाया करती थी।।27।।

महाकवि का प्रकृति विषयक गहन प्रेम अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि उन्होंने चित्रदर्शन प्रसंग में भी अपने लिए इस अवसर को खोज लिया है। लक्ष्मण का सेवाभाव भी प्रदर्शित किया गया है। इसके अतिरिक्त कवि द्वारा पवित्र दाम्पत्य–प्रेम का सुन्दर एवं मनभावन चित्र भी प्रस्तुत किया गया है।

(**अन्वय**– आसत्ति–योगात् किम्–अपि, अविरलित–कपोलम् किम्–अपि, मन्दम्–मन्दम् अक्रमेण जल्पतोः अशिथिल–परिरम्भ–व्यापृत–एक–एकदोष्णोः अविदित–गत–यामा–रात्रिः एव व्यरंसीत्।।27।।)

लक्ष्मणः– एष पंचवट्यां शूर्पणखाविवादः।

सीता– हा आर्यपुत्र। एतावृत्ते दर्शनम्?[1]

रामः– अयि वियोगत्रस्ते? चित्रमेतत्।

सीता– यथा तथा भवतु, दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति।[2]

रामः– हन्त, वर्तमान इव मे जनस्थानवृत्तान्तः प्रतिभाति।

लक्ष्मणः–

अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना,
तथा वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि।
जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै–
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।।28।।

(**अन्वय**– अथ पापैः रक्षोभिः कनक–हरिण–च्छद्म–विधिना इदम् तथा वृत्तम् यथा क्षालितम् अपि व्यथयति। शून्ये जनस्थाने विकल–करणैः आर्य–चरितैः अपि ग्रावा रोदिति, वज्रस्य अपि हृदयम् दलति।28)

सीता– (सास्रमात्मगतम्) अहो, दिनकरकुलानन्दन एवमपि मम कारणात् क्लान्त आसीत्![3]

लक्ष्मणः– (रामं निर्वर्ण्य साकूतम्) आर्य! किमेतत्?

अयं तावद्बाष्पस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो,
विसर्पन्धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः।
निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटया,
परेषामुन्नेयो भवति चिरमाध्मातहृदयः।।29।।

(**अन्वय**– तावत् धाराभिः विसर्पन् जर्जर–कणः, अयम् बाष्पः त्रुटितः मुक्ता–मणि–सरः इव धरणीम् लुठति, चिरम् आध्मात–हृदयः आवेगः निरुद्धः अपि स्फुरत्–अधर–नासा–पुटया, परेषाम् उन्नेयः भवति।।29।।)

---

1 . हा अज्जउत! एत्तिअ दे दंसणम्?

2 . जहा तहा होदु। दुज्जणो असुहं उप्पादेइ।

3 . अह्मो, दिणअरकुलाणन्दणो एव्वंवि मह कालणादो किलन्तो आसि!

लक्ष्मण– यह पंचवटी में सूर्पनखा–विवाद का दृश्य है।

सीता– हाय! आर्यपुत्र, बस यहीं तक आपका दर्शन था।

राम– अरी, विरह से डरने वाली! यह तो चित्र है।

सीता– चाहे जो भी हो, दुर्जन तो अनिष्ट उत्पन्न करता ही है।

राम– हाय! जनस्थान का वृत्तान्त मुझे प्रत्यक्ष सा प्रतीत हो रहा है।

लक्ष्मण– **इसके बाद, उन पापी राक्षसों ने सोने के हरिण के छल से ऐसा दुष्कर्म किया, जो उसप्रकार से प्रतिकार किए जाने पर भी, (हमें आज भी) पीड़ित कर रहा है। उस सुनसान जनस्थान में विकल इन्द्रियों वाले, आर्य के चरितों से मूर्च्छा आदि व्यापारों द्वारा, एक बार तो पत्थर भी रो उठता है और वज्र का हृदय भी टुकड़े–टुकड़े हो जाता है।।28।।**

सीता– (अश्रुपूर्वक मन में) ओह! सूर्यवंश को आनन्द प्रदान करने वाले, आर्यपुत्र मेरे कारण इसप्रकार दुःखी हुए थे?

लक्ष्मण– (राम को देखकर, साभिप्राय) आर्य! यह क्या है?

टूटी हुई मोतियों वाली लड़ी के समान, अनेक धाराओं में बिखरी हुई बूँदों वाला, आपका यह अश्रुप्रवाह पृथ्वी पर फैल रहा है, लम्बे समय तक आपके हृदय को परिपूर्ण करने वाला, यह आवेग, रोके जाने पर भी, फड़कते हुए ओठों एवं नासिका के नथुनों से ही दूसरों के लिए अनुमान के योग्य हो रहा है।।29।।

श्लोक 28– महाकवि भवभूति का करुणरस अन्य अनेक श्लोकों के साथ–साथ प्रस्तुत श्लोक के कारण भी विशेषरूप से प्रसिद्ध हुआ, क्योंकि अनेक कवियों ने इसके भाव को ग्रहण करके ही उनके करुण की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। वस्तुतः पत्थर दिल या वज्र के समान कठोर व्यक्ति को भी रुलाने की सामर्थ्य भवभूति को छोड़कर, अन्य किसी कवि में न तो आज तक हो पायी है और न ही भविष्य में होने की कोई सम्भावना है। व्यक्ति के आन्तरिक भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने में भी महाकवि का कोई सानी नहीं है।

रामः— वत्स!

तत्कालं प्रियजनविप्रयोगजन्मा
तीव्रोऽपि प्रतिकृतिवांछया विसोढः।
दुःखाग्निर्मनसि पुनर्विपच्यमानो,
हृन्मर्मव्रण इव वेदनां तनोति।।30।।

(**अन्वय**— प्रिय–जन–विप्रयोग–जन्मा तीव्रः अपि प्रति–कृति–वांछया तत्कालम् विसोढः, दुःख–अग्निः पुनः मनसि विपच्यमानः (सन्) हृद्–मर्म–व्रणः इव वेदनाम् तनोति।।30।।)

सीता— हा धिक्! अहमप्यतिभूमिं गतेन रणरणकेनार्यपुत्रशून्य-मिवात्मानं पश्यामि।[1]

लक्ष्मणः— (स्वगतम्) भवतु, आक्षिपामि। (चित्रं विलोक्य प्रकाशम्) अथैतन्मन्वन्तरपुराणस्य तत्रभवतस्तातजटायुषश्चरित्रविक्रमोदाहरणम्।

सीता— हा तात ! निर्व्यूढस्तेऽपत्यस्नेहः।[2]

रामः— हा तात काश्यप शकुन्तराज! क्व न खलु पुनस्त्वादृशस्य महतस्तीर्थभूतस्य साधोः सम्भवः?

लक्ष्मणः— अयमसौ जनस्थानस्य पश्चिमतः कुंजवान्नाम (पर्वतो) दनुकबन्धाधिष्ठितो दण्डकारण्यभागः। तदिदममुष्य परिसरे मतंगाश्रम-पदम्। तत्र श्रमणा नाम सिद्धा शबरतापसी। तदेतत्पम्पाभिधानं पद्मसरः।

सीता— यत्र किलार्यपुत्रेण विच्छिन्नामर्षधीरत्वं प्रमुक्तकण्ठं प्ररुदितमासीत्।[3]

रामः— देवि! परं रमणीयमेतत्सरः।

एतस्मिन्मदकलमल्लिकाक्षपक्ष–
व्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः।
बाष्पाम्भः परिपतनोद्गमान्तराले,
संदृष्टाः कुवलयिनो मया विभागाः।।31।।

(**अन्वय**— एतस्मिन् मद–कल–मल्लिकाक्ष–पक्ष–व्याधूत–स्फुरत्–उरु–दण्ड–पुण्डरीकाः कुवलयिनः विभागाः मया बाष्प–अम्भः परिपतन–उद्गम–अन्तराले संदृष्टाः ।।31।।)

1. हद्धी हद्धी। अहंवि अदिभूमिं गदेण रणरणएण उज्जउत्तसुण्णं विअ अत्ताणं पेक्खामि।
2. हा ताद् णिव्वूढो दे अवच्चसिणेहो।
3. जत्थ किल अज्जउत्तेण विच्छिण्णामरिसधीरत्तणं पमुक्ककण्ठं परुण्णं आस।

राम— वत्स!

प्रियजन के वियोग से उत्पन्न, दुःख की अग्नि को रावण से बदला लेने की इच्छा से, उस समय तो मैंने जैसे–तैसे सहन कर लिया, किन्तु आज वही दाह, हृदय के मर्मस्थल में पके हुए फोड़े के समान मेरी असह्य पीड़ा को बढ़ा रहा है।।30।।

सीता— हाय! धिक्कार है, धिक्कार है। मैं भी सीमा का अति-क्रमण करने वाली, अतिशय उत्कण्ठा के कारण, अपने को आर्यपुत्र से रहित के समान देख रही हूँ।

लक्ष्मण— (मन में) ठीक है, तब तो मैं इनका ध्यान दूसरी ओर आकृष्ट करता हूँ। (चित्र को देखकर, स्पष्टरूप से) इसके बाद, अब मन्वन्तर से भी प्राचीन आदरणीय जटायु के चरित्र और पराक्रम का उदाहरण देखिए।

सीता— हा तात! आपका सन्तान–स्नेह सफल हुआ।

राम— हा तात! **काश्यप,** पक्षिराज! आपके समान महान्, तीर्थ के समान पवित्र आत्मा वाले, सज्जन की उत्पत्ति भला कहाँ सम्भव है?

लक्ष्मण— जनस्थान की पश्चिम दिशा में यह 'कुँजवान्' नामक पर्वत है और वहीं पर **'दनुकबन्ध'** द्वारा अधिष्ठित दण्डकारण्य का भाग है एवं इसी के पास में यह **'मतंग'** ऋषि का आश्रम है। वहीं पर यह **'श्रमणा'** नाम वाली सिद्ध शबर–तापसी है तथा वह, यह **'पम्पा'** नाम का कमलों का सरोवर है।

सीता— जहाँ पर आर्यपुत्र स्वाभाविक धैर्य का परित्याग करके, रावण के प्रति क्रोध के कारण गला फाड़कर (मुक्तकण्ठ) रोए थे।

राम— हे देवि! यह सरोवर अत्यन्त सुन्दर है,

इसमें मद के कारण, अव्यक्त तथा मधुर कूजन करने वाले, मल्लिकाक्ष नामक हंसों द्वारा कँपाए जाते हुए, सुशोभित नाल वाले, श्वेत कमलों से युक्त, नीलकमलों से परिपूर्ण प्रदेशों को मैंने आँसुओं के गिरने तथा उमड़ने के अन्तराल में देखा था।।31।।

श्लोक 30— महाकवि की उपमाओं में मौलिकता का गुण विद्यमान रहा है, उपमानों के चयन में उनकी सूक्ष्म और पारखी दृष्टि विशेषरूप से प्रभावी रही है। हृदय की पीड़ा की मार्मिक अभिव्यक्ति मर्मस्थल में फोड़े के उपमान द्वारा अत्यन्त प्रभावी रही है।

लक्ष्मणः– अयमार्यो हनूमान्।

सीता– एष स चिरनिर्व्यूढजीवलोकप्रत्युद्धरणगुरूपकारी महानुभावो मारुतिः।[1]

रामः–

दिष्ट्या सोऽयं महाबाहुरंजनानन्दवर्धनः।
यस्य वीर्येण कृतिनो, वयं च भुवनानि च ।।32।।

(**अन्वय–** दिष्ट्या अयम् सः महाबाहुः अंजना–आनन्दवर्धनः, यस्य वीर्येण भुवनानि च, वयम् च कृतिनः।।32।।)

सीता– वत्स! एष स कुसुमितकदम्बताण्डवितबर्हिणः किन्नामधेयो गिरिः? तत्रानुभाव सौभाग्यमात्रपरिशेषसुन्दरश्रीर्मूर्च्छस्त्वया प्ररुदितेनाव–लम्बितस्तरुतले आर्यपुत्रः आलिखितः?[2]

लक्ष्मणः–

सोऽयं शैलः ककुभसुरभिर्माल्यवान्नाम यस्मि–
न्नीलः स्निग्धः श्रयति शिखरं नूतनस्तोयवाहः।
आर्येणास्मिन् ....

रामः– .... **विरम विरमातः परं न क्षमोऽस्मि,**
प्रत्यावृत्तः स पुनरिव मे जानकीविप्रयोगः।।33।।

(**अन्वय–** ककुभ–सुरभिः माल्यवान् नाम अयम् सः शैलः, यस्मिन् नीलः स्निग्धः, नूतनः तोय–वाहः, शिखरम् श्रयति, आर्येण अस्मिन्.... विरम, विरम, अतः परम् न क्षमः अस्मि, मे सः जानकी–विप्रयोगः पुनः प्रत्यावृत्तः इव।।33।।)

लक्ष्मणः– अतः परमार्यस्य तत्रभवतां राक्षसानां चापरिसंख्यान्युत्त–रोत्तराणि कर्माश्चर्याणि। परिश्रान्ता चेयमार्या। तद्विज्ञापयामि 'विश्राम्य–तामि' ति।

सीता– आर्यपुत्र! एतेन चित्रदर्शनेन प्रत्युत्पन्नदोहदाया मम विज्ञापनीयमस्ति।[1]

---

1. एसो सो चिरणिव्वूढजीवलोअपच्चुद्धरणगुरुओवआरी महानु भावो मारुदी।
2. वच्छ! एसो सो कुसुमिदकदम्बाताण्डविअबंहिणो किंणा महेओ गिरि? जत्थ अणुभावसोहग्गमेत्तपरिसेससुन्दरसिरी मुच्छन्दो तुए परुण्णेण ओलम्बिओ तरुअले अज्जउत्तो आलिहिदो ?

लक्ष्मण– ये आर्य हनुमान् हैं।

सीता– ये चिरकाल से किए गए, जीवलोक के प्रत्युपकार से गौरवान्वित महान् उपकारी तथा प्रभावशाली वे पवनपुत्र हनुमान् हैं।

राम– सौभाग्य से ये वे ही विशाल भुजाओं वाले, माता अंजना के आनन्द को बढ़ाने वाले, हनुमान् हैं, जिनके पराक्रम से सभी लोक तथा हम कृतार्थ हुए हैं।।32।।

सीता– वत्स! खिले हुए कदम्ब के वृक्षों पर ताण्डव नृत्य करने वाले, मोरों से युक्त, इस पर्वत का क्या नाम है? जहाँ पर वृक्ष के नीचे अत्यधिक रोते हुए, तुम्हारे द्वारा सम्भाले गए, प्रभाव के सौभाग्यमात्र से अवशिष्ट शोभा से सुन्दर और मूर्च्छित हुए आर्यपुत्र को चित्रित किया गया है।

लक्ष्मण– अर्जुन के पुष्पों से सुगन्धित, यह वही 'माल्यवान्' पर्वत है, जिसकी चोटी पर श्यामल, स्निग्ध और नूतन मेघ विश्राम कर रहा है। आर्य ने इस पर......

राम– बस करो, बस करो, इससे अधिक सुनने व देखने में मैं समर्थ नहीं हूँ। (मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि) **जानकी का यह विरह फिर से लौट आया हो।।33।।**

लक्ष्मण– इसके पश्चात् आदरणीय आर्य तथा राक्षसों के अगणित तथा उत्तरोत्तर आश्चर्यों से युक्त कार्यों को चित्रित किया गया है। अब आप थक गयी हैं, इसलिए मैं निवेदन करता हूँ कि अब आप विश्राम कीजिए।

सीता– आर्यपुत्र! इस चित्रदर्शन से उत्पन्न हुई दोहदरूप इच्छा के कारण मुझे कुछ निवेदन करना है।

महाकवि स्त्री–मनोविज्ञान से सुपरिचित रहे हैं, क्योंकि कोई भी स्त्री अपने पति के अपने प्रति प्रेम को देखकर अत्यधिक प्रसन्न होती है, यहाँ राम को प्रिया सीता के वियोग में रोते तथा मूर्च्छित होते चित्रित किया है, जिसमें सीता ने पर्वत का नाम पूछने के बहाने अपनी रुचि प्रदर्शित की है।

---

1. अज्जउत्त! एदिणा चित्तदंसणेण पच्चुप्पण्णदोहलाए मए विण्णावणिज्जं अत्थि।

रामः– नन्वाज्ञापय।

सीता– जाने पुनरपि प्रसन्नगम्भीरासु वनराजिषु विहृत्य पवित्र–निर्मलशिशिरसलिलां भगवतीं भागीरथीमवगाहिष्य इति।[1]

रामः– वत्स लक्ष्मण।

लक्ष्मणः– एषोऽस्मि।

रामः– वत्स! 'अचिरादेव संपादनीयो दोहद' इति संप्रत्येव गुरुभिः संदिष्टम् तदस्खलितसंपातं रथमुपस्थापय।

सीता– आर्यपुत्र! युष्माभिरप्यागन्तव्यम्।[2]

रामः– अयि! कठिनहृदये! एतदपि वक्तव्यम् ?

सीता– तेन हि प्रियं मे।[3]

लक्ष्मणः– यदाज्ञापयत्यार्यः। (इति निष्क्रान्तः)

रामः– प्रिये! वातायनोपकण्ठे संविष्टा भव।

सीता– एवं भवतु। अपहृतास्मि परिश्रमनिद्रया।[4]

रामः– तेन हि निरन्तरमवलम्बस्व मामत्र शयनाय।

जीवयन्निव ससाध्वसश्रम–
स्वेदबिन्दुरधिकण्ठमर्प्यताम्।
बाहुरैन्दवमयूखचुम्बित–
स्यन्दिचन्द्रमणिहारविभ्रमः।।34।।

(**अन्वय**– ससाध्वस–श्रम–स्वेद–बिन्दुः, ऐन्दव–मयूख–चुम्बित–स्यन्दि–चन्द्र–मणि–हार–विभ्रमः जीवयन् इव बाहुः अधि–कण्ठम् अर्प्यताम्।।34।।)

(तथा कारयन् सानन्दम्)

प्रिये! किमेतत्?

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा,
प्रमोहो? निद्रा वा? किमु विषविसर्पः? किमु मदः?

---

1. जाणे पुणोवि पसण्णगम्भीरासु वणराईसु विहरिअ पवित्तणिम्मलसिसिरसलिलं भअवदिं भाईरहिं ओगाहिस्संति।

2. अज्जउत्त? तुह्मेहिं वि आअन्दव्वम्।

3. तेण हि पिअं मे।

4. एव्वं होदु। ओहरिदह्मि परिस्समणिद्दाए।

राम– निश्चय ही, देवी आज्ञा देवें।

सीता– मैं एक बार फिर से प्रसन्न और गहन वन पंक्तियों में विहार करके, पवित्र, निर्मल और शीतल जल वाली गंगा में स्नान करना चाहती हूँ।

राम– वत्स! लक्ष्मण।

लक्ष्मण– यह मैं उपस्थित हूँ।

राम– वत्स! 'गर्भिणी की इच्छा को अविलम्ब पूरा किया जाना चाहिए,' यह अभी–अभी गुरुजनों ने सन्देश भेजा है। इसलिए बिना हिचकोले वाले रथ को उपस्थित करो।

सीता– आर्यपुत्र! आपको भी आना चाहिए।

राम– हे कठोर हृदये! क्या यह भी कहने की बात है?

सीता– तब तो मेरे लिए अत्यन्त प्रिय है।

लक्ष्मण– आर्य जो आज्ञा देते हैं।

(ऐसा कहकर निकल जाता है)

राम– प्रिये! वातायन के पास में बैठ जाओ।

सीता–ऐसा ही करती हूँ। थकान के कारण मैं निद्रा से आकृष्ट हो रही हूँ।

राम– तब तो यहाँ शयन करने के लिए प्रगाढ़रूप से मेरा सहारा ले लो।

घबराहट तथा थकान के कारण, पसीने की बूँदों से युक्त, चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से प्रवाहित होने वाली, चन्द्रकान्त मणियों के हार की शोभा को धारण करने वाले, मुझे जीवन सा प्रदान करने वाले, अपनी इस भुजा को मेरे गले में डाल लो।।34।।

(वैसा करते हुए आनन्दपूर्वक)

प्रिये! यह क्या है?

तुम्हारे प्रत्येक स्पर्श में मेरी सभी इन्द्रियाँ मोहित सी हो रही हैं और कोई विकार मेरी चेतना को कभी भ्रान्त तो कभी प्रकाशित कर रहा है। इसलिए वस्तुतः मैं यह निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि यह

तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो,
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च सम्मीलयति च।।35।।

(**अन्वय**– तव स्पर्शे स्पर्शे परिमूढ़–इन्द्रिय–गणः विकारः मम चैतन्यम् भ्रमयति, सम्मीलयति च, हि विनिश्चेतुम् न शक्यः सुखम् इति वा, दुःखम् इति वा, प्रमोहः, निद्रा वा, विष–विसर्पः किमु? च मदः किमु? (इति)।।35।।)

सीता– धीरप्रसादा यूयम्, इत इदानीं किमपरम्?[1]

रामः–

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि,
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि!
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि।।36।।

(**अन्वय**– सरोरुहाक्षि! ते एतानि सुवचनानि म्लानस्य जीव–कुसुमस्य विकासनानि, सन्तर्पणानि सकल–इन्द्रिय–मोहनानि कर्ण–अमृतानि मनसः च रसायनानि।।36।।)

सीता– प्रियंवद! एहि। संविशावः।[2]

(इति शयनाय समन्ततोऽपि निरूपयति)

रामः– अयि! किमन्वेष्टव्यम्?

आविवाहसमयाद् गृहे वने, शैशवे तदनु यौवने पुनः।
स्वापहेतुरनुपाश्रितोऽन्यया, रामबाहुरुपधानमेष ते ।।37।।

(**अन्वय**–आविवाह–समयात् शैशवे गृहे, तद्–अनु पुनः यौवने वने, स्वाप–हेतुः अन्यया अनुपाश्रितः, एषः राम–बाहुः ते उपधानम्।।37।।)

सीता– (निद्रां नाटयन्ती) अस्त्येतत् आर्यपुत्र! अस्त्येतत्।[3]

(इति स्वपिति)

रामः– कथं प्रियवचनैव मे वक्षसि प्रसुप्ता? (निवर्ण्य सस्नेहम्)

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो–
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः,
किमस्या न प्रेयो? यदि परमसह्यस्तु विरहः।।38।।

---

1. धीरप्पसादा तुह्मेत्ति, इदो दाणि किमवरं!
2. पिअंवद। एहि। संविसह्म।
3. अत्थि एदम्। अज्जउत्त! अत्थि एदम्।

सुख है या दुःख है? मोह है? या विष का प्रभाव है? या फिर कोई मद है?।।35।।

सीता– आप मेरे ऊपर स्थिर अनुग्रह करने वाले हैं, इसलिए आपके इस कथन में क्या आश्चर्य है?

राम– हे कमल के समान नेत्रों वाली! तुम्हारे ये मधुर वचन, मुरझाए हुए जीवनरूपी पुष्प को विकसित तथा पूर्णरूप से तृप्त करने वाले, सभी इन्द्रियों को सम्मोहित करने वाले, कानों के लिए अमृत के समान एवं मन के लिए रसायन के तुल्य हैं।।36।।

सीता– हे मधुरभाषिन्! आइए विश्राम करते हैं।

(ऐसा कहकर शयन करने के लिए चारों ओर देखती है)

राम– अरे! क्या खोज रही हो?

विवाह के समय से लेकर कुमारावस्था में घर में, उसके बाद फिर यौवनकाल में, तदनन्तर वन में शयन का प्रधान उपकरण और अन्य किसी स्त्री द्वारा सेवन न की गयी, राम की यह भुजा ही तुम्हारा तकिया है।।37।।

सीता– (निद्रा का अभिनय करती हुई) ऐसा ही है, आर्यपुत्र! ऐसा ही है।

राम– क्या प्रियभाषिणी मेरे वक्षःस्थल पर ही सो गयी?

(देखकर प्रेमपूर्वक)

यह मेरे घर में लक्ष्मी है, नेत्रों के लिए अमृत की शलाका है, इसका स्पर्श शरीर में घने चन्दनरस का लेप है एवं यह भुजा कण्ठ में शीतल तथा स्निग्ध मोतियों के हार के समान है। अधिक क्या कहा जाए, इसकी कौन सी वस्तु प्रिय नहीं है? (अर्थात् सभी प्रिय हैं,) **किन्तु इसका विरह तो सर्वथा असह्य ही है।।38।।**

महाकवि दाम्पत्य–प्रेम के भी सुन्दर चितेरे हैं। यहाँ पर उनकी इसी काव्य प्रतिभा का प्रदर्शन हुआ है। धर्मपत्नी को घर की लक्ष्मी, नेत्रों के लिए अमृत के समान आनन्द प्रदान करने वाली तथा उसके शरीर के स्पर्श में घने चन्दन रस की मनमोहक एवं वास्तविक कल्पना केवल महाकवि भवभूति ही कर सकते हैं।

(**अन्वय–** इयम् गेहे लक्ष्मीः, इयम् नयनयोः अमृत–वर्तिः, अस्याः असौ स्पर्शः, वपुषि बहुलः चन्दन–रसः, अयम् बाहुः कण्ठे शिशिर–मसृणः मौक्तिक–सरः, अस्याः किम् न प्रेयः? यदि परम् असह्यः तु विरहः।।38।।)

(प्रविश्य)

प्रतीहारी– देव उपस्थितः।[1]

रामः– अयि, कः?

प्रतीहारी– आसन्नपरिचारको देवस्य दुर्मुखः![2]

रामः– (स्वगतम्) शुद्धान्तचारी दुर्मुखः, स मया पौरजानपदेष्वपसर्पः प्रहितः। (प्रकाशम्) आगच्छतु।

(प्रतीहारी निष्क्रान्ता)

दुर्मुखः– (स्वगतम्) हा कथमिदानीं देवीमन्तरेणेदृशमचिन्तनीय जनापवादं देवस्य कथयिष्यामि? अथवा नियोगः खलु मम मन्दभाग–धेयस्यैष।[3]

सीता– (उत्स्वप्नायते) आर्यपुत्र! कुत्रासि?[4]

रामः– सेयमेव रणरणकदायिनी चित्रदर्शनाद्विरहभावना देव्याः स्वप्नोद्योगं करोति। (सस्नेहमंगमस्याः परामृशन्)

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्वस्थासु य–
द्विश्रामो हृदयस्य यत्र, जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते[5]।।39।।

(**अन्वय–**यत् सुख–दुःखयोः अद्वैतम्, सर्वासु अवस्थासु अनुगतम्, यत्र हृदयस्य विश्रामः,यस्मिन् रसः जरसा अहार्यः, यत् कालेन आवरण–अत्ययात् परिणते प्रेमसारे स्थितम्, तस्य सुमानुषस्य तत् एकम् भद्रम्, कथम् अपि हि प्राथ्यते।।39।।)

(प्रविश्य)

---

[1]. देवि! उवट्ठिहो।

[2]. आसण्णपरिआरओ देवस्य दुम्महो।

[3]. हा कह दाणिं देवोमन्तरेण ईरिसं अचिन्तणिज्ज जणाववादं देव्वस्स कहइस्सं? अह्वा णिओओ क्खु मह मन्दभअहेअस्स एसो।

[4]. अज्जउत्त! कहिंसि?

[5].पाठभेद– प्रार्थ्यते।

(प्रवेश करके)

प्रतिहारी– महाराज! उपस्थित हो गया।

राम– अरे! कौन? (उपस्थित हो गया)

प्रतिहारी– महाराज का समीपवर्ती सेवक दुर्मुख (उपस्थित हो गया है)

राम– (मन में) दुर्मुख तो अन्तःपुरचारी है। उसे मैंने नगर में तथा पुरों में निवास करने वाले, लोगों में गुप्तचर के रूप में भेजा था। (स्पष्टरूप से) आने दो।

(प्रतिहारी निकल जाती है)

(प्रवेश करके)

दुर्मुख– (मन में) हाय! अब मैं देवी सीता के विषय में, इस प्रकार के अचिन्तनीय लोकापवाद को महाराज से कैसे कहूँगा? अथवा मुझ अभागे का तो यही कर्तव्य है।

सीता– (सीता स्वप्न देखकर बड़बड़ाते हुए) आर्यपुत्र! आप कहाँ हैं?

राम– चित्रदर्शन के कारण उत्पन्न होने वाली, यह वही विरह विषयक भावना देवी को स्वप्न में भी बड़बड़ाहट करवा रही है।

(प्रेमपूर्वक इसके अंगों को छूते हुए)

जो सुख एवं दुःख सभी दशाओं में एक जैसा रहता है, सभी अवस्थाओं में अनुगत है, जिसमें हृदय अद्भुत विश्राम प्राप्त करता है, वृद्धावस्था में भी जिसमें कमी नहीं आती है, तथा जो समय के व्यतीत हो जाने पर संकोचादि के आवरणों के हट जाने से प्रगाढ़ तथा उत्कृष्ट प्रेम में विद्यमान रहता है, इसप्रकार के कल्याणकारी दाम्पत्य–प्रेम की प्राप्ति सौभाग्य से किसी पुण्यवान् को ही होती है।।39।।

(प्रवेश करके)

श्लोक 39– यहाँ भी कवि ने पवित्र दाम्पत्य–प्रेम का चित्र प्रस्तुत किया है, जिसमें भारतीय संस्कृति की गहन छवि को भी देखा जा सकता है। साथ ही, कवि के दाम्पत्य जीवन के विषय में अपने निजी विचारों एवं मान्यताओं को भी तलस्पर्शी अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। वस्तुतः यही दाम्पत्य कल्याणों को देने वाला है।

दुर्मुखः– (उपसृत्य) जयतु देवः।[1]

रामः– ब्रूहि यदुपलब्धम्।

दुर्मुखः– उपस्तुवन्ति देवं पौरजानपदाः, यथा विस्मारिता वयं महाराजदशरथस्य रामदेवेनेति।[2]

रामः– अर्थवाद एवैषः। दोषं तु मे कथंचित्कथय, येन प्रति–विधीयते।

दुर्मुखः– (सास्रम्) शृणोतु महाराजः। (कर्णे) एवमिव। इति।[3]

रामः– अहह, अतितीव्रोऽयं वाग्वज्रः। (अति मूर्च्छति)

दुर्मुखः– आश्वसितु देवः।[4]

रामः– (आश्वस्य)

हा हा धिक्! परगृहवासदूषणं यद्,
वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः।
एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाका–
दालर्कं विषमिव सर्वतः प्रसक्तम्।।40।।

(**अन्वय**– हा हा धिक्! वैदेह्याः यत् पर–गृह–वास–दूषणम् अद्भुतैः उपायैः प्रशमितम्, दैव–दुर्विपाकात् तत् एतत् पुनः अपि आलर्कम् विषम् इव सर्वतः प्रसक्तम्।।40।।)

दुर्मुखः– तत्किमद्य मन्दभाग्यः करोमि? (विमृश्य सकरुणम्)
अथवा किमेतत्?

सतां केनापि कार्येण, लोकस्याराधनं व्रतम्[5]।
तत्प्रतीतं[6] हि तातेन, मां च प्राणांश्च मुंचता।।41।।

(**अन्वय**– केन अपि कार्येण लोकस्य आराधनम् सताम् व्रतम्, हि माम् च प्राणान् च मुंचता, तातेन तत् प्रतीतम्।।41।।)

---

1. जेदु देव्वो ।
2. उवट्टुवन्ति देवं पौरजाणपदा, जहा बिसुमरिदा अह्मे महाराअदसर हस्स राम–देव्वेणेत्ति।
3. सुणादु महाराओ। एव्वं विअ।
4. आस्ससदु देव्वो।
5. पाठभेद–व्रतम्।
6. पाठभेद– यत्पूरितम्।

दुर्मुख– (पास जाकर) महाराज की जय हो।

राम– जो भी समाचार प्राप्त किया हो, उसे कहो।

दुर्मुख– नागरिक और पुरवासी जन महाराज की प्रशंसा करते हैं कि राजा राम ने हमारे मन से महाराज दशरथ को भुलवा दिया है।

राम– यह तो प्रशंसा ही है। मेरा कोई दोष हो तो उसे कहो, जिससे उसका प्रतिकार किया जा सके।

दुर्मुख– (अश्रुपूर्वक) महाराज सुनिए (कान में) ऐसा, ऐसा।

राम– ओह! अत्यधिक तीव्र वाणीरूपी यह वज्र तो असह्य है।

दुर्मुख– महाराज! धैर्य धारण कीजिए।

राम– (प्रकृतिस्थ होकर)

हाय, हाय, धिक्कार है, सीता का दूसरे के घर में निवास करने का जो दोष, अग्निशुद्धि जैसे आश्चर्यजनक उपायों द्वारा शान्त कर दिया गया था, दुर्भाग्यवश वही यह दोष फिर से पागल कुत्ते के विष के समान चारों ओर फैल गया है।।40।।

दुर्मुख– तो मैं अभागा अब क्या करूँ?
(विचार करके करुणपूर्वक)

अथवा इससे क्या लाभ?

किसी भी प्रकार से लोकाराधन करना श्रेष्ठ लोगों का कर्तव्य है। मुझे तथा अपने प्राणों को छोड़ते हुए पिताश्री ने उस कर्म को सिद्ध भी कर दिया था।।41।।

उपर्युक्त अंश में राम का राजा के रूप में सुन्दर चरित्र उद्घाटित हुआ है, क्योंकि श्रेष्ठ राजा का कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजा के विचारों तथा भावनाओं से अवगत रहे। उसके लिए गुप्तचर को नियुक्त करना पड़ता है।

सीता के विषय में लोकापवाद के फैलने की उपमा के लिए कुत्ते के विष का उपमान भावों की अभिव्यक्ति में अत्यन्त सहायक रहा है। महाकवि के उपमानों की विशेषता है कि वे भावसाम्य के आधार पर भावाभिव्यक्ति में सहायक रहते हैं।

सम्प्रत्येव च भगवता वसिष्ठेन संदिष्टम्।

अपि च–

यत्सावित्रैर्दीपितं भूमिपालै–
र्लोकश्रेष्ठैः साधु चित्रं चरित्रम्।
मत्सम्बन्धात्कश्मला किंवदन्ती
स्याच्चेदस्मिन्हन्त! धिङ्मामधन्यम्।।42।।

(**अन्वय–** लोक–श्रेष्ठैः सावित्रैः भूमि–पालैः यत् चित्रम् चरित्रम् साधु दीपितम्, अस्मिन् मत् सम्बन्धात् कश्मला किंवदन्ती स्यात्, चेत् हन्त! अधन्यम् माम् धिङ्।।42।।)

हा देवि देवयजनसंभवे! हा स्वजन्मानुग्रहपवित्रितवसुन्धरे! हा मुनिजनकनन्दिनि! हा पावकवसिष्ठारुन्धतीप्रशस्तशीलशालिनि! हा राम–मयजीविते! हा महारण्यवासप्रियसखि! हा तातप्रिये! हा स्तोकवादिनि! कथमेवंविधायास्तवायमीदृशः परिणामः?

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे।।43।।

(**अन्वय–** त्वया जगन्ति पुण्यानि, त्वयि जन–उक्तयः अपुण्याः, त्वया लोकाः नाथवन्तः, त्वम् अनाथा विपत्स्यसे।।43।।)

(दुर्मुखं प्रति) दुर्मुख! ब्रूहि लक्ष्मणम्। एष नूतनो राजा रामः समाज्ञापयति। (कर्णे) एवमेवम्। इति।

दुर्मुखः– हा, कथमग्निपरिशुद्धायाः, गर्भस्थितपवित्रसंतानायाः देव्या दुर्जनवचनादिदं व्यवसितं देवेन?[1]

रामः– शान्तं पापम् शान्तं पापम्। दुर्जना नाम पौरजानपदाः?

इक्ष्वाकुवंशोऽभिमतः प्रजानां,
जातं च दैवाद्वचनीयबीजम्।
यच्चाद्भुतं कर्म विशुद्धिकाले
प्रत्येतु कस्तद्यदि दूरवृत्तम्।।44।।

---

[1] . हा, कह अग्गिपरिसुद्धाए, गब्भट्ठिदपवित्तसंताणाए, देवीए दुज्जनवअणादौ एदं ववसिदं देवेण?

और अभी भगवान् वसिष्ठ ने सन्देश भी दिया है।

और भी,

संसार में श्रेष्ठ सूर्यवंशी राजाओं ने जिस आश्चर्यजनक चरित्र को अनेक प्रकार से प्रकाशित किया, यदि उस चरित्र में मेरे कारण निन्दनीय अपवाद लग जाता है, तो मुझ भाग्यहीन को धिक्कार है।।42।।

हाय, यज्ञभूमि से उत्पन्न होने वाली! हाय, अपने जन्म रूपी अनुग्रह से संसार को पवित्र करने वाली! हाय, मुनितुल्य जनक को आनन्द प्रदान करने वाली! हाय, अग्नि, वसिष्ठ एवं अरुन्धती द्वारा प्रशंसा किए गए चरित्र वाली! हाय, राममय जीवन से सम्पन्न! हाय, बड़े–बड़े विशाल जंगलों में निवास की प्रिय सखि! हाय, पिताजी को प्रिय लगने वाली! हाय, मितभाषिणि! हे देवि! इसप्रकार के गुणों से सम्पन्न होने पर भी तुम्हारा ऐसा परिणाम भला कैसे हुआ?

तुमसे तो यह सम्पूर्ण संसार पवित्र है एवं तुम्हारे विषय में लोगों की इसप्रकार की अपवित्र उक्तियाँ हैं। तुमसे तो यह संसार सनाथ है और तुम अनाथ होकर मर रही हो।।43।।

(दुर्मुख के प्रति) दुर्मुख! तुम लक्ष्मण से कहो कि यह नया राजा राम यह आज्ञा दे रहा है (कान में) ऐसा, ऐसा।

दुर्मुख– हाय, क्या अग्नि की परीक्षा से पूर्णरूप से शुद्ध की गयी, गर्भ में पवित्र सन्तान को धारण करने वाली, देवी सीता के लिए दुर्जनों द्वारा कहे गए वचनों से ही महाराज ने ऐसा निश्चय कर लिया?

राम– पाप शान्त हो, पाप शान्त हो। क्या नगरों एवं जनपदों में रहने वाले लोग दुर्जन हैं?

इक्ष्वाकु वंश प्रजाओं में हमेशा ही प्रिय रहा है, किन्तु दुर्भाग्य वश उसमें निन्दा का एक कारण उत्पन्न हो गया है और अग्नि–विशुद्धि के समय जो अद्भुत कार्य हुआ था, दूर होने के कारण उसका भला कौन विश्वास कर सकता है?।।44।।

(**अन्वय–** इक्ष्वाकु–वंशः प्रजानाम् अभिमतः दैवात् वचनीय– बीजम् च जातम्, विशुद्धि–काले यत् च अद्भुतम् कर्म, तत् यदि दूर–वृत्तम् कः प्रत्येतु? ।।44।।)

तद्गच्छ।

दुर्मुखः– हा देवि! (इति निष्क्रान्तः)

रामः– हा कष्टम्! अतिबीभत्सकर्मा नृशंसोऽस्मि संवृत्तः।

शैशवात्प्रभृति पोषितां प्रियां, सौहृदादपृथगाश्रयामिमाम्।
छद्मना परिददामि मृत्यवे, शौनिको गृहशकुन्तिकामिव ।45

(**अन्वय–** शैशवात् प्रभृति पोषिताम् सौहृदात् अपृथक्–आश्रयाम् इमाम् प्रियाम् शौनिकः गृह–शकुन्तिकाम् इव छद्मना मृत्यवे परि–ददामि ।।45।।)

तत्किमस्पृश्यः पातकी देवीं दूषयामि?

(इति सीतायाः शिरः सुसमुन्नमय्य बाहुमाकृष्य)

अपूर्वकर्मचाण्डालमयि मुग्धे! विमुंच माम्।
श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या, दुर्विपाकं विषद्रुमम्।।46।।

(**अन्वय–** अयि मुग्धे! अपूर्व–कर्म–चाण्डालम् माम् विमुंच, चन्दन–भ्रान्त्या, दुर्विपाकम् विष–द्रुमम् श्रिता असि।।46।।)

(उत्थाय) हन्त हन्त, संप्रति विपर्यस्तो जीवलोकः। अद्यावसितं जीवितप्रयोजनं रामस्य। शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत्। असारः संसारः। काष्ठप्रायं शरीरम्। अशरणोऽस्मि। किं करोमि ? का गतिः?

अथवा–

दुःखसंवेदनायैव, रामे चैतन्यमागतम्।
मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलायितं हृदि।।47।।

(**अन्वय–** दुःख–संवेदनाय एव रामे चैतन्यम् आगतम्, मर्म– उप–घातिभिः प्राणैः हृदि वज्र–कीलायितम्।।47।।)

हा अम्ब अरुन्धति! भगवन्तौ वसिष्ठविश्वामित्रौ! भगवन् पावक! हा देवि भूतधात्रि! हा तातजनक! हा मातः!हा प्रियसखे महाराज सुग्रीव! सौम्य हनूमन्! महोपकारिन् लंकाधिपते विभीषण! हा सखि त्रिजटे! परिमुषिताः स्थ परिभूताः स्थ रामहतकेन!

अथवा को नाम तेषामहमिदानीमाह्वाने?

इसलिए तुम जाओ।

दुर्मुख– हाय, देवि! (ऐसा कहकर निकल जाता है)

राम– हाय! कष्ट है। मैं अत्यधिक घृणित कर्म करने वाला, नृशंस हो गया हूँ,

बचपन से पाली गयी, प्रेम के कारण बिछुड़कर न रहने वाली, इस प्रिया सीता को, कसाई (शौनिक) **द्वारा घर में पाली गयी चिड़िया के समान, मैं छलपूर्वक मृत्यु के लिए दे रहा हूँ।।45।।**

तो फिर अस्पृश्य पापी मैं देवी को छूकर दूषित कर रहा हूँ?

(ऐसा कहकर सीता के सिर को धीरे से ऊपर उठाकर और बाहु को खींचकर)

अरी, भोलीभाली सीते! निन्दित (अपूर्व) **कर्म करने के कारण मुझ चाण्डाल को छोड़ो, क्योंकि चन्दन के धोखे में तुम भयंकर परिणाम वाले, विष–वृक्ष का आश्रय ग्रहण कर रही हो।।46।।**

(उठकर) हाय, हाय, अब तो संसार बदल गया है। आज राम के जीवन का प्रयोजन समाप्त हो गया। मेरे लिए इस समय सम्पूर्ण जीवलोक जंगल के समान शून्य हो गया है। संसार निःसार प्रतीत हो रहा है। शरीर लकड़ी के समान चेतनाशून्य हो रहा है। मैं तो अशरण हो गया हूँ। क्या करूँ? क्या उपाय है?

अथवा

दुःखों का अनुभव करने के लिए ही राम का जन्म हुआ है। मर्मस्थल पर प्रहार करने वाले प्राण इससमय हृदय में गड़ी हुई वज्र की कील के समान प्रतीत हो रहे हैं।।47।।

हाय, माता अरुन्धति! पूजनीय वसिष्ठ और विश्वामित्र! भगवान् अग्निदेव! हाय, देवि वसुन्धरे! हाय, पिता जनक! हाय माते! हाय, परम मित्र महाराज सुग्रीव! सौम्य हनुमान्! महान् उपकार करने वाले, लंकाधिपति विभीषण! हाय, सखि त्रिजटे! आप सभी लोग पापी राम द्वारा वंचित और तिरस्कृत हो गए हो।

अथवा उन महानुभावों का आह्वान करने का भी मुझे क्या अधिकार है?

ते हि मन्ये महात्मनः, कृतघ्नेन दुरात्मना।
मया गृहीतनामानः, स्पृश्यन्त इव पाप्मना।।48।।

(**अन्वय**– हि मन्ये, कृतघ्नेन दुरात्मना मया गृहीत–नामानः ते महात्मनः पाप्मना स्पृश्यन्ते इव।।48।।)

योऽहम्–

विस्रम्भादुरसि निपत्य जातनिद्रा–
मुन्मुच्य प्रियगृहिणीं गृहस्य लक्ष्मीम्।
आतंकस्फुरितकठोरगर्भगुर्वी,
क्रव्याद्भ्यो बलिमिव दारुणः क्षिपामि।।49।।

(**अन्वय**– विस्रम्भात् उरसि निपत्य जात–निद्राम् आतंक–स्फुरित–कठोर–गर्भ–गुर्वीम्, गृहस्य लक्ष्मीम्, प्रिय–गृहिणीम्, दारुणः उन्मुच्य क्रव्याद्भ्यः बलिम् इव क्षिपामि।।49।।)

(सीतायाः पादौ शिरसि कृत्वा) अयं पश्चिमस्ते रामशिरसि पादपंकजं स्पर्शः (इति रोदिति)

(नेपथ्ये)

अब्रह्मण्यम्, अब्रह्मण्यम्!

रामः– ज्ञायतां भोः! किमेतत्?

(पुनर्नेपथ्ये)

ऋषीणामुग्रतपसां, यमुनातीरवासिनाम्।
लवणत्रासितः स्तोमस्त्रातारं त्वामुपस्थितः।।50।।

(**अन्वय**–यमुना–तीर–वासिनाम् उग्र–तपसाम्, ऋषीणाम् स्तोमः लवण–त्रासितः (सन्) त्रातारम् त्वाम् उपस्थितः।।50।।)

रामः– कथमद्यापि राक्षसत्रासः? तद्यावदस्य दुरात्मनो माधुरस्य कुम्भीनसीकुमारस्योन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेषयामि। (परिक्रम्य पुनर्निवृत्य) हा देवि! कथमेवविधा गमिष्यसि? भगवति वसुन्धरे! सुश्लाघ्यां दुहितरम–वेक्षस्व जानकीम्–

जनकानां रघूणां च यत्कृत्स्नं गोत्रमंगलम्।
यां देवयजने पुण्ये, पुण्यशीलामजीजनः।।51।।

मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो वे महानुभाव मुझ कृतघ्न और पापी द्वारा नाम ग्रहण किए जाने से पापों से युक्त हो रहे हैं।।48।।

जो मैं,

अत्यन्त विश्वासपूर्वक वक्षःस्थल पर लेटकर सोयी हुई, चित्र–दर्शन से उत्पन्न उद्वेग के कारण कम्पित एवं कठोर गर्भ के बोझ से युक्त, घर की लक्ष्मी, प्रिय गृहिणी इस सीता को अत्यधिक कठोर होते हुआ मैं, परित्याग करके, मांसाहारी हिंसक जन्तुओं में भक्ष्य पदार्थ (बलि) **के समान, फैंक रहा हूँ।।49।।**

(सीता के चरणों को सिर पर रखकर)

राम के सिर में तुम्हारे चरण–कमलों का यह अन्तिम स्पर्श है।

(इसप्रकार कहकर रोने लगते हैं)

(नेपथ्य में)

बुरा हुआ, बुरा हुआ।

राम– अरे! पता करो, यह क्या है?

(फिर से नेपथ्य में)

यमुना के तट पर निवास करने वाले, उग्र तप करने वाले, ऋषियों का समूह 'लवण' नामक राक्षस से भयभीत होकर, रक्षा करने वाले, आपके पास आया है।।50।।

राम– क्या अब भी राक्षसों का भय है? तो जबतक कुम्भीनसी के पुत्र दुष्ट मधुरेश्वर लवण को विनष्ट करने के लिए मैं शत्रुघ्न को भेजता हूँ। (घूमकर तथा फिर से लौटकर) हे भगवति वसुन्धरे! अपनी प्रशंसनीय पुत्री जानकी का ध्यान रखिएगा।

जनक वंश एवं रघुवंश, इन दोनों ही वंशों के सभीप्रकार के मंगलों की जो प्रतीक है, पुण्यशालिनी जिसको आपने यज्ञ के पवित्र स्थान में उत्पन्न किया था।।51।।

नाटक के नायक राम का उज्ज्वल चरित्र एवं सीता के प्रति पवित्र एवं गहन प्रेम तथा आन्तरिक वेदना की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(अन्वय– जनकानाम् रघूणाम् च यत् कृत्स्नम् गोत्र–मंगलम्, पुण्य–शीलाम् याम् पुण्ये देव–यजने अजीजनः ।।51।।)

(इति रुदन्निष्क्रान्तः)

सीता– हा सौम्य आर्यपुत्र! कुत्रासि? (इति सहसोत्थाय) हा धिक्? हा धिक्? दुःस्वप्नरणरणकविप्रलब्धा आर्यपुत्रशून्यमिवात्मानं पश्यामि।

(विलोक्य)

हा धिक्! हा धिक्! एकाकिनीं प्रसूतां मामुज्झित्वा कुत्र गतो नाथः? भवतु। अस्मै कोपिष्यामि, यदि तं प्रेक्षमाणां आत्मनः प्रभविष्यामि। कोऽत्र परिजनः?[1]

(प्रविश्य)

दुर्मुखः–देवि! कुमारलक्ष्मणो विज्ञापयति– 'सज्जो रथः। तदारोहतु देवी' इति।[2]

सीतां– इयमारूढास्मि। (उत्थाय परिक्रम्य) स्फुरति मे गर्भभारः। शनैर्गच्छामः।[3]

दुर्मुखः– इत इतो देवी।[4]

सीता– नमो रघुकुलदेवताभ्यः।[5]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

।। इति महाकविभवभूतिविरचिते 'उत्तररामचरिते' 'चित्रदर्शनो' नाम प्रथमोऽङ्कः ।।

---

1. हा सोह्म अज्जउत्त! कहिंसि? हद्धी हद्धी। दुस्सिविणरणरणअविप्पलद्धा अज्जउत्तसुण्णं विअ अत्ताणं पेक्खामि। हद्धी हद्धी। एआइणिं पसुत्तं म उज्झिअ कहिं गदो णाहो? होदु। से कुप्पिसं, जइ तं पेक्खन्ती अत्तणो पहविस्सं। को एत्थ परिअणो?
2. देवि? कुमारलक्खणो विण्णवेदि– 'सज्जो रहो। तं आरुहदु देवी'त्ति।
3. इअं आरुढह्मि। फुरई मे गब्भभारो। सणिअं गच्छह्म।
4. इदो इदो देवी!
5. णमो रहुउलदेवदाणं

(इसप्रकार कहकर रोते हुए निकल जाते हैं)

सीता– हाय, सौम्य आर्यपुत्र! आप कहाँ हैं? (ऐसा कहकर सहसा उठकर) हाय, हाय, इस विरहमूलक दुःस्वप्न की घबराहट के कारण खिन्न सी हुई मैं अपने आपको, आर्यपुत्र से विरहित देख रही हूँ।

(देखकर)

हाय, धिक्कार है, हाय, धिक्कार है। मुझ अकेली सोती हुई को छोड़कर प्राणनाथ कहाँ चले गए हैं? ठीक है, यदि उन्हें देखकर मैं स्वयं पर नियन्त्रण रख सकी तो उन पर क्रोध (मान) करूँगी। अरे! यहाँ कौन सेवक है?

(प्रवेश करके)

दुर्मुख– देवि! कुमार लक्ष्मण निवेदन करते हैं कि–'रथ तैयार है, इसलिए आप आरोहण कीजिए।'

सीता– यह मैं चढ़ रही हूँ। (उठकर और घूमकर) मेरे गर्भ का भार हिल रहा है, इसलिए धीरे–धीरे चलो।

दुर्मुख– महारानी! इधर से, इधर से।

सीता– रघुकुल के देवताओं को मेरा प्रणाम है।

(ऐसा कहकर सभी निकल जाते हैं)

।। इसप्रकार महाकवि भवभूति विरचित उत्तररामचरित में 'चित्रदर्शन' नामक प्रथम अंक का डॉ. राकेश शास्त्री, बाँसवाड़ा **द्वारा किया हुआ हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ।।**

।। श्रीः ।।

द्वितीयोऽङ्कः

(नेपथ्ये)

स्वागतं तपोधनायाः!

(ततः प्रविशत्यध्वगवेषा तापसी)

तापसी– अये! वनदेवता फलकुसुमगर्भेण पल्लवार्घ्येण दूरान्मामु–पतिष्ठते!

(प्रविश्य)

वनदेवता– (अर्घ्यं विकीर्य)

यथेच्छाभोग्यं वो वनमिदमयं मे सुदिवसः,
सतां सद्भिः संगः कथमपि हि पुण्येन भवति।
तरुच्छाया तोयं यदपि तपसां योग्यमशनं
फलं वा मूलं वा तदपि न पराधीनमिह वः।।1।।

(**अन्वय–** इदम् वनम् वः यथा–इच्छा–भोग्यम्, अयम् मे सुदिवसः, हि सताम् सद्भिः संगः कथम् अपि पुण्येन भवति। तरुच्छाया, तोयम् यत् अपि तपसाम् योग्यम्, अशनम्, फलम् वा, मूलम् वा, तत् अपि इह वः पराधीनम् न (अस्ति)।।1।।)

तापसी– किमत्रोच्यते?

प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः,
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं,
रहस्यं साधूनामनुपधिविशुद्धं विजयते।।2।।

(**अन्वय–** साधूनाम् वृत्तिः प्रिय–प्रायाः, वाचि विनय–मधुरः नियमः, मतिः प्रकृत्या कल्याणी, परिचयः अनवगीतः, तत् इदम् पुरः वा, पश्चात् वा, अविपर्यासित–रसम्, अनुपधि–विशुद्धम् रहस्यम् विजयते।।2।।)

(उपविशतः)

द्वितीय अङ्क

(नेपथ्य में)

तपस्विनी का स्वागत है।

(उसके बाद, पथिक वेष में तापसी प्रवेश करती है)

तापसी– अरे! वनदेवी फल और पुष्पों के साथ पल्लवों से बनाए गए, अर्घ्य द्वारा दूर से ही, मेरी पूजा कर रही है।

(प्रवेश करके)

वनदेवता–(अर्घ्य बिखेरकर)

यह वन आपके लिए इच्छा के अनुसार भोगने योग्य है, आज का दिन मेरे लिए अत्यन्त शुभ है, वस्तुतः सज्जन लोगों का साथ पुण्यों से ही होता है। वृक्षों की छाया, जल और जो भी तपस्या के लिए उपयुक्त भोजन, फल–मूल आदि हैं, वे सभी आपके लिए यहाँ पराधीन नहीं हैं।।1।।

तापसी– इस विषय में क्या कहना है?

सज्जनों का व्यवहार, अत्यन्त प्रीति को उत्पन्न करने वाला होता है, उनकी वाणी में मृदुता और संयम विद्यमान रहता है, उनकी बुद्धि स्वभाव से मंगल एवं कल्याणों को देने वाली होती है तथा परिचय अभिनन्दन के योग्य होता है। इसप्रकार वे यह प्रत्यक्ष या परोक्ष जो कुछ भी कहते हैं, वह सब प्रेम का उल्लंघन न करने वाला, निश्छल और पवित्र होता है, इसलिए उनका चरित्र सर्वोत्कृष्ट है।।2।।

(दोनों बैठती हैं)

कां पुनरत्रभवतीमवगच्छामि?

वनदेवता– कां पुनरत्रभवतीमवगच्छामि?

तापसी– आत्रेय्यस्मि।

वनदेवता– आर्ये आत्रेयि! कुतः पुनरिहागम्यते? किं प्रयोजनो दण्डकारण्योपवनप्रचारः?

आत्रेयी–

अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे, भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति।

तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां, वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि।3

(अन्वय– अस्मिन् प्रदेशे अगस्त्य–प्रमुखाः भूयांसः उद्गीथ–विदः वसन्ति, तेभ्यः निगमान्त–विद्याम् अधिगन्तुम्, वाल्मीकि–पार्श्वात् इह पर्यटामि।3।।)

वनदेवता– यदा तवादन्येऽपि मुनयस्तमेव हि पुराणब्रह्मवादिनं प्राचेतसमृषिं ब्रह्मपारायणायोपासते, तत्कोऽयमार्याया प्रवासः?

आत्रेयी– तस्मिन् हि महानध्ययनप्रत्यूह इत्येष दीर्घप्रवासो–ऽङ्गीकृतः।

वनदेवता– कीदृशः?

आत्रेयी– तत्रभगवतः केनापि देवताविशेषेण सर्वप्रकाराद्भुतं स्तन्यत्यागमात्रके वयसि वर्तमानं दारकद्वयमुपनीतम्। तत्खलु न केवलं तस्य, अपितु तिरश्चामप्यन्तःकरणानि तत्त्वान्युपस्नेहयति।

वनदेवता– अपि तयोर्नामसंज्ञानमस्ति?

आत्रेयी– तयैव किल देवतया तयोः कुशलवाविति नामनी च प्रभावश्चाख्यातः।

वनदेवता– कीदृशः प्रभावः?

आत्रेयी– तयोः किल सरहस्यानि जृम्भकास्त्राणि जन्मसिद्धानीति।

वनदेवता– अहो नु भोश्चित्रमेतत्।

आत्रेयी– तौ च भगवता वाल्मीकिना धात्रीकर्मतः परिगृह्य पोषितौ रक्षितौ च। निवृत्तचौलकर्मणोस्तयोस्त्रयीवर्जमितरास्तिस्रो विद्याः सावधानेन परिनिष्ठापिताः तदनन्तरं भगवतैकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय त्रयीविद्यामध्यापितौ। न त्वेताभ्यामतिदीप्तप्रज्ञाभ्यामस्मदादेः सहाध्ययन–योगोऽस्ति। यतः–

वनदेवता– समादरणीया आपको मैं कौन समझूँ?

तापसी– मैं आत्रेयी हूँ।

वनदेवता– आर्ये! आत्रेयी, अभी आप कहाँ से आ रही हैं? और दण्डकारण्य में घूमने का आपका क्या प्रयोजन है?

आत्रेयी– इस प्रदेश में अगस्त्य आदि अनेक ब्रह्मवेत्ता ऋषि रहते हैं। उनसे वेदविद्या को प्राप्त करने के लिए, मैं वाल्मीकि के आश्रम से (आकर) **इधर घूम रही हूँ।।3।।**

वनदेवता– जबकि दूसरे मुनिगण भी वेदों के अध्ययन के लिए उन्हीं ब्रह्मज्ञानी वाल्मीकि की सेवा करते हैं, तो फिर आर्या का यह प्रवास क्यों है?

आत्रेयी– क्योंकि वहाँ पर अध्ययन में महान् विघ्न उपस्थित हो गया है, इसीलिए मैंने इस लम्बे प्रवास को स्वीकार किया है।

वनदेवता– कैसा विघ्न?

आत्रेयी– उन भगवान् वाल्मीकि को किसी देवता ने सभी प्रकार से अद्भुत और दुधमुहे बच्चों के युगल को लाकर दिया है और वे दोनों बच्चे न केवल उनके, अपितु पशु–पक्षियों के अन्तःकरणों में भी स्नेह उत्पन्न कर देते हैं।

वनदेवता– क्या आप उन दोनों के नाम जानती हैं?

आत्रेयी– निश्चय ही, उन्हीं देवता ने उन दोनों के 'कुश' तथा 'लव' यह नाम तथा प्रभाव कहा है।

वनदेवता– कैसा प्रभाव?

आत्रेयी– यह कि उन दोनों को वस्तुतः रहस्यों के साथ **जृम्भ–कास्त्र** जन्म से ही सिद्ध हैं।

वनदेवता– अहो! तब तो बड़े आश्चर्य की बात है।

आत्रेयी– भगवान् वाल्मीकि ने धात्री–कर्म से लेकर, उनका सभी प्रकार से पालन–पोषण किया है और मुण्डन–संस्कार होने के बाद, वेद को छोड़कर शेष सभी तीनों विद्याओं का सावधानी के साथ उन्हें अध्ययन कराया। तत्पश्चात् समादरणीय उन्होंने ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रियों की विधि से यज्ञोपवीत–संस्कार करके, वेदों को भी पढ़ाया है। अत्यधिक प्रतिभावान् इन दोनों के साथ, हम जैसों का अध्ययन करना सम्भव नहीं है, क्योंकि–

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां तथैव यथा जड़े,
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा।
भवति हि पुनर्भूयान् भेदः फलं प्रति तद्यथा,
प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः।।4।।

(**अन्वय–** गुरुः यथा प्राज्ञे तथा एव जड़े विद्याम् वितरति, तयोः ज्ञाने शक्तिम् न तु करोति न वा अपहन्ति खलु, फलम् प्रति पुनः भूयान् भेदः भवति, तत् यथा शुचिः मणिः बिम्ब–ग्राहे प्रभवति, न हि मृदा आदयः।।4।।)

वनदेवता– अयमध्ययनप्रत्यूहः?

आत्रेयी– अन्यश्च।

वनदेवता– अथापरः कः?

आत्रेयी– अथ स ब्रह्मर्षिरेकदा माध्यन्दिनसवनाय नदीं तमसा–मनुप्रपन्नः। तत्र युग्मचारिणोः क्रौंचयोरेकं व्याधेन वध्यमानं ददर्श। आकस्मिकप्रत्यवभासां वाचमनुष्टुभेन छन्दसा परिणतामभ्युदैरयत्।

मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।5।।

(**अन्वय–** निषाद! त्वम् शाश्वतीः समाः प्रतिष्ठाम् मा अगमः, यत् क्रौंच–मिथुनात् काम–मोहितम् एकम् अवधीः।।5।।)

वनदेवता– चित्रम्। आम्नायादन्यत्र नूतनश्छन्दसामवतारः।

आत्रेयी– तेन हि पुनः समयेन तं भगवन्तमाविर्भूतशब्दब्रह्मप्रकाश–मृषिमुपसंगम्य भगवान् भूतभावनः पद्मयोनिरवोचत– 'ऋषे! प्रबुद्धोऽसि वागात्मनि ब्रह्मणि। तद् ब्रूहि रामचरितम् अव्याहतज्योतिरार्षं ते चक्षुः प्रतिभातु। आद्यः कविरसि' इत्युक्त्वान्तर्वर्हितः। अथ स भगवान् प्राचेतसः प्रथमं मनुष्येषु शब्दब्रह्मणस्तादृशं विवर्तमितिहासं रामायणं प्रणिनाय।

वनदेवता– हन्त तर्हि पण्डितः संसारः।

आत्रेयी– तस्मादेव हि ब्रवीमि 'तत्र महानध्ययनप्रत्यूह' इति।

गुरु जिसप्रकार बुद्धिमान् विद्यार्थी को विद्या प्रदान करता है, उसीप्रकार मन्दबुद्धि छात्र को भी देता है। वह दोनों के ज्ञान में न तो अपनी शक्ति को बढ़ाता है और न ही कम करता है। ऐसा होने पर फल के प्रति अत्यधिक अन्तर आ जाता है। ठीक उसीप्रकार जैसे निर्मल मणि ही प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने में समर्थ होती है, मिट्टी आदि नहीं।।4।।

वनदेवता– तो अध्ययन में यह विघ्न है।

आत्रेयी– और भी है।

वनदेवता– वह दूसरा कौन सा है?

आत्रेयी– इसके बाद, एक दिन वे ब्रह्मर्षि वाल्मीकि मध्याह्न स्नान के लिए तमसा नदी पर गए और वहाँ पर उन्होंने साथ–साथ विचरण करने वाले, दो क्रौंच पक्षियों में से एक को व्याध द्वारा मारे जाते हुए देखा, तब उन्होंने सहसा आविर्भूत **अनुष्टुप्** छन्द में बद्ध वाणी का उच्चारण किया–

हे निषाद! तू शाश्वत वर्ष पर्यन्त स्थिति (शान्ति) **को प्राप्त मत कर, क्योंकि तूने इस क्रौंच–युगल में से, काम से मोहित एक को मार डाला है।।5।।**

वनदेवता– आश्चर्य है, यह तो वेद के अतिरिक्त लोक में भी छन्द का आविर्भाव हो गया है।

आत्रेयी– इसलिए जिन्हें शब्दप्रकाश का आविर्भाव हो गया था, इसप्रकार के महर्षि वाल्मीकि के पास जाकर, सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति करने वाले, भगवान् ब्रह्मा जी ने कहा– 'हे ऋषि! तुम शब्दरूप ब्रह्म में प्रबुद्ध हो गए हो, इसलिए राम के चरित का वर्णन करो। अप्रतिहत प्रकाश वाला आर्षज्ञान तुममें प्रकाशित हो गया है, तुम **आदिकवि** हो।'

ऐसा कहकर वे अन्तर्धान हो गए। तत्पश्चात् भगवान् वाल्मीकि ने मनुष्यों में सर्वप्रथम शब्द–ब्रह्म के समान, 'विवर्त' रूप रामायण नामक इतिहास का प्रणयन किया।

वनदेवता– प्रसन्नता का विषय है, तब तो सारा संसार पण्डित हो जाएगा।

आत्रेयी– इसीलिए तो मैं कह रही हूँ कि वहाँ पर अध्ययन में बड़ा विघ्न है।

वनदेवता– युज्यते।

आत्रेयी– विश्रान्तास्मि भद्रे! संप्रत्यगस्त्याश्रमस्य पन्थानं ब्रूहि।

वनदेवता– इतः पंचवटीमनुप्रविश्य गम्यतामनेन गोदावरीतीरेण।

आत्रेयी– (सास्रम्) अत्येतत्तपोवनम्? अप्येषा पंचवटी? अपि सरिदियं गोदावरी? अप्ययं गिरिः प्रस्रवणः? जनस्थानवनदेवता त्वं वासन्ती?

वनदेवता– तथैव तत्सर्वम्!

आत्रेयी– हा वत्से जानकि!

स एष ते वल्लभबन्धुवर्गः, प्रासंगिकीनां विषयः कथानाम्।
त्वां नामशेषामपि दृश्यमानः, प्रत्यक्षदृष्टामिव नः करोति।।6।।

(**अन्वय**– प्रासंगिकीनाम् कथानाम् विषयः दृश्यमानः, सः एषः ते वल्लभ–बन्धु–वर्गः, नाम–शेषाम् त्वाम् नः अपि प्रत्यक्ष–दृष्टाम् इव करोति।।6।।)

वासन्ती– (सभयम्, स्वगतम्) कथं नामशेषेत्याह? (प्रकाशम्) किमत्याहितं सीतादेव्याः?

आत्रेयी– न केवलमत्याहितम, सापवादमपि। (कर्णे) एवमिति।

वासन्ती– अहह! दारुणो दैवनिर्घातः (इति मूर्च्छति)

आत्रेयी– भद्रे! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

वासन्ती– हा प्रियसखि! ईदृशस्ते निर्माणभागः? हा रामभद्र! अथवा अलं त्वया। आर्ये आत्रेयि! अथ तस्मादरण्यात्परित्यज्य निवृत्ते लक्ष्मणे सीताया किं वृत्तमिति काचिदस्ति प्रवृत्तिः?

आत्रेयी– नहि नहि।

वासन्ती– कष्टम्। आर्यारुन्धतीवसिष्ठाधिष्ठितेषु न कुलेषु, जीवन्तीषु च वृद्धासु राज्ञीसु कथमिदं जातम्।

आत्रेयी– ऋष्यशृंगसत्रे गुरुजनस्तदाऽऽसीत्। सम्प्रति परिसमाप्तं द्वादशवार्षिकं सूत्रम्। ऋष्यशृंगेण च संपूज्य विसर्जिता गुरवः। ततो भगवत्यरुन्धती 'नाहं वधूविरहितामयोध्यां गच्छामि' इत्याह । तदेव

वनदेवता– तब तो ठीक ही है।

आत्रेयी– मैं विश्राम कर चुकी हूँ। आर्ये! अगस्त्य ऋषि के आश्रम का मार्ग बताओ।

वनदेवता– यहाँ से पंचवटी में प्रवेश करके, गोदावरी के किनारे–किनारे चली जाइए।

आत्रेयी– (अश्रुपूर्वक) क्या यह वही तपोवन है? क्या यह वही पंचवटी है? क्या यह वही गोदावरी नदी है? क्या यह वही **प्रस्रवण** पर्वत है? क्या तुम जनस्थान के वन की देवी वासन्ती हो?

वनदेवता– यह सब कुछ वही है।

आत्रेयी– हा पुत्रि! जानकी।

प्रसंग से आयी हुई कथाओं के विषय दिखायी देते हुए, वे ये सभी तुम्हारे बन्धु लोग, नाममात्र से शेष तुम्हें, हमारे लिए प्रत्यक्ष के समान कर रहे हैं।।6।।

वासन्ती– (भयपूर्वक मन में) आपने 'नामशेष' ऐसा क्यों कहा? (प्रकट में) सीता देवी का क्या अनर्थ हो गया?

आत्रेयी– केवल अनर्थ ही नहीं, अपितु लोकापवाद भी है। (कान में) ऐसा, ऐसा।

वासन्ती– हाय, यह तो दुर्दैव का भयंकर आघात है।

(ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है)

आत्रेयी– कल्याणि! धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो।

वासन्ती– हाय, प्रियसखि! तुम्हारी सृष्टि का ऐसा परिणाम हुआ? हा राम! अथवा तुम्हें कहने से क्या लाभ? आत्रेत्रि! इसके बाद, उस अरण्य में सीता को छोड़कर लक्ष्मण के लौट जाने पर, सीता का क्या हुआ, क्या इस विषय में कुछ ज्ञात है?

आत्रेयी– नहीं, कुछ भी पता नहीं है।

वासन्ती– कष्ट है। आर्या अरुन्धती एवं वसिष्ठ से अधिष्ठित हमारे रघुकुल में वृद्ध महारानियों के जीवित रहते हुए भी, भला यह कैसे हो गया?

आत्रेयी– उस समय सभी गुरुजन ऋष्यशृंग के यज्ञ में थे और बारह वर्षों में समाप्त होने वाला यह यज्ञ अब पूर्णरूप से समाप्त हो गया है तथा ऋष्यशृंग ने पूजा करके, सभी गुरुजनों को विदा कर

राममातृभिरनुमोदितम्। तदनुरोधाद्भगवतो वसिष्ठस्यापि श्रद्धा 'वाल्मीकि–वनं गत्वा वत्स्याम' इति।

वासन्ती– अथ स रामभद्रः किमाचरः?

आत्रेयी– तेन राज्ञा राजक्रतुरश्वमेधः प्रक्रान्तः।

वासन्ती– अहह धिक्! परिणीतमपि?

आत्रेयी– शान्तम्, नहि नहि।

वासन्ती– का तर्हि यज्ञे सहधर्मचारिणी?

आत्रेयी– हिरण्यमयी सीताप्रकृतिर्गृहिणीकृता।

वासन्ती– हन्तः भोः।

वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि, को नु विज्ञातुमर्हति।।7।।

(अन्वय– लोकोत्तराणाम् चेतांसि, कः नु विज्ञातुम् अर्हति? वज्रात् अपि कठोराणि, कुसुमात् अपि मृदूनि (भवन्ति)।।7।।)

आत्रेयी– विसृष्टश्च वामदेवानुमन्त्रितो मेध्याश्वः। प्रक्लृप्ताश्च तस्य यथाशास्त्रं रक्षितारः। तेषामधिष्ठाता लक्ष्मणात्मजश्चन्द्रकेतुर्दत्त दिव्यास्त्र–सम्प्रदायश्चुतरंगसाधनान्वितोऽनुप्रहितः।

वासन्ती– (सहर्षकौतुकास्रम्) कुमारलक्ष्मणस्यापि पुत्र इति मातः! जीवामि।

आत्रेयी– अत्रान्तरे ब्राह्मणेन मृतं पुत्रमुक्षिप्य राजद्वारे सोरस्ताडम ब्रह्मण्यमुद्घोषितम्। ततो 'न राजापचारमन्तरेण प्रजानामकालमृत्युः संचरतीत्यात्मदोषं निरूपयति करुणामये रामभद्रे सहसैवाशरीरिणी वागुदचरत्–

शम्बूको नाम वृषलः, पृथिव्यां तप्यते तपः।
शीर्षच्छेद्यः स ते राम! तं हत्वा जीवय द्विजम्।।8।।

(अन्वय– शम्बूकः नाम वृषलः, पृथिव्याम् तपः तप्यते, राम! सः ते शीर्ष–च्छेद्यः, तम् हत्वा द्विजम् जीवय।।8।।)

दिया है। तब भगवती अरुन्धती ने, 'मैं वधू सीता से रहित अयोध्या में नहीं जाऊँगी,' ऐसा कहा एवं कौशल्या आदि राम की माताओं ने भी इसका समर्थन किया। उनके आग्रह से भगवान् वसिष्ठ को भी यह इच्छा हुई कि– 'वाल्मीकि के आश्रम में जाकर निवास किया जाए।'

वासन्ती– आजकल वे राम क्या कर रहे हैं?

आत्रेयी– उस राजा ने अब **अश्वमेध यज्ञ** आरम्भ किया है।

वासन्ती– अहो, धिक्कार है, विवाह भी कर लिया?

आत्रेयी– (पाप) शान्त हो! नहीं, नहीं।

वासन्ती– तो फिर यज्ञ में सहधर्मिणी कौन है?

आत्रेयी– स्वर्णनिर्मित सीता की मूर्ति को ही सहधर्मिणी बनाया है।

वासन्ती– आश्चर्य है,

लोकोत्तर महापुरुषों के चरित को भला कौन समझ सकता है? जो वज्र से भी कठोर एवं पुष्प से भी कोमल होते हैं।।7।।

आत्रेयी– उन्होंने **वामदेव ऋषि** द्वारा अभिमन्त्रित यज्ञ का घोड़ा छोड़ा है तथा शास्त्रोक्त विधि से उसके रक्षकों को भी नियुक्त किया है। साथ ही, उन रक्षकों के अध्यक्ष के रूप में लक्ष्मण पुत्र 'चन्द्रकेतु' को दिव्यास्त्र प्रदान करके, चतुरंगिणी सेना के साथ पीछे–पीछे भेजा है।

वासन्ती– (हर्ष, कौतूहल एवं अश्रुपूर्वक) कुमार लक्ष्मण का भी पुत्र है, यह जानकर तो हे माँ! मैं जीवित ही हो गयी हूँ।

आत्रेयी– इसी बीच किसी ब्राह्मण ने अपने मृतपुत्र को राज–दरबार में रखकर, छाती को पीटते हुए, 'ब्राह्मणों को महान् भय है' इस प्रकार उद्घोषणा की। तब 'राजा के अनाचार के अभाव में प्रजाओं में अकाल मृत्यु नहीं होती है,' इसप्रकार करुणामय श्रीराम द्वारा अपने दोषों की विवेचना करने पर, सहसा ही अशरीरिणी वाणी ने कहा कि–

शम्बूक नाम का शूद्र पृथिवी पर तपस्या कर रहा है। हे राम! वह आपके द्वारा शिरःछेद के योग्य है। इसलिए उसे मारकर तुम ब्राह्मण बालक को जीवित करो।।8।।

इत्युपश्रुत्य कृपाणपाणिः पुष्पकमधिरुह्य सर्वा दिशो विदिशश्च शूद्रतापसान्वेषणाय जगत्पतिः संचारं समारब्धवान्।

वासन्ती– शम्बूको नामाधोमुखी धूमपः शूद्रोऽस्मिन्नेव जनस्थाने तपश्चरति। अपि नाम रामभद्रः पुनरिदं वनमलङ्कुर्यात्?

आत्रेयी– भद्रे! गम्यतेऽधुना।

वासन्ती– आर्ये आत्रेयी! एवमस्तु। कठोरश्च दिवसः! तथाहि–

कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणोत्कम्पेन सम्पातिभि–
र्घर्मस्रंसितबन्धनैश्च कुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम्।
छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः–
कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कूले कुलायद्रुमाः।।9।।

(**अन्वय–** कूले छाया–अपस्किरमाण–विष्किर–मुख–व्याकृष्ट–कीट–त्वचः, कूजत्–क्लान्त–कपोत–कुक्कुट–कुलाः कुलाय द्रुमाः, कण्डूल–द्विप–गण्ड–पिण्ड–कषण–उत्कम्पेन सम्पातिभिः, घर्म–स्रंसित–बन्धनैः च कुसुमैः गोदावरीम् अर्चन्ति।।9।।)

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ते)

इति शुद्धविष्कम्भकः

(ततः प्रविशति सदयोद्यतखड्गो रामभद्रः)

रामः–

रे हस्त! दक्षिण! मृतस्य शिशोर्द्विजस्य,
जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम्।
रामस्य बाहुरसि, निर्भरगर्भखिन्न–
सीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते?।।10।।

(**अन्वय–** रे दक्षिण! हस्त! द्विजस्य, मृतस्य शिशोः जीवातवे, शूद्र–मुनौ कृपाणम् विसृज, निर्भर–गर्भ–खिन्नः सीता–विवासन–पटोः रामस्य बाहुः असि, ते करुणा कुतः ?।।10।।)

(कथंचित्प्रहृत्य) कृतं रामसदृशं कर्म। अपि जीवेत्स ब्राह्मणपुत्रः!

(प्रविश्य)

दिव्यपुरुषः– जयतु देवः,

ऐसा सुनकर, हाथ में तलवार धारण करके, पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर, जगत्पति राम ने शूद्र तपस्वी को ढूँढ़ने के लिए, सभी दिशाओं तथा उपदिशाओं में घूमना आरम्भ कर दिया है।

वासन्ती– अधोमुख होकर, धूम पीने वाला, शम्बूक नामक शूद्र तो इसी जनस्थान में तप कर रहा है, तो क्या श्रीराम फिर से इस वन को सुशोभित करेंगे?

आत्रेयी– हे कल्याणि! अब मैं चलती हूँ।

वासन्ती– आर्ये आत्रेयि! ऐसा ही हो। दिन भी प्रखर धूप वाला हो गया है, क्योंकि–

गोदावरी के तट पर छाया में चोंच से भूमि को कुरेदने वाले, पक्षियों के मुख से, जिनके कीड़ों को खींच लिया गया है, ऐसी छाल से युक्त, कूजन करते हुए एवं थके हुए कबूतर और वन के मुर्गों के समूह से युक्त, पक्षियों के घोंसलों वाले वृक्ष, हाथियों के खुजलाने के लिए, गण्डस्थल के रगड़ने से हिलने के कारण टूटकर गिरते हुए, धूप के कारण मुरझाने से ढ़ीले हुए बन्धनों वाले, पुष्पों से गोदावरी की पूजा कर रहे हैं।।9।।

(ऐसा कहकर, घूमकर निकल जाती हैं)

।।इसप्रकार शुद्ध विष्कम्भक पूर्ण हुआ।।

(उसके बाद करुणापूर्वक हाथ में तलवार लेकर राम प्रवेश करते हैं)

राम– हे दक्षिण हस्त! **ब्राह्मण के मरे हुए बालक को जिलाने के लिए, शूद्र मुनि पर तलवार को छोड़ो, क्योंकि तुम तो परिपूर्ण गर्भ से खिन्न, सीता का परित्याग करने में निपुण, राम की भुजा हो, इसलिए तुममें भला करुणा कहाँ सम्भव है?।।10।।**

(किसीप्रकार प्रहार करके) मैंने राम के समान कार्य कर दिया है। क्या वह ब्राह्मणपुत्र जीवित हो गया होगा?

(प्रवेश करके)

दिव्यपुरुष– महाराज की जय हो,

दत्ताभये त्वयि यमादपि दण्डधारे,
संजीवितः शिशुरसौ मम चेयमृद्धिः।
शम्बूक एष शिरसा चरणौ नतस्ते,
सत्संगजानि निधनान्यपि तारयन्ति।।11।।

(**अन्वय**—यमात् अपि दत्त—अभये त्वयि दण्डधारे, असौ शिशुः संजीवितः, मम च इयम् ऋद्धिः, एषः शम्बूकः ते चरणौ शिरसा नतः, सत्संगजानि निधनानि अपि तारयन्ति।।11।।)

रामः— द्वयमपि प्रियं नः, तदनुभूयतामुग्रस्य तपसः परिपाकः।

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च, यत्र पुण्याश्च सम्पदः।
वैराजा नाम ते लोकास्तैजसाः सन्तु ते शिवाः।।12।।

(**अन्वय**— यत्र आनन्दाः च, मोदाः च, यत्र पुण्याः च सम्पदः, वैराजाः नाम तैजसाः ते लोकाः, ते शिवाः सन्तु ।।12।।)

शम्बूकः— स्वामिन्! युष्मत्प्रसादादेवैषा महिमा। किमत्र , तपसा? अथवा महदुपकृतं तपसा।

अन्वेष्टव्यो यदसि भुवने लोकनाथः शरण्यो,
मामन्विष्यन्निह वृषलकं योजनानां शतानि।
क्रान्त्वा प्राप्तः स इह तपसां संप्रसादोऽन्यथा तु,
क्वायोध्यायाः पुनरुपगमो दण्डकायां वने वः।।13।।

(**अन्वय**— भुवने अन्वेष्टव्यः लोक—नाथः शरण्यः, (त्वम्) यत् माम् वृषलकम् अन्विष्यन् योजनानाम् शतानि क्रान्त्वा इह प्राप्तः असि, इह सः तपसाम् संप्रसादः अन्यथा तु वः अयोध्यायाः दण्डकायाम् वने क्व पुनः उपगमः।।13।।)

रामः— किं नाम दण्डकेयम्? (सर्वताऽवलोक्य) हा, कथम्—

स्निग्धश्यामाः क्वचिदपरतो भीषणाभोगरूक्षाः,
स्थाने—स्थाने मुखरककुभो झाङ्कृतैर्निर्झराणाम्।
एते तीर्थाश्रमगिरिसरिद्गर्तकान्तारमिश्राः,
संदृश्यन्ते परिचितभुवो दण्डकारण्यभागाः।।14।।

यमराज से भी अभयदान प्राप्त करके, आपके दण्ड धारण करने पर वह ब्राह्मण बालक जीवित हो गया है तथा मेरी यह समृद्धि हुई है। यह शम्बूक आपके श्रीचरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करता है। सत्संग से उत्पन्न होने वाले, मरण भी (प्राणियों का) **उद्धार करने वाले होते हैं।।11।।**

राम— हमें तो ये दोनों ही प्रिय हैं। इसलिए तुम तो उग्र तपस्या के फल को भोगो।

जहाँ पर आनन्द और मोद दोनों ही विद्यमान हैं और जहाँ पवित्र विभूतियाँ विराजमान हैं। इसप्रकार के 'वैराज' नामक लोक तुम्हारे लिए मंगलमय होवें।।12।।

शम्बूक— हे स्वामिन्! आपकी कृपा से ही मेरी यह महिमा है, इसमें तपस्या ने क्या किया? अथवा तप का ही तो महान् उपकार है,

संसार में खोजने योग्य लोक के स्वामी तथा शरण प्रदान करने वाले आप, जो मुझ कुत्सित शूद्र का अन्वेषण करते हुए, सैंकड़ों योजनों को पार करके, यहाँ पधारे हैं। यह सब तप का ही तो अनुग्रह है, नहीं तो अयोध्या से दण्डक वन में फिर से आगमन भला कैसे हो पाता?।।13।।

राम— क्या यह दण्डकारण्य है? (सब ओर देखकर) हाय, कैसे?

कहीं (हरीभरी घास से) **स्निग्ध और श्याम, कहीं भयंकर** (उबड़ खाबड़) **दृश्यों से रूखे, स्थान—स्थान पर झरनों के कल—कल निनाद से मुखरित दिशाओं वाले, तीर्थ, आश्रम, पर्वत, नदी, गड्ढ़ों एवं घने वनों से मिश्रित तथा परिचित भूभाग वाले, ये दण्डकारण्य के भाग दिखायी पड़ रहे हैं।।14।।**

वैराज नामक उच्च लोकों की महिमा का कथन किया गया है।

पर्वतीय प्रदेशों के स्वाभाविक एवं सूक्ष्म वर्णन से महाकवि का वन विषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है। इससे ऐसा भी प्रतीत होता है कि उन्होंने स्वयं गहन वनों में स्थित तीर्थ, आश्रम, पर्वत, नदियों का भ्रमण किया था।

(**अन्वय**— क्वचित् स्निग्ध–श्यामाः अपरतः भीषण–आभोग–रूक्षाः, स्थाने–स्थाने निर्झराणाम् झाङ्कृतैः मुखर–ककुभः, तीर्थ–आश्रम–गिरि–सरिद्–गर्त–कान्तार–मिश्राः, परिचित–भुवः एते दण्डक–अरण्य–भागाः संदृश्यन्ते ।।14।।)

शम्बूकः— दण्डकैवेषा। अत्र किल पूर्वं निवसता देवेन—

चतुर्दश सहस्राणि चतुर्दश च राक्षसाः।
त्रयश्च दूषणखरत्रिमूर्धानो नो रणे हताः।।15।।

(**अन्वय**— चतुर्दश–सहस्राणि, चतुर्दश च राक्षसाः, त्रयः च दूषण–खर–त्रिमूर्धानः रणे नो हताः।।15।।)

येन सिद्धक्षेत्रेऽस्मिन्मादृशामपि जानपदानामकुतोभ्यः संचारः संवृत्तः।

रामः— न केवलं दण्डकैव, जनस्थानमपि।

शम्बूकः— बाढम्, एतानि खलु सर्वभूतरोमहर्षणान्युन्मत्तचण्डश्वापदाकुलाक्रान्तविकटगिरिगह्वराणि, जनस्थानपर्यन्तदीर्घारण्यानि दक्षिणां दिशमभिवर्तन्ते। तथाहि—

निष्कूजस्तिमिताः क्वचित्क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वनाः,
स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नयः।
सीमानः प्रदरोदरेषु विरलस्वल्पाम्भसो यास्वयं,
तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रवः पीयते।।16।।

(**अन्वय**— क्वचित् निष्कूज–स्तिमिताः, क्वचित् अपि प्रोच्चण्ड–सत्त्व–स्वनाः, स्वेच्छा–सुप्त–गभीर–भोग–भुजग–श्वास–प्रदीप्त–अग्नयः, प्रदर–उदरेषु विरल–स्वल्प–अम्भसः सीमानः, यासु तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैः अयम् अजगर–स्वेद–द्रवः पीयते।।16।।)

रामः—

पश्यामि च जनस्थानं, भूतपूर्वखरालयम्।
प्रत्यक्षानिव वृत्तान्तान्, पूर्वाननुभवामि च ।।17।।

(**अन्वय**— भूतपूर्व–खर–आलयम् च जनस्थानम् पश्यामि, पूर्वान् वृत्तान्तान्, च प्रत्यक्षान् इव अनुभवामि ।।17।।)

(सर्वतोऽवलोक्य) प्रियारामा हि वैदेह्यासीत्। एतानि नाम कान्ताराणि। किमतः परं भयानकं स्यात्? (सास्रम्)

त्वया सह निवत्स्यामि, वनेषु मधुगन्धिषु।
इतीवरमतेहासौ, स्नेहस्तस्याः स तादृशः।।18।।

शम्बूक— यह दण्डकारण्य ही है। निश्चय ही, यहाँ पर पूर्व में निवास करते हुए, महाराज ने—

चौदह हजार, चौदह राक्षस तथा दूषण, खर और त्रिमूर्धा इन तीनों को युद्ध में मारा था।।15।।

राम— यह केवल दण्डकारण्य ही नहीं, अपितु जनस्थान भी हैं।

शम्बूक— जी हाँ। ये सभी प्राणियों के रोंगटे खड़े कर देने वाले, मदोन्मत्त एवं प्रचण्ड हिंसक जन्तुओं के समूह से भरा हुआ, पर्वत की गुफाओं से युक्त, जनस्थान तक फैले हुए, विस्तृत वन, दक्षिण दिशा तक फैले हुए हैं, क्योंकि—

कहीं पर निस्तब्धता छायी हुई है तथा कहीं पर हिंसक प्राणियों का घोर गर्जन सुनाई पड़ रहा है। कहीं पर स्वेच्छा से सोए हुए, विशाल शरीर वाले, साँपों की फुंकारों से प्रज्वलित अग्नि से युक्त, गड्ढों के मध्य पड़े हुए थोड़े से पानी वाले सीमान्त भाग हैं, जहाँ पर प्यासे गिरगिट, अजगर के पसीने को पी रहे हैं।।16।।

राम—

खर के भूतपूर्व निवास स्थान, जनस्थान को मैं देख रहा हूँ तथा पहले के वृत्तान्तों को प्रत्यक्ष के समान अनुभव भी कर रहा हूँ।।17।।

(चारों ओर देखकर) वैदेही को उपवन प्रिय थे। ये ही वे महावन हैं। इससे अधिक भयानक भला क्या हो सकता है? (अश्रुपूर्वक)

'मैं आपके साथ पुष्परसों की गन्धों से युक्त, वनों में निवास करूँगी' इसीकारण उसका मन यहाँ पर लगता था। अहो, उसका उसप्रकार का वह अनुराग (वस्तुतः प्रशंसनीय है)?।।18।।

महाकवि भवभूति के प्रकृति–चित्रण की विशेषता रही है कि वे प्रकृति के कोमल पक्ष के साथ–साथ, इसके कठोर पक्ष का भी उसी तन्मयता से वर्णन करते हैं, जो उन्हें दूसरे कवियों से सर्वथा भिन्न एवं उत्कृष्ट बनाती है। भयानक प्रकृति के उपर्युक्त प्रकृति चित्रण इस कथ्य की पुष्टि कर रहे हैं, जहाँ हिंसक जन्तुओं के भयंकर गर्जन, विशाल सर्प, अजगर तथा गिरगिट आदि का वर्णन किया गया है। इसी अंक में आगे प्रयुक्त उदाहरण भी दर्शनीय हैं।

(अन्वय– त्वया सह मधु–गन्धिषु वनेषु निवत्स्यामि, इति इव अरमत, इह असौ, तस्याः तादृशः सः स्नेहः (आसीत्)।।18।।)

न किंचिदपि कुर्वाणः, सौख्यैर्दुःखान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं, यो हि यस्य प्रियो जनः।।19।।

(अन्वय– यः हि यस्य प्रियः जनः, तत् तस्य किम् अपि द्रव्यम्, किंचित् अपि कुर्वाणः न (सः) सौख्यैः दुःखानि अपोहति ।।19।।)

शम्बूकः– तदलमेभिर्दुरासदैः। अथैतानि मदकलमयूरकण्ठकोमलच्छविभिरवकीर्णानि पर्यन्तैरविरलनिविष्टनीलबहुलच्छायातरुषण्डमण्डितान्यसंभ्रान्तविविधमृगयूथानि पश्यतु महाभागः प्रशान्तगम्भीराणि श्वापदकुलशरण्यानि महारण्यानि।

इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरमुक्त–
प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति।
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुंज–
स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः।।20।।

(अन्वय– इह समद–शकुन्त–आक्रान्त–वानीर–मुक्त–प्रसव–सुरभि–शीत–स्वच्छ–तोयाः, फल–भर–परिणाम–श्याम–जम्बू–निकुंज–स्खलन–मुखर–भूरि–स्रोतसः निर्झरिण्यः वहन्ति ।।20।।)

अपि च–

दधति कुहरभाजामत्र भल्लूकयूना–
मनुरसितगुरूणिः स्त्यानमम्बूकृतानि।
शिशिरकटुकषायः स्त्यायते शल्लकीना–
मिभदलितविकीर्णग्रन्थिनिष्यन्दगन्धः।।21।।

(अन्वय– अत्र कुहर–भाजाम् भल्लूक–यूनाम् अनुरसित–गुरूणिः अम्बू–कृतानि स्त्यानम् दधति, शल्लकीनाम् शिशिर–कटु–कषायः इभ–दलित–विकीर्ण–ग्रन्थि–निष्यन्द–गन्धः स्त्यायते ।।21।।)

रामः– (सबाष्पस्तम्भम्) भद्र! शिवास्ते पन्थानो देवयानाः। प्रलीयस्व पुण्येभ्यो लोकेभ्यः।

शम्बूकः– यावत्पुराणब्रह्मर्षिम् अगस्त्यमभिवाद्य शाश्वतं पदमनुप्रविशामि।

(इति निष्क्रान्तः)

जो जिसका प्रिय जन होता है, वह उसके लिए कुछ अद्भुत ही द्रव्य पदार्थ है, जो कुछ न करता हुआ भी, सुखों द्वारा उसके दुःखों को दूर कर देता है।।19।।

शम्बूक– तो इन दुर्गम वनों को रहने दीजिए। इसके बाद महान् प्रभावशाली आप, मद से मधुर शब्द करने वाले, मयूरों के कण्ठों के समान, स्निग्ध कान्ति से युक्त, समीपस्थ प्रदेशों से व्याप्त, सघनता से खड़े हुए, नीली शोभा से सम्पन्न, छायादार वृक्षों के समूहों से सुशोभित, निर्भीक होकर विचरण करने वाले, अनेक प्रकार के मृगों के झुण्डों से युक्त, शान्त, गम्भीर एवं हिंसक पशुओं के शरणस्थान इन महान् वनों को देखिए।

यहाँ पर मदयुक्त पक्षियों द्वारा सेवा किए जाते हुए, वेतस से घिरे हुए, पुष्पों से सुगन्धित, शीतल तथा निर्मल जल से युक्त, फलों के समूह के पकने से श्यामल जामुन के फलों के वृक्षों के कुँजों से गिरने से, शब्दायमान अनेक प्रवाहों वाली नदियाँ बह रही हैं।।20।।

और भी,

इस महावन में पर्वतों की गुफाओं में निवास करने वाले, युवा भालुओं का थूकने का शब्द, प्रतिध्वनित होकर और भी अधिक बढ़ गया है और यहाँ पर हाथियों द्वारा मर्दन की गयी, इधर–उधर फैलायी हुई 'सल्लकी' लताओं की गाँठों के रस का शीतल, तीक्ष्ण एवं कसैला गन्ध फैल रहा है।। 21।।

राम– (अश्रुपूर्वक गद्‌गद स्वर में) सौम्य! देवयान नामक मार्ग तुम्हारे लिए मंगलकारी होवें। पुण्य लोकों में जाने के लिए तुम तैयार हो जाओ।

शम्बूक– जब तक मैं पुरातन ब्रह्मर्षि अगस्त्य को प्रणाम करके, सनातन ब्रह्मलोक में प्रवेश करता हूँ।

(ऐसा कहकर निकल जाता है)

रामः–

एतत्पुनर्वनमहो कथमद्य दृष्टं
यस्मिन्नभूम चिरमेव पुरा वसन्तः।
आरण्यकाश्च गृहिणश्च रताः स्वधर्मे,
सांसारिकेषु च सुखेषु वयं रसज्ञाः।।22।।

(**अन्वय–** अहो अद्य एतत् वनम् पुनः कथम् दृष्टम्? यस्मिन् पुरा चिरम् एव वसन्तः, आरण्यकाः च गृहिणः वयम् स्व–धर्मे रताः, सांसारिकेषु च सुखेषु रसज्ञाः च अभूम।।22।।)

एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा
स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि।
अ.ंजुवंजुललतानि च तान्यमूनि,
नीरन्ध्रनीपनिचुलानि सरित्तटानि।।23।।

(**अन्वय–** विरुवत्–मयूराः एते ते एव गिरयः, मत्त–हरिणानि तानि एव वन–स्थलानि, आ–मंजु–वंजुल–लतानि च नीरन्ध्र–नीप–निचुलानि, तानि अमूनि सरित्–तटानि।।23।।)

मेघमालेव यश्चायमारादिव विभाव्यते।
गिरिः प्रस्रवणः सोऽयमत्र गोदावरी नदी।।24।।

(**अन्वय–** मेघ–माला इव यः च अयम् आरात् इव विभाव्यते, सः अयम् प्रस्रवणः गिरिः, अत्र गोदावरी नदी।।24।।)

अस्यैवासीन्महति शिखरे गृध्रराजस्य वास–
स्तस्याधस्ताद्वयमपि रतास्तेषु पर्णोटजेषु।
गोदावर्याः पयसि विततानोकहश्यामलश्री–
रन्तः कूजन्मुखरशकुनो यत्र रम्यो वनान्तः।।25।।

(**अन्वय–** अस्य एव महति शिखरे गृध्रराजस्य वासः आसीत्, तस्य अधस्तात् वयम् अपि तेषु पर्ण–उटजेषु रताः, यत्र गोदावर्याः पयसि वितत–अनोकह–श्यामल–श्रीः मुखर–शकुनः अन्तःकूजन् रम्यः वनान्तः (अस्ति)।।25।।

अत्रैव सा पंचवटी, यत्र निवासेन विविधविस्रम्भातिप्रसंगाक्षिणः प्रदेशाः प्रियायाः प्रियसखी च वासन्ती नाम वनदेवता। किमिदमापतितमद्य रामस्य?

सम्प्रति हि–

राम–

अहो, आज इस वन को हमने भला क्यों देखा? जहाँ पर पूर्व में लम्बे समय तक निवास करते हुए, हम लोग वानप्रस्थ एवं गृहस्थ के अपने धर्म में लगे हुए, सांसारिक सुखों का अनुभव करने वाले हुए थे।।22।।

मोरों के केकारव से युक्त, ये वे ही पर्वत हैं और मत्त हरिणों वाले, ये वे ही वनों के स्थल हैं तथा अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होने वाले, वेंत की लताओं, सघन कदम्ब और 'हिज्जल' (निचुल) **नाम के वृक्षों से युक्त, सरिताओं के ये वे ही तट प्रदेश हैं,** (जहाँ हम आनन्दपूर्वक दिनों को बिताते थे)।।**23**।।

(उमड़ती हुई) **मेघमाला के समान, जो अत्यधिक पास में ही खड़ा हुआ दिखायी दे रहा है, वह यह 'प्रस्रवण' नाम का पर्वत है तथा यह गोदावरी नदी है।।24।।**

इसी प्रस्रवण पर्वत के ऊँचे शिखर पर गृध्रराज जटायु का निवास स्थान था। उसी के नीचे हम लोग पर्णकुटी बनाकर, आनन्द–पूर्वक निवास करते थे, जहाँ पर गोदावरी के जलों में वृक्षों की छाया पड़ने से नीली कान्ति वाला, अन्दर कूजन करने वाले पक्षियों से युक्त, अत्यधिक रमणीय वन–प्रान्त है।।25।।

यहीं पर वह पंचवटी है, जहाँ पर निवास करते समय, अनेक प्रदेश हमारे विश्वस्त विलासों के साक्षी हैं तथा यहीं पर प्रियतमा सीता की 'वासन्ती' नाम की वनदेवी प्रिय सखी थी। आज अत्यधिक दुःखी राम पर यह कैसी विपत्ति आ पड़ी,

क्योंकि इस समय,

महाकवि प्रकृति वर्णन में इतना अधिक खो गए हैं कि उन्होंने प्रस्तुत कृति के नाटक होने को ही विस्मृत कर दिया है, किन्तु नायक राम की पूर्व में अनुभूत स्मृतियों को उजागर करना भी अनिवार्य था, यहाँ उन्होंने इसी का चयन किया है। सीता के वियोग से दुःखी राम का जनस्थान में आने पर, सीता के साथ आनन्द–पूर्वक व्यतीत किए गए, पलों की स्मृति करके पीड़ित होना स्वाभाविक है। महाकवि के उत्कृष्ट मनोवैज्ञानिक होने की पुष्टि हो रही है।

चिराद्वेगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विषरसः,
कुतश्चित्संवेगात्प्रचल इव शल्यस्य शकलः।
व्रणो रूढग्रन्थिः स्फुटित इव हृन्मर्मणि पुनः,
पराभूतः शोको विकलयति मां नूतन इव।।26।।

(**अन्वय–** चिरात् वेगारम्भी प्रसृतः तीव्रः विष–रसः इव, कुतश्चित् संवेगात् प्रचलः शल्यस्य शकलः इव, रूढ–ग्रन्थिः स्फुटितः हृद्–मर्मणि व्रणः इव, पराभूतः शोकः नूतनः इव पुनः माम् विकलयति ।।26।।)

तथाविधानपि तावत्पूर्वसुहृदो भूमिभागान् पश्यामि। (निरूप्य) अहो! अनवस्थितो भूतसन्निवेशः। तथाहि–

पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां
विपर्यास यातो घनविरलभावः क्षितिरुहाम्।
बहो दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदं,
निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति।।27।।

(**अन्वय–** यत्र पुरा सरिताम् स्रोतः, तत्र अधुना पुलिनम्, क्षिति–रुहाम् घन–विरल–भावः विपर्यासः यातः, बहोः कालात् दृष्टम्, इदम् वनम् अपरम् इव मन्ये, शैलानाम् निवेशः 'तत् इदम् इति' बुद्धिम् द्रढयति।।27।)

हन्त, हन्त। परिहरन्तमपि मां पंचवटी स्नेहाद् बलादाकर्षतीव।

(सकरुणम्)

यस्यां ते दिवसास्तया सह मया नीता यथा स्वे गृहे,
यत्सम्बन्धिकथाभिरेव सततं दीर्घाभिरास्थीयत।
एकः सम्प्रति नाशितप्रियतमस्तामेव रामः कथं,
पापः पंचवटी विलोकयतु वा गच्छत्वसम्भाव्य वा।।28।।

(**अन्वय–** यस्याम् तया सह मया ते दिवसाः स्वे गृहे यथा नीताः, सततम् दीर्घाभिः यत् सम्बन्धि–कथाभिः एव आस्थीयत, सम्प्रति नाशित–प्रियतमः एकः ताम् एव पापः रामः, पंचवटी कथम् विलोकयतु? वा असम्भाव्य वा गच्छतु ।।28।।)

(प्रविश्य)

शम्बूकः– जयतु देवः। भगवानगस्त्यो मत्तः श्रुतसन्निधानस्त्वामाह–परिकल्पितावरणमंगला प्रतीक्षते वत्सला लोपामुद्रा, सर्वे महर्षयः। तदेहि।

चिरकाल के बाद, वेदना के आवेग को उत्पन्न करने वाली, सर्वत्र फैले हुए तीव्र विष के रस के समान, कहीं से अत्यधिक वेगपूर्वक चले हुए बाण के अग्रभाग के समान, उत्पन्न हो गयी है गाँठ जिसमें, ऐसे तथा हृदय के मर्मस्थलों में फूटे हुए फोड़े के समान, पुरातन शोक, नया सा होकर, मुझे फिर से व्याकुल कर रहा है।।26।।

(शोक के) उसप्रकार से उत्पन्न होते हुए भी, मैं तो इन भागों को अपने पुराने मित्र के समान देख रहा हूँ। (देखकर) अहो, पदार्थों की स्थिति अत्यधिक अस्थिर हो गयी है, क्योंकि–

जहाँ पहले नदियों का प्रवाह था, इस समय वहाँ पर तट विद्यमान है। वृक्षों की सघनता और विरलता का भाव भी बदल गया है। बहुत समय के अन्तराल के बाद देखा गया, यह वन मुझे दूसरे वन के समान प्रतीत हो रहा है, किन्तु पर्वतों की स्थिति 'यह वही वन है,' इस बुद्धि को दृढ़ कर रही है।।27।।

हाय, हाय, इस स्थान को छोड़ते हुए भी पंचवटी,स्नेह के कारण मुझे मानो बलपूर्वक खींच रही है।

(करुणापूर्वक)

जिस पंचवटी में मैंने उस सीता के साथ, उन सुखमय दिनों को, अपने घर के समान व्यतीत किया था, जिस पंचवटी से सम्बन्धित बड़ी–बड़ी कथाओं को निरन्तर करते हुए ही हम, अयोध्या में स्थित रहते थे। इस समय प्रिया को विनष्ट करने वाला, अकेला पापी राम, उसी पंचवटी को भला कैसे देख सकता है? अथवा उसका अनादर करके यहाँ से कैसे चला जाए?।।28।।

(प्रवेश करके)

शम्बूक– महाराज की जय हो। मुझसे आपके आने का समाचार सुनकर, भगवान् अगस्त्य ने आपसे कहा है कि– 'पूजा की सामग्री को सजाकर, वात्सल्यमयी लोपामुद्रा और सभी महर्षिगण आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसलिए आइए, हम लोगों को कृतार्थ कीजिए। इसके बाद ही अत्यधिक वेग वाले, पुष्पक विमान से अपने देश अयोध्या में पहुँचकर, अश्वमेध यज्ञ में सम्मिलित हो जाइएगा।

सम्भावयास्मान्। अथ प्रजविना पुष्पकेण स्वदेशमुपगत्याश्वमेधसज्जो भव इति।

रामः– यथाज्ञापयति भगवान्।

शम्बूकः– इत इतो देवः।

रामः– (पुष्पकं प्रवर्तयन्) 'भगवति पंचवटि! गुरुजनादेशापरोधात्क्षणं क्षम्यतामतिक्रमो रामस्य।

शम्बूकः– देव! पश्य–

गुंजत्कुंजकुटीरकौशिकघटाघूत्कारवत्कीचक–
स्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुलः क्रौंचाभिधोऽयं गिरिः।
एतस्मिन्प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिताः कूजितै–
रुद्वेल्लन्ति पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः।।29।।

(**अन्वय–**गुंजत्–कुंज–कुटीर–कौशिक–घटा–घूत्कारवत्–कीचक–स्तम्ब–आडम्बर–मूक–मौकुलि–कुलः, क्रौंच–अभिधः, अयम् गिरिः, एतस्मिन् प्रचलताम् प्रचलाकिनाम् कूजितैः उद्वेजिताः कुम्भीनसाः पुराण–रोहिण–तरु–स्कन्धेषु उद्वेल्लन्ति।।29।।)

अपि च,

एते ते कुहरेषु गद्गदनददगोदावरीवारयो,
मेघालम्बितमौलिनीलशिखराः क्षोणीभृतो दाक्षिणाः।
अन्योन्यप्रतिघातसंकुलचलत्कल्लोलकोलाहलै–
रुत्तालास्तु इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्संगमाः।।30।।

(**अन्वय–** कुहरेषु गद्गद–नदद–गोदावरी–वारयः, मेघ–आलम्बित–मौलि–नील–शिखराः, एते ते दाक्षिणाः क्षोणी–भृतः, अन्योन्य–प्रतिघात–संकुल–चलत्–कल्लोल–कोलाहलैः उत्तालाः, इमे तु गभीर–पयसः पुण्याः सरित्–संगमाः (सन्ति)।।30।।)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

।।इति महाकविभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते 'पंचवटीप्रवेशो' नाम द्वितीयोऽङ्कः।।

राम– जैसी भगवान् की आज्ञा।

शम्बूक– महाराज! इधर से, इधर से।

राम– (पुष्पक विमान को प्रवर्तित करते हुए) भगवति पंचवटि! गुरुजनों की आज्ञा के अनुरोध से राम के इस क्षणिक अतिक्रम को क्षमा कीजिएगा।

शम्बूक– महाराज! देखिए,

गूँजते हुए कुँज–कुटीरों में उल्लुओं के समूहों की घू–घू ध्वनि से युक्त, कीचकों के पौरों के शब्दों से मूक हुए कौओं के कुल वाला, यह क्रौंच पर्वत है। यहाँ घूमते हुए मोरों के शब्दों से भयभीत हुए सर्प, पुराने चन्दन के वृक्षों की शाखाओं से लिपट रहे हैं।।29।।

और भी,

पर्वतों की गुफाओं में कल–कल की ध्वनि करती हुई, गोदावरी के जल से युक्त तथा मेघों द्वारा ऊपरी भाग का आश्रय लेने के कारण, नीली चोटियों वाले, ये वे ही दक्षिणा पथ के पर्वत हैं तथा आपस में टकराने से चंचल लहरों के कोलाहल से त्वरित गति से अथाह जल वाले, ये पवित्र नदियों के संगम हैं।।30।।

(ऐसा कहकर सभी निकल जाते हैं)

।। इसप्रकार महाकवि भवभूति विरचित उत्तररामचरित में 'पंचवटी प्रवेश' नामक द्वितीय अंक का डॉ. राकेश शास्त्री, बाँसवाड़ा **द्वारा किया हुआ हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ।।**

।। श्रीः ।।

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति नदीद्वयम्)

एका– सखि मुरले! किमसि सम्भ्रान्तेव?

मुरला– सखि तमसे! प्रेषितास्मि भगवतोऽगस्त्यस्य पत्न्या लोपा–मुद्रया सरिद्वरां गोदावरीमभिधातुम् 'जानास्येव यथा वधूपरित्यागा–त्प्रभृति–

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।।1।।

(अन्वयः– गभीरत्वात् अनिर्भिन्नः अन्तर्गूढ–घन–व्यथः, रामस्य करुणः रसः पुटपाक–प्रतीकाशः (विद्यते)।।1।।)

तेन च तथाविधेष्टजनकष्टविनिपातजन्मना प्रकृष्टगद्गदेन दीर्घशोकसन्तानेन सम्प्रति परिक्षीणो रामभद्रः। तमवलोक्य कम्पितमिव कुसुमसमबन्धनं मे हृदयम्। अधुना च रामभद्रेण प्रतिनिवर्तमानेन नियतमेव पंचवटीवने वधूसहनिवासविस्रम्भसाक्षिणः प्रदेशा द्रष्टव्याः। तत्र च निसर्गधीरस्याप्येवंविधायामवस्थायामतिगम्भीराभोगशोकक्षोभसंवेगा–त्पदेपदे महाप्रमादानि शोकस्थानानि शंकनीयानि। तद्भगवति गोदवरि! त्वया तत्रभवत्या सावधानया भवितव्यम्।

वीचीवातैः सीकरक्षोदशीतैरा–
कर्षद्भिः पद्मकिंजल्कगन्धान्।
मोहे मोहे रामभद्रस्य जीवं
स्वैरं स्वैरं प्रेरितैस्तर्पयेति।।2।।

(अन्वयः– सीकर–क्षोद–शीतैः पद्म–किंजल्क–गन्धान् आकर्षद्भिः स्वैरम् स्वैरम् प्रेरितैः वीची–वातैः रामभद्रस्य मोहे–मोहे जीवम् तर्पय, इति।।2।।)

तृतीय अङ्क

(उसके बाद दो नदियाँ प्रवेश करती हैं)

एक (तमसा)– सखि मुरले! तुम घबराई हुई क्यों हो?

मुरला– सखि तमसे! मुझे भगवान् **अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा** ने नदियों में श्रेष्ठ गोदावरी से कहने के लिए भेजा है कि–'तुम जानती ही हो, वधू सीता के परित्याग से लेकर,

गम्भीरता के कारण, दिखायी न देने वाला, राम का करुणरस, अन्दर ही अन्दर स्थित तीव्रवेदना से युक्त 'पुटपाक' के समान हो गया है।।1।।

इस कारण प्रियतमा सीता पर टूटने वाली, इस घोर विपत्ति से उत्पन्न, अत्यधिक व्याकुल बनाने वाले, दीर्घकालिक शोक से राम बहुत दुर्बल हो गए हैं। उन्हें देखकर पुष्प के कोमल बन्धन वाला, मेरा हृदय काँप सा उठा है। इस समय श्रीराम लौटते हुए, **पंचवटी** में सीता के साथ अपने स्वच्छन्द विहारों के साक्षी, प्रदेशों को अवश्य देखेंगे, ऐसी स्थिति में, प्रबल शोक के आवेग के कारण पग–पग पर असावधानता–जन्य प्रमादों से मूर्च्छा आदि अनेक अनर्थों की सम्भावना है। इसलिए भगवति! गोदावरि, आपको सावधान रहना चाहिए।

इसलिए तुम बार–बार मूर्च्छित राम को जल की छोटी–छोटी बूँदों से शीतल, कमल के पराग कणों का गन्ध लेकर, मन्द–मन्द प्रवाहित होने वाली, वायु द्वारा उन्हें होश में लाना।।2।।

तमसा– उचितमेव दाक्षिण्यं स्नेहस्य। संजीवनोपायस्तु मूलत एव रामभद्रस्य सन्निहितः।

मुरला– कथमिव।

तमसा– तत्सर्वं श्रूयताम्। पुरा किल वाल्मीकितपोवनोपकण्ठात् परित्यज्य निवृत्ते लक्ष्मणे सीतादेवी प्राप्तप्रसववेदनमतिदुःखसंवेगा–दात्मानं गंगाप्रवाहे निक्षिप्तवती। तदैव तत्र द्वारकद्वयं च प्रसूता। भगवतीभ्यां पृथ्वीभागीरथीभ्यामप्युभाभ्यामभ्युपपन्ना रसातलं च नीता। स्तन्यत्यागात्परेण दारकद्वयं च तस्य प्राचेतसस्य महर्षेर्गंगादेव्या समर्पितं स्वयम्।

मुरला– (सविस्मयम्)

ईदृशानां विपाकोऽपि, जायते परमाद्भुतः।
यत्रोपकरणीभावमायात्येवंविधो जनः।।3।।

(अन्वयः– ईदृशानाम् विपाकः अपि परम–अद्भुतः जायते यत्र एवंविधः जनः उपकरणीभावम् आयाति ।।3।।)

तमसा– इदानीं तु शम्बूकवृत्तान्तेनानेन सम्भावितजनस्थानं रामभद्रं सरयूमुखादुपश्रुत्य भगवती भागीरथी, यदेव लोपामुद्रया स्नेहादभिशंकितं तदेवाभिशंक्य सीतासमेता, केनचिदिव गृहाचारव्यपदेशेन गोदावरी–मुपागता।

मुरला– सुष्ठु चिन्तितं भगवत्या भागीरथ्या। 'राजधानीस्थित–स्यास्य खलु तैश्च तैश्च जगतामभ्युदयिकैः कार्यैर्व्यापृतस्य रामभद्रस्य नियताश्चित्तविक्षेपाः। अव्यग्ररयं पुनरस्य शोकमात्रद्वितीयस्य पंचवटीप्रवेशो महाननर्थः' इति। तदर्थं सीतया रामभद्रोऽयमाश्वासनीयः स्यात्।

तमसा– उक्तमत्र भगवत्या भागीरथ्या– 'वत्से देवयजनसम्भवे सीते! अद्य खल्वायुष्मतोः कुशलवयोर्द्वादशस्य जन्मवत्सरस्य सङ्ख्या–मंगलग्रन्थिरभिवर्त्तते। तदात्मनः पुराणश्वशुरमेतावतो मानवस्य राजर्षि–वंशस्य प्रसवितारं सवितारमपहतपाप्मानं देवं स्वहस्तावचितैः पुष्पैरुप–तिष्ठस्व। न त्वामवनि पृष्ठवर्तिनीमस्मत् प्रभावाद्वनदेवता अपि द्रक्ष्यन्ति

तमसा– स्नेह की उदारता उचित ही है। श्रीराम को होश में लाने का उपाय (सीता) तो पास में ही है।

मुरला– वह कैसे?

तमसा– वह सब भी सुनिए। कुछ समय पहले वाल्मीकि आश्रम के निकट, सीता को छोड़कर, लक्ष्मण के लौट जाने पर, अत्यधिक दुःख के वेग से होने वाली, प्रसव की पीड़ा से युक्त उसने, अपने आपको गंगा के प्रवाह में डाल दिया। उसी समय उन्होंने वहाँ पर दो बालकों को जन्म दिया। उनपर अनुग्रह करके, भगवती पृथ्वी और भागीरथी ने उन्हें पाताल लोक पहुँचा दिया, माता का दूध छूटने के पश्चात् गंगा देवी ने उन दोनों बालकों को स्वयं महर्षि वाल्मीकि को समर्पित कर दिया।

मुरला– (आश्चर्यपूर्वक)

इसप्रकार के महानुभावों का परिणाम भी अत्यधिक आश्चर्य से युक्त होता है, जिनमें इसप्रकार के (गंगादि अलौकिक) **लोग सहयोगी भाव को प्राप्त होते हैं।।3।।**

तमसा– किन्तु अब शम्बूक के वृत्तान्त से, **जनस्थान** को अनुगृहीत करने के लिए, राम के आने की सम्भावना को सरयू के मुख से सुनकर, भगवती भागीरथी व लोपामुद्रा ने जिस स्नेह की आशंका की थी, उसी की शंका करके, सीता के साथ, मानो घर के किसी काम के बहाने गोदावरी के पास आई हैं।

मुरला– भगवती भागीरथी ने यह तो अच्छा विचार किया। राजधानी में स्थित और संसार के उन–उन कल्याणकारी कार्यों में व्यस्त रहने के कारण, श्रीराम के चित्त की चंचलता नियन्त्रित थी, किन्तु इस अवसर पर व्यग्र न होने एवं शोकमात्र के साथ में रहने के कारण, राम का पंचवटी में प्रवेश महान् अनर्थकारी है, तो सीता द्वारा श्रीराम को किसप्रकार आश्वस्त किया जाएगा?

तमसा– इस विषय में भगवती भागीरथी ने कहा है कि– यज्ञ भूमि से उत्पन्न हुई, पुत्री सीते! निश्चय ही, आज आयुष्मान् कुश और लव की मांगलिक बारहवीं वर्षगाँठ है, इसलिए अपने पुरातन श्वसुर, विशाल वैवस्वत मनु के राजर्षि वंश की उत्पत्ति करने वाले, पापों का विनाश करने वाले, भगवान् सूर्य की अपने हाथों से चुने हुए पुष्पों

किमुत मर्त्याः' इति। अहमप्याज्ञापिता तमसे! त्वयि प्रकृष्टप्रेमैव वधू-र्जानकी। अतस्त्वमेवास्याः प्रत्यनन्तरीभव' इति। साऽहमधुना यथाऽऽदिष्टमनुतिष्ठामि।

मुरला– अहमप्येतं वृत्तान्तं भगवत्यै लोपामुद्रायै निवेदयामि। रामभद्रोऽप्यागत एवेति तर्कयामि।

तमसा– तदियं गोदावरीह्रदान्निर्गत्य–

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं,
दधती विलोलकबरीकमाननम्।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी–
विरहव्यथेव वनमेति जानकी ।।4।।

(अन्वयः– परि–पाण्डु–दुर्बल–कपोल–सुन्दरम्, विलोल–कबरीकम् आननम् दधती, जानकी करुणस्य मूर्तिः अथवा शरीरिणी विरहव्यथा इव वनम् एति।।4।।)

मुरला– इयं हि सा?

किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद्विप्रलूनं,
हृदयकमलशोषी दारुणो दीर्घशोकः।
ग्लपयति परिपाण्डु क्षाममस्याः शरीरं,
शरदिज इव घर्मः केतकीगर्भपत्रम्।।5।।

(अन्वयः– हृदय–कमल–शोषी, दारुणः दीर्घ–शोकः, बन्धनात् विप्रलूनम्, मुग्धम् किसलयम् इव परिपाण्डु–क्षामम् अस्याः शरीरम् शरदिजः इव घर्मः केतकी–गर्भ–पत्रम् ग्लपयति।।5।।)

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ते)

इति शुद्ध विष्कम्भकः

(नेपथ्ये)

जात! जात!

(ततः प्रविशति पुष्पावचयव्यग्रा सकरुणौत्सुक्यमाकर्णयन्ती सीता)

सीता– **अहो जानामि 'प्रियसखी वासन्ती व्याहरतीति'।**[1]

---

[1]. अम्हेह, जाणामि– 'पिअसही वासन्दी व्याहरदि' त्ति।

से पूजा करो। मेरे प्रभाव से पृथ्वी पर रहती हुई तुम्हें वन के देवता भी नहीं देख सकते हैं, फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या है? और उन्होंने मुझे भी आज्ञा दी है कि हे तमसे! वधू सीता तुमसे अत्यधिक प्रेम करती है। इसलिए तुम ही इसके साथ रहना। अतः वह मैं अब उनकी आज्ञा के अनुसार करती हूँ।

मुरला– मैं भी इस समाचार को भगवती लोपामुद्रा से निवेदन करती हूँ। ऐसा सोचती हूँ कि–श्रीराम भी आ ही गए हैं।

तमसा– तो यह गोदावरी के अगाध जल से निकलकर–

विरह से पीले और दुर्बल कपोलों से सुन्दर एवं बिखरे हुए केशों से युक्त, मुख को धारण करती हुई, जानकी करुण की मूर्ति अथवा शरीर को धारण करने वाली विरह–व्यथा के समान, वन में आ रही हैं।।4।।

मुरला– यह वह सीता है?

हृदयरूपी कमल को सुखाने वाला, कठोर दीर्घकालिक शोक, डंठल से टूटे हुए, कोमल किसलय के समान, दुर्बल एवं पीले इसके शरीर को, उसीप्रकार सुखा रहा है, जैसे– शरद्ऋतु की कड़ी धूप केतकी के पुष्प के भीतरी भाग के कोमल पत्ते को सुखा देती है।।5।।

(ऐसा कहकर घूमकर चली जाती हैं)

।। इसप्रकार **शुद्ध विष्कम्भक** पूर्ण हुआ।।

(नेपथ्य में)

हे पुत्र! हे पुत्र!

(उसके बाद पुष्पों को चुनने में व्यस्त, करुणा एवं उत्सुकता के साथ सुनती हुई, सीता प्रवेश करती है)

सीता– अरे! समझती हूँ कि यह मेरी प्रिय सखी वासन्ती बोल रही है।

(पुनर्नेपथ्ये)

सीतादेव्या स्वकरकलितैः सल्लकीपल्लवाग्रै–
रग्रे लोलः करिकलभको यः पुरा वर्धितोऽभूत्।

सीता– किं तस्य?[1]

(पुनर्नेपथ्ये)

वध्वा सार्धं पयसि विहरन् सोऽयमन्येन दर्पा–
दुद्दामेन द्विरदपतिना सन्निपत्याभियुक्तः।।6।।

(अन्वयः– पुरा अग्रे लोलः यः करि–कलभकः सीता–देव्या स्व–कर– कलितैः, सल्लकी–पल्लव–अग्रैः वर्धितः अभूत्। सः अयम् वध्वा सार्धम् पयसि विहरन्, अन्येन उद्दामेन द्विरद–पतिना दर्पात् सन्निपत्य अभियुक्तः।।6।।)

सीता– (ससंभ्रमं कतिचित्पदानि गत्वा) **आर्यपुत्र! परित्रायस्व परित्रायस्व मम पुत्रकम्।** (विचिन्त्य) **हा धिक्, हा धिक्। तान्येव चिरपरिचितान्यक्षराणि पंचवटदर्शनेन मां मन्दभागिनीमनुबध्नन्ति हा आर्यपुत्र!**[2] (इति मूर्च्छति)।

(प्रविश्य)

तमसा– **समाश्वसिहि समाश्वसिहि।**

(नेपथ्ये)

विमानराज! अत्रैव स्थीयताम्।

सीता– (ससाध्वसोल्लासम्) **अहो, जलभरभरितमेघमन्थ–रस्तनितगम्भीरमांसलः कुतो नु भारतीनिर्घोषो भ्रियमाणकर्णविवरां मामपि मन्दभागिनीं झटित्युत्सुकयति?**[3]

तमसा– (सस्मितास्रम्) **अयि वत्से!**

अपरिस्फुटनिक्वाणे, कुतस्त्येऽपि त्वमीदृशी।
स्तनयित्नोर्मयूरीव, चकितोत्कण्ठितं स्थिता।।7।।

---

1. किं तस्स?
2. अज्जउत्त! परित्ताहि परित्ताहि मह पुत्तअम्। हद्धी हद्धी! ताइं एव्व चिरपरि–इदाइं अक्खराइं पंचवटीदंसणेण मं मण्दभाइणिं अनुबन्धन्ति। हा अज्जउत्त!
3. अम्हहे, जलभरभरिअमेहमन्थरत्थणि अगम्भीरमंसलो कुदो णु भारईणिग्घासो भरन्तकण्णंविवरं मं वि मन्दभाइणिं भत्ति उस्सुआवेइ?

(फिर से नेपथ्य में)

पूर्व में सीता देवी ने चंचल, जिस हाथी के बच्चे को अपने हाथों के अग्रभाग से 'सल्लकी' लता के कोमल पत्ते दे–देकर पाला था।

सीता– उसका क्या हुआ?

(फिर से नेपथ्य में)

अपनी पत्नी के साथ जल में विहार करता हुआ वह, दूसरे किसी उच्छृंखल हाथी द्वारा दर्प से आक्रान्त किया जा रहा है।।6।।

सीता– (घबराई हुई कुछ पग चलकर) आर्यपुत्र! मेरे पुत्र को बचाइए। बचाइए। (सोचकर) हा धिक्, हा धिक्, पंचवटी को देखने से वे ही चिरपरिचित अक्षर, मुझ मन्दभागिनी का अनुसरण कर रहे हैं। हा आर्यपुत्र (यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है)

(प्रवेश करके)

तमसा– धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो।

(नेपथ्य में)

हे विमानराज! यहीं पर रुक जाओ।

सीता– (घबराकर, प्रसन्नतापूर्वक) अहो! जल के भार से परिपूर्ण मेघ के मन्द–मन्द गर्जन के समान, गम्भीर तथा प्रभावशाली वाणी की ध्वनि, कहाँ से आकर मेरे कर्णकुहरों को भरती हुई, मुझ मन्दभागिनी को भी शीघ्र ही उत्सुक कर रही है?

तमसा– (मुस्कराहट के साथ अश्रुपूर्वक) अरी, पुत्रि!

मेघ की गड़गड़ाहट से चकित और उत्कण्ठित मोरनी के समान तुम भी कहीं से आ रहे, इस अस्पष्ट शब्द को सुनकर, चकित एवं उत्कण्ठित हो रही हो।।7।।

(अन्वयः– स्तनयित्नोः मयूरी इव, त्वम् कुतस्त्ये अ–परिस्फुट–निक्वाणे अपि, ईदृशी चकित–उत्कण्ठितम् स्थिता।।7।।)

सीता– भगवति! किं भणस्यपरिस्फुटेति! स्वरसंयोगेन प्रत्यभि–जानामि, नन्वार्यपुत्रेणैवेतद्व्याहृतम्।[1]

तमसा– श्रूयते– 'तपस्यतः कल शूद्रस्य दण्डधारणार्थमैक्ष्वाको राजा दण्डकारण्यमागतः' इति।

सीता– दिष्ट्या अपरिहीनराजधर्मः खलु स राजा।[2]

(नेपथ्ये)

यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बान्धवो मे,
यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम्।
एतानि तानि बहुकन्दरनिर्झराणि,
गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि।।8।।

(अन्वयः– यत्र द्रुमाः अपि, मृगाः अपि मे बान्धवः, प्रिया–सहचरः यानि चिरम् अध्यवात्सम्, एतानि बहु–कन्दर–निर्झराणि गोदावरी–परिसरस्य गिरेः तानि तटानि (सन्ति)।।8।।)

सीता– दिष्ट्या कथं प्रभातचन्द्रमण्डलापाण्डुपरिक्षाम दुर्बलेना–कारेण निजसौम्यगम्भीरानुभावमात्रप्रत्यभिज्ञेय आर्यपुत्र एव भवति? भगवति तमसे! धारय माम्।[3] (इति तमसामाश्लिष्य मूर्च्छति)

तमसा– वत्से! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि।

(नेपथ्ये)

अनेन पंचवटीदर्शनेन–

अन्तर्लीनस्य दुःखाग्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यतः।
उत्पीड इव धूमस्य, मोहः प्रागावृणोति माम्।।9।।

(अन्वयः– अन्तर्लीनस्य अद्य उद्दामम् ज्वलिष्यतः दुःख–अग्नेः, धूमस्य उत्पीडः इव मोहः माम् प्राक् आवृणोति।।9।।)

---

1. भअवदि! किं भणसि अपरिप्फुडेत्ति? सरसंजोएण पच्चहिजाणामि, णं अज्ज–उत्तेण एव्व एदं वाहरिदम्।

2. दिट्ठिआ अपरिहीणधम्मो सो राआ।

3. दिट्ठिआ कहं पहादचन्दमण्डलापण्डपरिक्खामदुव्वलेन आआरेण णिअसोम्हगम्भीरा–णभावमेत्तच्चहिजेज्जो अज्जउत्तो एव्व होदि? भअवदि तमसे! धारेहि माम्।

सीता– भगवति! आप क्या कह रही हैं, अस्पष्ट शब्द है? स्वर के संयोग से मैं पहचान रही हूँ कि– निश्चय ही, यह आर्यपुत्र द्वारा कहा गया है।

तमसा– सुना जाता है कि तपस्या करते हुए, शूद्र को दण्ड देने के लिए वे इक्ष्वाकु वंश के राजा दण्डकारण्य में आए हैं।

सीता– सौभाग्य से, वह राजा वस्तुतः धर्म से विहीन नहीं है।

(नेपथ्य में)

जहाँ पर वृक्ष और पशु भी मेरे बन्धु थे, जिनमें मैंने अपनी प्रियतमा के साथ, बहुत दिनों तक निवास किया था, ये वे ही अनेक गुफाओं तथा झरणों से युक्त, गोदावरी के निकटवर्ती पर्वत के तट प्रदेश हैं।।8।।

सीता– सौभाग्य से, प्रातःकाल के चन्द्रमण्डल के समान, कुछ शुभ्र, क्षीण और दुर्बल आकृति वाले, आर्यपुत्र अपने गम्भीर और शान्त प्रभावमात्र से ही पहचानने के योग्य हो गए हैं। भगवति तमसे! मुझे सम्भालिए।

(यह कहकर तमसा से लिपटकर मूर्च्छित हो जाती है)

तमसा– पुत्रि! धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो।

(नेपथ्य में)

इस पंचवटी को देखने से,

अन्दर ही अन्दर छिपी हुई, आज भड़ककर जलने वाली, दुःख की अग्नि के धूम–पिण्ड के समान, मोह मुझे पहले ही आवृत्त कर रहा है।।9।।

हा प्रिये जानकि!

तमसा– (स्वगतम्) **इदं तावदाशंकितं गुरुजनेन।**

सीता– (समाश्वस्य) **हा, कथमेतत्?**[1]

(पुनर्नेपथ्ये)

हा देवि दण्डकारण्यवासप्रियसखि विदेहराजपुत्रि! (इति मूर्च्छति)

सीता– हा धिक्, हा धिक्। मां मन्दभागिनीं व्याहृत्यामीलित–नेत्रनीलोत्पलो मूर्च्छित एव। हा, कथं धरणीपृष्ठे निरुद्धनिः श्वासनिःसहं विपर्यस्तः। भगवति तमसे! परित्रायस्व, परित्रायस्व। जीवयार्यपुत्रम्।[2]

(इति पादयोः पतति)

तमसा–

त्वमेव ननु कल्याणि! संजीवय जगत्पतिम्।
प्रियस्पर्शो हि पाणिस्ते, तत्रैष निरतो जनः।।10।।

(अन्वयः– कल्याणि! त्वम् एव ननु जगत्–पतिम् संजीवय, हि ते पाणिः प्रिय–स्पर्शः, तत्र एष जनः निरतः।।10।।)

सीता– यद्भवतु तद्भवतु। यथा भगवत्याज्ञापयति।[3]

(इति ससंभ्रमं निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति भूम्यां निपतितः सास्रया सीतया स्पृश्यमानः साह्लादोच्छ्वासो रामः)

सीता– (किंचित्सहर्षम्) **जाने पुनः प्रत्यागतमिव जीवितं त्रैलोक्यस्य।**[4]

रामः– हन्त भोः किमेतत्?

आश्च्योतनं नु हरिचन्दनपल्लवानां?
निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजो नु सेकः?
आतप्तजीवितमनः परितर्पणोऽयं,
संजीवनौषधिरसो हृदि नु प्रसिक्तः।।11।।

---

1. हा, कहं एदम्?
2. हद्धी हद्धी! मं मन्दभाइणिं वाहरिअ आमीलिदणेत्तणीं लुप्पलो मुच्छिदो एव्व! हा, कहं धरणिपट्ठि णिरुद्धणिस्सासणीसहं विपल्हत्थो? भअवदि तमसे! परित्ताएहि परित्ताएहि। जीवावेहि अज्जउत्तम्।
3. जं होदु त होदु। जइ भअवई आणवेई।
4. आणे उण पच्चाअदं विअ जीविअं तेल्लोअस्स।

हाय, प्रिये जानकि!

तमसा– (मन में) गुरुजनों ने इसी की तो आशंका की थी।

सीता– (आश्वस्त होकर) हाय, यह कैसे?

(फिर से नेपथ्य में)

हा देवि! दण्डकारण्य के निवास की प्रिय सखि! विदेहराज की पुत्रि! (यह कहकर मूर्च्छित हो जाते हैं)

सीता– हाय, धिक्कार है, धिक्कार है, मुझ मन्दभागिनी का नाम लेकर, नीलकमल के समान, नेत्रों को बन्द करके, आर्यपुत्र मूर्च्छित हो गए हैं। हाय! अवरुद्ध हुए श्वास वाले, दुर्बलता के कारण पृथ्वी पर कैसे गिर पड़े हैं? भगवति तमसे! रक्षा करो, रक्षा करो, आर्यपुत्र को जिला दो।

(यह कहकर चरणों में गिर जाती है)

तमसा– हे कल्याणि! तुम ही अपने हाथ के स्पर्श से संसार के स्वामी श्रीराम को जीवित करो, क्योंकि तुम्हारे हाथ का स्पर्श अत्यन्त प्रिय है, ये उसी के अभ्यस्त हैं।।10।।

सीता– जो होना हो, वह हो जाए। जैसी आपकी आज्ञा है, वैसा ही करती हूँ।

(ऐसा कहकर घबराहट के साथ निकल जाती है)

(उसके बाद, भूमि पर पड़े हुए, रोती हुई सीता द्वारा स्पर्श किए जाते हुए एवं प्रसन्नतापूर्वक श्वास लेते हुए राम प्रवेश करते हैं)

सीता– (कुछ प्रसन्नतापूर्वक) मेरा ऐसा मानना है, मानो तीनों लोकों के प्राण लौट आए हैं।

राम– अरे! आश्चर्य है, यह क्या है?

क्या मेरे हृदय पर हरिचन्दन के नूतन पल्लवों का रस लगाया गया है? अथवा चन्द्रमा के किरणरूपी अंकुरों को निचोड़कर, उनके रस से सेक किया गया है? या फिर क्या मेरे सन्तप्त मन एवं प्राण को तृप्त करने वाला, संजीवनी ओषधि का रस ही प्रकृष्टरूप से सींच दिया गया है?।।11।।

(अन्वयः—हृदि हरिचन्दन—पल्लवानाम् आश्च्योतनम् नु?निष्पीडित—इन्दु—कर—कन्दल—जः सेकः नु ? आतप्त—जीवित—मनः परितर्पणः अयम् संजीवन—औषधि—रसः प्रसिक्तः नु? ।।11।।)

अपि च—

स्पर्शः पुरा परिचितो नियतं स एव,
संजीवनश्च मनसः परितोषणश्च।
सन्तापजां सपदि यः परिहृत्य मूर्च्छा—
मानन्दनेन जडतां पुनरातनोति।।12।।

(अन्वयः— पुरा परिचितः संजीवनः, मनसः च परितोषणः च नियतम्, सः एव स्पर्शः, यः सन्तापजाम् मूर्च्छाम् परिहृत्य, सपदि आनन्दनेन पुनः जडताम् आतनोति।।12।।)

सीता— (ससाध्वसकरुणमुपसृत्य) **एतावदेवेदानीं मम बहुतरम्।**[1]

रामः— (उपविश्य) **न खलु वत्सलया देव्याभ्युपपन्नोऽस्मि?**

सीता— हा धिक्, हा धिक्। किमित्यार्यपुत्रो मां मार्गिष्यति?[2]

रामः— भवतु, पश्यामि।

सीता— भगवति तमसे! अपसरावस्तावत्। मां प्रेक्ष्यानभ्यनुज्ञातेन सन्निधानेन राजाऽधिकं कोपिष्यति।[3]

तमसा— अयि वत्से! भगीरथीप्रसादाद्वनदेवतानामप्यदृश्यासि संवृत्ता।

सीता— अस्ति खल्वेतत्?[4]

रामः— हा प्रिये जानकि!

सीता— (समन्युगदगदम्) **आर्यपुत्र! असदृशं खल्वेतदस्य वृत्तान्तस्य।** (सास्रम्) **भगवति! किमिति वज्रमयी जन्मान्तरेष्वपि पुररप्यसम्भावितदुर्लभदर्शनस्य मामेव मन्दभागिनीमुद्दिश्यमैवं वत्सलस्यैवं**

---

1 . एत्तिअं एव्व दाणिं मह बहुदरम्।

2 . हद्धी हद्धी! किंति अज्जउत्तो मे मग्गिस्सदि?

3 . भअवदि तमसे! ओसरह्म दाव। मं पेक्खिअ अणब्भणुण्णादेण संणिहाणेण राआ अहिअं कुपिस्सदि।

4 . अत्थि क्खु एदम्?

और भी,

पूर्व में परिचित जिलाने वाला, मन को सन्तुष्ट करने वाला, निश्चय ही यह वही स्पर्श है, जो सन्ताप से उत्पन्न मूर्च्छा को दूर करके, उसी समय प्राप्त होने वाले, आनन्द के माध्यम द्वारा, फिर से जड़ता को फैला रहा है।।12।।

सीता— (घबराहट एवं करुणा के साथ पास जाकर) इस समय मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है।

राम— (बैठकर) कहीं स्नेहमयी देवी द्वारा तो मैं अनुगृहीत नहीं हुआ हूँ?

सीता— हाय, धिक्कार है, धिक्कार है। क्या आर्यपुत्र अब मुझे खोजेंगे?

राम— ठीक है, देखता हूँ।

सीता— भगवति तमसे! तब तक हम दोनों यहाँ से हट जाते हैं। अन्यथा आज्ञा के अभाव में मुझे यहाँ उपस्थित देखकर, महाराज अधिक क्रोध करेंगे।

तमसा— अयि, पुत्रि! तुम तो गंगा की कृपा से वन देवताओं के लिए भी अदृश्य हो गयी हो।

सीता— क्या ऐसा ही है?

राम— हा प्रिये! जानकि!

सीता— (प्रणयकोप से गदगद् स्वर में) आर्यपुत्र! आपका यह कथन त्यागरूप वृत्तान्त के अनुरूप नहीं है। (अश्रुपूर्वक) हे भगवति! दूसरे जन्म में भी जिनके दर्शनों की मुझे सम्भावना नहीं थी, जिनका दर्शन मेरे लिए सर्वथा दुर्लभ था, मुझ मन्दभागिनी को स्मरण करके,

---

अभिव्यक्त हुआ है।

महाकवि का पुनर्जन्म में गहन विश्वास राम की मनःस्थिति का मनो—

साथ ही, प्रस्तुत तृतीय अंक सीता और महाकवि भवभूति को

वैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत करता है। अतः इस आधार पर

उत्कृष्ट मनोवैज्ञानिक भी कहा जा सकता है।

वादिन आर्यपुत्रस्योपरि निरनुक्रोशा भविष्यामि? अहमेवैतस्य हृदयं जानामि, ममाप्येषः।[1]

रामः– (सर्वतोऽवलोक्य सनिर्वेदम्।) हा, न किंचिदत्र।

सीता– भगवति! निष्कारणपरित्यागिनोऽप्येतस्य दर्शनेनैवंविधेन कीदृशी मे हृदयावस्था! इति न जानामि, न जानामि।[2]

तमसा– जानामि वत्से! जानामि।

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशा–
द्वियोगे दीर्घेऽस्मिन्झटिति घटनात्स्तम्भितमिव।
प्रसन्नं सौजन्याद्दयितकरुणैर्गाढ़करुणं
द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव।।13।।

(अन्वयः– तव हृदयम् अस्मिन् क्षणे नैराश्यात् तटस्थम्, अपि च विप्रिय–वशात् कलुषम् इव, दीर्घे अस्मिन् वियोगे झटिति घटनात् स्तम्भितम् इव, सौजन्यात् प्रसन्नम् (इव) दयित–करुणैः गाढ़–करुणम् प्रेम्णा द्रवीभूतम् इव (विद्यते)।।13।।)

रामः– देवि!

प्रसाद इव मूर्तस्ते, स्पर्शः स्नेहार्द्रशीतलः।
अद्याप्यानन्दयति मां, त्वं पुनः क्वासि नन्दिनि?।14।।

(अन्वयः– स्नेह–आर्द्र–शीतलः ते स्पर्शः, मूर्तः प्रसादः इव, माम् अद्य अपि आनन्दयति, नन्दिनि! त्वम् पुनः क्व असि?।14।।)

सीता– एते खल्वगाधमानसंदर्शितस्नेहसम्भारा आनन्दनिष्यन्दिनः सुधामया आर्यपुत्रस्योल्लापाः। जाने, प्रत्ययेन निष्कारणपरित्यागशल्यि–तोऽपि बहुमतो मम जन्मलाभः।[3]

---

1. अज्जउत्त! असरिसं क्खु एदं इमस्स वुत्तन्दस्स। भअवदि। किंति वज्जमई जम्मन्तरेसु वि पुणो वि असंभाविअदुल्लहदंसणस्स मं एव्व मन्दभाइणिं उद्दिसिअ एव्वं वच्छलस्स एव्वं वादिणो अज्जउत्तस्स उवरि णिरणुक्कोसा भविस्सम्? अहं एव्व एदस्स हिअअं जाणामि, महवि एसो।

2. भअवदि! णिक्कारणपरिच्चाइणा वि एदस्स दंसणेण एव्वंविधेण कीलिसी मे हिअआवत्था? त्तिण आणामि, ण आणामि।

3. एदे क्खु अगाधमाणसदंसिदसिणेहंसंभारा आणन्दणिस्सन्दिणो सुहामआ अज्जउत्तस्स उल्लावा। जाणे पच्चएण णिक्कालणपरिच्चिआसल्लिदोवि बहुमदो मह जम्मलाहो।

स्नेह से इसप्रकार कहने वाले, आर्यपुत्र पर मैं कठोर कैसे हो सकूँगी? क्योंकि मैं ही इनके हृदय को जानती हूँ और ये मेरे हृदय को जानते हैं।

राम– (राम चारों ओर देखकर, कष्टपूर्वक) हाय, यहाँ तो कुछ भी नहीं है।

सीता– हे भगवति! बिना किसी कारण के ही मेरा त्याग करने वाले, इन्हें इस दशा में देखकर, न जाने मेरा हृदय कैसा हो रहा है? वह मैं नहीं जानती हूँ, न ही जान पा रही हूँ।

तमसा– जानती हूँ, पुत्रि! जानती हूँ।

तुम्हारा हृदय इस क्षण में निराशा के कारण उदासीन सा और बिना किसी कारण के परित्याग से कलुषित सा, इस दीर्घ वियोग में अकस्मात् ही मिलन होने से स्तब्ध सा, राम के सौजन्य से प्रसन्न के समान, प्रिय के करुणामय विलापों के कारण शोकाकुल एवं प्रेम से मानो द्रवित सा हो रहा है।।13।।

राम– हे देवि! (सीते)

प्रेम से आर्द्र एवं शीतल तुम्हारा स्पर्श मूर्तिमान् अनुग्रह के समान, मुझे इस समय भी आनन्दित कर रहा है। हे आनन्द प्रदान करने वाली सीते! तुम कहाँ हो?।14।।

सीता– अत्यन्त गम्भीर मन से प्रेम को प्रदर्शित करने वाले, आनन्द की वर्षा करने वाले, आर्यपुत्र के उच्च स्वर से किए गए ये विलाप, निश्चय ही अमृत की वर्षा करने वाले हैं। इन विलापों के विश्वास से मैं ऐसा मानती हूँ कि अकारण ही परित्यागरूपी शल्य से बिंधे होने पर भी, मेरा जन्म ग्रहण करना अत्यन्त सार्थक है।

प्रस्तुत अंक में महाकवि ने श्रीराम तथा भगवती सीता के अन्तर्द्वन्द्व को भी अत्यन्त प्रभावी शैली में प्रस्तुत किया है। सम्पूर्ण अंक में करुणरस का प्रवाह प्रमुख रूप से दर्शनीय कहा जा सकता है।

रामः– अथवा कुतः प्रियतमा? नूनं संकल्पाभ्यासपाटवोपादान एष भ्रमो रामभद्रस्य।

(नेपथ्ये)

अहो, महान् प्रमादः। (सीतादेव्याः स्वकरकलितैः, इत्यर्धं पठ्यते।)

रामः– (सकरुणौत्सुक्यम्) **किं तस्य?**

(पुनर्नेपथ्ये) (वध्वा सार्धम्, इत्युत्तरार्धं पठयते।)

सीता– क इदानीमभियुज्यते?[1]

रामः– क्वासौ दुरात्मा? यः प्रियायाः पुत्रं वधूद्वितीयमभिभवति।

(इत्युत्तिष्ठति)

(प्रविश्य)

वासन्ती– (सम्भ्रान्ता।) **देव! त्वर्यताम्।**

सीता– हा, कथं मे प्रियसखी वासन्ती?[2]

रामः-- कथं देव्याः प्रियसखी वासन्ती?

वासन्ती– देव! त्वर्यतां त्वर्यताम्। इतो जटायुशिखरस्य दक्षिणेन सीतातीर्थेन गोदावरीमवतीर्य सम्भावयतु देव्याः पुत्रकं देवः।

सीता– हा तात जटायो! शून्यं त्वया विनेदं जनस्थानम्।[3]

रामः– अहह! हृदयमर्मच्छिदः खल्वमी कथोद्घाताः।

वासन्ती– इत इतो देवः।

सीता– भगवति! सत्यमेव वनदेवतापि मां न पश्यति।[4]

तमसा– अयि वत्से! सर्वदेवताभ्यः प्रकृष्टतममैश्वर्यं मन्दाकिन्याः। तत्किमिति विशंकसे?

सीता– ततोऽनुसरावः।[5] (इति परिक्रामति)

रामः– (परिक्रम्य) **भगवति गोदावरि! नमस्ते।**

---

1. को दाणिं अभिजुज्जइ?
2. हा कहं मे पिअसही वासन्ती?
3. हा ताद जडाओ? सुण्ण तुए विणा इदं जणट्ठाणम्।
4. भअवदि! सच्चं एव्व वणदेवदावि मं ण पेक्खदि।
5. तदो अणुसरह्य।

राम– अथवा यहाँ पर प्रियतमा कहाँ से आ सकती है? निश्चय ही, निरन्तर चिन्तन के अभ्यास से उत्पन्न होने वाला, यह मुझ राम का भ्रम ही है।

(नेपथ्य में)

अहो, महान् प्रमाद है, महान् प्रमाद है।

(ऐसा कहकर 'सीतादेव्या स्वकरकलितैः, इत्यादि श्लोक फिर से पढ़ा जाता है)

राम– (करुणा एवं उत्कण्ठापूर्वक) उसका क्या हुआ?

(फिर से नेपथ्य में)

('वध्वा सार्धं' इत्यादि उत्तरार्द्ध पढ़ा जाता है)

सीता– उससे इस समय कौन लड़ रहा है?

राम– वह दुरात्मा कहाँ है? जो प्रिया सीता के, पत्नी सहित पुत्र पर आक्रमण कर रहा है। (ऐसा कहकर उठ जाते हैं)

(प्रवेश करके)

वासन्ती– (घबराहटपूर्वक) महाराज! शीघ्रता कीजिए।

सीता– हा, क्या मेरी प्रिय सखी वासन्ती है?

राम– क्या देवी की प्रियसखी वासन्ती हैं?

वासन्ती– महाराज! शीघ्रता कीजिए, शीघ्रता कीजिए, यहाँ से 'जटायु शिखर' के दायीं ओर 'सीता–तीर्थ' से गोदावरी में उतरकर, आप देवी सीता के पुत्र की रक्षा कीजिए।

सीता– हाय, तात जटायु! आपके बिना यह जनस्थान सूना हो गया है।

राम– अहह! ये बीती हुई बातें, हृदय के मर्मस्थलों को भेदने वाली हैं।

वासन्ती– महाराज! इधर से, इधर से।

सीता– भगवति! सचमुच, वनदेवी भी मुझे नहीं देख रही हैं।

तमसा– पुत्रि! गंगाजी का प्रभाव सभी देवों से बढ़कर है। फिर तुम शंका क्यों कर रही हो?

सीता– तब तो हम दोनों इनके पीछे चलते हैं।

(यह कहकर घूमती हैं)

राम– (घूमकर) हे भगवति, गोदावरि! आपको नमस्कार है।

वासन्ती– (निरूप्य) **देव! मोदस्व विजयिना वधूद्वितीयेन देव्याः पुत्रकेण।**

रामः– **विजयतामायुष्मान्।**

सीता– **अहो! ईदृशो मे पुत्रकः संवृत्तः?**[1]

रामः– **हा देवि! दिष्ट्या वर्धसे।**

येनोद्गच्छद्विसकिसलयस्निग्धदन्ताङ्कुरेण,
व्याकृष्टस्ते सुतनु! लवलीपल्लवः कर्णमूलात्।
सोऽयं पुत्रस्तव मदमुचां वारणानां विजेता,
यत्कल्याणं वयसि तरुणे भाजनं तस्य जातः।।15।।

(अन्वयः– सुतनु! उद्गच्छत् विस–किसलय–स्निग्ध–दन्त–अङ्कुरेण येन, ते कर्ण–मूलात् लवली–पल्लवः व्याकृष्टः, सः अयम् तव पुत्रः मद–मुचाम् वारणानाम् विजेता (सत्), तरुणे वयसि यत् कल्याणम् तस्य भाजनम् जातः।।15।।)

सीता– **अवियुक्त इदानीं दीर्घायुरनया सौम्यदर्शनया भवतु।**[2]

रामः– **सखि वासन्ति! पश्य, पश्य, कान्तानुवृत्तिचातुर्यमपि शिक्षितं वत्सेन।**

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु संपादिताः,
पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसंक्रान्तयः।
सेकः शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुन–
र्यत्स्नेहादनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम्।।16।।

(अन्वयः– यत् स्नेहात् लीला–उत्खात–मृणाल–काण्ड–कवल–च्छेदेषु, पुष्यत्–पुष्कर–वासितस्य पयसः, गण्डूष–संक्रान्तयः संपादिताः, शीकरिणा करेण कामम् सेकः विहितः, पुनः विरामे अनराल–नाल–नलिनी–पत्र–आतपत्रम् धृतम्।।16।।)

सीता– **भगवति तमसे! अयं तावद् ईदृशो जातः। तौ पुनर्न जानम्येतावता कालेन कुशलवौ कीदृशौ संवृत्ताविति?**[3]

---

1. अह्महे! ईदिसो मे पुत्तओ संवुत्तो?
2. अविउत्तो दाणिं दीहाऊ इमाए सोह्मदंसणाए होदु
3. भअवदि तमसे! अयं दाव ईरिसो जादो। दे उण ण आणामि, एत्तिएण कालेण कुसलवा कीरिसा संवुत्तेति?

वासन्ती– (देखकर) महाराज! सीता के पत्नी सहित विजयी पुत्र के दर्शन से आप प्रसन्न होइए।

राम– चिरंजीव! विजयी होओ।

सीता– अरे, मेरा पुत्र इतना बड़ा हो गया है।

राम– अहा देवि! सौभाग्य से तुम वृद्धि को प्राप्त कर रही हो।

हे सुन्दरि! उगते हुए मृणाल पल्लव के समान, स्निग्ध दाँतों रूपी अंकुर वाले, जिस हाथी के बच्चे ने तुम्हारे कर्णमूल से लवली लता के पत्ते को खींच लिया था, यह वह तुम्हारा पुत्र अब मदजल को बहाने वाले, हाथियों का विजेता होकर, युवावस्था में प्राप्त होने वाले, सुख का पात्र हो गया है।।15।।

सीता– अब यह दीर्घायु, प्रिय दर्शनों वाली, अपनी पत्नी से वियुक्त न होवे।

राम– सखि, वासन्ति! देखो, देखो, इस पुत्र ने तो प्रियतमा को प्रसन्न करने की कला (चातुर्य) को भी सीख लिया है।

जो कि इसने प्रेम के कारण अनायास ही उखाड़े गए, कमल दण्ड के ग्रासों के अन्त में खिले हुए, कमलों से सुगन्धित, अपने मुख के जल को अपनी प्रियतमा के मुख में छोड़ दिया और उसके बाद, जल की बूँदें छोड़ने वाली, सूँड़ से पर्याप्तरूप से सिंचन किया एवं अन्त में अत्यधिक स्नेहपूर्वक एक सीधी नाल वाले, कमल के पत्ते के छाते को, उसके ऊपर धारण कर लिया है।।16।।

सीता– भगवति, तमसे! यह तो इतना बड़ा हो गया है, न जाने इतने दिनों में वे कुश और लव कैसे हो गए होंगे?

सीता द्वारा पुत्रवत् पाले गए, गजशावक की अपनी प्रियतमा के साथ की गयी शृंगारिक अठखेलियों का महाकवि ने सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। कवि की चित्रात्मक शैली भी दर्शनीय है।

तमसा– यादृशोऽयं, तादृशौ तावपि।

सीता– ईदृश्यस्मि मन्दभागिनी, यस्याः न केवलमार्यपुत्रविरहः, पुत्रविरहोऽपि।[1]

तमसा– भवितव्यतेयमीदृशी।

सीता– किं वा मया प्रसूतया? येनैतादृशं मम पुत्रकयोरीषद्विरल–धवलदशनकुड्मलोज्ज्वलमनुबद्धमुग्धकाकलीविहसितं नित्योज्ज्वलं मुख–पुण्डरीकयुगलं न परिचुम्बितमार्यपुत्रेण।[2]

तमसा– अस्तु देवताप्रसादात्।

सीता– भगवति तमसे! एतेनापत्यसंस्मरणेनोच्छ्वसितप्रस्नुतस्तनी इदानीं वत्सयोः पितुः सन्निधानेन क्षणमात्रं संसारिणी संवृत्तास्मि।[3]

तमसा– किमत्रोच्यते? प्रसवः खलु प्रकृष्टपर्यन्तः स्नेहस्य। परं चैतदन्योन्यसंश्लेषणं पित्रोः।

अन्तःकरणतत्त्वस्य, दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति पठ्यते।।17।।

(अन्वयः– दम्पत्योः अन्तःकरण–तत्त्वस्य स्नेह–संश्रयात्, अयम् एकः आनन्द–ग्रन्थिः 'अपत्यम्' इति पठ्यते।।17।।)

वासन्ती– इतोऽपि देवः पश्यतु।

अनुदिवसमवर्धयत्प्रिया ते,
यमचिरनिर्गतमुग्धलोलबर्हम्।
मणिमुकुट इवोच्छिखः कदम्बे,
नदति स एष वधूसखः शिखण्डी।।18।।

(अन्वयः– अचिर–निर्गत–मुग्ध–लोलबर्हम् यम्, ते प्रिया अनु–दिवसम् अवर्धयत्, सः एषः शिखण्डी वधू–सखः (सन्), कदम्बे उच्छिखः मणि–मुकुटः इव नदति।।18।।)

---

[1] . ईरिसह्मि मन्दभाइणी, जाए ण केवलं अज्जउत्तविरहो पुत्तविरहो वि।

[2] . किंवा मए पसूदाए? जेण एआरिसं मह पुत्तआणं ईसिविरलधवलदसण–कुड्मलुज्जलं अणुबद्धमुद्धकाअलीविहसिदं , णिच्चुज्जलं, मुहपुण्डरीअजअलं णपरिचु–म्बिअं अज्जउत्तेण।

[3] . भअवदि तमसे! एदिणा अवच्चसंसुमरणेण उस्ससिदपण्हुदत्थणी दाणिं वच्चाणं पिदुणो सणिहाणेण खणमेत्तं संसारिणी संवुत्तह्मि।

तमसा– जैसा यह है, वे भी वैसे ही होंगे।

सीता– मैं ऐसे मन्दभाग्य वाली हूँ, जिसे केवल आर्यपुत्र का ही वियोग नहीं है, अपितु पुत्रों का भी विरह है।

तमसा– यह होनहार ही ऐसी है।

सीता– मेरे द्वारा पुत्रों को उत्पन्न करने से क्या लाभ? जिससे मेरे पुत्रों के कुछ विरल, शुभ्र एवं पुष्प की कलियों के समान, दाँतों से उज्ज्वल निरन्तर सम्बद्ध, मनोहर, अस्पष्ट, मधुर शब्द तथा हास्य से युक्त, मुख–कमल को आर्यपुत्र ने नहीं चूमा।

तमसा– देवों की कृपा से ऐसा ही होवे।

सीता– भगवति तमसे! सन्तानों के इस संस्मरण से कम्पन करते हुए मेरे पयोधरों से दूध बहने लगा है और इस समय बच्चों के पिता राम के सान्निध्य से क्षणमात्र के लिए मैं संसारिणी हो गयी हूँ।

तमसा– इस विषय में तो क्या कहना है? क्योंकि सन्तान तो स्नेह की चरम सीमा है तथा माता–पिता के हृदयों को परस्पर जोड़ने वाली ग्रन्थि (कड़ी) है।

स्नेह का आश्रय ग्रहण करने के कारण, पति–पत्नी के अन्तः–करण में रहने वाले, आनन्द की एकमात्र 'ग्रन्थि' को ही सन्तान इस रूप में कहा जाता है।।17।।

वासन्ती– महाराज, इधर भी देखिए,

नई निकली हुई चंचल और सुन्दर पूँछ वाले, जिस मयूर को आपकी प्रिया सीता ने प्रतिदिन पाल–पोसकर बड़ा किया था, मणिजटित किरीट के समान, ऊँची कलगी से युक्त, वह यह मोर अपनी प्रिया के साथ कदम्ब के वृक्ष पर कूक रहा है।।18।।

महाकवि का प्रकृति के साथ अन्तरंग सम्बन्ध तथा प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। प्रस्तुत अंश में उन्होंने हाथी, मोर, मृग तथा कदम्ब व लताकुंज के प्रति सीता के पुत्रवत् प्रेम को सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान की है।

सीता– (सकौतुकस्नेहास्रम्) एषः सः?[1]

रामः– मोदयस्व वत्स! वयमद्य वर्धामहे।

सीता– एवं भवतु।[2]

रामः–**भ्रमिषु कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्तिचक्षुः,**
प्रचलितचटुलभ्रूताण्डवैर्मण्डयन्त्या।
करकिसलयतालैर्मुग्धया नर्त्यमानं,
सुतमिव मनसा त्वां वत्सलेन स्मरामि।।19।।

(अन्वयः– भ्रमिषु कृत–पुटान्तः–मण्डल–आवृत्ति–चक्षुः, प्रचलित–चटुल–भ्रू–ताण्डवैः मण्डयन्त्या मुग्धया, कर–किसलय–तालैः नर्त्यमानम् त्वाम् सुतम् इव, वत्सलेन मनसा स्मरामि।।19।।)

हन्त, तिर्यंचोऽपि परिचयमनुरुन्धन्ते।

कतिपयकुसुमोद्गमः कदम्बः,
प्रियतमया परिवर्धितोऽयमासीत्।

सीता– (सास्रम्) सुष्ठु प्रत्यभिज्ञातमार्यपुत्रेण।[3]

रामः– **स्मरति गिरिमयूर एष देव्याः,**
स्वजन इवात्र यतः प्रमोदमेति।।20।।

(अन्वयः– प्रियतमया कतिपय–कुसुम–उद्गमः कदम्बः परिवर्धितः, आसीत्, एषः गिरि–मयूरः देव्याः स्मरति, यतः अत्र अयम् स्वजने इव प्रमोदम् एति।।20।।)

वासन्ती– अत्र तावदासनपरिग्रहं करोतु देवः।

(राम उपविशति)

वासन्ती–
नीरन्ध्रबालकदलीवनमध्यवर्ति,
कान्तासखस्य शयनीयशिलातलं ते।
अत्र स्थिता तृणमदाद्वनगोचरेभ्यः,
सीता ततो हरिणकैर्न विमुच्यते स्म।।21।।

---

1. एसो सो।
2. एव्वं होदु।
3. सुट्ठु पच्चहिआणिदं अज्जउत्तेण।

सीता– (उत्सुकता एवं स्नेहपूर्वक) वह यह है।

राम– पुत्र! प्रसन्न रहो।

सीता– ऐसा ही होवे।

राम–

हे मयूर! तुम्हारे चक्कर लगा–लगाकर घूमने पर, अपांग भाग में अन्दर ही अन्दर घूमने वाले, नेत्रों को चंचल तथा विलासपूर्ण भौहों के नृत्यों से अलंकृत करने वाली, भोली–भाली सीता द्वारा पल्लवों के समान, हाथों की तालियों से, नचाए जाते हुए तुम्हें, मैं पुत्र के समान स्नेहपूर्वक मन से स्मरण करता हूँ।।19।।

वाह! पशु–पक्षी भी परिचय का ध्यान रखते हैं।

प्रियतमा ने कुछ कलियों वाले, जिस कदम्ब को पाल–पोसकर बड़ा किया था,

सीता– (अश्रुपूर्वक) आर्यपुत्र ने ठीक पहचान लिया है।

राम– (उसी कदम्ब पर बैठकर) **यह पहाड़ी मोर देवी सीता को याद कर रहा है, क्योंकि यहाँ पर इसे 'स्वजन' के समान आनन्द का अनुभव हो रहा है।।20।।**

वासन्ती– महाराज! आप तब तक यहाँ पर आसन ग्रहण कीजिए।

(राम बैठते हैं)

वासन्ती– **प्रियतमा सीता के सहचर आपका घने और सुकुमार केलों के बीच में स्थित, यह विश्राम करने के लिए शिलातल था। यहाँ पर बैठी हुई सीता वन में रहने वाले, मृगों को घास के तिनके खिलाया करती थी, इसीलिए हरिण इसको नहीं छोड़ते थे।।21।।**

(अन्वयः– कान्ता–सखस्य ते नीरन्ध्र–बाल–कदली–वन–मध्यवर्ति, शयनीय–शिलातलम् (अस्ति) अत्र स्थिता सीता वन–गोचरेभ्यः तृणम् अदात्, ततः हरिणकैः न विमुच्यते स्म।।21।।)

रामः– इदमशक्यं द्रष्टुम्।

(इत्यन्यतो रुदन्नुपविशति)

सीता– सखि वासन्ति! किं त्वया कृतमार्यपुत्रस्य मम चैतद्द–र्शयन्त्या? हा धिक्! हा धिक्! स एवार्यपुत्रः तदेव पंचवटीवनम्, सैव प्रियसखी वासन्ती, त एव विविधविस्रम्भसाक्षिणो गोदावरीकाननोद्देशाः, त एव जातनिर्विशेषा मृगपक्षिणः पादपाश्च। मम पुनर्मन्दभाग्याया दृश्य–मानमपि सर्वमेवैतन्नास्ति। ईदृशो जीवलोकस्य परिणामः संवृत्तः।[1]

वासन्ती–सखि सीते! कथं न पश्यसि रामभद्रस्यावस्थाम्?

नवकुवलयस्निग्धैरंगैर्ददन्नयनोत्सवं,
सततमपि नः स्वेच्छादृश्यो नवो नव एव सः।
विकलकरणः पाण्डुच्छायः, शुचा परिदुर्बलः,
कथमपि स इत्युन्नेतव्यस्तथापि दृशोः प्रियः।।22।।

(अन्वयः– नव–कुवलय–स्निग्धैः अंगैः, नयन–उत्सवम् ददत्, सततम् अपि नः स्वेच्छा–दृश्यः सः नवः–नवः एव (आसीत् परं सम्प्रति तु) शुचा विकल–करणः पाण्डु–च्छायः, परि–दुर्बलः, सः इति कथम् अपि उन्नेतव्यः तथापि दृशोः प्रियः।।22।।)

सीता– सखि! पश्यामि।[2]

तमसा– पश्य प्रियं भूयाः।

सीता– हा दैव! एष मया विना अहमप्येतेन विनेति केन सम्भावितमासीत्? तन्मुहूर्तमात्रं जन्मान्तरादपि दुर्लभलब्धदर्शनं बाष्पसलिलान्तरेषु पश्यामि तावद्वत्सलमार्यपुत्रम्।[1] (इति पश्यन्ती स्थिता)

---

1 . सहि वासन्दि! किं तुए किदं अज्जउत्तस्स मह अ एदं दंसअन्तीए? हद्धी हद्धी! सो एव्व अज्जउत्तो, तं एव्व पंचवडीवणम्! सा एव्व पिअसही वासन्दी, दे एव्व विविहविस्सम्भ– सक्खिणो गोदावरीकाणणुद्देसा, दे एव्व जादणिव्विसेसा मिअपक्खिणो पाअवा अ। मह उण मन्दभाइणीए दीसन्तं वि सव्वं एव्व एदं णत्थि। ईदिसो जीवलोअस्स परिणामो संवुत्तो!

2 . सहि! पेक्खामि।

राम– यह तो देखना भी मुश्किल है।

(ऐसा कहकर रोते हुए दूसरी ओर बैठ जाते हैं)

सीता– हे सखि वासन्ति! आर्यपुत्र को तथा मुझे यह स्थान दिखाकर तुमने क्या कर दिया? हाय धिक्कार है, धिक्कार है। ये वही आर्यपुत्र हैं, वही पंचवटी वन है, वही प्रिय सखी वासन्ती है, वे ही हमारे विश्वस्त विहारों के साक्षी गोदावरी के वनप्रदेश हैं तथा वे ही पुत्रों के समान पशु, पक्षी तथा वृक्ष हैं, किन्तु मुझ मन्दभागिनी के लिए यह सब कुछ दिखायी देता हुआ भी कुछ नहीं है। मेरे लिए इस मनुष्य लोक का ऐसा दयनीय परिणाम हो गया है।

वासन्ती– हे सखि, सीते! श्रीराम की अवस्था को क्यों नहीं देख रही हो?

जो राम पूर्व में नूतन नीलकमल के समान, स्निग्ध अंगों से हमारे नेत्रों को उत्सव प्रदान करते हुए, हमेशा ही अपनी रुचि के अनुरूप नए–नए दिखायी देते थे, शोक के कारण विकल इन्द्रियों वाले, पाण्डु कान्ति से युक्त, अत्यधिक दुर्बल वे ही आज, 'ये वे ही हैं', इसप्रकार बड़ी मुश्किल से पहचानने योग्य हो गए हैं, किन्तु फिर भी नेत्रों को अच्छे लग रहे हैं।।22।।

सीता– सखि! देख रही हूँ।

तमसा– प्रिय राम को फिर से देखो।

सीता– हाय, दैव! ये मेरे बिना और मैं इनके बिना रहूँगी, यह किसने सम्भावना की थी? इसलिए दूसरे जन्म में भी दुर्लभ दर्शन वाले, प्रिय आर्यपुत्र को अश्रुओं के उमड़ने तथा फिर गिरने के बीच वाले समय में देखती हूँ। (यह कहकर देखती हुई खड़ी रहती है)

---

1 . हा! देब्व एसो। मए विणा अहंवि एदेण विणेत्ति केण सम्भाविदं आसि? ता मुहुत्तमेत्तं जन्मन्तरादोवि दुल्लहलद्धदंसणं बाहसलिलन्तरेसु पेक्खामि दाव वच्छलं अज्जउत्तम् ।

तमसा— (परिष्वज्य सास्रम्)

विलुलितमतिपूरैर्बाष्पमानन्दशोक—
प्रभवमवसृजन्ती पक्ष्मलोत्तानदीर्घा।
स्नपयति हृदयेशं स्नेहनिष्यन्दिनी ते,
धवलमधुरमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः।।23।।

(अन्वयः— अति—पूरैः विलुलितम् आनन्द—शोक—प्रभवम् बाष्पम् अवसृजन्ती, पक्ष्मल—उत्तान—दीर्घा, धवल—मधुर—मुग्धा, दुग्ध—कुल्या इव ते दृष्टिः स्नेह—निष्यन्दिनी (सती) हृदयेशम् स्नपयति।।23।।)

वासन्ती—

ददतु तरवः पुष्पैरर्घ्यं फलैश्च मधुश्च्युतः,
स्फुटितकमलामोदप्रायाः प्रवान्तु वनानिलाः।
कलमविरलं रज्यत्कण्ठा क्वणन्तु शकुन्तयः,
पुनरिदमयं देवो रामः स्वयं वनमागतः।।24।।

(अन्वयः— मधुः—च्युतः, तरवः पुष्पैः फलैः च अर्घ्यम् ददतु, स्फुटित—कमल—आमोद—प्रायाः वन—अनिलाः प्रवान्तु, रज्यत्—कण्ठाः शकुन्तयः अविरलम् कलम् क्वणन्तु, अयम् देवः रामः स्वयं पुनः इदम् वनम् आगतः।।24।।)

रामः— एहि सखि वासन्ति! नन्वितः स्थीयताम्।

वासन्ती— (उपविश्य सास्रम्) **महाराज! अपि कुशलं कुमार—लक्ष्मणस्य?**

रामः— (अनाकर्णनमभिनीय)

करकमलवितीर्णैरम्बुनीवारशष्पै—
स्तरुशकुनिकुरंगान्मैथिली यानपुष्यत्।
भवति मम विकारस्तेषु दृष्टेषु कोऽपि,
द्रव इव हृदयस्य प्रस्रवोद्भेदयोग्यः।।25।।

(अन्वयः— मैथिली कर—कमल—वितीर्णैः, अम्बु—नीवार—शष्पैः, यान् तरु—शकुनि—कुरंगान् अपुष्यत्, तेषु दृष्टेषु प्रस्रव—उद्भेद—योग्यः मम हृदयस्य द्रवः इव कः अपि विकारः भवति।।25।।)

वासन्ती— महाराज! ननु पृच्छामि, कुशलं कुमारलक्ष्मणस्येति?

तमसा— (आलिंगन करके अश्रुपूर्वक)

अत्यधिक प्रवाहों के कारण फैले हुए, आनन्द तथा शोक से उत्पन्न, अश्रुओं को बहाती हुई, नेत्रों की सुन्दर बरोनियों से युक्त, स्नेह की वर्षा करने वाली, तुम्हारी धवल, मधुर तथा मनोहारिणी दृष्टि, दूध की कृत्रिम नदी (कुल्या) **के समान, अपने प्राणेश्वर राम को स्नान करा रही है।।23।।**

वासन्ती— क्योंकि भगवान् राम फिर से स्वयं इस वन में आए हैं, इसलिए इनका स्वागत करने हेतु, मकरन्द की वर्षा करने वाले वृक्ष, अपने फल तथा फूलों द्वारा इन्हें अर्घ्य प्रदान करें और वन के वायु प्रफुल्लित हुए, कमलों की सुगन्धि को लेकर प्रवाहित होवें तथा पक्षियों के समूह, सुरीले कण्ठ से निरन्तर कूजन करें।।24।।

राम— आओ, सखी वसन्ती, इधर बैठो।

वासन्ती— (बैठकर, अश्रुपूर्वक) महाराज! कुमार लक्ष्मण का कुशल तो है?

राम— (अनसुना करके अभिनयपूर्वक)

मैथिली ने अपने कर—कमलों से जल, नीवार एवं कोमल घास प्रदान करके, जिन वृक्ष, पक्षियों एवं मृगों को पाला—पोसा था, प्रसरण की उत्पत्ति के योग्य, आज उन्हें देखकर, मेरे हृदय में, झरने के फूट पड़ने के समान कोई अद्भुत ही विकार उत्पन्न हो रहा है।।25।।

वासन्ती— महाराज! वस्तुतः मैं आपसे कुमार लक्ष्मण का कुशल पूछ रही हूँ।

वनदेवता वासन्ती द्वारा राम के वनवास के बाद, फिर से जनस्थान में आने एवं उसके वनप्रदेशों को उपकृत करने के भाव को लेकर प्रसन्नता व्यक्त करने तथा वन के वृक्षों के फूल एवं फलों को प्रदान करके, उनके स्वागत का उल्लेख करने से महाकवि भवभूति का भारतीय संस्कृति में अगाध विश्वास व्यक्त हुआ है, जिससे उनकी प्रबल राष्ट्रीय भावना की भी अभिव्यक्ति हुई है।

रामः— (आत्मगतम्) **अये! महाराजेति निष्प्रणयमामन्त्रणपदम्। सौमित्रिमात्रके वाष्पस्खलिताक्षरः कुशलप्रश्नः। तथा मन्ये विदितसीता—वृत्तान्तेयमिति।** (प्रकाशम्) **आः कुशलं कुमारलक्ष्मणस्य।**

वासन्ती— (रुदती) **अयि देव! किं परं, दारुणः खल्वसि।**

सीताः— **सखि वासन्ति! किं त्वमेवं वादिनी भवसि? पूजार्हः सर्वस्यार्यपुत्रः विशेषतो मम प्रियसख्याः।**[1]

वासन्ती—

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं,
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमंगे।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
तामेव शान्तमथवा किमतः परेण।।26।।

(अन्वयः— त्वम् जीवितम्, त्वम् मे द्वितीयम् हृदयम्, त्वम् नयनयोः कौमुदी, त्वम् अंगे अभृतम् असि, इत्यादिभिः प्रिय—शतैः मुग्धाम् अनुरुध्य, ताम् एव अथवा शान्तम्, अतः परेण किम्?।।26।।)

(इति मुह्यति)

तमसा— **स्थाने वाक्यनिवृत्तिर्मोहश्च।**

रामः— **सखि! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।**

वासन्ती— (समाश्वस्य) **तत्किमिदमकार्यमनुष्ठितं देवेन?**

सीता— सखि वासन्ति! विरम, विरम।[2]

रामः—**लोको न मृष्यतीति।**

वासन्ती— **कस्य हेतोः?**

रामः— **स एव जानाति किमपि।**

तमसा— **चिरादुपालम्भः।**

वासन्ती—

अयि कठोर! यशः किल ते प्रियं,
किमयशो ननु घोरमतः परम्?
किमभवद्विपिने हरिणदृशः,
कथय नाथ! कथं बत मन्यसे?।।27।।

---

[1] . सहि वासन्दि! किं तुमं एव्वंवादिणी होसि? पूआरुहो सव्वस्स अज्जउत्तो विसेसदो मह पिअसहीए।

[2] . सहि वांसन्दि! विरम, विरम।

राम— (अपने मन में) अरे! महाराज, यह सम्बोधन शब्द प्रेम से रहित है और अश्रुओं के कारण, अस्पष्ट अक्षरों से युक्त गदगद् स्वर से केवल लक्ष्मण के विषय में ही कुशल प्रश्न किया गया है, इससे मैं अनुमान करता हूँ कि यह वासन्ती सीता के समाचार से परिचित है। (स्पष्टरूप से) हाँ, कुमार लक्ष्मण कुशल हैं।

वासन्ती— (रोती हुई) अरे, देव! अधिक क्या? निश्चय ही, आप अत्यधिक कठोर हैं।

सीता— हे सखि वासन्ति! तुम इसप्रकार क्यों कह रही हो? आर्यपुत्र तो सभी के पूज्य हैं, विशेषरूप से मेरी प्रियसखी के।

वासन्ती— **तुम मेरी प्राण हो, तुम मेरा दूसरा हृदय हो, तुम मेरे नेत्रों की चाँदनी हो तथा तुम मेरे अंगों के लिए अमृत हो, इत्यादि सैंकड़ों चापलूसी से भरे हुए, वाक्यों से उस भोली—भाली सीता को बहकाकर आपने उसी को...... अथवा रहने दो, इससे आगे कहने से क्या लाभ?।। 26।।** (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है)

तमसा— वाक्य की समाप्ति तथा मूर्च्छा दोनों उचित स्थान पर ही हुई हैं।

राम— सखि! धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो।

वासन्ती— (आश्वस्त होकर) तो आपने ऐसा अनर्थ क्यों कर दिया?

सीता— सखि वासन्ति! बस भी करो, रहने दे।

राम— लोक सहन नहीं करता था, (इसलिए कर दिया)

वासन्ती— किसलिए?

राम— जो कुछ भी हो, उसे वही जानता है।

तमसा— (लोक के प्रति) यह उपालम्भ अत्यन्त विलम्ब से दिया गया है।

वासन्ती— **हे कठोर हृदय राम! आपको यश अत्यधिक प्रिय है, किन्तु इससे अधिक कठोर अपयश और दूसरा क्या होगा?** (कि आपने निरपराध कठोर गर्भा उस सीता का परित्याग कर दिया) **मृग के समान नेत्रों वाली उस सीता का वन में क्या हुआ? नाथ! कुछ तो कहिए, आप क्या विचार कर रहे हैं? हाय, अत्यन्त दुःख है** (बत)।**।27।।**

(अन्वयः— अयि कठोर! यशः ते प्रियम् किल, ननु अतः परम् घोरम् अयशः किम्? हरिण–दृशः विपिने किम् अभवत्? नाथ! कथय कथम् मन्यसे? बत।।27।।)

सीता— सखि वासन्ति! त्वमेव दारुणा कठोरा च। यैवं प्रलपन्तं प्रलापयसि।[1]

तमसा— प्रणय एवं व्याहरति शोकश्च।

रामः— सखि! किमत्र मन्तव्यम्?

त्रस्तैकहायनकुरंगविलोलदृष्टे–
स्तस्याः परिस्फुरितगर्भभरालसायाः।
ज्योत्स्नामयीव मृदुबालमृणालकल्पा,
क्रव्याद्भिरंगलतिका नियतं विलुप्ता।।28।।

(अन्वयः— त्रस्त–एक–हायन–कुरंग–विलोल–दृष्टेः, परिस्फुरित–गर्भ–भर–आलसायाः तस्याः, मृदु–बाल–मृणाल–कल्पा, ज्योत्स्ना–मयी इव अंग–लतिका क्रव्याद्भिः नियतम् विलुप्ता।।28।।)

सीता— आर्यपुत्र! ध्रिये, एषा ध्रिये।[2]

रामः— हा प्रिये जानकि! क्वासि?

सीता— हा धिक्, हा धिक्! अन्य इवार्यपुत्रः प्रमुक्तकण्ठं प्ररुदितो भवति।[3]

तमसा— वत्से! साम्प्रतिकमेवैतत्। कर्तव्यानि खलु दुःखितै–र्दुखनिर्धारणानि।

पूरोत्पीडे तटाकस्य, परीवाहः प्रतिक्रिया।
शोकक्षोभे च हृदयं, प्रलापैरेव धार्यते।।29।।

(अन्वयः— तटाकस्य पूर–उत्पीडे परीवाहः प्रतिक्रिया (अस्ति) हृदयम् च शोक–क्षोभे, प्रलापैः एव धार्यते।।29।।)

विशेषतो रामभद्रस्य बहुप्रकारकष्टो जीवलोकः।

इदं विश्वं पाल्यं विधिवदभियुक्तेन मनसा
प्रियाशोको जीवं कुसुममिव घर्मो ग्लपयति।
स्वयं कृत्वा त्यागं विलपनविनोदोऽप्यसुलभ–
स्तदद्याप्युच्छ्वासो भवति ननु लाभो हि रुदितम्।30।

---

1. सहि वासन्दि! तुमं एव्व दारुणा कठोरा अ। जा एव्वं पलवन्तं पलावेसि।
2. अज्जउत्त! धरामि एसा धरामि।
3. हद्धी हद्धी! अण्णो अज्जउत्तो पमुक्ककण्ठं परुण्णो होदि।

सीता— सखि! वासन्ति! तू ही दारुण एवं कठोर है, जो इस प्रकार प्रलाप करते हुए, आर्यपुत्र को अधिक प्रलाप करा (रुला) रही है।

तमसा— प्रेम और शोक ही ऐसा कहलवा रहा है।

राम— सखि! इसमें सोचना ही क्या है?

एक वर्ष के भयभीत मृग के छौने के समान चंचल नयनों वाली एवं फड़कते हुए गर्भ के भार से आलस्ययुक्त सीता की चन्द्रिकामयी, कमल के समान कोमल काया, निश्चय ही, वन में मांस खाने वाले, प्राणियों द्वारा विनष्ट कर दी गयी होगी।।28।।

सीता— आर्यपुत्र! मैं तो यहीं पर धरी हूँ, यहीं धरी (विद्यमान) हूँ।

राम— हा प्रिये! जानकि! कहाँ हो?

सीता— हाय, धिक्कार है, धिक्कार है। आर्यपुत्र तो साधारण व्यक्ति के समान गला फाड़कर रो रहे हैं।

तमसा— पुत्रि! यह उचित ही है, क्योंकि दुःखी लोगों को अपने दुःखों का निर्धारण करना ही चाहिए।

जैसे तालाब में पानी अधिक भर जाने पर, उसे निकाल देना ही उसकी सुरक्षा का उपाय (प्रतिक्रिया) होता है, उसीप्रकार शोक से व्याकुल हुए, हृदय को प्रलापों द्वारा ही धारण किया जा सकता है।।29।।

विशेषरूप से श्रीराम के लिए तो यह मनुष्यलोक अनेक प्रकार से कष्टकर है, क्योंकि—

सर्वप्रथम तो इन्हें अत्यन्त सावधान चित्त से विधिपूर्वक इस संसार का पालन करना है, उस पर भी प्रिया का शोक। जैसे— कड़ी धूप पुष्प को सुखा ड़ालती है, उसीप्रकार वह शोक इनके शरीर को सुखा रहा है। पत्नी का स्वयं ही परित्याग करने के कारण, उसे रोकर बहलाना भी मुश्किल है, तो भी अभी तक जीवन विद्यमान (उच्छ्वास) **है, उसके लिए निश्चय ही, रोना लाभकारी है।।30।।**

घर्मः

(अन्वयः— अभियुक्तेन मनसा इदम् विश्वम् विधिवत् पाल्यम्, कुसुमम् इव प्रिया—शोकः जीवम् ग्लपयति, स्वयम् त्यागम् कृत्वा, विलपन—विनोदः अपि असुलभः, तत् अद्य अपि उच्छ्वासः भवति, ननु रुदितम् लाभः हि।।30।।)

रामः— कष्टं भो! कष्टम्!

दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा तु न भिद्यते,
वहति विकलः कायो मोहं न मुचति चेतनाम्।
ज्वलयति तनुमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदि न कृन्तति जीवितम्।।31।।

(अन्वयः— हृदयम् शोक—उद्वेगात् दलति, द्विधा तु न भिद्यते, विकलः कायः मोहम् वहति, चेतनाम् न मुचति, अन्तर्दाहः तनुम् ज्वलयति, भस्मसात् (तु) न करोति, मर्म—छेदि विधिः प्रहरति, जीवितम् न कृन्तति।।31।।)

हे भगवन्तः पौरजानपदाः!

न किल भवतां देव्याः स्थानं गृहेऽभिमतं तत—
स्तृणमिव वने शून्ये त्यक्ता न चाप्यनुशोचिता।
चिरपरिचितास्ते ते भावास्तथा द्रवयन्ति मा—
मिदमशरणैरद्यास्माभिः प्रसीदत रुद्यते।।32।।

(अन्वयः— देव्याः गृहे स्थानम् भवताम् न अभिमतम् किल, ततः तृणम् इव शून्ये वने त्यक्ता, न च अनुशोचिता अपि, चिर—परिचिताः ते—ते भावाः माम् तथा द्रवयन्ति, अद्य अशरणैः अस्माभिः इदम् रुद्यते, प्रसीदत ।।32।।)

वासन्ती— (स्वगतम्) **अतिगभीरमापूरणं मन्युभारस्य।** (प्रकाशम्) **देव! अतिक्रान्ते धैर्यमवलम्ब्यताम्।**

रामः— किमुच्यते, धैर्यमिति?

देव्याः शून्यस्य जगतो, द्वादशः परिवत्सरः।
प्रणष्टमिव नामापि न च रामो न जीवति?।।33।।

(अन्वयः— देव्याः शून्यस्य जगतः द्वादशः परिवत्सरः (वर्तते), नाम अपि प्रणष्टम् इव (जातम्) रामः च न जीवति?, (इति) न।।33।।)

सीताः— **अपह्रिये च मोहितेव एतैरार्यपुत्रस्य प्रियवचनैः।**[1]

---

[1]. ओहरामि अ मोहिआ विअ एदेहि अज्जउत्तस्स पिअवअणेहिं।

राम— अरे! कष्ट है, अत्यधिक कष्ट है।

हृदय शोक के वेग से विदीर्ण हो रहा है, किन्तु दो टुकड़ों में विभक्त नहीं होता है। शोक से व्याकुल हुआ शरीर, मोह को धारण कर रहा है, किन्तु चेतना को नहीं छोड़ रहा है। इसीप्रकार यह शरीर अन्तःकरण के सन्ताप से जल रहा है, परन्तु इसे भस्मसात् नहीं करता है। इसके अतिरिक्त मर्मस्थलों पर आघात करने वाला, भाग्य प्रहार तो कर रहा है, किन्तु इस जीवन को विनष्ट नहीं करता है।।31।।

हे सम्माननीय नागरिकों! जनपद निवासियों!

देवी सीता को घर में रखना, आप लोगों को निश्चय ही अभीष्ट नहीं हुआ, इसीलिए उसे मैंने, तिनके के समान सूने वन में छोड़ दिया और उसके लिए कोई शोक भी नहीं किया, किन्तु आज चिरकाल से परिचित वे—वे मनोभाव मुझे इसप्रकार गला ड़ाल रहे हैं। इसीलिए आज मैं अशरण के समान रो रहा हूँ, आप लोग प्रसन्न होइए।।32।।

वासन्ती— (मन में) शोक का भार अत्यधिक बढ़ गया है (प्रकट में) महाराज! बीती हुई बातों के विषय में धैर्य धारण करें।

राम— क्या कहती हो? धैर्य धारण करूँ?

देवी सीता से शून्य संसार का यह बारहवाँ वर्ष है, उसका तो मानो नाम भी नष्ट हो गया है, किन्तु फिर भी राम जीवित नहीं है? ऐसा नहीं है।।33।।

सीता— आर्यपुत्र के इन वचनों से मैं मोहित सी होकर, सुधबुध खो रही हूँ।

सीता के वियोग में राम के अन्तर्मन की गहन व्याकुलता का चित्र अत्यन्त सुन्दर तथा कारुणिक शैली में खींचा गया है। करुण रस की स्रोतस्विनी का मन्द—मन्द प्रवाह सहृदय सामाजिक के हृदय को पूर्णरूप से आप्यायित करने वाला है। निश्चय ही, महाकवि भवभूति के अतिरिक्त इसप्रकार का चित्र सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में उपलब्ध नहीं है। मूर्त उपमानों के माध्यम से अमूर्त आन्तरिक भावों की व्याख्या भी दर्शनीय कही जा सकती है।

तमसा– एवमेव वत्से!

नैताः प्रियतमा वाचः स्नेहार्द्राः शोकदारुणाः।
एतास्ता मधुनो धाराः, श्च्योतन्ति सविषास्त्वयि।।34।

(अन्वयः– एताः प्रियतमाः वाचः स्नेह–आर्द्राः शोक–दारुणाः न, (किन्तु) एताः ता सविषाः मधुनः धाराः, त्वयि श्च्योतन्ति ।।34।।)

रामः– अयि वासन्ति! मया खलु–

यथा तिरश्चीनमलातशल्यं
प्रत्युप्तमन्तः सविषश्च दन्तः।
तथैव तीव्रो हृदि शोकशंकु–
र्मर्माणि कृन्तन्नपि किं न सोढः?।।35।।

(अन्वयः– यथा अन्तः प्रत्युप्तम्, तिरश्चीनम्, अलात–शल्यम् सविषः, दन्तः च तथा एव तीव्रः, मर्माणि कृन्तन् अपि, हृदि शोक–शंकुः किम् न सोढः?।।35।।)

सीता– एवमपि मन्दभागिन्यहं या पुनरायासकारिणी आर्यपुत्रस्य।[1]

रामः– एवमतिगूढस्तम्भितान्तःकरणस्यापि मम संस्तुतवस्तुदर्शनाद्यायमावेगः। तथा हि–

वेलोल्लोलक्षुभितकरुणोज्जृम्भणस्तम्भनार्थं,
यो यो यत्नः कथमपि समाधीयते तं तमन्तः।
भित्वा भित्वा प्रसरति बलात्कोऽपि चेतोविकार–
स्तोयस्येवाप्रतिहतरयः सैकतं सेतुमोघः।।36।।

(अन्वयः– वेला–उल्लोल–क्षुभित–करुणा–उज्जृम्भण–स्तम्भनार्थम्, यः यः यत्नः कथम् अपि समाधीयते, तम् तम् कः अपि चेतः विकारः, अप्रतिहत–रयः तोयस्य ओघः, सैकतम् इव अन्तः बलात् भित्वा भित्वा प्रसरति।।36।।)

सीता–आर्यपुत्रस्यैतेन दुर्वारदारुणारम्भेण दुःखसंयोगेन परिसुषितनिजदुःखं प्रमुक्तजीवितं मे हृदयं स्फुटति।[2]

1 एव्वं वि मन्दभाइणी अहं जा पुणो आआसआरिणी अज्जउत्तस्स।
2 अज्जउत्तस्स एदिणा दुव्वारदारुणारम्भेण दुःखसंजोएण परिमुसिअणिअदुःखं पमुक्कजीविअं मे हिअअं फुडइ।

तमसा– पुत्रि! ऐसा ही है–

ये वचन अत्यधिक प्रिय, स्नेह से शीतल एवं शोक के कारण कठोर नहीं है, अपितु ये तो वे विष से युक्त मधु की धाराएँ, तुम्हारे ऊपर टपक रही हैं।।34।।

राम– अयि वासन्ति! निश्चय ही, मैंने–

जिसप्रकार हृदय में अन्दर तक तिरछा धँसा हुआ, तपाने के कारण, लाल लोहे का कील एवं विष से युक्त दाँत, गहन वेदना को उत्पन्न करता है, उसीप्रकार इस असह्य और मर्मस्थलों को काट डालते हुए भी हृदय में प्रविष्ट हुए, शोकरूपी शंकु को क्या मैंने सहन नहीं किया?।।35।।

सीता– क्या मैं ऐसी मन्दभागिनी हूँ, जो आर्यपुत्र को फिर से दुःख देने वाली हो गयी हूँ?

राम– इसप्रकार अत्यधिक गुप्तरूप से अन्तःकरण को रोकने पर भी चिरपरिचित वस्तुओं को देखने से, मुझे यह शोक का आवेग हो गया है, क्योंकि

मर्यादा को लाँघने वाले, अन्तःकरण को मथ देने वाले, शोक के परिपाक को नियन्त्रित करने के लिए, जो–जो प्रयत्न मेरे द्वारा जैसे तैसे किया जाता है, उस–उस यत्न को कोई अनिर्वचनीय चित्त का विकार, न रोके जाने वाले वेग से युक्त, जलों के समूह द्वारा रेतीले पुल को तोड़कर फैलाने के समान, अन्दर प्रवेश करके, बलपूर्वक उसे भेदते हुए फैल जाता है।। 36।।

सीता– आर्यपुत्र के न रोके जाने वाले, इस दारुण शोक के संयोग से जीवन को त्यागकर, स्वयं के दुःख से रहित हुआ मेरा हृदय, फटा सा जा रहा है।

महाकवि भवभूति का शैलीगत वैशिष्ट्य है कि वे सूक्ष्म मनोभावों का चित्रण भी बड़ी खूबी के साथ करते हैं, उपर्युक्त अंश इस कथ्य का साक्षी है।

वासन्ती– (स्वगतम्) **कष्टमत्यासक्तो देवः। तदाक्षिपामि तावत्।** (प्रकाशम्) **चिरपरिचितानिदानीं जनस्थानभोगानवलोकनेन मानयतु देवः।**

रामः– एवमस्तु (इत्युत्थाय परिक्रामति)

सीता– संदीपन एव दुःखस्य प्रियसख्या विनोदनोपाय इति तर्कयामि।[1]

वासन्ती– देव देव!

अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः,
सा हंसैः कृतकौतुका चिरमभूद्गोदावरीसैकते।
आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया,
कातर्यादरविन्दकुड्मलनिभो मुग्धः प्रणामांजलिः।।37।

(अन्वयः– अस्मिन् एव लता–गृहे त्वम्, तत् मार्ग–दत्त–ईक्षणः अभवः, सा हंसैः कृत–कौतुका, गोदावरी–सैकते चिरम् अभूत्, आयान्त्या तया त्वाम् परि–दुर्मनायितम् इव वीक्ष्य, कातर्यात् अरविन्द–कुड्मल–निभः मुग्धः प्रणाम–अंजलिः बद्धः ।।37।।)

सीता–दारुणासि वासन्ति! दारुणासि। या एतैर्हृदयमर्मोद्घाटितशल्यसंघट्टनैः पुनः पुनरपि मां मन्दभागिनीमार्यपुत्रं च स्मरयसि।[2]

रामः– अयि चण्डि जानकि! इतस्ततो दृश्यसे, नानुकम्पसे।

हा हा देवि स्फुटति हृदयं, ध्वसते देहबन्धः,
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा,
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि? ।38।।

(अन्वयः– हा हा देवि! हृदयम् स्फुटति, देहबन्धः ध्वसते, जगत् शून्यम् मन्ये, अन्तः अविरल–ज्वालम् ज्वलामि सीदन् विधुरः अन्तरात्मा, **अन्धे** तमसि मज्जति इव, मोहः विष्वङ् स्थगयति, मन्दभाग्यः कथम् **करो**मि? ।38।।)

(इति मूर्च्छति)

सीता– हा धिक्, हा धिक्! पुनरपि मूढ आर्यपुत्रः।[1]

---

1. संदीवण एव्व दुःखस्स पिअसहीए विणोदणोवाओ त्ति तक्केमि।
2. दालुणासि वासन्ति! दालुणासि। जा एदेहिं हिअअमम्मुग्धाडिअसल्ल संघट्टनेहिं पुणोपुणोवि मं मन्दभाइणि अज्जउत्तं अ सुमरावेसि।

वासन्ती– (मन में) कष्ट है, महाराज अत्यधिक शोकाकुल हो गए हैं। इसलिए इनका ध्यान दूसरी ओर ले जाती हूँ। (प्रकट में) अब महाराज इन चिरपरिचित जनस्थान के प्रदेशों को देखकर, इन्हें सम्मानित करें।

राम– ऐसा ही होवे । (ऐसा कहकर उठकर घूमते हैं)

सीता– मैं ऐसा समझती हूँ कि आर्यपुत्र के दुःख को उद्दीप्त करना ही प्रिय सखी वासन्ती के मनोविनोद का साधन है।

वासन्ती– महाराज! महाराज!

यह वही लतागृह है, जहाँ आप मार्ग की ओर आँखें गड़ाकर प्रतीक्षा कर रहे थे, क्योंकि एक बार उस सीता को गोदावरी के रेतीले तट पर हंसों के साथ खेलते हुए देर हो गयी थी। आती हुई उसके द्वारा आपको कुछ खिन्न सा देखकर, उसने कातरता से कमल की कलियों के समान, सुन्दर प्रणामांजलि को बाँधा था।।37।।

सीता– हे वासन्ति! निश्चय ही, तुम अत्यधिक कठोर हो, कठोर हो, जो इन हृदयरूपी सन्धि–स्थलों से निकाली गयी, इन कीलों को बार–बार हिलाकर, मुझ अभागिन और आर्यपुत्र को याद दिला रही हो।

राम– अयि! अत्यन्त कुपित होने वाली, सीते! तुम इधर–उधर दिखायी तो दे रही हो, किन्तु मुझ पर अनुकम्पा नहीं कर रही हो?

हाय, हाय, देवि! तुम्हारे वियोग में हृदय फटा जा रहा है। शरीर के बन्धन ढ़ीले हो रहे हैं। सम्पूर्ण संसार को मैं शून्य मान रहा हूँ। मैं भीतर ही भीतर निरन्तर जला जा रहा हूँ। मेरा अन्तरात्मा मानो गहन अन्धकार में डूब रहा है और मोह चारों ओर से घेर रहा है। हाय, मन्दभाग्य वाला मैं अब क्या करूँ?।।38।।

(ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाता है)

सीता– हाय, धिक्कार है, धिक्कार है। आर्यपुत्र फिर से मूर्च्छित हो गए हैं।

---

1. हद्धी हद्धी! पुणोवि मुद्धो अज्जउत्तो।

वासन्ती– देव! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

सीता– आर्यपुत्र! मां मन्दभागिनीमुद्दिश्य सकलजीवलोकमांगलिकजन्मलाभस्य ते वारं वारं संशयितजीवितदारुणो दशापरिणाम इति हा हतास्मि।[1] (इति मूर्च्छति)

तमसा– वत्से! समाश्वसिहि समाश्वसिहि। पुनस्ते पाणिस्पर्शो रामभद्रस्य जीवनोपायः।

वासन्ती– कथमद्यापि नोच्छ्वसिति? हा प्रियसखि सीते! क्वासि! सम्भावयात्मनो जीवितेश्वरम्।

(सीता ससम्भ्रममुपसृत्य हृदि ललाटे च स्पृशति)

वासन्ती– दिष्ट्या प्रत्यापन्नचेतनो रामभद्रः।

रामः–

आलिम्पन्नमृतमयैरिव प्रलेपैरन्त–
र्वा बहिरपि वा शरीरधातून्।
संस्पर्शः पुनरपि जीवयनकस्मादा–
नन्दादपरमिवादधाति मोहम् ।।39।।

(अन्वयः– अमृतमयैः प्रलेपैः अन्तः वा, बहिः अपि वा, शरीर–धातून् आलिम्पन् इव, जीवयन्, अकस्मात् संस्पर्शः, पुनः अपि आनन्दात् अपरम् मोहम् इव आदधाति ।।39।।)

वासन्ती– कथमिव?

रामः– सखि! किमन्यत्? पुनरपि प्राप्ता जानकी।

वासन्ती– अयि देव रामभद्र! क्व सा?

रामः– (स्पर्शसुखमभिनीय) पश्य, नन्वियं पुरत एव।

वासन्ती– अयि देव रामभद्र! किमिति मर्मच्छेददारुणैरतिप्रलापैः प्रियसखीविपत्तिदुःखदग्धामपि मां पुनः पुनर्मन्दभाग्यां दहसि?

सीता– अपसर्तुमिच्छामि। एष पुनः चिरप्रणयसम्भारसौम्यशीतलेन आर्यपुत्रस्पर्शेन दीर्घदारुणमपि झटिति सन्तापमुल्लाघयता वज्रलेपोपनद्ध इव पर्यस्तव्यापार आसंजित इव मेऽग्रहस्तः।[1]

---

[1]. अज्जउत्त! मं मन्दभाइणि उद्दिसिअ सअलजीवलोअमंगलि अजम्मलाहस्स दे वारं वारं संसइदजीविअदालुणोदशापरिणामो त्ति हा हदह्मि।

वासन्ती– महाराज! धैर्य धारण कीजिए, धैर्य धारण कीजिए।

सीता– आर्यपुत्र! मुझ मन्दभागिनी को लक्ष्य करके, सम्पूर्ण संसार के कल्याण के लिए जन्म लेने वाले, आपका जीवन बार–बार भयंकर परिणाम वाला हो रहा है, इसलिए अभागिनी मैं तो मारी गयी।

(ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है)

तमसा– पुत्रि! धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो। फिर से तुम्हारे हाथ का स्पर्श ही राम के जीवन का उपाय है।

वासन्ती– क्या इस समय भी श्वास नहीं ले रहे हैं? हाय, प्रिय सखि! सीते! तुम कहाँ हो? अपने प्राणेश्वर को कृतार्थ करो।

(सीता घबराहटपूर्वक पास जाकर हृदय और मस्तक पर स्पर्श करती है)

वासन्ती– सौभाग्य से रामभद्र फिर से सचेत हो गए हैं।

राम– **शरीर के भीतर एवं बाहर की धातुओं पर मानो अमृतमय लेप करता हुआ, जीवन प्रदान करता हुआ, अकस्मात् किया हुआ यह स्पर्श, फिर से आनन्द को उत्पन्न करके, मानो दूसरे मोह को पैदा कर रहा है।।39।।**

वासन्ती– वह भला कैसे?

राम– हे सखि! और क्या? जानकी फिर से प्राप्त हो गयी है।

वासन्ती– अरे, महाराज राम! वह कहाँ है?

राम– (स्पर्श के सुख का अभिनय करके) देखो, यह सामने ही तो है।

वासन्ती– अरे, महाराज श्रीराम! मर्मस्थलों का छेदन करने वाले, अत्यधिक दारुण इन विलापों से, सखी के दुःख से दग्ध हुई मुझ मन्दभागिनी को क्यों जला रहे हो?

सीता– मैं दूर हटना चाहती हूँ, किन्तु बहुत दिनों से एकत्र हुए, प्रेम के कारण आनन्द प्रदान करने वाले, सौम्य, शीतल, दीर्घकालिक दारुण शोक को शीघ्र ही दूर करने वाले, आर्यपुत्र के स्पर्श से मानो

---

[1]. ओसरिदुं इच्छम्मि! एसो उण चिरप्पण असंभारसौम्मसीअलेण अज्जउत्तप्परिसेण दीहदारुणंवि झत्ति संदावं उल्लाहअन्तेण वज्जलेहावणद्धो विअ परिअद्धवावारो आसंजिओ विअ मे अग्गहत्थो।

रामः–सखि! कुतः प्रलापः?

गृहीतो यः पूर्वं परिणयविधौ कंकणधरः।
सुधासूतेः पादैरमृतशिशिरैर्यः परिचितः।।

सीता– आर्यपुत्र! स एवेदानीमसि त्वम्?[1]

रामः–

स एवायं तस्यास्तदितरकरौपम्यसुभगो।
मया लब्धः पाणिर्ललितलवलीकन्दलनिभः।।40।

(अन्वयः– पूर्वम् परिणय–विधौ कंकण–धरः यः गृहीतः सुधा–सूतेः, अमृत–शिशिरैः पादैः यः परिचितः, ललित–लवली–कन्दल–निभः तत् इतर–कर–औपम्य–सुभगः सः एव अयम् तस्याः पाणिः मया लब्धः।।40।।)

(इति गृह्णाति)

सीता– हा धिक् हा धिक्! आर्यपुत्रस्पर्शमोहितायाः प्रमादो मे संवृत्तः।[2]

रामः– सखि वासन्ति! आनन्दमीलितः प्रियास्पर्शसाध्वसेन परवानस्मि। तत्त्वमपि धारय माम्।

वासन्ती– कष्टमुन्माद एव।

(सीता ससम्भ्रमं हस्तमाक्षिप्यापसर्पति)

रामः– धिक् प्रमादः

करपल्लवः स तस्याः, सहसैव जडो जडात्परिभ्रष्टः।
परिकम्पिनः प्रकम्पी, करान्मम स्विद्यतः स्विद्यन्।।41।

(अन्वयः– जडः, प्रकम्पी, स्विद्यन्, तस्याः सः कर–पल्लवः जडात्, परिकम्पिनः, स्विद्यतः, मम करात् सहसा एव परिभ्रष्टः।।41।।)

सीता– हि धिक् हा धिक्! अद्याप्यनुबद्धबहुघूर्णमानवेदनं न संस्था– पयाम्यात्मानम्।[3]

तमसा– (सस्नेहकौतुकस्मितं निर्वर्ण्य)

---

1. अज्जउत्त! सो एव्व दाणिंसि तुमम्?
2. हद्धी हद्धी! अज्जउत्तप्फरिसमोहिदाए पमादो मे संवुत्तो।
3. हद्धी हद्धी अज्जवि अणुबद्धबहुघुम्मन्तवेअणं ण संठावेमि अत्ताणम्।

वज्र के लेप से जड़ा हुआ, निश्चेष्ट हुआ, मेरे हाथ के आगे का भाग आर्यपुत्र से चिपक सा गया है।

राम– सखि! प्रलाप कहाँ हैं?

जिसे पहले मैंने विवाह की विधि में कंगन धारण किए हुए पकड़ा था और जो चन्द्रमा की अमृतमय किरणों से परिचित था, ..

सीता– क्या आप अब भी वही हैं?

राम– सुन्दर लवली के अंकुर के समान, उसके दूसरे हाथ की उपमा से सुन्दर, वही यह सीता का हाथ, मेरे द्वारा प्राप्त कर लिया गया है।।40।।

सीता–हाय, धिक्कार है, धिक्कार है, आर्यपुत्र के स्पर्श से मोहित होने के कारण, मुझसे प्रमाद हो गया है।

राम– सखि वासन्ति! प्रिया के स्पर्श के आनन्द से उत्पन्न होने वाली, मन की हलचल के कारण, मैं पराधीन हो गया हूँ, इसलिए तुम ही मुझे सम्भालो।

वासन्ती– कष्ट है, यह तो उन्माद ही है।

(सीता घबराहटपूर्वक हाथ खींचकर दूर हट जाती है)

राम– अहो, धिक्कार है, प्रमाद हो गया।

जड़, कम्पन से युक्त, पसीने वाला, सीता का वह कोमल किसलय सदृश हाथ, मेरे जड़, कम्पित एवं पसीना आए हुए हाथ से अचानक ही छूट गया है।।42।।

सीता– हाय, धिक्कार है, धिक्कार है। अत्यधिक एवं बार–बार उत्पन्न होने वाली, निरन्तर वेदना के कारण, मैं अपने आपको सम्भाल नहीं पा रही हूँ।

तमसा– (स्नेह, कौतुक एवं मुस्कराहट पूर्वक देखकर)

महाकवि की उपमा योजना दर्शनीय है। प्रस्तुत अंक में ही ऐसे अनेक स्थल हैं, जो सहृदय को अपने उपमा सौन्दर्य से आह्लादित करते हैं। लवली लता के अंकुर के साथ, सीता के हाथ की उपमा अत्यन्त मनोरम बन पड़ी है।

सस्वेदरोमांचितकम्पिताङ्गी,
जाता प्रियस्पर्शसुखेन वत्सा।
मरुन्नवाम्भः परिधूतसिक्ता,
कदम्बयष्टिः स्फुटकोरकेव।।42।।

(अन्वयः– वत्सा, प्रिय–स्पर्श–सुखेन, मरुत्–नव–अम्भः–परिधूत–सिक्ता, स्फुट–कोरका, कदम्ब–यष्टिः इव सस्वेद–रोमांचित–कम्पित–अङ्गी जाता ।।42।।)

सीता– (स्वगतम्) **अवशेनैतेनात्मना लज्जापितास्मि भगवत्या तमस्या। किमिति किलैषा मंस्यत 'एष परित्याग एषोऽभिषंग' इति।**[1]

रामः– (सर्वतोऽवलोक्य) **हा कथं नास्त्येव? नास्त्येव? नन्वकरुणे वैदेहि!**

सीता– अकरुणास्मि, यैवंविधं त्वां पश्यन्त्येव जीवामि।[2]

रामः– क्वासि प्रिये? देवि! प्रसीद प्रसीद। न मामेवंविधं परित्य–क्तुमर्हसि।

सीता– अयि आर्यपुत्र! विप्रतीपमिव।[3]

वासन्ती– देव! प्रसीद प्रसीद। स्वेनैव लोकोत्तरेण धैर्येण संस्तम्भयातिभूमिगतमात्मानम्। कुत्र मे प्रियसखी?

रामः– व्यक्तं नास्त्येव। कथमन्यथा वासन्त्यपि न पश्येत्? अपि खलु स्वप्न एष स्यात्? न चास्मि सुप्तः। कुतो रामस्य निद्रा? सर्वथापि स एवैष भगवाननेकबारपरिकल्पितो विप्रलम्भः पुनः पुनरनुबध्नाति माम्।

सीता– भयैव दारुणया विप्रलब्धः आर्यपुत्रः।[4]

वासन्ती– देव! पश्य पश्य।

पौलस्त्यस्य जटायुषा विघटितः कार्ष्णायसोऽयं रथ–
स्ते चैते पुरतः पिशाचवदनाः कंकालशेषाः खराः।
खड्गच्छिन्नजटायुपक्षतिरितः सीतां चलन्तीं वह–
न्नन्तर्व्यापृतविद्युदम्बुद इव द्यामभ्युदस्थादरिः।।43।।

---

[1]. अवसेन एदेण अत्ताणएण लज्जाविदह्मि भअवदीए तमसाये। किंति किल एसा भणिस्सदि– एसो परिच्चाओ, एसो अहिसंगेत्ति।

[2]. अकरुणह्मि, जा एव्वंविहं तुमं पेक्खन्दी एव जीवेमि।

[3]. अयि अज्ज्उत्त! विप्पदीवं विअ।

[4]. मए एव्व दारुणाए विप्पलद्धो अज्जउत्तो।

पुत्री सीता, प्रियतम राम के स्पर्शरूपी सुख से, वायु द्वारा कँपायी गयी, पहली वर्षा के जल से सींची गयी, विकसित कलियों से युक्त कदम्ब की शाखा के समान, पसीने, रोमांच और कम्प वाले अंगों से युक्त हो गयी है।।42।।

सीता– (मन में) मेरे शरीर की इस विवशता के कारण, भगवती तमसा द्वारा मैं लज्जित की गयी हूँ, क्योंकि ये भी क्या विचार कर रही होंगी, कहाँ तो वह परित्याग और कहाँ यह आसक्ति?

राम– (चारों ओर देखकर) हाय, क्या नहीं है? अयि! अकरुणे वैदेहि!

सीता– निश्चय ही, मैं निर्दय हूँ, जो इसप्रकार दुःखी आपको देखती हुई भी जी रही हूँ।

राम– प्रिये, सीते! तुम कहाँ हो, प्रसन्न होओ, प्रसन्न होओ। तुम मुझे इसप्रकार त्यागने में समर्थ नहीं हो।

सीता– आर्यपुत्र, यह तो आप उलटा ही कह रहे हैं।

वासन्ती– महाराज, प्रसन्न होइए, प्रसन्न होइए। अपने ही लोकोत्तर धैर्य से अत्यधिक दूर गए हुए, आप स्वयं को सम्भालिए। मेरी प्रिय सखी सीता यहाँ पर कहाँ है?

राम– सचमुच ही वह नहीं है? नहीं तो क्या वासन्ती भी उसे न देख पाती? क्या यह स्वप्न है? किन्तु मैं सोया हुआ भी नहीं हूँ, क्योंकि राम को निद्रा कहाँ? निःसन्देह अनेक बार प्रकल्पित अत्यधिक शक्ति–शाली वही यह विरह मेरा बार–बार अनुसरण कर रहा है।

सीता– कठोर हृदय वाली, मैंने ही आर्यपुत्र को धोखा दिया है।

वासन्ती– महाराज! देखिए, देखिए।

यह जटायु द्वारा तोड़ा गया, लोहे से बनाया गया, रावण का रथ है और ये वे सामने पिशाचों के मुँह वाले कंकाल–शेष, उसके रथ के गधे हैं। यहीं से खड्ग से जटायु के पंखों को काटकर शत्रु रावण, काँपती हुई सीता को अन्दर ही चमकती हुई विद्युत् से युक्त, मेघ के समान लेकर, आकाश में उड़ गया था।।43।।

(अन्वयः– अयम् जटायुषा विघटितः, पौलस्त्यस्य कार्ष्णायसः रथः एते ते पुरतः कंकाल–शेषाः पिशाच–वदनाः खराः, इतः खड्ग–छिन्न–जटायु–पक्षतिः अरिः चलन्तीम् सीताम् वहन्, अन्तः व्यापृत–विद्युत् अम्बुदः इव द्याम् अभ्युदस्थात् ।।43।।)

सीता– (सभयम्) आर्यपुत्र! तातो व्यापाद्यते। तस्मात्परित्रायस्व परित्रायस्व। अहमप्यपह्रिये।[1]

रामः– (सेवगमुत्थाय) आः पाप! तातप्राणसीतापहारिन् लंकापते! क्व यास्यसि?

वासन्ती– अयि देव राक्षसकुलप्रलयधूमकेतो! किमद्यापि ते मन्युविषयः?

सीता– अह्मो! उद्भ्रान्तास्मि।[2]

रामः– अन्य एवायमधुना विपर्ययो वर्तते।

उपायानां भावादविरलविनोदव्यतिकरै–
र्विमर्दैर्वीराणां जगति जनितात्यद्भुतरसः।
वियोगो मुग्धाक्ष्याः स खलु रिपुघातावधिरभू–
त्कटुस्तूष्णीं सह्यो निरवधिरयं तु प्रविलयः।।44।।

(अन्वयः– उपायानाम् भावात्, अविरल–विनोद–व्यतिकरैः वीराणाम् विमर्दैः, जगति जनित–अति–अद्भुत–रसः मुग्धाक्ष्याः सः वियोगः, रिपुघात–अवधिः अभूत् खलु, कटुः तूष्णीम् सह्यः अयम् तु प्रविलयः निरवधिः।।44।।)

सीता– बहुमानितास्मि पूर्वविरहे। निरवधिरिति हतास्मि।[3]

रामः– कष्टं भोः!

व्यर्थं यत्र कपीन्द्रसख्यमपि मे, वीर्यं हरीणां वृथा,
प्रज्ञा जाम्बवतो न यत्र, न गतिः पुत्रस्य वायोरपि।

---

1. अज्जउत्त! तादो वावादीअदि। ता परित्ताहि परित्ताहि। अहं वि अवहरिज्जामि।
2. अह्महे! उब्भत्तह्मि।
3. बहुमाणिदाह्म पुव्वविरहे। णिरवधित्ति हा हदह्मि

सीता– (भयपूर्वक) आर्यपुत्र! तात जटायु मारे जा रहे हैं और मेरा हरण हो रहा है। इसलिए रक्षा करो, रक्षा करो।

राम– (वेगपूर्वक उठकर) तात जटायु के प्राण तथा सीता का अपहरण करने वाले, लंकाधिपति रावण! तू कहाँ जाएगा?

वासन्ती– अयि, महाराज! राक्षसों के वंश का विनाश करने में अग्नि के समान! क्या आज भी राक्षस आपके क्रोध के विषय हैं?

सीता– आश्चर्य है, मैं भी घबरा गयी हूँ।

राम– अब तो यह कुछ दूसरा ही परिवर्तन हो गया है

साधनों के होने से, निरन्तर विनोद व्यापारों से युक्त, वीरों के युद्धों से संसार में अत्यधिक अद्भुत रस को उत्पन्न करने वाला, भोले–भाले नेत्रों वाली, सीता का वह वियोग निश्चय ही, शत्रु के वधपर्यन्त ही रहने वाला था, जबकि कठोर एवं चुपचाप सहन करने योग्य, यह वियोग, तो अवधि से रहित है।।44।।

सीता–पहले के विरह से तो मैं अत्यन्त सम्मानित हुई थी, किन्तु अवधि–शून्य इस वाक्य से तो मारी ही गयी हूँ।

राम– अरे कष्ट है,

हे प्रिये! जहाँ पर सुग्रीव के साथ मेरी मित्रता तथा वानरों का पराक्रम भी व्यर्थ है। जहाँ पर जाम्बवान् की बुद्धि और हनुमान् की गति भी नहीं है। जहाँ पर मार्ग बनाने में विश्वकर्मा का पुत्र नल भी समर्थ नहीं है एवं जहाँ पर मेरे प्रिय लक्ष्मण के बाण भी नहीं पहुँच सकते हैं, तुम ऐसे किस स्थान पर हो?।।45।।

वर्तमानकालिक वियोग तथा पूर्वकालिक वियोग को तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। राम की दबी हुई अन्तर्वेदना का सुन्दर चित्र दर्शनीय है। सीता का त्याग किए हुए राम को बारह वर्ष का दीर्घकालिक समय हो गया है, इतने लम्बे समय तक मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने सीता–त्याग विषयक वेदना को राजकार्यों में व्यस्त रहते हुए, दबाए रखने का प्रशंसनीय कार्य किया है, किन्तु यहाँ आकर उपयुक्त वातावरण प्राप्त करके मानो वह फूट पडा है।

मार्गं यत्र न विश्वकर्मतनयः कर्तुं नलोऽपि क्षमः
सौमित्रेरपि पत्रिणामविषये तत्र प्रिये! क्वासि मे? ।45।

(अन्वयः– प्रिये! यत्र कपीन्द्र–सख्यम् अपि व्यर्थम्, हरीणाम् वीर्यम् वृथा, यत्र जाम्बवतः प्रज्ञा न, वायोः पुत्रस्य अपि गतिः न, यत्र विश्वकर्म–तनयः नलः अपि मार्गम् कर्तुम् न क्षमः, मे सौमित्रेः अपि पत्रिणाम् अविषये तत्र, क्व असि? ।।45।।)

सीता– **बहुमानितास्मि पूर्वविरहे।**[1]

रामः– **सखि वासन्ति! दुःखायैव सुहृदामिदानीं रामदर्शनम्। कियच्चिरं त्वां रोदयिष्यामि। तदनुजानीहि मां गमनाय।**

सीता– (सोद्वेगमोहं तमसामाश्लिष्य) **हा भगवति तमसे! गच्छतीदानीमार्यपुत्रः। किं करोमि?**[2] (इति मूर्च्छति)

तमसा– **वत्से जानकि! समाश्वसिहि समाश्वसिहि । विधिस्त्वानुकूलो भविष्यति तदायुष्मतोः कुशलवयोर्वर्षर्द्धिमंगलानि संपादयितुं भागीरथीपदान्तिकमेव गच्छावः।**

सीता– **भगवति! प्रसीद। क्षणमात्रमपि दुर्लभदर्शनं पश्यामि।**[3]

रामः– **अस्ति चेदानीमश्वमेधसहधर्मचारिणी मे।**

सीता– (साक्षेपम्) **आर्यपुत्र! का?**[4]

वासन्ती– **परिणीतमपि किम्?**

रामः– **नहि नहि। हिरण्मयी सीताप्रतिकृतिः।**

सीता– (सोच्छ्वाससास्रम्) **आर्यपुत्र! इदानीमसि त्वम्। अहो, उत्खातितमिदानीं मे परित्यागशल्यमार्यपुत्रेण।**[5]

रामः– **तत्रापि तावद्बाष्पदिग्धं चक्षुर्विनोदयामि।**

---

1. बहुमाणिदह्मि पुव्वविरहे।
2. हा भअवदि तमसे! गच्छदि दाणिं अज्जउत्तो किं करिस्सम्?
3. अभवदि! पसीद। खणमेत्तं वि दुल्लहदंसणं पेक्खामि
4. अज्जउत्त! का?
5. अज्जउत्त! दाणिं सि तुमम्। अह्महे, उक्खाइदं दाणिं मे परिच्चा असल्लं अज्जउत्तेणं।

सीता– पहले विरह से मैं अत्यधिक सम्मानित हुई हूँ।

राम– सखि वासन्ति! इस समय राम का दर्शन तो वस्तुतः मित्रों के दुःख के लिए ही है। मैं और कितनी देर तक तुम्हें रुलाऊँगा? इसलिए मुझे जाने की आज्ञा प्रदान करो।

सीता– (उद्वेग एवं मोह के साथ तमसा का आलिंगन करके) हाय, भगवति तमसे! अब आर्यपुत्र जा रहे हैं, क्या करूँ?

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है)

तमसा– पुत्रि, जानकि! धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो। भाग्य तुम्हारे अनुकूल होगा। इसलिए हम दोनों आयुष्मान् कुश और लव की वर्षगाँठ के मंगलकार्यों के सम्पादन हेतु, भगवती भागीरथी के चरणों के समीप ही चलते हैं।

सीता– हे भगवति! प्रसन्न होइए। मैं क्षणभर के लिए दुर्लभ दर्शनों वाले, आर्यपुत्र को देख लेती हूँ।

राम– इस समय तो वह अश्वमेध यज्ञ की मेरी धर्मचारिणी है।

सीता– (आक्षेपपूर्वक) आर्यपुत्र! वह कौन है?

वासन्ती– क्या विवाह भी कर लिया है?

राम– नहीं, नहीं, सुवर्णमयी सीता की प्रतिमा।

सीता– (उच्छ्वासपूर्वक अश्रुओं के साथ) आर्यपुत्र! इससमय तुम वस्तुतः (एक पत्नीव्रती) हो। अहो, इस सगय आर्यपुत्र ने मेरे त्यागरूपी शल्य को उखाड़ दिया है।

राम– उस सीता की मूर्ति में ही अश्रुपूर्ण नेत्रों को बहलाता हूँ।

उपर्युक्त अंश में कवि ने प्रस्तुत 'छाया' अंक के नियोजन के महत्त्वपूर्ण उद्देश्य को प्रस्तुत किया है, क्योंकि **सीता के मन के अकारण ही त्यागने विषयक आक्रोश** को दूर करना, कवि का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य था, जिसमें उन्होंने पूर्णरूप से सफलता प्राप्त की है, तभी तो देवी सीता भी यहाँ सहसा कह उठी हैं– 'अहो, इस समय आर्यपुत्र ने मेरे त्यागरूपी शल्य को उखाड़ दिया है।' जो राम–सीता के भावी मिलन में सहायक सिद्ध हुआ है। प्रस्तुत अंक का साफल्य दर्शनीय है।

सीता— धन्या खलु सा, यैवमार्यपुत्रेण बहुमन्यते यैवमार्यपुत्रं विनोदयन्त्याशाबन्धनं खलु जाता जीवलोकस्य।[1]

तमसा— (सस्मितस्नेहार्द्रं परिष्वज्य) अयि वत्से! एवात्मा स्तूयते।

सीता— (सलज्जम्) परिहसितास्मि भगवत्या।[2]

वासन्ती— महानयं व्यतिकरोऽस्माकं प्रसादः। गमनं प्रति यथा कार्यहानिर्न भवति तथा कार्यम्!

रामः— तथाऽस्तु।

सीता— प्रतिकूलेदानीं मे वासन्ती संवृत्ता।[3]

तमसा— वत्से! एहि गच्छावः।

सीता— एवं करिष्यावः।[4]

तमसा— कथं वा गम्यते। यस्यास्तव—

प्रत्युप्तस्येव दयिते, तृष्णादीर्घस्य चक्षुषः।
मर्मच्छेदोपमैर्यत्नैः, सन्निकर्षो निरुध्यते।।46।।

(अन्वयः— दयिते प्रत्युप्तस्य इव तृष्णा—दीर्घस्य (तव) चक्षुषः सन्निकर्षः मर्मच्छेद—उपमैः यत्नैः निरुध्यते।।46।।)

सीता— नमः सुकृतपुण्यजनदर्शनीयाभ्यामार्यपुत्रचरणकमलाभ्याम्।[5]

(इति मूर्च्छति)

तमसा— वत्से! समाश्वसिहि।

सीता— (आश्वस्य) कियच्चिरं वा मेघान्तरेण पूर्णचन्द्रदर्शनम्?[6]

तमसा— अहो संविधानकम्।

---

1 . धण्णा खु सा, जा एव्वं अज्जउत्तेण बहुमण्णीअदि। जा एव्वं अज्जउत्तं विणोदयन्दी आसाबन्धणं खु जादा जीअलोअस्स।
2 . परिहसिदह्मि भअवदीए।
3 . पडिऊल्ला दाणि मे वासन्दी संवुत्ता।
4 . एव्वं करम्ह।
5 . णमो सुकिदपुण्णजणदंसणिज्जाणं अज्जउत्तचलण कमलाणम्।
6 . किअच्चरं वा मेहान्तरेण पुण्णचन्ददंसणम्?

सीता— तब तो सचमुच ही वह धन्य है, जिसे आर्यपुत्र इतना मानते हैं और जो इसप्रकार आर्यपुत्र का मनोविनोद करती हुई, निश्चय ही संसार की आशा का आधार हो गयी है।

तमसा— (स्मित और स्नेहपूर्ण आर्द्रभाव से आलिंगन करके) अयि! पुत्रि, इसप्रकार तुम अपनी ही प्रशंसा कर रही हो?

सीता— (लज्जापूर्वक) भगवती ने मेरी हँसी उड़ा दी।

वासन्ती— आपका यह आगमन हमारे लिए महान् अनुग्रह है। प्रस्थान के प्रति जिसप्रकार कार्य में हानि न हो, उसीप्रकार करना चाहिए।

राम— वैसा ही होवे।

सीता— इस समय वासन्ती मेरे प्रतिकूल हो गयी है।

तमसा— पुत्रि! आओ, चलें।

सीता— ऐसा ही करते हैं।

तमसा— अथवा कैसे चला जाए? जिस तुम्हारे,

प्रिय राम में बोए हुए के समान, तृष्णा से दीर्घ नेत्रों का जो सान्निध्य है, वह मर्मस्थल में छेदने के समान, विभिन्न प्रकार के यत्नों के माध्यम से रोका जा रहा है।।46।।

सीता— पुण्यों का भलीप्रकार आचरण करने वाले, लोगों के दर्शनीय आर्यपुत्र के चरण—कमलों में नमस्कार है।

तमसा— पुत्रि! धैर्य धारण करो।

सीता— (आश्वस्त होकर) मेघ से घिरे हुए पूर्ण चन्द्र का दर्शन कितने समय तक होता है।

तमसा— अहो, कैसी घटनाएँ (रचना) घटी हैं?

राम से अलग होते हुए, अदृश्य देवी सीता की मनःस्थिति का सुन्दर चित्र कवि द्वारा प्रस्तुत किया गया है। शब्दों का चयन एवं उनका सुनियोजन दोनों ही प्रशंसनीय हैं।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदा–
द्भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुदबुदतरंगमयान्विकारा–
नम्भो यथा, सलिलमेव हि तत्समस्तम्।।47।।

(अन्वयः– एकः करुणः रसः एव, निमित्त–भेदात् भिन्नः (सत्) पृथक्–पृथक् विवर्तान् आश्रयते इव, आवर्त–बुदबुद्–तरंग–मयान् विकारान् (आश्रयते) अम्भः यथा हि तत् समस्तम् सलिलम् एव।।47।।)

राम– विमानराज! इत इतः।

(सर्वे उत्तिष्ठन्ति)

तमसावासन्त्यौ– (सीतारामौ प्रति)

अवनिरमरसिन्धुः सार्धमस्मद्विधाभिः
स च कुलपतिराद्यश्छन्दसां यः प्रयोक्ता।
च मुनिरनुयातारुन्धतीको वसिष्ठ–
स्तव वितरतु भद्रं भूयसे मंगलाय।।48।।

(अन्वयः– अवनिः अस्मत् विधाभिः सार्धम् अमर–सिन्धुः, सः च कुलपतिः, यः छन्दसाम् आद्यः प्रयोक्ता, सः च अनुयाता अरुन्धतीकः वसिष्ठः मुनिः, तव भूयसे मंगलाय भद्रम् वितरतु ।।48।।)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

।। इति महाकविभवभूतिविरचिते उत्तररामचरिते 'छाया' नाम तृतीयोऽङ्कः।।

•••

करुण रस ही एकमात्र मुख्य रस है। निमित्त घटना से यह अलग–अलग रूप धारण कर लेता है। जैसे–जल, भँवर, बुलबुले एवं तरंगादि, जबकि होता यथार्थ में सम्पूर्ण जल ही है।।47।।

रामः– हे विमानराज! इधर से, इधर से–

(सभी उठते हैं)

तमसा और वासन्ती– (सीता एवं राम के प्रति)–

पृथ्वी, देवों की नदी भगवती भागीरथी, हम जैसी नदियों के साथ और वे कुलपति वाल्मीकि, जो छन्दों के सर्वप्रथम प्रयोग करने वाले हैं तथा वे अरुन्धती द्वारा अनुगमन किए जाते हुए महर्षि वसिष्ठ आप सभी के प्रचुर कल्याण के लिए मंगल का वितरण करें।।48।।

(ऐसा कहकर सभी निकल जाते हैं)

।। इसप्रकार महाकवि भवभूति विरचित उत्तररामचरित में 'छाया' नामक तृतीय अंक का **डॉ. राकेश शास्त्री, बाँसवाड़ा** द्वारा किया हुआ हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ।।

•••

उपर्युक्त अंश में महाकवि की करुणरस के विषय में मान्यता तथा दर्शकों के लिए प्रभूत कल्याणों को प्रदान करने वाली मंगलकामनाओं की सुन्दर प्रस्तुति की गयी है, जो सहृदय को आह्लादित करने वाली है।

।। श्रीः ।।

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशतस्तापसौ)

एकः— सौधातके! दृश्यतामद्य भूयिष्ठन्निधापितातिथिजनस्य समधिकारम्भरमणीयता भगवतो वाल्मीकेराश्रमपदस्य। तथाहि—

नीवारौदनमण्डमुष्णमधुरं सद्यः प्रसूतप्रिया—
पीतादभ्यधिकं तपोवनमृगः पर्याप्तमाचामति।
गन्धेन स्फुरता मनागनुसृतो भक्तस्य सर्पिष्मतः,
कर्कन्धूफलमिश्रशाकपचनामोदः परिस्तीर्यते।।1।।

(अन्वय— तपोवन—मृगः सद्यः प्रसूत—प्रिया—पीतात् अभ्यधिकम् उष्ण—मधुरम् नीवार—ओदन—मण्डम् पर्याप्तम् आचामति, सर्पिष्मतः भक्तस्य स्फुरता गन्धेन मनाक् अनुसृतः, कर्कन्धू—फल—मिश्र—शाक—पचन—आमोदः परिस्तीर्यते।।1।।)

सौधातकिः— स्वागतमनेकप्रकाराणां जीर्णकूर्चानामनध्यायकारणानां तपोधनानाम्।[1]

प्रथमः— (विहस्य) अपूर्वः खलु बहुमानहेतुर्गुरुषु सौधातके!

सौधातकिः— भो दण्डायन! किं नामधेय इदानीमेष महतः स्त्रीसार्थस्य धुरंधरोऽद्यातिथिरागतः?[2]

दण्डायनः— धिक्प्रहसनम्! नन्वयमृष्यश्रृंगाश्रमादरुन्धतीं पुरस्कृत्य महाराजदशरथस्य दारानधिष्ठाय भगवान् वसिष्ठः प्राप्तः। तत्किमेवं प्रलपसि?

---

1. साअदं अणेअपिआराणं जिण्णकुच्छाणं अणज्झाअकालणाणं तपोधणाणम्।
2. भो दण्डाअण! किंणामहेओ दाणिं एसो महत्तस्स इत्थिआसत्थस्स धुरंधरो अज्ज अदिहि आआदो?

चतुर्थ अङ्क

(उसके बाद दो तपस्वी प्रवेश करते हैं)

एक— सौधातकि! आज अनेक अतिथियों से युक्त, भगवान् वाल्मीकि के आश्रम की अनेक कार्यों से बढ़ी हुई शोभा को तो देखो, जैसा कि—

तपोवन का मृग शीघ्र ही ब्याई हुई मृगी के पीने से बचे हुए, नीवार से निर्मित भात के गरम—गरम, मधुर माँड को पर्याप्त मात्रा में पी रहा है। घी से युक्त भात के फैलते हुए सुगन्ध के साथ मिलकर, बेरी के फलों से मिश्रित शाक को पकाने की सुगन्धि भी चारों ओर फैल रही है।।1।।

सौधातकि— सफेद दाढ़ी तथा मूँछों वाले, अनध्याय के कारण—रूप, इन अनेक प्रकार के तपस्वियों का स्वागत है।

पहला— (हँसकर) हे सौधातकि! निश्चय ही, गुरुजनों के प्रति तुम्हारा यह आदरसूचक वाक्य अद्भुत ही है।

सौधातकि— अरे! दण्डायन, इस समय यह अत्यधिक बड़े स्त्री समूह के अग्रणी होकर आए हुए, इन अतिथि का क्या नाम है?

दण्डायन— तुम्हारे इस परिहास को धिक्कार है। अरे! ऋष्यश्रृंग के आश्रम से अरुन्धती को आगे करके, महाराज दशरथ की धर्मपत्नियों के साथ भगवान् वसिष्ठ आए हुए हैं, फिर तुम इसप्रकार का प्रलाप क्यों कर रहे हो?

सौधातकिः— हुं वसिष्ठः?[1]

दण्डायनः— अथ किम्?

सौधातकिः— मया पुनर्ज्ञातं कोऽपि व्याघ्र इव एष इति।[2]

दण्डायन— आः, किमुक्तं भवति?

सौधातकिः— येन परापतितेननैव सा वराकी कपिला कल्याणी बलात्कृत्य मडमडायिता।[3]

दण्डायनः— 'समांसो मधुपर्कः' इत्याम्नायं बहुमन्यमानाः श्रोत्रियाभ्यागताय वत्सतरीं महोक्षं वा पचन्ति गृहमेधिनः। तं हि धर्मं धर्मसूत्रकाराः समामनन्ति।

सौधातकिः— भो निगृहीतोऽसि।[4]

दण्डायनः— कथमिव?

सौधातकिः— येनागतेषु वसिष्ठमिश्रेषु वत्सतरी विशसिता। अद्यैव प्रत्यागतस्य राजर्षेर्जनकस्य भगवता वाल्मीकिना दधिमधुभ्यामेव निर्वर्तितो मधुपर्कः। वत्सतरी पुनर्विसर्जिता।[5]

दण्डायनः— अनिवृत्तमांसानामेवं कल्पं व्याहरन्ति केचित्। निवृत्तमांसस्तु तत्रभवान् जनकः।

सौधातकिः— किन्निमित्तम्?[6]

दण्डायनः— यदेव्याः सीतायास्तादृशं दैवदुर्विपाकमुपश्रुत्य वैखानसः संवृत्तः तस्य, कतिपयसंवत्सरश्चन्द्रद्वीपतपोवने तपस्तप्यमानस्य!

सौधातिकः— ततः किमित्यागतः?[7]

---

1. हु वसिट्ठो?
2. मए उण जाणिदं कोवि वग्घो विअ एसीत्ति।
3. जेण पराबडिदेण एव्व सा वराई कविला कल्लाणी बालामोडिअ मडमडाइआ।
4. भो, णिगिहोदोसि।
5. जेण आअदेसु वसिट्ठमिस्सेमु वच्छदरी विससिदा। अज्ज एव्व पंचाअदस्स राएसिणो जणअस्स भअवदा वम्मीइणा धहिमहूहिं एव णिव्वत्तिदो महुवक्को। वच्छतरी उण विसज्जिदा।
6. किं णिमित्तम्?
7. [illegible] किंति आअदो?

सौधातकि— अरे! क्या वसिष्ठ हैं?

दण्डायन— और क्या?

सौधातकि— मैंने तो समझा था कि यह कोई व्याघ्र के समान है।

दण्डायन— ओह! तुमने यह क्या कह दिया?

सौधातकि— जिनके आने के बाद ही, वह बेचारी कपिल वर्ण वाली बछिया, बलपूर्वक 'मडमड' शब्द वाली कर दी गयी।

दण्डायन—'अतिथि को मांस सहित मधुपर्क देना चाहिए', इत्यादि वेद–वाक्य को प्रमाण मानते हुए, गृहस्थ लोग वेदज्ञ अतिथि के लिए, बछिया या बूढ़े बैल को पकाते हैं। धर्मसूत्रकार इस धर्म को अनुमति प्रदान करते हैं।

सौधातकि— अरे! तुम तो पकड़े गए।

दण्डायन— वह कैसे?

सौधातकि— वह इसलिए कि आए हुए समादरणीय वसिष्ठ के लिए बछिया को मारा गया, जबकि भगवान् वाल्मीकि ने आज ही आए हुए, राजर्षि जनक का 'मधुपर्क' दही और शहद द्वारा सम्पादित किया है और बछिया को छोड़ दिया है।

दण्डायन— कुछ धर्मशास्त्रकार मांस का परित्याग न करने वालों के लिए इसप्रकार की विधि का उल्लेख करते हैं, किन्तु समादरणीय जनक ने तो मांस का परित्याग कर रखा है।

सौधातकि— किसलिए?

दण्डायन— इसलिए कि महाराज जनक, देवी सीता के भाग्य का उसप्रकार का दुष्परिणाम सुनकर, वानप्रस्थी हो गए हैं एवं चन्द्रद्वीप नामक तपोवन में तपस्या करते हुए उन्हें कई वर्ष बीत गए हैं।

सौधातकि— तब वे यहाँ पर क्यों आए हैं?

दण्डायनः— सम्प्रति च प्रियसुहृदं भगवन्तं प्राचेतसं द्रष्टुम्।

सौधातिकः— अप्यद्य सम्बन्धिनीभिः समं निर्वृत्तं दर्शनमस्य न वेति।[1]

दण्डायनः— सम्प्रत्येव भगवता वसिष्ठेन देव्याः कौसल्यायाः सकाशं भगवत्यरुन्धती प्रहिता। यथा 'स्वयमुपेत्य स्नेहादयं द्रष्टव्यः' इति।

सौधातकिः— यथैते स्थविराः परस्परमेव मिलिताः, तथावामपि वटुभिः सह मिलित्वानध्ययामहोत्सवं खेलन्तो मानयावः। अथ कुत्र स जनकः?[2]

दण्डायनः— तथायं प्राचेतसवसिष्ठावुपास्य सम्प्रत्याश्रमस्य बहिर्वृक्षमूलमधितिष्ठति। य एषः—

हृदि नित्यानुषक्तेन, सीताशोकेन तप्यते।
अन्तः प्रसृप्तदहनो, जरन्निव वनस्पतिः।।2।।

(**अन्वय—** हृदि नित्य—अनुषक्तेन, सीता—शोकेन अन्तः प्रसृप्त—दहनः जरन् वनस्पतिः इव तप्यते ।।2।।)

(इति निष्क्रान्तौ)

(इति मिश्रविष्कम्भः)

(ततः प्रविशति जनकः)

जनकः—

अपत्ये यत्तादृग्दुरितमभवत्तेन महता,
विषक्तस्तीव्रेण व्रणितहृदयेन व्यथयता।
पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे,
निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति।।3।।

(**अन्वय—** अपत्ये यत् तादृक् दुरितम् अभवत्, महता तीव्रेण व्रणित—हृदयेन व्यथयता तेन विषक्तः पटुः धारावाही चिरेण अपि, नवः इव हि मे मन्युः क्रकचः इव मर्माणि निकृन्तन् न विरमति।।3।।)

---

1. अवि अज्ज सम्बन्धिणीहिं सम णिउत्तं दंसणंसे णवेत्ति?
2. जह एदे ट्ठविरा परप्परं एव्व मिलिदा, तह अह्मेवि वडुहिं सह मिलअ, अणज्झाअमहस्सवं खेलन्तो मणेम्ह। अह कुत्थ सो जणव।

दण्डायन— इस समय वे अपने प्रिय मित्र भगवान् वाल्मीकि को देखने के लिए आए हैं।

सौधातकि— आज उनका साक्षात्कार सम्बन्धियों के साथ हुआ है कि नहीं?

दण्डायन— भगवान् वसिष्ठ ने अभी महारानी कौशल्या के पास में अरुन्धती को भेजा है कि वे स्वयं आकर स्नेहपूर्वक इन (महाराज जनक) का दर्शन करें।

सौधातकि— जिसप्रकार ये वृद्ध लोग आपस में मिल गए हैं, उसी प्रकार हम दोनों भी ब्रह्मचारियों के साथ मिलकर, खेलते हुए अनध्याय के महोत्सव को मनाते हैं। इसके अलावा वे जनक कहाँ हैं?

दण्डायन— वे महर्षि वाल्मीकि एवं वसिष्ठ जी की पूजा करके, इस समय आश्रम के बाहर, वृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं, जो ये—

हृदय में निरन्तर विद्यमान, सीता के शोक से, अन्दर ही अन्दर फैली हुई अग्नि से युक्त, पुराने वृक्ष के समान, सन्ताप का अनुभव कर रहे हैं।। 2।।

(ऐसा कहकर दोनों चले जाते हैं)

।। मिश्र विष्कम्भक।।

(उसके बाद जनक प्रवेश करते हैं)

जनक—

सन्तान के विषय में, जो उसप्रकार का लोकापवाद रूपी पाप लग गया था, अत्यधिक तीक्ष्ण एवं हृदय को घायल कर देने वाला, अत्यन्त व्यथित करने वाला, उससे पूर्णरूप से जुड़ा हुआ, प्रबलरूप में निरन्तर बहने वाला, चिरकाल के बाद आज भी वह मेरा शोक, मर्मस्थलों को आरे के समान चीरता हुआ, शान्त नहीं हो रहा है।।3।।

महाकवि भवभूति ने हृदय के गूढ़ भावों की अभिव्यक्ति के लिए नूतन उपमानों का प्रयोग किया है। यहाँ प्रयुक्त श्लोक तीन में हृदय के मर्मस्थलों को आरे से चीरने के उपमान द्वारा, निरपराध, पूर्णगर्भा पुत्री सीता के त्याग से उत्पन्न पिता जनक की आन्तरिक वेदना को सुन्दर एवं सटीक अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है, जिसे महाकवि की सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि के रूप में भी देख सकते हैं।

'कष्टम्? एवं नाम जरता दुःखेन च दुरासदेन, भूयः पराकसांतपनप्रभृतिभिस्तपोभिरात्तरसधातुरनवष्टम्भो नाद्यापि मम दग्धदेहः पतति। अन्धतामिश्रा ह्यसूर्या नाम ते लोकास्तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिन इत्येवमृषयो मन्यन्ते। अनेकसंवत्सरातिक्रमेऽपि प्रतिक्षणपरिभावनास्पष्टनिर्भासः प्रत्यग्र इव न मे दारुणो दुःखसंवेगः प्रशाम्यति। अयि मातैर्देवयजनसंभवे सीते, ईदृशस्ते निर्माणभागः परिणतो येन लज्जया स्वच्छन्दमाक्रन्दितमपि न शक्यते।

हा पुत्रि!

अनियतरुदितस्मितं विराजत्
कतिपयकमलदन्तकुड्मलाग्रम्।
वदनकमलकं शिशोः स्मरामि,
स्खलदसमंजसमँजुजल्पितं ते।।4।।

(**अन्वय–** अनियत–रुदित–स्मितम्, विराजत्–कतिपय–कमल–दन्त–कुड्मल–अग्रम्, स्खलत् असमंजस–मँजु–जल्पितम्, शिशोः ते वदन–कमलकम् स्मरामि ।।4।।)

भगवति वसुन्धरे! सत्यमतिदृढ़ाऽसि।

त्वं वह्निर्मुनयो वसिष्ठगृहिणी गंगा च यस्या विदु–
र्माहात्म्यं यदि वा रघोः कुलगुरुर्देवः स्वयं भास्करः।
विद्यां वागिव यामसूत भवती शुद्धिं गतायाः पुन–
स्तस्यास्त्वद् दुहितुस्तथा विशसनं किं दारुणेऽमृष्यथाः?।।5।

(**अन्वय–** दारुणे! यस्याः माहात्म्यम् त्वम्, वह्निः, मुनयः, वसिष्ठ–गृहिणी, गंगा च रघोः कुल–गुरुः, यदि वा देवः भास्करः स्वयम् विदुः, वाक् विद्याम् इव भवती याम् असूत, शुद्धिम् गतायाः तस्याः, त्वत् दुहितुः पुनः तथा विशसनम् किम् अमृष्यथाः?।।5।।)

(नेपथ्ये)

इत इतो भगवतीमहादेव्यौ।

जनकः– अये? गृष्टिनोपदिश्यमानमार्गा भगवत्यरुन्धती। (उत्थाय) कां पुनर्महादेवीत्याह? (निरूप्य) हा हा, कथमियं महाराजस्य दशरथस्य धर्मदाराः प्रियसखी मे कौसल्या? क एतां प्रत्येति सैवेयमिति नाम?

कष्ट है। इसप्रकार की वृद्धावस्था और असह्य शोक तथा इतने पर भी 'पराक' सन्तापन आदि व्रतों का पालन करने से, इस शरीर की धातुओं के सूख जाने पर भी प्राण अटके हुए हैं। महापातकी और दग्धप्राय मेरा यह शरीर, अभी भी नष्ट नहीं हो रहा है, जो आत्म–हत्या करने वाले होते हैं, मरने के बाद, वे सूर्यरहित (असूर्या) गहन अन्धकार वाले, लोकों को प्राप्त करते हैं, ऐसा ऋषि लोग मानते हैं।

अनेक वर्षों के व्यतीत होने पर भी, निरन्तर चिन्ता के कारण प्रत्यक्ष दिखायी देने वाला, यह मेरे दुःख का वेग नया सा होकर, शान्त नहीं हो रहा है। हे यज्ञभूमि से उत्पन्न होने वाली माँ सीते! तुम्हारे जीवन का ऐसा दुःखद परिणाम हुआ, जिससे कि मैं लज्जावश दूसरों के समक्ष स्वतन्त्रता पूर्वक रो भी नहीं पा रहा हूँ।

हाय पुत्रि!

अकारण ही हँसने तथा रोने वाले, कोमल कलिकाओं के अग्रभाग के समान, छोटे–छोटे विरल दाँतों से सुशोभित, तुतलाए हुए, बिना किसी क्रम के, मनोहर वचनों को बोलने वाले, शैशवावस्था के तुम्हारे मुख को मैं स्मरण कर रहा हूँ।।4।।

हे भगवति वसुन्धरे! निश्चय ही, तुम अत्यधिक कठोर हो,

जिसके प्रभाव को तुम, अग्नि, महर्षिगण, अरुन्धती, गंगा, रघुकुल के गुरु वसिष्ठ और स्वयं भगवान् भास्कर भलीप्रकार जानते हैं, जिस प्रकार सरस्वती विद्या को उत्पन्न करती है, ठीक वैसे ही, जिसे तुमने उत्पन्न किया है, उसप्रकार की अग्नि–परीक्षा से शुद्धि को प्राप्त हुई, अपनी पुत्री की (निर्वासनरूपी) **हिंसा को भला तुमने किसप्रकार सहन कर लिया?।।5।।**

(नेपथ्य में)

इधर से, भगवती और महारानी! इधर से,

जनक– अरे! गृष्टि नामक कंचुकी द्वारा मार्ग दिखलायी जाती हुई, भगवती अरुन्धती हैं (उठकर) तो इसने महादेवी किसे कहा है? (देखकर) हाय, हाय, ये महाराज दशरथ की धर्मपत्नी और मेरी प्रिय सखी कौशल्या कैसे आ गयीं? ये वे ही हैं, इस रूप में भला इन्हें कौन पहचान पाएगा?

आसीदियं दशरथस्य गृहे यथा श्रीः,
श्रीरेव वा किमुपमानपदेन सैषा ।
कष्टं बतान्यदिव दैववशेन जाता,
दुःखात्मकं किमपि भूतमहो विकारः । ।6 । ।

(**अन्वय–** इयम् दशरथस्य गृहे श्रीः यथा आसीत्, श्रीः एव वा उपमान–पदेन किम्? कष्टम् बत! सा एषा दैव–वशेन अन्यत् किम् अपि दुःखात्मकम् भूतम् इव जाता, अहो! विकारः । ।6 । ।)

य एव मे जनः पूर्वमासीन्मूर्तो महोत्सवः ।
क्षते क्षारमिवासह्यं जातं तस्यैव दर्शनम् । ।7 । ।

(**अन्वय–** यः एव जनः पूर्वम् मे मूर्तः महोत्सवः आसीत्, तस्य एव दर्शनम्, क्षते क्षारम् इव असह्यम् जातम् । ।7 । ।)

(ततः प्रविशत्यरुन्धती कौसल्याकंचुकी च)

अरुन्धती– ननु ब्रवीमि 'द्रष्टव्यः स्वयमुपेत्यैव वैदेह' **इत्येवं** वः कुलगुरोरादेशः। अतएव चाहं प्रेषिता। तत्कोऽयं पदे–पदे महान–**नध्यवसायः?**

कंचुकी– देवि! संस्तभ्यात्मानमनुरुध्यस्व भगवतो वसिष्ठस्यादेश–**मिति विज्ञापयामि।**

कौसल्या– ईदृशे काले मिथिलाधिपो मया द्रष्टव्य इति सममेव **सर्वदुःखान्यवतरन्ति।** तस्मान्न शक्नोम्युद्वर्तमानमूलबन्धनं हृदयं पर्यवस्थापयितुम्।[1]

अरुन्धती– अत्र कः सन्देहः?

सन्तानवाहीन्यपि मानुषाणां, दुःखानि सम्बन्धिवियोगजानि।
दृष्टे जने प्रेयासि दुःसहानि, स्रोतःसहस्रैरिव संप्लवन्ते । ।8 । ।

(**अन्वय–** मानुषाणाम् सन्तान–वाहीनि अपि सम्बन्धि–वियोगजानि दुःखानि, प्रेयासि जने दृष्टे दुःसहानि, स्रोतः–सहस्रैः इव संप्लवन्ते । ।8 । ।)

कौसल्या– कथं नु खलु वत्साया मे वध्वा वनगतायास्तस्याः पितू राजर्षेर्मुखं दर्शयामः?[2]

---

1 . ईरिसे काले मिहिलाहिवो मए दिट्ठव्वो त्ति समं एव्व सव्वदुःखाई ओदरन्ति। ताण सक्कणोमि उव्वट्टमाणमूलबन्धणं हिअअं पज्जवत्थादेदुम्।

2 . कहं णु खु वच्चाए मे बहूए वनगदाए तस्सा पिदुणो राएसिणो मुहं दंसम्ह।

कभी ये दशरथ के घर में लक्ष्मी के समान थीं अथवा लक्ष्मी ही थीं, क्योंकि उपमान सूचक शब्द से क्या लाभ? हाय, अत्यधिक कष्ट है कि ये, वे भाग्यवश कुछ और ही दुःखस्वरूप प्राणी के समान हो गयी हैं। आश्चर्य है, यह इतना भारी परिवर्तन दिखायी दे रहा है । ।6 । ।

यह जो कौशल्या मेरे लिए मूर्तिमान् महोत्सव थीं, आज उन्हीं का दर्शन कटे हुए पर नमक के समान, असह्य हो रहा है । ।7 । ।

(उसके बाद अरुन्धती, कौशल्या एवं कंचुकी प्रवेश करते हैं)

अरुन्धती– अरे! मैं कह रही हूँ कि 'पास में जाकर ही महाराज का दर्शन करना चाहिए', यह तुम्हारे कुल–गुरु वसिष्ठ का आदेश है। इसीलिए उन्होंने मुझे भी भेजा है। तब पग–पग पर तुम्हारा **यह** (जनकदर्शन के प्रति) कैसा भारी अनुत्साह है?

कंचुकी– देवि! मेरा निवेदन है कि अपने आप को **सम्भालकर** भगवान् वसिष्ठ के आदेश का पालन कीजिए।

कौशल्या– ऐसे समय में मुझे मिथिला के राजा जनक का **दर्शन** करना पड़ेगा? लगता है सभी दुःख एक साथ ही प्राप्त हो रहे **हैं।** इसलिए शिथिल बन्धन वाले हृदय पर नियन्त्रण नहीं रख पा रही हूँ।

अरुन्धती– इसमें क्या संदेह है?

मनुष्यों के अजस्र गति से प्रवाहित होने वाले, सम्बन्धी जनों के वियोग से उत्पन्न दुःख, प्रियजन को देखने पर असह्य होकर, मानो हजारों प्रवाहों में बहने लगते हैं । ।8 । ।

कौशल्या– अपनी प्यारी बहू सीता के वन चले जाने पर, हम उसके पिता, राजर्षि जनक को भला कैसे मुँह दिखाएँ?

अकारण ही कठोरगर्भा सीता के राम द्वारा वन में परित्याग के बाद, उनकी माता कौशल्या का अपने सम्बन्धी राजा जनक से न मिल पाने विषयक अन्तर्द्वन्द्व, संकोच तथा पीड़ा आदि को महाकवि भवभूति ने अत्यन्त सुन्दर एवं शिष्ट शैली में प्रस्तुत किया है।

अरुन्धती–

एष वः श्लाघ्यसम्बन्धीं, जनकानां कुलोद्वहः।
याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ।।9।।

(अन्वय– एषः वः श्लाघ्य–सम्बन्धीम् जनकानाम् कुल–उद्वहः (अस्ति), यस्मै याज्ञवल्क्यः मुनिः ब्रह्म–पारायणम् जगौ।।9।।)

कौसल्या–एष स महाराजस्य हृदयनिर्विशेषो वत्साया मे वध्वाः पिता विदेहराजः सीरध्वजः। स्मारितास्मि अनिर्वेदरमणीयान्दिवसान्। हा दैव! सर्वं तन्नास्ति।[1]

जनकः– (उपसृत्य) भगवत्यरुन्धति! वैदेहः सीरध्वजोऽभिवादयते।

यया पूतम्मन्यो निधिरपि पवित्रस्य महसः,
पतिस्ते पूर्वेषामपि खलु गुरूणां गुरुतमः।
त्रिलोकीमंगल्यामवनितललीनेन शिरसा,
जगद्वन्द्यां देवीमुषसमिव वन्दे भगवतीम्।।10।।

(अन्वय– पवित्रस्य महसः निधिः अपि पूर्वेषाम् गुरूणाम् गुरुतमः अपि ते पतिः, यया पूतम्–मन्यः खलु,त्रिलोकी–मंगल्याम्, जगत्–वन्द्याम् देवीम् उषसम् इव, भगवतीम् अवनि–तल–लीनेन शिरसा वन्दे।।10।।)

अरुन्धती– अक्षरं ते ज्योतिः प्रकाशताम्। स त्वां पुनातु देवः परो रजसां, य एष तपति।

जनकः– आर्य गृष्टे! अप्यनामयमस्य प्रजापालकस्य मातुः?

कंचुकी– (स्वगतम्) निरवेशषमतिनिष्ठुरमुपालब्धाः स्मः। (प्रकाशम्) राजर्षे! अनेनैव मन्युना चिरपरित्यक्तरामभद्रदर्शनां नार्हसि दुःखयितुम–तिदुःखितां देवीम्। रामभद्रस्यापि दैवदुर्योगः कोऽपि। यत्किल समन्ततः प्रवृत्तबीभत्सकिंवदन्तीकाः पौरा न चाग्निशुद्धिमनल्पकाः प्रतियन्तीति दारुणमनुष्ठितं देवेन।

जनकः– (सरोषम्) आः, कोऽयमग्निर्नामास्मत्प्रसूतिपरिशोधने? कष्टम् एवं वादिना जनेन रामभद्रपरिभूता अपि पुनः परिभूयामहे।

1 . एसो सो महाराअस्स हिअअणिव्विसेसो वच्चाए मे वहूए पिदा विदेहराओ सीरद्धओ। सुमरिदह्मि अणिव्वेदरमणीए दिवहे हा देव्व? सव्वं तं णत्थि।

अरुन्धती– ये आपके प्रशंसनीय सम्बन्धी जनक वंश में श्रेष्ठ (विदेह) हैं, जिन्हें महर्षि याज्ञवल्क्य ने वेद और उपनिषदों का उपदेश प्रदान किया था।।9।।

कौशल्या– महाराज दशरथ के अभिन्न हृदय और मेरी पुत्रवधू सीता के पिता, विदेहराज 'सीरध्वज' हैं। इन्हें देखकर मुझे आनन्द से रमणीय उन सुखमय दिनों का स्मरण हो आया है। हा दैव! अब तो वह सब कुछ नहीं रहा है।

जनक– (पास जाकर) भगवति अरुन्धति! विदेह वंश में उत्पन्न होने वाला 'सीरध्वज' आपको अभिवादन कर रहा है।

पवित्र तेज के निधान, सभी प्राचीन गुरुओं के भी गुरु, आपके पति वसिष्ठ भी, जिनसे अपने आप को पवित्र मानते हैं, तीनों लोकों की कल्याणकारिणी, सम्पूर्ण संसार की वन्दनीया, देवी उषा के समान, आपको मैं पृथ्वी पर झुके हुए सिर से प्रणाम कर रहा हूँ।।10।।

अरुन्धती– आपमें शाश्वत ज्योतिस्वरूप ब्रह्म का प्रकाश हो, जो सविता देवता रजस् आदि दोषों से दूर रहकर प्रकाशित होते हैं, वे आपको पवित्र करें।

जनक– आर्य गृष्टि! इन प्रजापालक की माता का कुशल तो है?

कंचुकी– (मन में) पूरी तरह से अत्यन्त निष्ठुरतापूर्वक हमें ताना दिया गया है (प्रकट में) हे राजर्षे! इसी क्रोध से श्रीराम का दर्शन छोड़ देने वाली, स्वयं ही दुःखी महारानी को और भी अधिक दुःखी करना आपके लिए उचित नहीं है और इस विषय में राम का कोई दुर्भाग्य ही था कि चारों ओर से, क्षुद्र नागरिक इस निन्दित किंवदन्ती के प्रचार में प्रवृत्त होकर (लंका में होने वाली) अग्नि–शुद्धि का भी विश्वास नहीं कर रहे थे। इसीलिए (लोकाराधन की भावना से) महाराज ने ऐसा कठोर कर्म कर दिया।

जनक– (आक्रोशपूर्वक) अरे! हमारी सन्तान को शुद्ध करने में यह अग्नि होता कौन है? कष्ट है, इसप्रकार कहने वाले, लोगों के द्वारा तो हम राम से तिरस्कृत होकर भी, फिर से अपमानित किए जा रहे हैं।

अरुन्धती– (निःश्वस्य) एवमेतत्। अग्निरिति वत्सां प्रति लघून्यक्षराणि। सीतेत्येव पर्याप्तम्। हा वत्से!

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा,
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति।
शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतां,
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः।।11।।

(**अन्वय–** मम शिशुः वा, शिष्या वा, यत् असि, तत् तथा तिष्ठतु, त्वयि विशुद्धेः उत्कर्षः तु मम भक्तिम् द्रढयति, ननु शिशुत्वम् स्त्रैणम् वा भवतु, जगताम् वन्द्या असि, गुणिषु गुणाः पूजास्थानम्, न च लिंगम् न च वयः।।11।।)

कौसल्या– अहो, समुन्मूलयन्तीव वेदनाः।[1]

(इति मूर्च्छति)

जनकः– हन्त, किमेतत्?

अरुन्धतीः– राजर्षे! किमन्यत्?

स राजा तत्सौख्यं स च शिशुजनस्ते च दिवसाः,
स्मृतावाविर्भूतं त्वयि सुहृदि दृष्टे तदखिलम्।
विपाके घोरेऽस्मिन्न खलु न विमूढा तव सखी,
पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति।।12।।

(**अन्वय–** सः राजा, तत् सौख्यम्, सः च शिशु–जनः, ते च दिवसाः सुहृदि त्वयि दृष्टे, तत् अखिलम् स्मृतौ आविर्भूतम्, अस्मिन् घोरे विपाके तव सखी, न विमूढा न खलु, हि पुरन्ध्रीणाम् चित्तम् कुसुम–सुकुमारम् भवति।।12।।)

जनकः– हन्त, सर्वथा नृशंसोऽस्मि। यच्चिरस्य दृष्टान्प्रियसुहृदः प्रियदारानस्निग्ध इव पश्यामि।

स सम्बन्धी श्लाघ्यः प्रियसुहृदसौ तच्च हृदयं,
स चानन्दः साक्षादपि च निखिलं जीवितफलम्।
शरीरं जीवो वा यदधिकमतोऽन्यत्प्रियतरं,
महाराजः श्रीमान् किमिव मम नासीद्दशरथः।।13।।

[1]. अहो! समूम्मूलअन्ति विअ वेअणाओ।

अरुन्धती–(लम्बी श्वास लेकर) ऐसा ही है, पुत्री सीता के प्रति 'अग्नि' ये अक्षर अत्यन्त तुच्छ हैं। 'सीता' कहना ही पर्याप्त है।

हाय पुत्रि!

तुम मेरी पुत्री हो या शिष्या, जो भी सम्बन्ध हो, वह वैसा ही रहे, तुम्हारे चरित्र की शुद्धि का उत्कर्ष ही, तुममें मेरी श्रद्धा को दृढ़ कर रहा है। तुममें शिशुत्व हो या स्त्रीत्व, तुम तो सम्पूर्ण संसार की वन्दनीया हो, क्योंकि गुणियों में गुण ही पूजा के स्थान होते हैं, लिंग अथवा आयु नहीं।।11।।

कौशल्या– अहो! वेदनाएँ मानो क्लेशप्रद होकर हृदय को मूल से ही उखाड़ रही हैं। (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है)

जनक– हाय, यह क्या है?

अरुन्धती– राजर्षे! और क्या होता?

सम्बन्धी आपको देखकर, इन्हें वे महाराज दशरथ, वे अनुभव किए गए सुख, वे सीता–राम आदि शिशुजन तथा वे दिन स्मरण हो आए हैं, जिनके घोर परिणाम में क्या आपकी प्रिय सखी मूर्च्छित नहीं हुई? ऐसा नहीं है, (अर्थात् हुई हैं) **क्योंकि उत्तम कुल की स्त्रियों का चित्त पुष्प के समान कोमल होता है।।12।।**

जनक– हाय, मैं सर्वथा क्रूर हो गया हूँ, जो लम्बे समय के बाद, देखी गयी प्रिय मित्र दशरथ की पत्नी को भी स्नेह के साथ नहीं देख पा रहा हूँ।

वे राजा दशरथ प्रशंसनीय सम्बन्धी, प्रिय मित्र एवं मेरे दूसरे हृदय ही थे। वे साक्षात् आनन्द, जीवन के सर्वस्व, शरीर, प्राण या फिर संसार में जो भी इससे प्रिय वस्तु है, वह सभी कुछ थे। वे श्रीमान् महाराज दशरथ मेरे क्या नहीं थे?।।13।।

(अन्वय– सः श्लाघ्यः सम्बन्धी, असौ प्रिय–सुहृद्, तत् च हृदयम्, सः च साक्षात् आनन्दः, अपि च निखिलम् जीवित–फलम्, शरीरम् जीवः वा, अतः अधिकम् अन्यत् यत् प्रियतरम्, श्रीमान् महाराजः दशरथः मम किम् इव न आसीत् ।।13।।)

कष्टमियमेव सा कौसल्या।

यदस्याः पत्युर्वा रहसि परमन्त्रायितमभू–
दभूवं दम्पत्योः पृथगहमुपालम्भविषयः।
प्रसादे कोपे वा तदनु मदधीनो विधिरभू–
दलं वा तत्स्मृत्वा दहति यदवस्कन्ध हृदयम्।।14।।

(अन्वय– अस्याः पत्युः वा रहसि यत् पर–मन्त्रायितम् अभूत्, अहम् दम्पत्योः पृथक् उपालम्भ–विषयः अभूवम्, प्रसादे कोपे वा मत्–अधीनः विधिः अभूत्, तत् अनु तत् स्मृत्वा अलम् वा, यत् हृदयम् अवस्कन्ध दहति।।14।।)

अरुन्धती– हा कष्टम्! अतिचिरनिरुद्धनिःश्वासनिष्पन्दहृदयमस्याः।

जनकः– हा प्रियसखि! (इति कमण्डलूदकेन सिंचति)

कंचुकी–

सुहृदिव प्रकटय्य सुखप्रदां, प्रथममेकरसामनुकूलताम्।
पुनरकाण्डविवर्तनदारुणः परिशिनष्टि विधिर्मनसो रुजम्।।15।

(अन्वय– विधिः प्रथमम् सुहृत् इव, सुख–प्रदाम् एकरसाम् अनुकूलताम् प्रकटय्य, पुनः अकाण्ड–विवर्तन–दारुणः मनसः रुजम् परिशिनष्टि ।।15।।)

कौसल्या– (आश्वस्य) हा वत्से जानकि! कुत्रासि? स्मरामि ते नवविवाहलक्ष्मीपरिग्रहैकमंगलं, सफुल्लमुग्धमुखपुण्डरीकमारोहत्कौमुदी–चन्द्रसुन्दरम्। एहि मे पुनरपि जाते! उद्द्योतयोत्संगम्! सर्वदा महाराज एवं भणति– 'एषा रघुकुलमहत्तराणां वधूः, अस्माकं तु जनकसुता दुहितैव।'[1]

1 . हा वच्छे जाणइ! कहिं सि? सुमरामि दे णवविवाहलच्छीपरिग्गहेक्कमंगलं संफुल्लमुद्धमुहपुण्डरीअ आरुहन्तकौमुदी चन्दसुन्दरम्। एहि मे पुणो वि जादे उज्जोएहि उच्छंगम्। सव्वहा महाराअ एव्वं भणदि– 'एसा रहुउलमहत्तराणं बहू, अह्माणं दु जणअसुदा दुहिदेव्व।'

दुःख है, यह वही कौशल्या है?

इनका एवं इनके पति दशरथ का जो एकान्त में प्रणय–कलह होता था, उसमें मैं ही इन पति–पत्नी दोनों के उपालम्भ का अलग–अलग रूप से पात्र बनता था और उसके बाद, इन्हें प्रसन्न या कुपित करने का काम भी मेरे अधीन ही होता था अथवा उन्हें स्मरण करने से क्या लाभ? जो स्मरण मात्र से ही आघात करके, मेरे हृदय को जलाए डाल रहा है।।14।।

अरुन्धती– हाय, कष्ट है, बहुत समय तक श्वास रोकने से इसका हृदय शून्य हो गया है।

जनक– हाय प्रिय सखि!

(ऐसा कहकर कमण्डलु के जल से सींचते हैं)

कंचुकी–

भाग्य पहले मित्र के समान, सुख प्रदान करने वाली, एकमात्र रसयुक्त अनुकूलता को दिखाकर, उसके बाद, अनवसर में परिवर्तन करके, कठोर होता हुआ, मन की पीड़ा को विशेषरूप से बढ़ा देता है।।15।।

कौशल्या– (प्रकृतिस्थ होकर) हाय, पुत्रि जानकि! तुम कहाँ हो? मैं नए विवाह के समय शोभा को धारण करने से अनुपम मंगल युक्त, आकाश में फैली हुई चन्द्रिका से सुशोभित चन्द्रमा के समान तथा खिले हुए कमल के जैसे, भोले–भाले तुम्हारे मुख को स्मरण कर रही हूँ। हे पुत्रि! फिर से आओ और मेरी गोद को सुशोभित करो। महाराज दशरथ हमेशा यह कहा करते थे कि 'यह सीता रघुकुल के पूर्वजों की तो पुत्रवधू है, किन्तु हमारी तो जनक से सम्बन्ध होने के कारण पुत्री ही है।'

कंचुकी– यथाह देवी।

पंचप्रसूतेरपि तस्य राज्ञः,
प्रियो विशेषेण सुबाहुशत्रुः।
वधूचतुष्केऽपि तथैव नान्या,
प्रिया तनूजास्य यथैव सीता।।16।।

(**अन्वय–** पंच–प्रसूतेः अपि तस्य राज्ञः, सुबाहु–शत्रुः विशेषेण प्रियः, तथा एव अस्य वधू–चतुष्के अपि सीता एव तनूजा यथा प्रिया (तथा) अन्या न ।।16।।)

जनकः– हा प्रियसख महाराज दशरथ! एवमसि सर्वप्रकार–हृदयंगमः। कथं विस्सर्यसे?

कन्यायाः किल पूजयन्ति पितरो जामातुराप्तं जनं,
सम्बन्धे विपरीतमेव तदभूदाराधनं ते मयि।
त्वं कालेन तथाविधोऽप्यपहृतः सन्बन्धबीजं च तद्
घोरेऽस्मिन्मम जीवलोकनरके पापस्य धिग्जीवितम्।।17।।

(**अन्वय–** कन्यायाः पितरः जामातुः आप्तम् जनम् पूजयन्ति किल, सम्बन्धे मयि ते तत् आराधनम् विपरीतम् एव अभूत्, तथाविधः अपि त्वम् कालेन अपहृतः, तत् सन्बन्ध–बीजम् च (अपहृतम्),घोरे अस्मिन् जीव–लोक–नरके, पापस्य मम जीवितम् धिक् ।।17।।)

कौसल्या– जाते जानकि। किं करोमि? दृढवज्रलेपप्रतिबन्धनिश्चलं हतजीवितं मां मन्दभागिनीं न परित्यजति।[1]

अरुन्धती– आश्वसिहि राज्ञि! बाष्पविश्रामोऽप्यन्तरेषु कर्त्तव्य एव। अन्यच्च किं न स्मरसि? यदवोचदृष्यश्रृंगाश्रमे युष्माकं कुलगुरुः–''भवितव्यं तथेत्युपजातमेव। किन्तु कल्याणोदर्कं भविष्यतीति।

कौसल्या– कुतोऽतिक्रान्तमनोरथाया ममैतत्।[2]

अरुन्धती– तत्किं मन्यसे राजपत्नि! मृषोद्यं तदिति न हीदं क्षत्रिये! मन्तव्यम्।

---

1 जादे जाणइ! किं करोमि? दिढवज्जलेवपडिबद्धणिच्चलं हृदजीविदं म मन्दभाइणीं ण पडिच्चअदि।

2 कुदो अदिक्कमन्दमणोरहाए मह एदम्?

कंचुकी– महारानी ठीक कह रही हैं–

पाँच सन्तानों में महाराज को सुबाहु के शत्रु राम ही अत्यधिक प्रिय थे और इसीप्रकार चारों पुत्र–वधुओं में भी, सीता ही जैसी पुत्री के समान प्रिय थी, वैसी अन्य कोई नहीं थी।।16।।

जनक– हा, प्रियमित्र महाराज दशरथ! आप इसप्रकार सर्वात्मना मेरे हृदय में बस गए हैं कि आपको भला कैसे भुलाया जा सकता है?

सामान्यरूप से कन्या के पितृजन जामाता के बन्धुओं की पूजा करते हैं, किन्तु सम्बन्ध होने पर, तो मुझमें आपकी वह पूजा विपरीत ही रही। इसप्रकार के आपको और उस सम्बन्ध के बीजरूप सीता को भी काल ने अपहरण कर लिया है। भयंकर नरक के समान इस मनुष्य लोक में मुझ पापी के जीवन को धिक्कार है।।17।।

कौशल्या– पुत्रि जानकि! मैं क्या करूँ? अत्यधिक मजबूत वज्र के लेप से बँधे हुए, ये निन्दनीय प्राण मुझ अभागिन को नहीं छोड़ रहे हैं।

अरुन्धती– महारानी, धैर्य धारण करें, क्योंकि बीच–बीच में आँसुओं को रोकना भी चाहिए और फिर क्या तुम्हें याद नहीं है कि–

ऋष्यश्रृंग के आश्रम में तुम्हारे कुलगुरु ने कहा था कि 'जो होना था, वह तो हो चुका, किन्तु इसका परिणाम कल्याणों को उदित करने वाला होगा।'

कौशल्या– मनोरथ के चले जाने पर, मेरे लिए यह भला कैसे सम्भव है?

अरुन्धती– हे महारानी! क्या तुम उस गुरुवचन को मिथ्या समझती हो? हे क्षत्रिये! निश्चय ही, तुम्हें ऐसा नहीं मानना चाहिए।

आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां,
ये व्याहारास्तेषु मा संशयो भूत्।
भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषक्ता,
नैते वाचं विलुप्तार्थां वदन्ति।।18।।

(अन्वय– आविर्भूत–ज्योतिषाम् ब्राह्मणानाम्, ये व्याहाराः तेषु संशयः मा भूत्, हि एषाम् वाचि भद्रा लक्ष्मीः निषक्ता, एते विलुप्त–अर्थाम् वाचम् न वदन्ति।।18।।)

(नेपथ्ये कलकलः, सर्वे आकर्णयन्ति)

जनकः– अये, शिष्टानध्याय इत्यस्खलितं खेलतां वटूना कोलाहलः।

कौसल्या– सुलभसौख्यमिदानीं बालत्वं भवति। (निरूप्य) अहो, एतेषां मध्ये क एष रामभद्रस्य कौमारलक्ष्मीसावष्टम्भैर्मुग्धललितैरंगैर्दारकोऽस्माकं लोचने शीतलयति?[1]

अरुन्धती– (स्वगतम् सहर्षोत्कण्ठम्) इदं नाम भागीरथीनिवेदितं रहस्यकर्णामृतम् न त्वेवं विद्मः कतरोऽयमायुष्मतो कुशलवयोरिति।

(प्रकाशम्)

कुवलयदलस्निग्धश्यामः शिखण्डकमण्डनो
वटुपरिषदं पुण्यश्रीकः श्रियेव सभाजयन्।
पुनरपि शिशुर्भूतो वत्सः स मे रघुनन्दनो,
झटिति कुरुते दृष्टः कोऽयं दृशोरमृतांजनम्?।।19।।

(अन्वय–कुवलय–दल–स्निग्ध–श्यामः, शिखण्डक–मण्डनः, पुण्य–श्रीकः श्रिया, वटु–परिषदम् सभाजयन्, पुनः अपि शिशुः भूतः सः मे वत्सः रघुनन्दनः इव, कः अयम् दृष्टः, झटिति दृशोः अमृत–अंजनम् कुरुते ?।।19।।)

कंचुकी– नूनं क्षत्रियब्रह्मचारी दारकोऽयमिति मन्ये।

जनकः– एवमेतत्। अस्य हि–

1. सुलहसोक्खं दाणिं बालत्तणं होदि। अह्महे एदाणं मज्झे को एसो रामभद्दस्स कोमारलच्छीसावट्ठम्मेहि मुद्धललिदेहिं अंगेहिं दारओ अह्माणं लोअणे शीअलावदि?

ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले, ब्राह्मणों के जो वचन हैं, उनमें सन्देह नहीं करना चाहिए, क्योंकि इनकी वाणी में सम्पूर्ण संसार का कल्याण करने वाली 'लक्ष्मी' का निवास होता है और वे कभी भी असत्य वाणी नहीं बोलते हैं।।18।।

(नेपथ्य में कोलाहल होता है, सभी सुनते हैं)

जनक– अरे! शिष्टजनों के आने के कारण, अनध्याय होने से बिना रुकावट के खेलने वाले, बालकों का यह कोलाहल है।

कौशल्या– इस बाल्यावस्था में ही तो सुख सरलता से प्राप्त होता है। (देखकर) अरे! इन बालकों के बीच में रामभद्र की बाल्यावस्था की शोभा से युक्त, यह कौन बालक, अपने सुन्दर एवं सुकुमार अंगों से हमारे दोनों नेत्रों को शीतल कर रहा है?

अरुन्धती– (मन में, हर्ष एवं उत्कण्ठापूर्वक) भागीरथी द्वारा बताया गया, कानों के लिए अमृत के समान, यह आनन्ददायी वचन गोपनीय है, किन्तु हम यह नहीं जानते हैं कि यह आयुष्मान् 'लव' और 'कुश' में से कौन है?

(प्रकट में)

नीलकमल के पत्ते के समान, स्निग्ध और श्यामल, काकपक्षों से सुशोभित, अलौकिक शोभा से युक्त, शरीर की कान्ति द्वारा, सभी ब्रह्मचारियों की परिषद् को अलंकृत करने वाला, यह कौन है? जो फिर से बाल्यावस्था में विद्यमान, मेरे वात्सल्य के भाजन राम के समान, देखने पर शीघ्र ही, नेत्रों में अमृतमय अंजन का लेप कर रहा है।।19।।

कंचुकी– मैं समझता हूँ कि निश्चय ही, यह क्षत्रिय बालक है।

जनक– ऐसा ही है, क्योंकि इसकी–

चूडाचुम्बितकंकपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो
भस्मस्तोकपवित्रलांछनमुरो धत्ते त्वचं रौरवीम्।
मौर्व्या मेखलया नियन्त्रितमधो वासश्च मांजिष्ठकं,
पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डोऽपरः पैप्पलः।।20।।

(**अन्वय–** पृष्ठतः अभितः चूडा–चुम्बित–कंक–पत्रम् तूणी–द्वयम्, भस्म–स्तोक–पवित्र–लांछनम्, उरः रौरवीम् त्वचम् धत्ते, अधः च मौर्व्याः मेखलया नियन्त्रितम्, मांजिष्ठकम् वासः, पाणौ कार्मुकम्, अक्ष–सूत्र–वलयम्, अपरः पैप्पलः दण्डः।।20।।)

भगवत्यरुन्धति! किमित्युत्प्रेक्षसे कुतस्त्योऽयम्? इति।

अरुन्धती– अद्यैव वयमागताः।

जनकः– आर्य गृष्टे! अतिकौतुकं वर्तते। तद्भगवन्तं वाल्मीकिमेव गत्वा पृच्छ। इमं च दारकं ब्रूहि 'वत्सः! केऽप्येते प्रवयसस्त्वां दिदृक्षवः' इति।

कंचुकी– यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः)

कौसल्या– किं मन्यध्वे? एवं भणिति आगमिष्यति वा नवेति?[1]

जनकः– भिद्यते वा सद्वृत्तमीदृशस्य निर्माणस्य?

कौसल्या– (निरूप्य) कथं सविनयनिशमितसृष्टिवचनो विसर्जिताशेषसदृशदारक इतोमुखमपसरित एव स वत्सः?[2]

जनकः– (चिरं निर्वर्ण्य) भोः किमप्येतत्!

महिम्नामेतस्मिन्विनयशिशिरो मौग्ध्यमसृणो,
विदग्धैर्निर्ग्राह्यो न पुनरविदग्धैरतिशयः।
मनो मे संमोहस्थिरमपि हरत्येष बलवा–
नयोधातुं यद्वत्परिलघुरयस्कान्तशकलः।।21।।

(**अन्वय–** एतस्मिन् विनय–शिशिरः मौग्ध्य–मसृणः महिम्नाम् अतिशयः विदग्धैः निर्ग्राह्यः, न पुनः अविदग्धैः, बलवान् एषः संमोहं–स्थिरम् अपि मे मनः हरति, यद्वत् परिलघुः अयस्कान्त– शकलः अयः–धातुम् (हरति)।।21।।)

1. किं मण्णेध? एव्वं भणिदो आआमिस्सदि वा ण वेत्ति?
2. कहं सविणअणिसमिदगिट्ठिवअणो विसज्जिदासेससरिसदारओ इतोमुहं ... वच्छो।

पीठ पर दोनों ओर शिखाओं का स्पर्श करने वाले, कंकपत्रों से युक्त, तरकस लटके हुए हैं। थोड़ी सी भस्म लगाने से इसका वक्षःस्थल पवित्र है। इसने वक्ष पर मृगचर्म को धारण किया हुआ है। इसके अधोभाग में मंजिष्ठ से रंगा हुआ वस्त्र, मूँज की तगड़ी से बँधा हुआ है तथा इसके एक हाथ में धनुष, रुद्राक्ष की माला एवं दूसरे में पीपल का दण्ड सुशोभित हो रहा है।।20।।

भगवति अरुन्धति! आपका क्या अनुमान है? यह बालक कहाँ से आया है?

अरुन्धती– हम तो आज ही आए हैं।

जनक– आर्य गृष्टि! मुझे अत्यधिक कौतूहल हो रहा है। इसलिए भगवान् वाल्मीकि से ही जाकर पूछो और इस बालक से कहो कि– 'ये कुछ बूढ़े लोग तुम्हें देखना चाहते हैं।'

कंचुकी– जैसी महाराज की आज्ञा।

(ऐसा कहकर निकल जाता है)

कौशल्या– आप लोगों का क्या विचार है? ऐसा कहने पर यह आएगा या नहीं?

जनक– इसप्रकार की अलौकिक आकृति से भी क्या शिष्टाचार अलग रह सकता है?

कौशल्या– (देखकर) नम्रतापूर्वक गृष्टि का वचन सुनकर, अपने साथ के सभी बालकों को विसर्जित करके, यह बालक तो इधर की ओर मुख करके ही आ रहा है।

जनक– (बहुत देर तक देखकर) ओह! यह तो कुछ अपूर्व ही है,

इस बालक में नम्रता से शीतल एवं कोमल, जो महत्ता का उत्कर्ष है, वह निपुण लोगों द्वारा ही ग्रहण करने योग्य है, साधारण पुरुषों द्वारा नहीं। यह बलवान् बालक, जिसप्रकार छोटा सा चुम्बक का टुकड़ा लोहे को अपनी ओर खींच लेता है, वैसे ही सम्मोह के कारण स्थिर हुए, मेरे मन को यह अपनी ओर आकर्षित कर रहा है।।21।।

लवः— (प्रविश्य, स्वगतम्) अविज्ञातवयः क्रमौचित्यात्पूज्यानपि सतः कथमभिवादयिष्ये? (विचिन्त्य) अयं पुनरविरुद्धप्रकार इत वृद्धेभ्यः श्रूयते। (सविनयमुपसृत्य) एष वो लवस्य शिरसा प्रणामपर्यायः।

अरुन्धतीजनकौ— कल्याणिन्! आयुष्मान् भूयाः।

कौसल्या— जात! चिरं जीव।[1]

अरुन्धती— एहि वत्स! (लवमुत्संगे गृहीत्वा आत्मगतम्) दिष्ट्या न केवलमुत्संगश्चिरान्मनोरथोऽपि मे पूरितः।

कौसल्या— जात! इतोऽपि तावदेहि। (उत्संगे गृहीत्वा) अहा, न केवलं दरविस्पष्टकुवलयमांसलोज्ज्वलेन देहबन्धनेन, कवलितारविन्द–केसरकषायकण्ठकलहंसघोषघर्घररानुनादिना स्वरेण च रामभद्रम–नुसरति। ननु कठोरकमलगर्भपक्ष्मलशरीरस्पर्शोऽपि तादृश एव। जात! पश्यामि ते मुखपुण्डरीकम्। (चिबुकमुन्नमय्य, निरूप्य, सबाष्पाकूतम्) राजर्षे! किं न पश्यसि? निपुणं निरूप्यमाणो वत्साया मे वध्वा मुखचन्द्रे–णापि संवदत्येव।[2]

जनकः— पश्यामि सखि! पश्यामि।

कौसल्या— अहो, उन्मत्तीभूतमिव मे हृदयं कुतोमुखं विलपति।[3]

जनकः— (निरूप्य)

वत्सायाश्च रघूद्वहस्य च शिशावस्मिन्नभिव्यज्यते,
संवृत्तिः प्रतिबिम्बितेव निखिला सैवाकृतिः सा द्युतिः।
सा वाणी विनयः स एव सहजः पुण्यानुभावोऽप्यसौ,
हा हा देवि किमुत्पथैर्मम मनः पारिप्लवं धावति?।।22।।

1. जाद! चिरं जीव।
2. जाद! इदो वि दाव एहि। अह्महे, ण केवलं दरविप्पट्टकन्दोट्टमंसलुज्जलेण देहबन्धणेण, कवलिदारविन्दकेसरकसाअ– कण्ठकलहंसघोसघग्घराणुणादिणा सरेण अ रामभद्दं अणुसरेदि। णं कठोरकमलगब्भप्पम्भल सरीरप्पस्सो वि तारिसो एव्व। जाद! पेक्खामि दे मुहपुण्डरीअम्। राएसि! किं ण पेक्खसि? णिउणं णिरूवज्जन्तो वच्छाए मे वहूए मुहचन्देणविसंवददि एव्व!
3. अह्महे, उन्मत्तीभूद विअ मे हिअअं कुदोमुहं विलवदि।

लव— (प्रवेश करके मन में) अवस्था, क्रम तथा औचित्य को न जानने के कारण, मैं इन पूजनीयों को कैसे प्रणाम करूँ? (सोचकर) यह प्रणाम का विरोधरहित प्रकार है, ऐसा वृद्ध लोगों से सुना जाता है। (नम्रतापूर्वक पास जाकर) आप लोगों को, पूजनीय जनों के क्रम से इस लव का सिर से प्रणाम है।

अरुन्धती और जनक— हे कल्याणिन्! आयुष्मान् बनो।

कौशल्या— पुत्र! चिरंजीवी होओ।

अरुन्धती— आओ, बेटा! (लव को गोद में लेकर, मन में) सौभाग्य से केवल मेरी गोद ही नहीं, अपितु मेरा बहुत दिनों का मनोरथ भी पूरा हुआ।

कौशल्या— पुत्र! इधर भी आओ, (गोद में लेकर) आश्चर्य है कि यह बालक केवल थोड़ा खिले हुए, नीले कमल के समान, पुष्ट और तेजस्वी शरीर के गठन से ही नहीं, अपितु कमल के केसर को खाने के कारण, मधुर कण्ठ वाले, हंस के स्वर के समान, स्वर द्वारा भी रामभद्र का अनुसरण कर रहा है। निश्चय ही, विकसित कमल के भीतरी भाग के समान सुकुमार, इसके शरीर का स्पर्श भी, उसी के समान है। बेटा! मैं जरा तुम्हारा मुख–कमल तो देख लूँ।

(ठुड्डी को ऊपर करके, देखकर, अश्रुपूर्वक अभिप्राय के साथ)

हे राजर्षे! क्या आप नहीं देख रहे हैं? कि भलीप्रकार देखे जाने पर, इस बालक का मुख, मेरी प्रिय वधू सीता के मुखरूपी चन्द्र से मेल खा रहा है।

जनक— देख रहा हूँ, सखि! देख रहा हूँ।

कौशल्या— अहो! मेरा हृदय तो उन्मत्त सा होकर, न जाने किस असम्भावनीय विषय में लगा हुआ विलाप कर रहा है।

जनक— (देखकर)

इस बालक में मानो पुत्री सीता तथा रघुकुल श्रेष्ठ रामभद्र का पवित्र सम्बन्ध अभिव्यंजित हो रहा है और वही सम्पूर्ण आकृति, वही कान्ति, वही वाणी तथा वही सहज विनम्रता एवं वही पुण्य प्रभाव भी है। हा, हा देवि! सीते, चंचल होकर मेरा मन, उन मार्गों पर क्यों दौड़ रहा है?।।22।।

(अन्वय– अस्मिन् शिशौ वत्सायाः रघूद्वहस्य च संवृत्तिः प्रतिबिम्बिता इव अभिव्यज्यते, सा एव निखिला आकृतिः, सा द्युतिः, सा वाणी, सः एव सहजः विनयः, असौ पुण्य–अनुभावः अपि, हा हा देवि! मम मनः पारिप्लवम्, उत्पथैः किम् धावति? ।।22।।)

कौसल्या– जात! अस्ति ते माता? स्मरसि वा तातम्?[1]

लवः– नहि।

कौसल्या– ततः कस्य त्वम्?[2]

लवः– भगवतः सुगृहीतनामधेयस्य वाल्मीकेः।

कौसल्या– अयि जात! कथितव्यं कथय।[3]

लवः– एतावदेव जानामि।

(नेपथ्ये)

भोः भोः सैनिकाः? एष खलु कुमारश्चन्द्रकेतुराज्ञापयति– 'न केनचिदाश्रमाभ्यर्णभूमय आक्रमितव्या' इति।

अरुन्धतीजनकौ– अये, मेध्याश्वरक्षाप्रसंगादुपागतोवत्सश्चन्द्रकेतुर्द्रष्टव्य इत्यसौ सुदिवसः।

कौसल्या– वत्सलक्ष्मणस्य पुत्रकः आज्ञापयतीत्यमृतबिन्दु सुन्दराण्यक्षराणि श्रूयन्ते।[4]

लवः– आर्य! क एष चन्द्रकेतुर्नाम?

जनकः– जानासि रामलक्ष्मणौ दाशरथी?

लवः– एतावेव रामायणकथापुरुषौ?

जनकः– अथ किम्?

लवः– तत्कथं न जानामि?

जनकः– तस्य लक्ष्मणस्यायमात्मजश्चन्द्रकेतुः।

लवः– उर्मिलार्यायाः पुत्रस्तर्हि मैथिलस्य राजर्षेर्दौहित्रः।

अरुन्धती– आविष्कृतं कथाप्रावीण्यं वत्सेन।

1. जाद! अत्थि दे मादा? सुमरसि वा तादम्!
2. तदो कस्स तुमम्?
3. अयि जाद? कहिदव्वं कहेहि।
4. वच्छलक्खणस्स पुतओ आणवेदिति अमिदबिन्दुसुन्दराइं अक्खराइं सुणीअन्दि।

कौशल्या– पुत्र! क्या तुम्हारी माता है? तुम क्या अपने पिता को याद करते हो?

लव– नहीं।

कौशल्या– तब तुम किसके पुत्र हो?

लव– स्वनाम धन्य वाल्मीकि के।

कौशल्या– अरे पुत्र! कहने योग्य बात को कहो।

लव– मैं इतना ही जानता हूँ।

(नेपथ्य में)

अरे सैनिकों! कुमार चन्द्रकेतु आज्ञा प्रदान करते हैं कि–'कोई भी आश्रम के समीपवर्ती प्रदेशों में आक्रमण न करे।'

अरुन्धती और जनक– अरे! अश्वमेध यज्ञ के पवित्र अश्व की रक्षा करने के प्रसंगवश आए हुए, कुमार चन्द्रकेतु का दर्शन होगा, इसलिए आज अत्यन्त सुन्दर दिन है।

कौशल्या– 'वत्स लक्ष्मण का पुत्र आज्ञा दे रहा है' अमृतबिन्दु के समान, ये सुन्दर अक्षर सुनायी दे रहे हैं।

लव– आर्य! ये चन्द्रकेतु कौन हैं?

जनक– दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण को जानते हो?

लव– क्या ये ही रामायण कथा के मुख्य पुरुष हैं?

जनक– और क्या?

लव– तो फिर उन्हें क्यों नहीं जानूँगा?

जनक– यह चन्द्रकेतु उन्हीं लक्ष्मण का पुत्र है।

लव– तब तो ये चन्द्रकेतु, उर्मिला के पुत्र एवं विदेहराज जनक के दौहित्र हुए।

अरुन्धती– कुमार ने रामायण की कथा में निपुणता प्रदर्शित की है।

जनकः— (विचिन्त्य) यदि त्वमीदृशः कथायामभिज्ञस्तद् ब्रूहि तावत्पश्यामस्तेषां दशरथस्य पुत्राणां कियन्ति किंनामधेयान्यपत्यानि केषु दारेषु प्रसूतानि?

लवः— नायं कथाविभागोऽस्माभिरन्येन वा श्रुतपूर्वः।

जनकः— किं न प्रणीतः कविना?

लवः—प्रणीतः, न तु प्रकाशितः। तस्यैव कोऽप्येकदेशः प्रबन्धान्तरेण रसवानभिनेयार्थः कृतः। तं च स्वहस्तलिखितं मुनिर्भगवान् व्यसृजद्भगवतो भरतस्य तौयत्रिकसूत्रधारस्य।

जनकः— किमर्थम्?

लवः— स किल भगवान् भरतस्तमप्सरोभिः प्रयोजयिष्यतीति।

जनकः— सर्वमिदमाकूतकरस्माकम्।

लवः—महती पुनस्तस्मिन् भगवतो वाल्मीकेरास्था। यतः केषांचिद–न्तेवासिनां हस्तेन तत्पुस्तकं भरताश्रमं प्रति प्रेषितम्। तेषामनुयात्रिक–श्चापपाणिप्रमादच्छेदनार्थमस्मद् भ्राता प्रेषितः।

कौसल्या— भ्रातापि तेऽस्ति?[1]

लवः— अस्त्यार्यः कुशो नाम।

कौसल्या— ज्येष्ठ इति भणितं भवति।[2]

लवः— एवमेतत्! प्रसवानुक्रमेण स किल ज्यायान्।

जनकः— किं यमावायुमन्तौ?

लवः— अथ किम्?

जनकः— वत्स! कथय कथाप्रपंचय कियान्पर्यन्तः?

लवः— अलीकपौरापवादोद्विग्नेन राज्ञा निर्वासितां देवीं देवयजन–सम्भवां सीतामासन्नप्रसववेदनामेकाकिनीमरण्ये लक्ष्मणः परित्यज्य प्रति–निवृत्त इति।

1. भादावि दे अत्थि?
2. जेट्ठेत्ति भणिदं होदि।

जनक— (सोचकर) यदि तुम रामायण की कथा में इतने प्रवीण हो, तो हम भी तुम्हारे ज्ञान को जान लें। बोलो, दशरथ के पुत्रों के कितने और किस–किस नाम वाले, पुत्र किन–किन पत्नियों से हुए?

लव— इस कथाभाग को हमने या दूसरे किसी ने भी अभी तक नहीं सुना है।

जनक— क्या कवि वाल्मीकि ने उसकी रचना नहीं की है?

लव— रचना तो की है, किन्तु उसे प्रकाशित नहीं किया है। उसी का एक भाग उन्होंने दूसरे प्रबन्ध के रूप में, सरस तथा अभिनय के योग्य बनाया है तथा उस कथाभाग को स्वयं अपने हाथ से लिखकर, भगवान् वाल्मीकि ने नृत्य, गीत और वाद्य (तौर्यत्रिक) का प्रयोग करने वाले आचार्य भरत के पास भेजा है।

जनक— किसलिए?

लव— वे भगवान् भरत अप्सराओं द्वारा उसका अभिनय कराएँगे।

जनक— हमारे लिए तो यह सब कुछ गूढ़ रहस्य वाला है।

लव— उस अंश में भगवान् वाल्मीकि की अत्यधिक श्रद्धा है, इसी लिए उन्होंने कुछ विद्यार्थियों के हाथ उस पुस्तक को भरत मुनि के आश्रम में भेजा है और मार्ग में प्रमाद को दूर करने के लिए, उनके पीछे हाथ में धनुष लेकर, हमारे भाई को भी भेजा है।

कौशल्या— तुम्हारा भाई भी है?

लव— हाँ, आर्य कुश नामक भाई है।

कौशल्या— वे तुमसे बड़े हैं।

लव— ऐसा ही है, जन्म के क्रम से निश्चय ही, वे बड़े हैं।

जनक— क्या तुम दोनों जुड़वाँ हो?

लव— जी हाँ।

जनक— वत्स! बताओ, कथा की समाप्ति कहाँ तक है?

लव— प्रजाजनों के मिथ्या अपवाद से उद्विग्न, राजा राम द्वारा निर्वासित, यज्ञभूमि से उत्पन्न और प्रसव–पीड़ा से दुःखी महारानी सीता को लक्ष्मण, वन में अकेली छोड़कर लौट गए।

कौसल्या:— हा वत्से मुग्धमुखि! क इदानीं ते शरीरकुसुमस्य झटिति देवदुर्विलासपरिणाम एकाकिन्या निपतितः?[1]

जनकः— हा वत्से!

नूनं त्वया परिभवं च वनं च घोरं,
तां च व्यथां प्रसवकालकृतामवाप्य।
क्रव्यादगणेषु परितः परिवारयत्सु,
संत्रस्तया शरणमित्यसकृत्मृतोऽहम्।।23।।

(**अन्वय—** परितः क्रव्याद्—गणेषु परिवारयत्सु संत्रस्तया त्वया परिभवम् च, घोरम् वनम् च, प्रसव—काल—कृताम् ताम् व्यथाम् च, अवाप्य, अहम् 'शरणम्' इति, नूनम् असकृत् स्मृतः ।।23।।)

लवः— आर्ये? कावेतौ?

अरुन्धती— इयं कौसल्या। अयं जनकः।

(लवः सबहुमानखेदकौतुकं पश्यति)

जनकः— अहो निर्दयता दुरात्मनां पौराणाम् अहो! रामभद्रस्य क्षिप्रकारिता।

एतद्वैशसवज्रघोरपतनं शश्वन्ममोत्पश्यतः,
क्रोधस्य ज्वलितुं झटित्यवसरश्चापेन शापेन वा।

कौसल्या— (सभयकम्पम्) भगवति! परित्रायताम् प्रमादय कुपितं राजर्षिम्।[2]

लवः— **एतद्धि परिभूतानां प्रायश्चित्तं मनस्विनाम्।**

अरुन्धती—

राजन्नपत्यं रामस्ते पाल्याश्च कृपणा प्रजाः।।24।।

(**अन्वय—** एतत् वैशस—वज्र—घोर—पतनम् शश्वत् उत्पश्यतः मम क्रोधस्य चापेन शापेन वा, झटिति ज्वलितुम् अवसरः, एतत् हि परिभूतानाम् मनस्विनाम् प्रायश्चित्तम्, राजन्! रामः ते अपत्यम्, कृपणाः प्रजाः च पाल्याः ।।24।।)

---

1 : हा वच्छे मुद्धहि! को दाणिं दे सरीरकुसुमस्स झत्ति देव्वदुब्बिलास परिणामो एक्काइणीए निवडिदो?

2 . भअवदि! परित्ताअदु। पसादेहि कुविदं राएसिम्।

कौशल्या— हाय, सुमुखि पुत्रि! पुष्प के समान सुकुमार तुम्हारे अकेले शरीर पर अकस्मात् ही भाग्य का यह कैसा दारुण वज्रपात हुआ?

जनक— हाय, पुत्रि!

चारों ओर व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओं द्वारा घेर लिए जाने पर, भयभीत हुई तुमने, उस निर्वासनरूप तिरस्कार, भयंकर वन तथा प्रसव के समय होने वाली, पीड़ा को प्राप्त करके, निश्चय ही रक्षक समझ कर मुझे बार—बार स्मरण किया होगा।। 23।।

लव— आर्ये! ये दोनों कौन हैं?

अरुन्धती— ये कौशल्या हैं और ये जनक हैं।

(लव अत्यन्त आदर, विषाद तथा कौतूहलपूर्वक देखता है)

जनक— अहो, दुरात्मा नागरिकों की निर्दयता। अहो, रामभद्र की जल्दीबाजी।

सीता के ऊपर हुए हिंसारूपी इस अनर्थ के घोर वज्रपात को निरन्तर देखते हुए, मेरे क्रोध से धनुष अथवा शाप से शीघ्र प्रज्वलित होने का यह अवसर आ गया है।

कौशल्या—(भय के साथ कम्पपूर्वक) भगवति! रक्षा कीजिए। क्रुद्ध हुए राजर्षि को प्रसन्न कीजिए।

लव— अपमानित हुए स्वाभिमानियों का यही प्रतिकार है।

अरुन्धती— हे राजन्! राम तो आपके पुत्र हैं, जबकि बेचारे प्रजाजन तो पालन करने योग्य हैं।।24।।

महाकवि भवभूति की छोटे संवादों से युक्त भाषा दर्शनीय है, क्योंकि प्रस्तुत नाटक में जहाँ एक ओर लम्बे—लम्बे संवादों का प्रयोग किया गया है, वहीं दूसरी ओर इसप्रकार के छोटे संवाद भी अनेक स्थलों पर प्रस्तुत किए गए हैं।

इसीप्रकार वर्ण्यविषय के अनुसार उनकी भाषा भी परिवर्तित होती रही है, कहीं पर समासरहित तथा कहीं पर समासयुक्त भाषा का प्रयोग किया है। भावों के अनुसार प्रसादगुण युक्त भाषा का प्रयोग भी प्रशंसनीय है।

जनकः—

शान्तं वा रघुनन्दने तदुभयं यत्पुत्रभाण्डं हि मे,
भूयिष्ठद्विजबालवृद्धविकलस्त्रैणश्च पौरो जनः।।25।।

(**अन्वय—** वा हि यत् मे पुत्र—भाण्डम्, पौरः जनः च, भूयिष्ठ—द्विज—बाल—वृद्ध—विकल—स्त्रैणः रघुनन्दने तत् उभयम् शान्तम्।।25।।)

(प्रविश्य सम्भ्रान्ताः)

बटवः— कुमार! कुमार! 'अश्वोऽश्व' इति कोऽपि भूतविशेषो जनपदेष्वनुश्रूयते' सोऽयमधुनाऽस्माभिः स्वयं प्रत्यक्षीकृतः।

लवः— 'अश्वोऽश्व' इति नाम पशुसमाम्नाये सांग्रामिके च पठ्यते, तद् ब्रूत कीदृशः?

बटवः— अये, श्रूयताम्—

पश्चात्पुच्छं वहति विपुलं, तच्च धूनोत्यजस्रं,
दीर्घग्रीवः स भवति, खुरास्तस्य चत्वार एव।
शष्पाण्यत्ति, प्रकिरति शकृत्पिण्डकानाम्रमात्रान्,
किं व्याख्यानैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि यामः।।26।।

(**अन्वय—** पश्चात् विपुलम् पुच्छम् वहति, तत् च अजस्रम् धूनोति, सः दीर्घ—ग्रीवः भवति, तस्य चत्वारः एव खुराः, शष्पाणि अत्ति, आम्र—मात्रान् शकृत्—पिण्डकान् प्रकिरति, व्याख्यानैः किम्? सः पुनः दूरम् व्रजति, एहि, एहि यामः।।26।।)

(इत्यजिने हस्तयोश्चाकर्षन्ति)

लवः— (सकौतुकोपरोधविनयम्) आर्याः! पश्यत। एभिर्नीतोऽस्मि।

(इति त्वरितं परिक्रामति)

अरुन्धतीजनकौ— महत्कौतुकं वत्सस्य।

कौसल्याः— अरण्यगर्भरूपालापैर्यूयं तोषिता वयं च। भगवति! जानामि तं पश्यन्ती वंचितेव। तस्मादितोऽन्यतो भूत्वा प्रेक्षामहे तावत् पलायमानं दीर्घायुषम्।[1]

1. अरण्यगब्भरूवालावेहिं तुह्मे तोसिदा अह्मे अ। भअवदि! जाणामि तं पेक्खन्त वंचिदा विअ। ता इदो अण्णदो भविअ पेक्खम्ह दाव पलायन्तं दीहाउम्।

जनक—

अथवा वे दोनों (चाप और शाप) **राम के विषय में भी शान्त हो जाएँ, क्योंकि वे राम तो मेरे पुत्ररूपी मूल धन ही हैं, जबकि नागरिक लोगों में तो बहुत से ब्राह्मण, बालक, वृद्ध, अंगहीन तथा स्त्रियाँ हैं।।25।।**

(घबराए हुए प्रवेश करके)

बटुकगण— कुमार! कुमार! जनपदों में, जो घोड़ा—घोड़ा इस प्रकार का कोई प्राणीविशेष सुना जाता है, उसे अभी हमने स्वयं प्रत्यक्ष रूप से देख लिया है।

लव— 'घोड़ा—घोड़ा' यह नाम तो पशु—शास्त्र तथा संग्राम—शास्त्र के अन्तर्गत पढ़ा जाता है। इसलिए बताओ वह कैसा है?

बटुकगण— अरे! सुनो,

वह पीछे लम्बी पूँछ को धारण करता है और उसे निरन्तर हिलाता रहता है। वह लम्बी गर्दन वाला है, उसके चार खुर हैं, कोमल घास खाता है, आम के फलों के बराबर लीद के टुकड़ों को फैलाता है। अधिक कहने से क्या लाभ? फिर वह दूर जा रहा है, इसलिए आओ, आओ, हम लोग जा रहे हैं।।26।।

(ऐसा कहकर उसके हाथ और मृगचर्म को खींचते हैं)

लव— (जिज्ञासा, आग्रह और विनम्रतापूर्वक) आर्यगण! देखिए, मैं इनके द्वारा ले जाया जा रहा हूँ।

(ऐसा कहकर शीघ्रतापूर्वक घूमता है)

अरुन्धती और जनक— बालक को अत्यधिक कौतूहल है।

कौशल्या— इन वनवासी बालकों के वार्तालाप से आप और हम लोग अत्यन्त सन्तुष्ट हुए हैं। भगवति! मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मैं उसे देखती हुई ठगी सी रह गयी हूँ। इसलिए जरा यहाँ से दूसरी ओर होकर, इस दीर्घायु को भागते हुए देखते हैं।

अरुन्धती— अतिजवेन दूरमतिक्रान्तः सः चपलः कथं दृश्यते?

कंचुकी— (प्रविश्य) भगवान् वाल्मीकिराह— 'ज्ञातव्यमेतदवसरे भवद्भिरिति।

जनकः— अतिगम्भीरमेतत्किमपि। भगवत्यरुन्धति! सखि कौसल्ये! आर्य गृष्टे! स्वयमेव गत्वा भगवन्तं प्राचेतसं पश्यामः।

(इति निष्क्रान्तो वृद्धवर्गः)

(प्रविश्य)

बटवः— पश्यतु कुमारस्तावदाश्चर्यम्।

लवः— दृष्टमवगतं च। नूनमाश्वमेधिकोऽयमश्वः।

बटवः— कथं ज्ञायते?

लवः— ननु मूर्खाः पठितमेव हि युष्माभिरपि तत्काण्डम्। किं न पश्यथ? प्रत्येकशतसंख्याः कवचिनो दण्डिनो निषंगिणश्च रक्षितारः। तत्प्रायमेवान्यदपि दृश्यते। यदि च विप्रत्ययस्तत्पृच्छत।

बटवः— भो भोः, किंप्रयोजनोऽयमश्वः परिवृतः पर्यटति?

लवः— (सस्पृहमात्मगतम्) 'अश्वमेध' इति नाम विश्वविजयिनां क्षत्रियाणामूर्जस्वलः सर्वक्षत्रपरिभावी महानुत्कर्षनिकषः।

(नेपथ्ये)

योऽयमश्वः पताकेयमथवा वीरघोषणा।
सप्तलोकैकवीरस्य, दशकण्ठकुलद्विषः।।27।।

(अन्वय— अयम् यः अश्वः, इयम् सप्त—लोक—एक—वीरस्य, दश—कण्ठ—कुल—द्विषः पताका अथवा वीर—घोषणा ।।27।।)

लवः— (सगर्वम्)— अहो संदीपनान्यक्षराणि।

बटवः— किमुच्यते? प्राज्ञः खलु कुमारः।

लवः— भो भोः, तत्किमक्षत्रिया पृथिवी? यदेवमुद्घोष्यते।

(नेपथ्ये)

रे रे, महाराजं प्रति कुतः क्षत्रियः?

अरुन्धती— अत्यधिक वेग से दूर गया हुआ, वह चंचल बालक भला कैसे देखा जा सकता है?

कंचुकी— (प्रवेश करके) भगवान् वाल्मीकि ने कहा है कि आपको इसे अवसर आने पर ही जान लेना चाहिए।

जनक— यह कुछ गम्भीर बात है। भगवति अरुन्धति! सखि कौशल्ये! आर्य गृष्टि! स्वयं ही चलकर भगवान् 'प्राचेतस्' का दर्शन करते हैं।

(ऐसा कहकर वृद्धवर्ग निकल जाता है)

(प्रवेश करके)

बटुकगण— कुमार! जरा इस आश्चर्य को देखो।

लव— देख लिया और जान भी लिया। निश्चय ही, यह अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा है।

बटुकगण— यह कैसे पता लगता है।

लव— अरे मूर्खों! तुम लोगों ने भी तो वह काण्ड पढ़ा ही है। क्या तुम नहीं देख रहे हो? कवच और दण्ड धारण करने वाले, तरकश से युक्त, प्रत्येक प्रकार के रक्षक, यहाँ सैंकड़ों की संख्या में विद्यमान हैं और उसी प्रकार की सेना भी दिखायी दे रही है। यदि अविश्वास हो तो पूछ भी लो।

बटुकगण— अरे, अरे! सेना से घिरा हुआ, यह अश्व किस प्रयोजन से घूम रहा है?

लव— (स्पृहापूर्वक मन में) अश्वमेध यज्ञ वस्तुतः संसार को जीतने वाले क्षत्रियों की, सभी राजाओं को पराजित करने वाली, अत्यधिक ऊर्जस्विनी बहुत बड़ी कसौटी है।

(नेपथ्य में)

यह जो घोड़ा है, यह वस्तुतः सातों लोकों में एकमात्र वीर और रावण वंश के शत्रु, श्रीराम की विजय पताका या वीरघोषणा है।।27।।

लव— (गर्वपूर्वक) अहो, ये अक्षर तो क्रोध को बढ़ाने वाले हैं।

बटुकगण— क्या कहते हो? तब तो निश्चय ही कुमार अत्यन्त विज्ञ हैं।

लव— अरे, अरे! सैनिकों! क्या पृथिवी, क्षत्रियों से शून्य हो गयी है? जो इसप्रकार की घोषणा की जा रही है।

(नेपथ्य में)

अरे, रे, महाराज राम के सामने भला कौन क्षत्रिय है?

लवः– धिग्जालमान्।

यदि नो सन्ति सन्त्येव, केयमद्य विभीषिका।
किमुक्तैरेभिरधुना, तां पताकां हरामि वः।।28।।

(अन्वय– यदि नो सन्ति, सन्ति एव, अद्य इयम् का विभीषिका? अधुना एभि उक्तैः किम्? वः ताम् पताकाम् हरामि ।।28।।)

हे बटवः! परिवृत्य लोष्ठैरभिघ्नन्त उपनयतैनमश्वम्। एष रोहितानां मध्येचरो भवतु।

(प्रविश्य सक्रोधः)

पुरुषः– धिक् चपल! किमुक्तवानसि? तीक्ष्णतरा ह्यायुधश्रेणयः शिशोरपि दृप्तां वाचं न सहन्ते। राजपुत्रश्चन्द्रकेतुर्दुर्दान्तः, सोऽप्यपूर्वारण्यदर्शनाक्षिप्तहृदयो न यावदायाति, तावदावरितमनेन तरुगहनेनापसर्पत।

बटवः– कुमारः! कृतं कृतमश्वेन। तर्जयन्ति विस्फारितशरासनाः कुमारमायुधीयश्रणेयः दूरे चाश्रमपदम्। इतस्तदेहि हरिणप्लुतैः पलायामहे।

लवः– किं नाम विस्फुरन्ति शस्त्राणि? (इति धनुरारोपयन्)

ज्याजिह्वयावलयितोत्कटकोटिदंष्ट्र–
मुद्भूरिघोरघनघर्घरघोषमेतत्।
ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र–
जृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम्।।29।।

(अन्वय– ज्या–जिह्वया वलयित–उत्कट–कोटि–दंष्ट्रम्, उद्भूरि–घोर–घन–घर्घर–घोषम्, एतत् चापम् ग्रास–प्रसक्त–हसत्–अन्तक–वक्त्र–यन्त्र–जृम्भा–विडम्बि, विकट–उदरम् अस्तु ।।29।।)

(इति यथोचितं परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे)

।। इति महाकविभवभूतिविरचिते उत्तररामचरिते 'कौसल्याजनक–योगो' नाम चतुर्थोऽङ्कः।।

लव– तुम जालिमों (नीचों) को धिक्कार है। **निश्चय ही वे हैं और यदि क्षत्रिय नहीं है,** (तो मैं कहता हूँ कि) **तुम यह व्यर्थ का भय क्यों दिखा रहे हो? इस समय इन कथनों से क्या लाभ?, क्योंकि मैं तुम्हारी उस पताका का अपहरण कर रहा हूँ।।28।।**

हे ब्राह्मण कुमारों! इस घोड़े को घेरकर, ढेलों से मारते हुए, आश्रम में ले जाओ। यह भी यहाँ मृगों के बीच में ही विचरण करे।

(प्रवेश करके क्रोधपूर्वक)

पुरुष– अरे! चंचल, तुम्हें धिक्कार है। तुमने क्या कहा? अरे, प्रचण्ड शस्त्रों को धारण करने वाले, जो बालक की भी अहंकारयुक्त वाणी को सहन नहीं कर पाते हैं। ऐसे राजकुमार चन्द्रकेतु अत्यधिक दुर्दान्त हैं। अद्भुत वन को देखने में आकृष्ट चित्त वाले वे, जब तक नहीं आते हैं, तब तक शीघ्र ही तुम इन सघन वृक्षों से होकर, भाग जाओ।

बटुकगण– कुमार! इस घोड़े से बस करो। धनुष को चमकाने वाले, शस्त्रधारियों के समूह हमें डाँट रहे हैं और आश्रम स्थल दूर है। इसलिए आओ, हरिणों के समान कुलाँचे भरते हुए, हम यहाँ से भाग जाते हैं।

लव– क्या कहा? शस्त्र चमक रहे हैं?

(ऐसा कहकर धनुष पर 'ज्या' चढ़ाते हुए)

जिसकी प्रत्यंचा ही जिह्वा है, इसे खींचने से गोलाकार होने से इसके दोनों किनारे, जिसकी भयंकर दाढ़ हैं तथा जो बड़ी भयंकर हुँकार भर रहा है। निगलने में लगे हुए होने से फैले हुए, यमराज के मुख की जम्भाई का अनुकरण करने वाला, मेरा यह धनुष विकराल उदर वाला हो जाए।।29।।

(ऐसा कहकर यथायोग्य घूमकर सभी चले जाते हैं)

।। इसप्रकार महाकवि भवभूति विरचित उत्तररामचरित में 'कौशल्याजनकयोग' नामक चतुर्थ अंक का डॉ. राकेश शास्त्री, बाँसवाड़ा **द्वारा किया हुआ हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ।।**

।। श्रीः ।।

पंचमोऽङ्कः

(नेपथ्ये)

भो भोः! सैनिकाः! जातमवलम्बनमस्माकम्।

नन्वेष त्वरितसुमन्त्रनुद्यमान–
प्रोद्वल्गत्प्रजवितवाजिना रथेन।
उत्खातप्रचलितकोविदारकेतुः,
श्रुत्वा वः प्रधनमुपैति चन्द्रकेतुः।।1।।

(**अन्वय–** ननु त्वरित–सुमन्त्र–नुद्यमान–प्रोद्वल्गत्–प्रजवित–वाजिना रथेन, उत्खात–प्रचलित–कोविदार–केतुः एषः चन्द्रकेतुः वः प्रधनम् (युद्धम्) श्रुत्वा उपैति ।।1।।)

(ततः प्रविशति सुमन्त्रसारथिना रथेन धनुष्पाणिः साद्भुतहर्षसंभ्रमश्चन्द्रकेतुः)

चन्द्रकेतुः– आर्य सुमन्त्र! पश्य पश्य–

किरति कलितकिंचित्कोपरज्यन्मुखश्री–
रविरतगुणगुंजत्कोटिना कार्मुकेण।
समरशिरसि चंचत्पंचचूडश्चमूना–
मुपरि शरतुषारं कोऽप्ययं वीरपोतः।।2।।

(**अन्वय–**कलित–किंचित्–कोप–रज्यन्–मुखश्रीः, चंचत्–पंच–चूडः, कः अपि अयम् वीर–पोतः, समर–शिरसि अविरत–गुण–गुंजत्–कोटिना कार्मुकेण चमूनाम् उपरि शर–तुषारम् किरति ।।2।।)

(साश्चर्यम्)

मुनिजनशिशुरेकः सर्वतः संप्रकोपा–
न्नव इव रघुवंशस्याप्रसिद्धिप्ररोहः।
दलितकरिकपोलग्रन्थिटङ्कारघोर–
ज्वलितशरसहस्रः कौतुकं मे करोति।।3।।

पंचम अङ्क

अरे! अरे! सैनिकों! हमें सहारा मिल गया।

निश्चय ही, सुमन्त्र द्वारा शीघ्रतापूर्वक हाँके जाते हुए, चंचल एवं अत्यधिक वेगवान् घोड़ों वाले, रथ द्वारा, ऊँची–नीची भूमि पर चलने से शीघ्रतापूर्वक हिलती हुई, कोविदार से युक्त पताका वाले, चन्द्रकेतु आप लोगों के युद्ध को सुनकर चले आए हैं।।1।।

(उसके बाद, सारथि सुमन्त्र से अधिष्ठित, धनुष हाथ में लिए हुए, विस्मय, हर्ष एवं घबराहट के साथ चन्द्रकेतु प्रवेश करता है)

चन्द्रकेतु– आर्य सुमन्त्र! देखो, देखो,

कुछ क्रोध से लाल हुई मुख की शोभा वाला, हिलती हुई पाँच शिखाओं से युक्त, यह कोई वीर बालक, युद्धभूमि में प्रत्यंचा के कोनों पर टंकार करते हुए धनुष से, निरन्तर सेनाओं के ऊपर, ओलों के समान, वृष्टि कर रहा है।।2।।

(आश्चर्यपूर्वक)

रघुवंश की अप्रतिष्ठा के नए अंकुर के समान, यह मुनि बालक अकेला ही, अत्यधिक क्रोध में भरकर, हाथियों के गण्डस्थलों को विदीर्ण करने वाले, हजारों जलते हुए बाणों से उत्पन्न, शब्दों से मेरे मन में कौतूहल उत्पन्न कर रहा है।।3।।

प्रस्तुत अंक के कथोपकथनों में प्राकृत भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है। यहाँ संवाद वीरोचित भावनाओं से ओतप्रोत, लव, चन्द्रकेतु तथा सुमन्त्र आदि पात्रों के चरित्रों का यथोचित उद्घाटन करने वाले, सशक्त तथा स्वाभाविकता लिए हुए हैं। कथोपकथनों के विषय में महाकवि की सरल शैली भी अभिव्यक्त हुई है।

(अन्वय– रघुवंशस्य नवः अप्रसिद्धि–प्ररोहः इव, मुनिजन–शिशुः एकः, सर्वतः संप्रकोपात् दलित–करि–कपोल–ग्रन्थि–टङ्कार–घोर–ज्वलित – शर–सहस्रः कौतुकम् मे करोति।।3।।)

सुमन्त्रः– आयुष्मन्!

अतिशयितसुरासुरप्रभावं, शिशुमवलोक्य तथैव तुल्यरूपम्।
कुशिकसुतमखद्विषां प्रमाथे, धृतधनुषं रघुनन्दनं स्मरामि।।4।

(अन्वय– अतिशयित–सुर–असुर–प्रभावम् शिशुम् अवलोक्य तथा एव तुल्य–रूपम् कुशिक–सुत–मख–द्विषाम् प्रमाथे धृत–धनुषम् रघुनन्दनम् स्मरामि।।4।)

चन्द्रकेतु– मम त्वेकमुद्दिश्य भूयसामारम्भ इति हृदयमपत्रपते।

अयं हि शिशुरेकको मदभरेण भूरिस्फुर–
त्करालकरकन्दलीजटिलशस्त्रजालैर्बलैः।
क्वणत्कनककिङ्किणीझणझणायितस्यन्दनै–
रमन्दमददुर्दिनद्विरदडामरैरावृतः।।5।।

(अन्वय– हि अयम् एककः शिशुः, मद–भरेण भूरि–स्फुरत्–कराल–कर–कन्दली–जटिल–शस्त्र–जालैः क्वणत्–कनक–किङ्किणी–झण–झणायित–स्यन्दनैः अमन्द–मद–दुर्दिन–द्विरद–डामरैः बलैः आवृतः)

सुमन्त्रः– वत्स! एभिः समस्तैरपि नालमस्य, किं पुनर्व्यस्तैः?

चन्द्रकेतुः– आर्य! त्वर्यतां त्वर्यताम्। अनेन हि महानाश्रितजन–प्रमाथोऽस्माकमारब्धः। तथाहि–

आगर्जद्गिरिकुंजकुंजरघटानिस्तीर्णकर्णज्वर–
ज्यानिर्घोषममन्ददुन्दुभिरवैराध्मातमुज्जृम्भयन्।
वेल्लद्भैरवरुण्डखण्डनिकरैर्वीरो विधत्ते भुवं,
तृष्यत्कालकरालवक्त्रविघसव्याकीर्यमाणामिव।।6।।

(अन्वय– (अयम्) वीरः अमन्द–दुन्दुभि–रवैः आध्मातम् आगर्जद्–गिरि–कुंज–कुंजर–घटा–निस्तीर्ण–कर्ण–ज्वर–ज्या–निर्घोषम् उज्जृम्भयन्, वेल्लद्–भैरव–रुण्ड–खण्ड–निकरैः, तृष्यत्–काल–कराल–वक्त्र– विघस–व्याकीर्यमाणाम् इव भुवम् विधत्ते ।।6।।)

सुमन्त्र– आयुष्मन्!

उसी प्रकार से समानरूप वाले, देवों एवं दैत्यों के प्रभाव का भी अतिक्रमण करने वाले, इस बालक को देखकर, विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न उत्पन्न करने वाले, राक्षसों को विनष्ट करते समय, धनुष धारण किए हुए, रघुनन्दन राम को मैं स्मरण कर रहा हूँ।।4।।

चन्द्रकेतु– इस एक बालक को ही लक्ष्य करके, हमारे अनेक सैनिकों द्वारा युद्ध किया जा रहा है, इसलिए मेरा हृदय लज्जित हो रहा है,

क्योंकि यह अकेला बालक, मद की अधिकता के कारण, अत्यधिक चमकते हुए, कठिनतापूर्वक दिखायी देने वाले, हाथरूपी सम्पुट के भीतर ग्रहण किए गए, अनेक शस्त्रों के समूह से युक्त, बजने वाली, स्वर्णमयी क्षुद्र–घण्टिकाओं से झण–झण शब्द करने वाले, रथों से युक्त, अत्यन्त मदरूपी जल की वृष्टि करने वाले, दुर्दिन के समान, हाथियों से भयंकर, सैनिकों द्वारा घिरा हुआ है।।5।।

सुमन्त्र– वत्स! ये सभी सेनाएँ मिलकर भी, इसके लिए पर्याप्त नहीं हैं, फिर विभक्त सेनाओं की तो बात ही क्या है?

चन्द्रकेतु– आर्य! शीघ्रता कीजिए, शीघ्रता कीजिए। वस्तुतः इसने हमारे सैनिकों का महान् विनाश आरम्भ कर दिया है, क्योंकि–

यह वीर बालक, भयंकर नगाड़ों की गड़गड़ाहट से बढ़े हुए, अत्यधिक गर्जन करने वाले, हाथियों की पंक्ति के कानों को भी पीड़ित कर देने वाले, अपने धनुष की डोरी के शब्द को उत्पन्न करता हुआ, छटपटाते हुए, भयंकर कबन्धों तथा उनके सिरों के समूह से मानो भूमि को, भूखे कराल–काल के मुख से भोजन के बिखरे हुए, जूठन के कणों के समान, आच्छादित कर रहा है।।6।।

उपर्युक्त अंश में लव का श्रीराम के साथ साम्य, युद्ध क्षेत्र में उसके अप्रतिम पराक्रम का विस्तार से उल्लेख किया गया है। अल्पायु होते हुए भी उसकी युद्ध करने की अप्रतिम सामर्थ्य एवं कला से सहृदय प्रभावित हुए बिना नहीं रहता है। वीररस का सुन्दर परिपाक भी दर्शनीय है। साथ ही, युद्ध–वर्णन की महाकवि की चित्रात्मक शैली की कुशलता भी प्रशंसनीय है।

सुमन्त्रः– (स्वगतम्) कथमीदृशेन सह वत्सस्य चन्द्रकेतोर्द्वन्द्व–संप्रहारमनुजानीमः। (विचिन्त्य) अथवा इक्ष्वाकुकुलवृद्धाः, खलु वयम्। प्रत्युपस्थिते रणे का गतिः?

चन्द्रकेतुः– (सविस्मयलज्जासम्भ्रमम्) हन्त धिक्। अपावृत्तान्येव सर्वतः सैन्यानि मम।

सुमन्त्रः– (रथवेगं निरूप्य) आयुष्मन्। एष ते वाग्विषयीभूतः स वीरः।

चन्द्रकेतुः– (विस्मृतिमभिनीय) आर्य, किं नामधेयमाख्यातमाह्–वायकैः।

सुमन्त्रः– 'लव' इति।

चन्द्रकेतुः–

भो भो लव! महाबाहो! किमेभिस्तव सैनिकैः।
एषोऽहमेहि मामेव तेजस्तेजसि शाम्यतु।।7।।

(अन्वय– भो भो लव! महाबाहो! किम् एभिः तव सैनिकैः एषः अहम् एहि माम् एव तेजः तेजसि शाम्यतु।।7।।)

सुमन्त्रः– कुमार! पश्य पश्य–

विनिवर्तित एष वीरपोतः पृतनानिर्मथनात्त्वयोपहूतः।
स्तनयित्नुरवादिभावलीनामवमर्दादिव दृप्तसिंहशावः।।8।।

(अन्वय– त्वया उपहूतः एषः वीर–पोतः, दृप्त–सिंह–शावः, स्तनयित्नु–रवात् इभ–अवलीनाम् अवमर्दात् इव पृतना–निर्मथनात् विनिवर्तितः।।8।।)

(ततः प्रविशति धीरोद्धतपराक्रमो लवः)

लवः– साधु राजपुत्र! साधु! सत्यमैक्ष्वाकः खल्वसि। तदहं परागत एवास्मि।

(नेपथ्ये महान् कलकलः)

लवः– (सावष्टम्भं परावृत्य) कथमिदानीं भग्ना अपि पुनः प्रति–निवृत्ताः पृष्ठानुसारिणः पर्यवष्टम्भयन्ति मां चमूपतयः। धिग्जाल्मान्।

अयं शैलाघातक्षुभितवडवावक्त्रहुतभुक्–
प्रचण्डक्रोधार्चिर्निचयकवलत्वं व्रजतु मे।

सुमन्त्र– (मन में) इसप्रकार के योद्धा के साथ, पुत्र चन्द्रकेतु को भला द्वन्द्वयुद्ध की आज्ञा हम कैसे दे दें। (सोचकर) अथवा हम तो इक्ष्वाकु वंश के वृद्ध हैं। युद्ध के उपस्थित होने पर उपाय भी क्या है?

चन्द्रकेतु– (आश्चर्य, लज्जा तथा सम्भ्रम के साथ) हाय, धिक्कार है। मेरी सेनाएँ तो चारों ओर भाग रही हैं।

सुमन्त्र–(रथ के वेग का अभिनय करके) आयुष्मन्! यह, वह वीर अब तुम्हारी वाणी का विषय हो गया है।

चन्द्रकेतु– (भूलने का अभिनय करके) आर्य! मुझे बुलाने वाले सैनिकों द्वारा इसका क्या नाम कहा था?

सुमन्त्र– 'लव' ऐसा।

चन्द्रकेतु–

अरे! अरे! विशाल भुजाओं वाले, लव! इन सैनिकों से तुम्हारा क्या प्रयोजन? यह मैं हूँ, तुम मेरे पास आओ, जिससे तेज, तेज में शान्त हो जावे।। 7।।

सुमन्त्र– कुमार! देखो, देखो।

तुम्हारे द्वारा आह्वान किया गया, यह वीर बालक, सेना के संहार से निवृत्त होकर, तुम्हारी ओर उसीप्रकार आ रहा है, जैसे दर्पयुक्त सिंह–शावक मेघ का गर्जन सुनकर हाथियों के समूह के मर्दन से विरत हो जाता है।।8।।

(उसके बाद, धीर और उद्धत पराक्रमी लव प्रवेश करता है)

लव– साधु, राजकुमार, साधु। निश्चय ही, तुम इक्ष्वाकुवंशीय हो, इसीलिए मैं भी तुम्हारे सामने आ गया हूँ।

(नेपथ्य में महान् कोलाहल होता है)

लव– (गर्व सहित लौटकर) क्या तितर–बितर हो जाने पर भी, ये सेनापति फिर से लौटकर मेरा पीछा करते हुए, मुझे रोक रहे हैं। इन जालिमों (नीचों) को धिक्कार है।

यह चारों ओर उठता हुआ, सेना के प्रबल और भयंकर खेल का कोलाहल, प्रलयकाल की वायु से प्रताड़ित समुद्र के प्रवाह के समान,

समन्तादुत्सर्पद्घनतुमुलसेनाकलकलः,
पयोराशेरोघः प्रलयपवनास्फालित इव।।9।।

(अन्वय—अयम् समन्तात् उत्सर्पत्—घन—तुमुल—सेना—कलकलः, प्रलय—पवन—आस्फालितः, पयो—राशेः ओघः इव मे शैल—आघात—क्षुभित—वडवा—वक्त्र—हुतभुक्—प्रचण्ड—क्रोध—अर्चिः—निचय—कवलत्वम् व्रजतु।)

(सवेगं परिक्रामति)

चन्द्रकेतुः— भो भोः कुमार!

अत्यद्भुतादपि गुणातिशयात्प्रियो मे
तस्मात्सखा त्वमसि, यन्मम तत्तवैव।
तत्किं निजे परिजने कदनं करोषि?
नन्वेष दर्पनिकषस्तव चन्द्रकेतुः।।10।।

(अन्वय— अति—अद्भुतात् गुण—अतिशयात् अपि, त्वम् मे प्रियः सखा असि, तस्मात् यत् मम, तत् तव एव, तत् निजे परिजने किम् कदनम् करोषि? ननु एषः चन्द्रकेतुः तव दर्प—निकषः(अस्ति)।।10।।)

लवः— (सहर्षसम्भ्रमं परावृत्य) अहो! महानुभावस्य प्रसन्नकर्कशावीरवचनप्रयुक्तिर्विकर्तनकुलकुमारस्य। तत्किमेभिः? एनमेव तावत्संभावयामि।

(पुनर्नेपथ्ये कलकलः)

लवः— (सक्रोधनिर्वेदम्) आः कदर्थीकृतोऽहमेभिर्वीरसंवादविघ्नकारिभिः पापैः। (इति तदभिमुखं परिक्रामति)

चन्द्रकेतुः— आर्य! दृश्यतां द्रष्टव्यमेतत्।

दर्पेण कौतुकवता मयि बद्धलक्ष्यः
पश्चाद्बलैरनुसृतोऽयमुदीर्णधन्वा।
द्वेधा समुद्धतमरुत्तरलस्य धत्ते,
मेघस्य मघवतचापधरस्य लक्ष्मीम्।।11।।

(अन्वय— कौतुकवता दर्पेण मयि बद्ध—लक्ष्यः, पश्चात् बलैः अनुसृतः, उदीर्ण—धन्वा अयम् द्वेधा समुद्धत—मरुत्—तरलस्य मघवत—चाप—धरस्य मेघस्य लक्ष्मीम् धत्ते।।11।।)

पर्वतों के आघात से क्षुब्ध, वडवानल के प्रचण्ड कोप की ज्वालाओं की भाँति, मेरी क्रोधाग्नि के ग्रासभाव को प्राप्त हो जाए।।9।।

(वेगपूर्वक घूमता है)

चन्द्रकेतु— अरे! अरे, कुमार,

अत्यधिक आश्चर्य के कारण तथा गुणों के उत्कर्ष से, तुम मेरे प्रिय मित्र हो, इसलिए जो मेरा है, वह तुम्हारा ही है, तब फिर अपने ही सेवकों को क्यों पीड़ित कर रहे हो? निश्चय ही, यह चन्द्रकेतु तुम्हारे गर्व की कसौटी है।।10।।

लव— (सहर्ष, सम्भ्रमपूर्वक लौटकर) अहो, महाप्रभाव से युक्त, सूर्यवंश के कुमार के वीरतापूर्वक वचनों का प्रयोग प्रसाद एवं कठोरता से युक्त है, इसलिए इन सैनिकों से क्या? जब तक (युद्ध द्वारा) इन्हीं का सत्कार करता हूँ।

(नेपथ्य में फिर से कोलाहल होता है)

लव— (क्रोध एवं निर्वेदपूर्वक) ओह, वीर के साथ वार्तालाप के प्रसंग में, मैं विघ्न उत्पन्न करने वाले, इन पापियों द्वारा व्यथित हुआ हूँ।

(ऐसा कहकर सेना की ओर घूमता है)

चन्द्रकेतु— आर्य! देखने योग्य इस बालक को देखिए।

कौतूहल से युक्त, गर्व से मेरी ओर निशाना लगाए हुए, पीछे की ओर सेनाओं द्वारा अनुगत, यह वीर बालक, दोनों ओर चलने वाले, भयंकर वायु से चंचल, इन्द्रधनुष से युक्त, मेघ की शोभा को धारण कर रहा है।।11।।

चन्द्रकेतु द्वारा शत्रु की प्रशंसा, उसके उदार व्यक्तित्व की परिचायक है, जिन्हें साम—नीति के प्रयोग के रूप में भी देखा जा सकता है। लव का युद्ध—कौशल दर्शनीय है। इसीप्रकार महाकवि की युद्ध—वर्णन की सुन्दर एवं चित्रात्मक शैली भी प्रशंसनीय कही जा सकती है।

सुमन्त्रः— कुमार एवैनं द्रष्टुमपि जानाति। वयं तु केवलं परवन्तो विस्मयेन।

चन्द्रकेतुः— भो भो राजानः!

संख्यातीतैर्द्विरदतुरगस्यन्दनस्थैः पदाता—
वत्रैकस्मिन् कवचनिचितैर्नद्धचर्मोत्तरीये।
कालज्येष्ठैरपरवयसि ख्यातिकामैर्भवद्भि—
र्योऽयं बद्धो युधि समभरस्तेन धिग्वो धिगस्मान्।।12।।

(**अन्वय**— संख्या—अतीतैः, द्विरद—तुरग—स्यन्दनस्थैः, कवच—निचितैः, काल—ज्येष्ठैः अपर—वयसि ख्याति—कामैः भवद्भिः एकस्मिन् पदातौ नद्ध—चर्म—उत्तरीये अत्र युधि यः अयम् समभरः बद्धः, तेन वः धिक्, अस्मान् धिक्।।12।।)

लवः— (सोन्माथम्) आः, कथमनुकम्पते नाम! (ससंभ्रमं विचिन्त्य) भवतु। कालहरणप्रतिषेधाय जृम्भकास्त्रेण तावत्सैन्यानि संस्तम्भयामि।

(इति ध्यानं नाटयति)

सुमन्त्रः— तत्किमकस्मादुल्लोलाः सैन्यघोषाः प्रशाम्यन्ति?

लवः— पश्याम्येनमधुना प्रगल्भम्।

सुमन्त्रः— (ससंभ्रमम्) वत्स! मन्ये कुमारकेणानेन जृम्भकास्त्रमा—मन्त्रितमिति।

चन्द्रकेतुः— अत्र कः सन्देहः?

व्यतिकर इव भीमस्तामसो वैद्युतश्च,
प्रणिहितमपि चक्षुर्ग्रस्तमुक्तं हिनस्ति।
अथ लिखितमिवैतत्सैन्यमस्पन्दमास्ते,
नियतमजितवीर्यं जृम्भते जृम्भकास्त्रम्।।13।।

(**अन्वय**— तामसः वैद्युतः च भीमः व्यतिकरः इव, प्रणिहितम् अपि ग्रस्त—मुक्तम् चक्षुः हिनस्ति, अथ एतत् सैन्यम् लिखितम् इव अस्पन्दम् आस्ते, नियतम् अजित—वीर्यम् जृम्भकास्त्रम् जृम्भते।।13।।)

आश्चर्यमाश्चर्यम्।

पातालोदरकुंजपुंजिततमःश्यामैर्नभो जृम्भकै—
रुत्तप्तस्फुरदारकूटकपिलज्योतिर्ज्वलद्दीप्तिभिः।
कल्पाक्षेपकठोरभैरवमरुद्व्यस्तैरभिस्तीर्यते
लीनाम्भोदतडित्कडारकुहरैर्विन्ध्याद्रिकूटैरिव।।14।।

सुमन्त्र— कुमार! तुम ही इसको देखने में समर्थ हो, क्योंकि हम तो आश्चर्य के कारण पराधीन हो गए हैं।

चन्द्रकेतु— अरे! अरे, राजाओं,

असंख्य हाथी, घोड़ों एवं रथों पर सवार, कवच को धारण किए हुए, अवस्था में बड़े तथा वृद्धावस्था में प्रसिद्धि की कामना करने वाले, आप लोगों ने अकेले, पैदल तथा मृगचर्म को उत्तरीय के रूप में बाँधे हुए, इस लव पर युद्ध में, जो यह सामूहिक प्रयास किया है, इसके लिए आप लोगों को धिक्कार है और हमें भी धिक्कार है।।12।।

लव— (व्यथित होकर) अरे! क्या यह मुझ पर दया कर रहा है? (सम्भ्रमपूर्वक विचार करके) ठीक है, समय बेकार न करने के लिए, तब तक इन सैनिकों को **जृम्भकास्त्र** से स्तम्भित कर देता हूँ।

(ऐसा कहकर ध्यान का अभिनय करता है)

सुमन्त्र— तो क्या कारण है कि सैनिकों के तुमुल नाद शान्त हो रहे हैं।

लव— अब मैं इस ढीठ को देखता हूँ।

सुमन्त्र— (घबराहट के साथ) वत्स! मैं समझता हूँ कि इस कुमार ने जृम्भकास्त्र का प्रयोग किया है।

चन्द्रकेतु— इसमें क्या सन्देह है?

अन्धकार तथा विद्युत् के भयंकर सम्पर्क के समान, प्रयत्नपूर्वक निक्षेप किए जाने पर भी, पहले अन्धकार से ग्रस्त तथा बाद में प्रकाश से मुक्त होकर, यह दृष्टि को बाधित कर रहा है। इसके अलावा यह सेना चित्रलिखित सी निश्चेष्ट हो गयी है। निश्चय ही, यह अजेय पराक्रम वाला, 'जृम्भकास्त्र' आविर्भूत हो रहा है।।13।।

आश्चर्य है, आश्चर्य है।

पाताल के मध्य स्थित लतागृहों में इकट्ठे हुए, अन्धकार के समान, श्यामवर्ण वाले, तपे हुए देदीप्यमान पीतल की प्रभा से युक्त, जृम्भकास्त्र, प्रलयकालीन प्रचण्ड तथा भयंकर वायु द्वारा, उड़ाए गए, छिपे हुए मेघों वाले और बिजली से पीली गुफाओं से युक्त, विन्ध्याचल के शिखरों के तुल्य आकाश को पूर्णरूप से व्याप्त कर रहे हैं।।14।।

(अन्वय— पाताल—उदर—कुंज—पुंजित—तमः—श्यामैः, उत्तप्त—स्फुरत् —आरकूट—कपिल—ज्योतिः—ज्वलद्—दीप्तिभिः जृम्भकैः, कल्प—आक्षेप—कठोर—भैरव—मरुद्—व्यस्तैः, लीन—अम्भोद—तडित्—कडार—कुहरैः, विन्ध्य —अद्रि—कूटैः इव नभः अभिस्तीर्यते।।14।।)

सुमन्त्रः— कुतः पुनरस्य जृम्भकाणामागमः स्यात्।

चन्द्रकेतुः— भगवतः प्राचेतसादिति मन्यामहे।

सुमन्त्रः— वत्स! नैतदेवमस्त्रेषु विशेषतो जृम्भकेषु। यतः—

कृशाश्वतनया ह्येते, कृशाश्वात्कौशिकं गताः।
अथ तत्सम्प्रदायेन रामभद्रे स्थिता इति।।15।।

(अन्वय— हि एते कृशाश्व—तनयाः, कृशाश्वात् कौशिकम् गताः, अथ तत् सम्प्रदायेन रामभद्रे स्थिताः, इति।।15।।)

चन्द्रकेतुः— अपरेऽपि प्रचीयमानसत्त्वप्रकाशाः स्वयं सर्वं मन्त्रदृशः पश्यन्ति।

सुमन्त्रः— वत्स! सावधानो भव। परागतस्ते प्रतिवीरः।

कुमारौः— (अन्योन्यं प्रति) अहो! प्रियदर्शनः कुमारः।

(सस्नेहानुरागं निर्वर्ण्य)

यदृच्छासंवादः किमु? गुणगणानामतिशयः?
पुराणो वा जन्मान्तरनिबिडबद्धः परिचयः।
निजो वा सम्बन्धः किमु विधिवशात्कोऽप्यविदितो?
ममैतस्मिन्दृष्टे हृदयमवधानं रचयति।।16।।

(अन्वय— एतस्मिन् दृष्टे यदृच्छा—संवादः किमु? गुण—गणानाम् अतिशयः किमु? जन्मान्तर—निबिड—बद्धः पुराणः परिचयः वा, विधि—वशात् अविदितः, कः अपि निजः सम्बन्धः वा, मम हृदयम् अवधानम् रचयति।।16।।)

सुमन्त्रः— भूयसां जीविनामेव धर्मं एष, यत्र स्वरसमयी कस्यचित्क्वचित्प्रीतिः, यत्र लौकिकानामुपचारस्तारामैत्रकं चक्षूराग इति। तदप्रतिसंख्येयनिबन्धनं प्रमाणमामनन्ति।

अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया।
स हि स्नेहात्मकस्तन्तुरन्तर्भूतानि सीव्यति।।17।।

सुमन्त्र— इसे जृम्भकास्त्रों की प्राप्ति कहाँ से हुई होगी?

चन्द्रकेतु— हमारा यह मानना है कि भगवान् वाल्मीकि से प्राप्त हुए होंगे।

सुमन्त्र— वत्स! इन अस्त्रों के विषय में ऐसा नहीं है, विशेषरूप से जृम्भकास्त्रों के विषय में, क्योंकि—

ये कृशाश्व के पुत्र तुल्य हैं तथा कृशाश्व से ये विश्वामित्र को प्राप्त हुए और इसके बाद, विश्वामित्र के उपदेश से रामभद्र में स्थित हुए हैं।।15।।

चन्द्रकेतु— सत्त्वगुण के आविर्भाव से दूसरे मन्त्रद्रष्टा ऋषि भी स्वयं सब कुछ देख लेते हैं।

सुमन्त्र— वत्स! सावधान हो जाओ, तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी योद्धा आ गया है।

दोनों कुमार— (एक दूसरे के प्रति) अहो! कुमार प्रियदर्शन वाले हैं। (स्नेह एवं अनुरागपूर्वक देखकर)

इन्हें देखने पर क्या यह वार्तालाप देवयोग से होने वाला है? अथवा क्या इसमें गुणों का उत्कर्ष ही कारण है? या फिर कोई जन्म जन्मान्तर का पुराना परिचय निमित्त है? अथवा दैववश अज्ञात कोई निजी सम्बन्ध मेरे हृदय को एकाग्र सा कर रहा है।।16।।

सुमन्त्र— बहुत से प्राणियों का यह स्वभाव होता है कि उन्हें कहीं भी किसी में भी आनन्द प्रदान करने वाली प्रीति हो जाती है, जिस विषय में लौकिक लोगों का मानना है कि—'यह नेत्रों की पुतलियों की मित्रता है अथवा नयनों का प्रेम है।' विद्वान् लोग इसप्रकार के प्रेम को अतर्क्य प्रमाण के रूप में स्वीकार करते हैं,

जो अकारण पक्षपात होता है, उसका कोई प्रतिकार सम्भव नहीं है, क्योंकि ऐसा प्रेमसूत्र प्राणियों के हृदयों को अन्दर से ही 'सी' देता है।।17।।

(**अन्वय–** यः अहेतुः पक्षपातः तस्य प्रतिक्रिया न अस्ति, हि सः स्नेहात्मकः तन्तुः भूतानि अन्तः सीव्यति।।17।।)

कुमारौ– (अन्योन्यमुदिश्य)

एतस्मिन्मसृणितराजपट्टकान्ते,
मोक्तव्याः कथामिव सायकाः शरीरे।
यत्प्राप्तौ मम परिरम्भणाभिलाषा–
दुन्मीलत्पुलककदम्बमंगमास्ते ।।18।।

(**अन्वय–** मसृणित–राजपट्ट–कान्ते, एतस्मिन् शरीरे सायकाः कथम् इव मोक्तव्याः? यत् प्राप्तौ परिरम्भण–अभिलाषात् मम अंगम् उन्मीलत्–पुलक–कदम्बम् आस्ते।।18।।)

किं चाक्रान्तकठोरतेजसि गतिः का नाम शस्त्रं विना?
शस्त्रेणापि हि तेन किं? न विषयो जायेत यस्येदृशः।
किं वक्ष्यत्ययमेव युद्धविमुखं मामुद्यतेऽप्यायुधे?
वीराणां समयो हि दारुणरसः स्नेहक्रमं बाधते।।19।।

(**अन्वय–** किम् च आक्रान्त–कठोर–तेजसि शस्त्रम् विना का नाम गतिः? यस्य ईदृशः विषयः न जायेत, तेन शस्त्रेण अपि किम्? आयुधे उद्यते अपि युद्ध–विमुखम् माम्, अयम् एव किम् वक्ष्यति? हि दारुण–रसः वीराणाम् समयः स्नेह–क्रमम् बाधते।।19।।)

सुमन्त्रः– (लवं निर्वर्ण्य सास्रमात्मगतम्) हृदय! किमन्यथा परिप्लवसे?

मनोरथस्य यद्बीजं, तद्दैवेनादितो हृतम्।
लतायां पूर्वलूनायां, प्रसवस्योद्भवः कुतः।।20।।

(**अन्वय–**मनोरथस्य यत् बीजम्, तत् दैवेन आदितः हृतम्, पूर्व–लूनायाम् लतायाम् प्रसवस्य कुतः उद्भवः?।।20।।)

चन्द्रकेतुः– अवतराम्यार्य सुमन्त्र! स्यन्दनात्।

सुमन्त्रः– कस्य हेतोः?

चन्द्रकेतुः– एकस्तावदयं वीरपुरुषः पूजितो भवति। अपि च खल्वार्य! क्षात्रधर्मः परिपालितो भवति। न रथिनः पादचारमभियुंजन्ती' ति शास्त्रविदः परिभाषन्ते।

दोनों कुमार– (एक दूसरे को लक्ष्य करके)

चिकने रेशमी वस्त्र के समान सुन्दर, इस शरीर पर बाणों को भला मैं कैसे छोडूँ? जिसे प्राप्त करने पर, आलिंगन की अभिलाषा से मेरा अंग रोमांचयुक्त हो रहा है।।18।।

इसके अलावा कठोर तपस्या से युक्त इसमें, शस्त्र के अभाव में भला क्या उपाय है? जिसका इसप्रकार का वीर लक्ष्य न बने, उस शस्त्र से भी भला क्या लाभ? शस्त्र के उठाने पर भी युद्ध से पराङ्मुख मुझे, भला यह क्या कहेगा? क्योंकि वीररस से युक्त पराक्रमी लोगों का आचरण, प्रेम के क्रम को तो रोक ही देता है।।19।।

सुमन्त्र– (लव को देखकर, अश्रुपूर्वक मन में) हे हृदय! तुम व्यर्थ ही चंचल क्यों हो रहे हो?

हमारे मनोरथ का जो कारण था, उसे तो भाग्य ने पहले ही छीन लिया है। पहले से काटी गयी लता में पुष्प की उत्पत्ति भला कैसे हो सकती है?।।20।।

चन्द्रकेतु– आर्य सुमन्त्र! मैं रथ से उतर रहा हूँ।

सुमन्त्र– किस कारण?

चन्द्रकेतु– एक तो इस वीरपुरुष का स्वागत होगा। इसके अलावा क्षत्रियधर्म का पालन भी भलीप्रकार हो जाएगा, क्योंकि रथ पर आरूढ़ लोग पैदल व्यक्ति से युद्ध नहीं करते हैं, ऐसा शास्त्रों के वेत्ता परिभाषित करते हैं।

चन्द्रकेतु तथा लव के आन्तरिक भावों का प्रस्तुतीकरण अन्तर्द्वन्द्व के रूप में प्रशंसनीय रहा है। लव को देखकर सुमन्त्र की राम–पुत्र होने की कल्पना के विषय में सुन्दर अभिव्यक्ति की गयी है। सीता की उपमा के लिए पूर्व में काटी गयी लतारूप में तथा लव का पुष्परूप में उपमान का प्रयोग अत्यन्त मनभावन बन पड़ा है, जिसे भावाभिव्यक्ति में सहयोगी होने के साथ–साथ कवि का उपमान विषयक मौलिक चिन्तन भी कहा जा सकता है।

सुमन्त्रः— (स्वगतम्) आः, कष्टां दशामनुप्रपन्नोऽस्मि।

कथं हीदमनुष्ठानं, मादृशः प्रतिषेधतु?
कथं वाऽभ्यनुजानातु साहसैकरसां क्रियाम्।।21।।

(**अन्वय—** हि मादृशः इदम् अनुष्ठानम् कथम् प्रतिषेधतु, साहस—एक—रसाम् क्रियाम् कथम् वा अभि—अनु—जानातु ।।21।।)

चन्द्रकेतुः— यदा तातमिश्रा अपि पितुः प्रियसखं त्वामर्थसंशयेषु पृच्छन्ति, तत्किमार्यो विमृशते?

सुमन्त्रः— आयुष्मन्! एवं यथाधर्ममभिमन्यसे।

एष सांग्रामिको न्याय एष धर्मः सनातनः।
इयं हि रघुसिंहानां, वीरचारित्रपद्धतिः।।22।।

(**अन्वय—** एषः सांग्रामिकः न्यायः, एषः सनातनः धर्मः, हि इयम् रघु—सिंहानाम् वीर—चारित्र—पद्धतिः।।22।।)

चन्द्रकेतुः— अप्रतिरूपं वचनमार्यस्य।

इतिहासं पुराणं च, धर्मप्रवचनानि च।
भवन्त एव जानन्ति, रघूणां च कुलस्थितिम्।।23।।

(**अन्वय—** भवन्तः एव इतिहासम् च, पुराणम् च, धर्म—प्रवचनानि, रघूणाम् कुल—स्थितिम् च जानन्ति।।23।।)

सुमन्त्रः— (सस्नेहास्रं परिष्वज्य)

जातस्य ते पितुरपीन्द्रजितो निहन्तु—
र्वत्सस्य वत्स! कति नाम दिनान्यमूनि।
तस्याप्यपत्यमनुतिष्ठति वीरधर्मं,
दिष्ट्यागतं दशरथस्य कुलं प्रतिष्ठाम्।।24।।

(**अन्वय—** वत्स! इन्द्रजितः निहन्तुः वत्सस्य ते पितुः अपि जातस्य अमूनि कति नाम दिनानि? तस्य अपत्यम् अपि वीर—धर्मम् अनुतिष्ठति, दिष्ट्या दशरथस्य कुलम् प्रतिष्ठाम् आगतम्।।24।।)

चन्द्रकेतुः— (सकष्टम्)

अप्रतिष्ठे कुलज्येष्ठे, का प्रतिष्ठा कुलस्य नः?
इति दुःखेन तप्यन्ते त्रयो नः पितरोऽपरे।।25।।

सुमन्त्र— (मन में) अहो, कष्टमयी दशा को प्राप्त हो गया हूँ। **क्योंकि मेरे समान व्यक्ति इस कार्य का प्रतिषेध कैसे करे? अथवा एकमात्र साहस—प्रधान इसे करने की अनुमति भी कैसे प्रदान करे?।।21।।**

चन्द्रकेतु— आर्य! कर्तव्य—अकर्तव्य का सन्देह होने पर, हमारे पूजनीय पितृगण राम आदि भी, अपने पिता दशरथ के प्रिय आपसे ही परामर्श लेते हैं, तो फिर आप इस समय विचार क्यों कर रहे हैं?

सुमन्त्र— आयुष्मन्! तुम तो इसप्रकार की परिस्थिति में धर्म के अनुसार कर्तव्य से सुपरिचित हो।

यही संग्राम के सम्बन्ध में न्याय है, यही सनातन धर्म है। वस्तुतः रघुवंश के वीरों की यही शूर—परिपाटी भी है।।22।

चन्द्रकेतु— आपका वचन अनुपम है,

आप ही इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्रों के वचन तथा रघुवंश के राजाओं की कुल—मर्यादा को जानते हैं।।23।।

सुमन्त्र— (स्नेह के अश्रुओं के साथ आलिंगन करके)

वत्स! मेघनाद को मारने वाले, वात्सल्य भाजन, तुम्हारे पिता लक्ष्मण को भी, उत्पन्न हुए कितने दिन हुए हैं? उनका पुत्र भी वीर धर्म का अनुष्ठान कर रहा है। सौभाग्यवश दशरथ का कुल प्रतिष्ठा को प्राप्त हो गया है।।24।।

चन्द्रकेतु— (कष्टपूर्वक)

कुल में ज्येष्ठ (श्रीराम) **के निःसन्तान होने पर, हमारे वंश की प्रतिष्ठा कहाँ है? इसीलिए दुःख से हमारे दूसरे तीन पितृजन** (भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न) **सन्ताप का अनुभव कर रहे हैं।। 25।।**

रघुकुल के प्रतिष्ठारूप श्रीराम के परिवार में सुमन्त्र की उच्च एवं सम्माननीय स्थिति की पुष्टि हुई है, जिससे उनके उज्ज्वल चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है। प्राचीनकाल में राजपरिवारों में बड़े पुत्र को ही राजसिंहासन पर प्रस्थापित किया जाता था, इसीलिए राम के निःसन्तान होने के कारण, उनके वंश की प्रतिष्ठा न हो पाने की बात का उल्लेख किया गया है, जिससे उनके सभी भाई दुःखी हैं।

(अन्वय– कुल–ज्येष्ठे अप्रतिष्ठे नः कुलस्य का प्रतिष्ठा? इति दुःखेन नः अपरे त्रयः पितरः तप्यन्ते।।25।।)

सुमन्त्रः– हृदयमर्मदारणानि एतानि चन्द्रकेतोर्वचनानि।

लवः– हन्त, मिश्रीकृतक्रमो रसो वर्तते–

यथैन्दावानन्दं व्रजति समुपोढे कुमुदिनी,
तथैवास्मिन्दृष्टिर्मम, कलहकामः पुनरयम्।
रणत्कारक्रूरक्वणितगुणगुंजद्गुरुधनु–
र्धृतप्रेमा बाहुर्विकचविकरालव्रणमुखः।।26।।

(अन्वय– यथा इन्दौ समुपोढे, कुमुदिनी आनन्दम् व्रजति, तथा एव अस्मिन् मम दृष्टिः, रणत्कार–क्रूर–क्वणित–गुण–गुंजत्–गुरु–धनुः धृत–प्रेमा विकच–विकराल–व्रण–मुखः, अयम् बाहुः पुनः कलह–कामः।।26।)

चन्द्रकेतुः– (अवतरणं निरूपयन्) आर्य! अयमसावैक्ष्वाकश्चन्द्रकेतुरभिवादयते।

सुमन्त्रः– अहितस्यैव पुनः पराभवाय महानादिवराहः कल्पताम्। अपि च–

देवस्त्वां सविता धिनोतु समरे गोत्रस्य यस्ते पति–
स्त्वां मैत्रावरुणोऽभिनन्दतु गुरुर्यस्ते गुरूणामपि।
ऐन्द्रावैष्णवमाग्निमारुतमथो सौपर्णमोजोऽस्तु ते,
देयादेव च रामलक्ष्मणधनुर्ज्याघोषमन्त्रो जयम्।।27।।

(अन्वय– समरे देवः सविता त्वाम् धिनोतु, यः ते गोत्रस्य पतिः, मैत्रावरुणः त्वाम् अभिनन्दतु, यः ते गुरूणाम् अपि गुरुः, अथो ऐन्द्रा–वैष्णवम्, आग्नि–मारुतम्, सौपर्णम् ओजः ते अस्तु, राम–लक्ष्मण–धनुः–ज्या–घोष–मन्त्रः च, जयम् एव देयात् ।।27।।)

लवः– अतीव नाम शोभसे रथस्थ एव। कृतं कृतमत्यादरेण।

चन्द्रकेतुः– तर्हि महाभागोऽप्यन्यं रथमलंकरोतु।

लवः– आर्य! प्रत्यारोपय रथोपरि राजपुत्रम्।

सुमन्त्रः– त्वमप्यनुरुध्यस्व वत्सस्य चन्द्रकेतोर्वचनम्।

लवः– को विचारः स्वेषूपकरणेषु? किंत्वरण्यसदो वयमनभ्यस्त रथचर्याः।

सुमन्त्र– चन्द्रकेतु के वचन निश्चय ही हृदय के मर्मस्थलों को विदीर्ण करने वाले हैं।

लव– अहो! वात्सल्य रस, वीररस से भलीप्रकार मिश्रित क्रम वाला हो रहा है,

जिसप्रकार चन्द्रमा के उदित होने पर कुमुदिनी आनन्द को प्राप्त होती है, उसीप्रकार इस चन्द्रकेतु में मेरी दृष्टि भी प्रफुल्लता को प्राप्त हो रही है। रणत्कार से भयंकर शब्द करने वाली, प्रत्यंचा के गूँजते हुए बड़े धनुष में प्रेम करने वाला, अग्रभाग में भयंकर घावों के चिह्नों से युक्त, यह मेरा बाहु फिर से युद्ध करने के लिए उत्सुक हो रहा है।।26।।

चन्द्रकेतु– (उतरने का अभिनय करते हुए) आर्य!(सुमन्त्र) इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न, यह वह चन्द्रकेतु आपको अभिवादन कर रहा है।

सुमन्त्र– तुम्हारे शत्रु की पराजय के लिए भगवान् आदिवराह समर्थ होवें और भी,

युद्ध में सविता देवता तुम्हें प्रसन्न करें, जो तुम्हारे वंश के स्वामी हैं। महर्षि वसिष्ठ तुम्हारा अभिनन्दन करें, जो तुम्हारे गुरुओं के भी गुरु हैं। इसके अलावा इन्द्र और विष्णु का, अग्नि और वायु का एवं गरुड़ का तेज तुम्हें प्राप्त हो। राम, लक्ष्मण के धनुष की प्रत्यंचा का शब्दरूपी मन्त्र तुम्हें विजय प्रदान करे।।27।।

लव– आप वस्तुतः रथ पर स्थित ही अत्यधिक सुशोभित हो रहे हैं। इसलिए अधिक सम्मान की आवश्यकता नहीं है।

चन्द्रकेतु– तो आप भी दूसरे रथ को सुशोभित करें।

लव– आर्य! राजकुमार को रथ पर चढ़ा दीजिए।

सुमन्त्र– तुम भी तो वात्सल्य के भाजन चन्द्रकेतु के वचनों का अनुसरण करो।

लव– अपने साधनों के प्रयोग में विचार कैसा? हम तो जंगल में रहने के कारण, रथ पर चलने के अभ्यस्त नहीं हैं।

सुमन्त्रः– जानासि वत्स! दर्पसौजन्ययौर्यदाचरितम्। यदि पुन–स्त्वामीदृशमैक्ष्वाको राजा रामभद्रः पश्येत्तदा तस्य स्नेहेन हृदयम–भिष्यन्देत्।

लवः–अन्यच्च चन्द्रकेतो! सुजनः स राजर्षिः श्रूयते।(सलज्जमिव)

वयमपि न खल्वेवंप्रायाः क्रतुविघातिनः
क इह न गुणैस्तं राजानं जनो बहु मन्यते।
तदपि खलु मे स व्याहारस्तुरंगरक्षिणां,
विकृतिमखिलक्षत्राक्षेपप्रचण्डतयाऽकरोत्।।28।।

(**अन्वय–** वयम् अपि न खलु, एवम् प्रायाः, क्रतु–विघातिनः, कः इह जनः च गुणैः, राजानम् बहु न मन्यते? तत् अपि खलु तुरंग–रक्षिणाम् सः व्याहारः, अखिल–क्षत्र–आक्षेप–प्रचण्डतया मे विकृतिम् अकरोत्।।28।।)

चन्द्रकेतुः– किं नु भवतस्तातप्रतापोत्कर्षेऽप्यमर्षः।

लवः– अस्त्विहमर्षो मा भूद्वा। अन्यदेतत्पृच्छामि दान्तं हि राजानं राघवं शृणुमः। स किल नात्मना दृप्यति, नाप्यस्य प्रजा वा दृप्ताः जायन्ते। तत्किं मनुष्यास्तस्य राक्षसीं वाचमुदीरयन्ति?

ऋषयो राक्षसीमाहुर्वाचमुन्मत्तदृप्तयोः।
सा योनिः सर्ववैराणां, सा हि लोकस्य निष्कृतिः।।29।।

(**अन्वय–** ऋषयः उन्मत्त–दृप्तयोः वाचम् राक्षसीम् आहुः, सा सर्व–वैराणाम् योनिः, सा हि लोकस्य निष्कृतिः।।29।।)

इति हस्म तां निन्दन्ति। इतरामभिष्टुवन्ति।

कामं दुग्धे, विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं, कीर्तिं सूते, दुर्हृदो निष्प्रलान्ति।
शुद्धां शान्तां मातरं मंगलानां, धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः।।30

(**अन्वय–**धीराः सूनृताम् वाचम् शुद्धाम्, शान्ताम्, मंगलानाम् मातरम् धेनुम् आहुः, कामम् दुग्धे, अलक्ष्मीम् विप्रकर्षति, कीर्तिम् सूते, दुर्हृदः निष्प्रलान्ति।।30।।)

सुमन्त्रः– परिभूतोऽयं बत कुमारः वाक्चेतसान्तेवासी। वदत्ययम–भ्युपपन्नार्षेण संस्कारेण।

सुमन्त्र– वत्स! अहंकार एवं विनय का जो आचरण है, उसको तुम जानते हो। इस स्थिति में यदि तुम्हें इक्ष्वाकु वंश के राजा राम देख लें, तो स्नेह से उनका हृदय पिघल ही जाए।

लव– और भी हे चन्द्रकेतु! वे राजर्षि राम सज्जन सुने जाते हैं, (लज्जित सा होकर)

यद्यपि यज्ञ के प्रति द्वेष करने वाले दैत्यों के शत्रु, श्रीराम में हम लोग भी प्रेम करने वाले हैं, क्योंकि कौन व्यक्ति भला गुणों के कारण उन राजा का अत्यधिक आदर नहीं करता है? फिर भी अश्व के रक्षकों की उस उक्ति से सभी क्षत्रियों के तिरस्कार तथा क्रूरता के कारण निश्चय ही मुझमें (क्रोधरूपी) विकार को उत्पन्न कर दिया है।।28।।

चन्द्रकेतु– क्या आपको पिताश्री के प्रताप के उत्कर्ष में भी अमर्ष हो रहा है।

लव– उनमें अमर्ष हो अथवा न हो, किन्तु मैं तो दूसरी बात पूछता हूँ कि श्रीराम तो जितेन्द्रिय (दान्त) सुने जाते हैं, वे स्वयं भी अहंकार नहीं करते हैं तथा न ही उनकी प्रजा ही कभी गर्व करती है, तो फिर उनके लोग राक्षसी–वाणी का उच्चारण क्यों करते हैं?

ऋषि लोग उन्मत्त तथा अहंकारी वाणी को 'राक्षसी' कहते हैं। वह सभी विरोधों का उत्पत्ति स्थान है तथा वही संसार में तिरस्कार का भी कारण है।।29।।

इसीलिए सज्जन लोग उसकी निन्दा तथा दूसरी प्रिय वाणी की प्रशंसा करते हैं।

अतः विद्वान् लोग सत्य और प्रिय वाणी को शुद्ध, शान्त तथा कल्याणों की उत्पत्ति करने वाली 'कामधेनु' कहते हैं, जो व्यक्ति की अभिलाषाओं को पूरा करती है, अलक्ष्मी को दूर करती है, कीर्ति को उत्पन्न करती है, शत्रुओं को विनष्ट करती है।।30।।

सुमन्त्र– खेद है कि महर्षि वाल्मीकि के शिष्य, ये कुमार अप–मानित हुए हैं, इसीलिए ऋषियों के संस्कार के अनुसार क्रोध की भावना से ऐसा बोल रहे हैं।

लवः– यत्पुनश्चन्द्रकेतो! वदसि किन्तु भवतस्तातप्रतापोत्कर्षेऽप्यमर्ष इति, तत्पृच्छामि 'किं व्यवस्थितविषयः क्षत्रधर्म' इति?

सुमन्त्रः– नैव खलु जानासि देवमैक्ष्वाकम्! तद्विरमातिप्रसंगात्।

सैनिकानां प्रमाथेन, सत्यमोजायितं त्वया।
जामदग्न्यस्य दमने, न हि निर्बन्धमर्हसि।।31।।

(**अन्वय–** सत्यम्, सैनिकानाम् प्रमाथेन त्वया ओजायितम्, हि जामदग्न्यस्य दमने निर्बन्धम्, न अर्हसि।।31।।)

लवः– (सहासम्) आर्य? जामदग्न्यस्य दमनः स राजेति कोऽप्यमुच्चैर्वादः?

सिद्धं ह्येतद्वाचि वीर्यं द्विजानां
बाह्वोर्वीर्यं यत्तु तत्क्षत्रियाणाम्।
शस्त्रग्राही ब्राह्मणो जामदग्न्य–
स्तस्मिन्दान्ते का स्तुतिस्तस्य राज्ञः।।32।।

(**अन्वय–** हि एतत् सिद्धम्, द्विजानाम् वाचि वीर्यम्, यत् बाह्वोः वीर्यम् तत् तु क्षत्रियाणाम्, जामदग्न्यः शस्त्र–ग्राही ब्राह्मणः, तस्मिन् दान्ते तस्य राज्ञः का स्तुतिः?।।32।।)

चन्द्रकेतुः– (सोन्माथमिव) आर्य सुमन्त्र! कृतमुत्तरोत्तरेण।

कोऽप्येष सम्प्रति नवः पुरुषावतारो,
वीरो न यस्य भगवान्भृगुनन्दनोऽपि।
पर्याप्तसप्तभुवनाभयदक्षिणानि,
पुण्यानि तातचरितान्यपि यो न वेद।।33।।

(**अन्वय–**सम्प्रति एषः कः अपि, नवः पुरुष–अवतारः, यस्य भगवान् भृगु–नन्दनः अपि न वीरः, यः पर्याप्त–सप्त–भुवन–अभय–दक्षिणानि पुण्यानि तात–चरितानि अपि न वेद।।33।।)

लवः– को हि रघुपतेश्चरितं महिमानं च न जानाति? यदि नाम किंचिदस्ति वक्तव्यम्। अथवा शान्तम्।

वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु हुं वर्तते,
सुन्दस्त्रीमथनेऽप्यकुण्ठयशसो लोके महान्तो हि ते।
यानि त्रीणि कुतोमुखान्यपि पदान्यासन्खरायोधने,
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यभिज्ञो जनः।।34।।

लव– इसके अलावा हे चन्द्रकेतु! जो तुम यह कह रहे हो कि 'पिताजी (तात) के प्रताप के उत्कर्ष में आपको असहनीयता है', तो मैं तुमसे पूछता हूँ कि– 'क्या क्षत्रिय धर्म एक ही व्यक्ति में निहित है?'

सुमन्त्र– तुम इक्ष्वाकुवंश के श्रीराम को नहीं जानते हो, इसलिए इस अनावश्यक प्रसंग से बस करो।

इन सैनिकों के मर्दन से तुमने निश्चय ही, तेजस्वी के समान आचरण किया है, किन्तु परशुराम का भी दमन करने वाले, श्रीराम के सम्बन्ध में कठोर वचनों को बोलना तुम्हारे लिए उचित नहीं है।।31।।

लव– (हास्यपूर्वक) आर्य! वे राजा राम यदि परशुराम का दमन करने वाले हैं, तो इसमें कौन सी प्रशंसा की बात है?

ब्राह्मणों की वाणी में पराक्रम विद्यमान रहता है, तो भुजाओं का बल क्षत्रियों का है। परशुराम शस्त्र ग्रहण करने वाले ब्राह्मण हैं, तो (उनके दमन में) **राजा राम की क्या बड़ाई है?।।32।।**

चन्द्रकेतु– (व्यथित सा होकर) आर्य सुमन्त्र! इस समय उत्तर एवं प्रत्युत्तर की आवश्यकता नहीं है।

क्योंकि अब तो यह कोई नया ही पुरुषरूपी अवतार हो गया है, जिसके लिए भगवान् परशुराम भी वीर नहीं हैं। इसके अलावा जो यह सभी सात भुवनों को पूर्णरूप से अभय प्रदान करने वाले, पिता श्रीराम के चरितों से भी परिचित नहीं है।।33।।

लव– श्रीराम के चरित और महिमा को कौन नहीं जानता है? यदि कुछ विशेष हो तो कहो, अथवा कहने से क्या लाभ है?

वस्तुतः वे श्रीराम वयोवृद्ध हैं, इसीलिए उनके चरित्र पर विचार करना उचित नहीं है, अतः उन्हें तो रहने ही दो, क्योंकि इस विषय में मौन रखना ही उचित है। वस्तुतः 'सुन्द' की स्त्री 'ताड़का' का वध करने पर भी अकुण्ठित यश वाले, वे लोक में महान् ही हैं। इसके अलावा 'खर' के साथ युद्ध में, जो तीन पग पीछे हट गए थे, इन्द्र के पुत्र 'बाली' के वध में, उन्होंने जो कौशल दिखाया, उससे भी लोग अभिज्ञ हैं।।34।।

(अन्वय– हुम् वर्तते, ते वृद्धाः विचारणीय–चरिताः न, तिष्ठन्तु, सुन्द–स्त्री–मथने अपि अकुण्ठ–यशसः (ते) लोके, महान्तः हि, खर–आयोधने यानि त्रीणि कुतः मुखानि पदानि अपि आसन्, वा इन्द्र–सूनु–निधने यत् कौशलम्, तत्र अपि जनः अभिज्ञः।।34।।)

चन्द्रकेतुः– आः तातापवादिन्। भिन्नमर्याद! अति हि नाम प्रगल्भसे।

लवः– अये, मय्येव भ्रुकुटीमुखः संवृत्तः?

सुमन्त्रः– स्फुरितमनयोः क्रोधेन। तथाहि–

क्रोधेनोद्धतधूतकुन्तलभरः सर्वांगजो वेपथुः,
किंचित्कोकनदच्छदस्य सदृशे नेत्रे स्वयं रज्यतः।
धत्ते कान्तिमिदं च वक्त्रमनयोर्भंगेन भीमं भ्रुवो–
श्चन्द्रस्योद्भटलांछनस्य कमलस्योद्भ्रान्तभृंगस्य च।।35।।

(अन्वय– सर्वांगजः क्रोधेन उद्धत–धूत–कुन्तल–भरः, वेपथुः, स्वयम् कोक–नद–च्छदस्य सदृशे नेत्रे किंचित् रज्यतः, भ्रुवः भंगेन भीमम् अनयोः इदम् च वक्त्रम्, उद्भट–लांछनस्य चन्द्रस्य उद्भ्रान्त–भृंगस्य च कमलस्य कान्तिम् धत्ते।।35।।)

लवः– कुमार! कुमार! एह्येहि। विमर्दक्षमां भूमिमवतरावः।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

।। इति महाकविभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते 'कुमारविक्रमो' नाम पंचमोऽङ्कः।

चन्द्रकेतु– आः! तात (पिता श्रीराम) की निन्दा करने वाले! मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले! तुम तो बहुत ही ढ़ीठ हो रहे हो।

लव– अरे! ये तो मेरे ऊपर ही भौंहों को चढ़ाने लग गए हैं।

सुमन्त्र– इन दोनों का क्रोध भड़क उठा है, क्योंकि–

क्रोध के कारण सम्पूर्ण केशसमूह को अत्यधिक कँपा देने वाला, इसके समस्त शरीर में कम्प उत्पन्न हो रहा है। स्वभाव से ही लाल कमलदल के समान, दोनों नेत्र लाल हो रहे हैं तथा भौंहों को टेढ़ा करने से, इन दोनों के मुख भी कलंकयुक्त चन्द्रमा के समान एवं ऊपर भ्रमण करने वाले, भौरों से युक्त कमल की भाँति, कान्ति को धारण कर रहे हैं।।35।।

लव– कुमार! कुमार! आओ, आओ। हम दोनों युद्ध के योग्य भूमि में उतरते हैं।

(ऐसा कहकर सभी निकल जाते हैं)

।। इसप्रकार महाकवि भवभूति विरचित उत्तररामचरित में 'कुमार विक्रम' नामक पंचम अंक का डॉ. राकेश शास्त्री, बाँसवाड़ा **द्वारा किया हुआ हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ।।**

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विमानेनोज्ज्वलं विद्याधरमिथुनम्)

विद्याधरः– अहो नु खल्वनयोर्विकर्तनकुलकुमारयोरकाण्डकलह–प्रचण्डयोयुरुद्योतितक्षत्रलक्ष्मीकयोरत्यद्भुतोद्भ्रान्तदेवासुराणि विक्रान्त–विलसितानि। तथाहि! प्रिये पश्य–

झणज्झणितकंकणक्वणितकिंकिणीकं धनु–
र्ध्वनद्गुरुगुणाटनीकृतकरालकोलाहलम्।
वितत्य किरतोः शरानविरतं पुनः शूरयो–
र्विचित्रमभिवर्तते भुवनभीममायोधनम्।।1।।

(अन्वय– झण–झणित–कंकण–क्वणित–किंकिणीकम्, ध्वनत्–गुरु–गुण–अटनी–कृत–कराल–कोलाहलम्, धनुः वितत्य शरान् अविरतम् किरतोः, शूरयः पुनः विचित्रम् भुवन–भीमम् आयोधनम् अभिवर्तते।।1।।)

जृम्भितं च विचित्राय मंगलाय द्वयोरपि।
स्तनयित्नोरिवामन्ददुन्दुभेर्दुन्दुमायितम्।।2।।

(अन्वय– द्वयोः अपि विचित्राय मंगलाय स्तनयित्नोः इव अमन्द–दुन्दुभेः दुन्दुमायितम् जृम्भितम् च ।।2।।)

तत्प्रवर्त्यतामनयोः प्रवीरयोरनवरतमविरलमिलितविकचकनककमल–कमनीयसंहतिरमरतरुतरुणमणिमुकुलनिकरमकरन्दसुन्दरः पुष्पनिपातः।

विद्याधरी– तत्किमिति पुर आकाशं दुर्दर्शतरलतडिच्छटाकडार–मपरमिव झटिति संवृत्तम्।[1]

---

[1]. ता किं ति पुरो आआसं दुद्दंतरलतडिच्छडाकडारं अवरं विअ झति संवुत्तम्?

षष्ठ अङ्क

(उसके बाद, विमान द्वारा विद्याधर युगल प्रवेश करता है)

विद्याधर– आश्चर्य है, आकस्मिक कलह से प्रचण्ड, क्षत्रियोचित शोभा का प्रदर्शन करने वाले, इन सूर्यवंशी कुमारों के, देवों तथा दैत्यों को भी निश्चय ही आश्चर्यचकित कर देने वाले, पराक्रमपूर्ण कार्य प्रकाशित हो रहे हैं। हे प्रिये! देखो,

झन, झन शब्द करने वाले, कंकण के समान, ध्वनि से युक्त, घुँघरुओं से सुशोभित एवं टंकार करती हुई, विशाल प्रत्यंचा तथा धनुष की कोटियों से किए गए, भयंकर कोलाहल वाले, धनुष को चढ़ाकर, निरन्तर वर्षा करते हुए, इन वीरों का फिर से संसार को त्रस्त करने वाला, भयंकर संग्राम हो रहा है।।1।।

इन दोनों के विचित्र मंगल के लिए, गर्जन करने वाले, मेघ के समान, दुन्दुभि का 'धम धम' शब्द भी बढ़ रहा है।।2।।

इसलिए इन दोनों महावीरों के ऊपर, हम दोनों निरन्तर सघन, मिले हुए और विकसित कमलों से सुन्दर समूह वाली, 'कल्पतरु' की पकी हुई मणि के समान, कलियों के गुच्छे के कारण, मनोहर पुष्प–वृष्टि करते हैं।

विद्याधरी– तब भला सामने की ओर का आकाश, दुःख से देखे जाने योग्य, चंचल बिजली की चमक से पीले वर्ण वाला होकर, मानो शीघ्र ही दूसरे पदार्थ के समान क्यों हो गया है?

विद्याधर वस्तुतः देवयोनि से सम्बन्धित जाति है, इसीलिए कवि द्वारा इनके माध्यम से यहाँ विमान द्वारा युद्ध के दृश्य का वर्णन कराया गया है।

विद्याधरः— तत्किं नु खल्वद्य?

त्वष्टृयन्त्रभ्रमिभ्रान्तमार्तण्डज्योतिरुज्ज्वलः।
पुटभेदो ललाटस्थनीललोहितचक्षुषः।।3।।

(**अन्वय**— त्वष्टृ—यन्त्र—भ्रमि—भ्रान्त—मार्तण्ड—ज्योतिः—उज्ज्वलः ललाटस्थ—नील—लोहित—चक्षुषः पुट—भेदः।।3।।)

(विचिन्त्य) आं ज्ञातम्। जातक्षोभेण चन्द्रकेतुना प्रयुक्तमप्रति–रूपमाग्नेयमस्त्रम्, यस्यायमग्निवच्छरसम्पातः। सम्प्रति हि–

अवदग्धबर्बरितकेतुचामरै–
रपयातमेव हि विमानमण्डलैः।
दहति ध्वजांशुकपटावलीमिमां,
नवकिंशुकद्युतिसविभ्रमः शिखी।।4।।

(**अन्वय**— हि अव—दग्ध—बर्बरित—केतु—चामरैः, विमान—मण्डलैः अप—यातम् एव, नव—किंशुक—द्युति—सविभ्रमः शिखी, इमाम् ध्वज—अंशुक—पट—अवलीम् दहति ।।4।।)

आश्चर्यम्! प्रवृत्त एवायमुच्चण्डवज्रखण्डावस्फोटपटुरटत्स्फुलिंग–गुरुरुत्तालतुमुललेलिहानोज्जवलज्वालासंभारभैरवो भगवानुषर्बुधः प्रचण्ड–श्चास्य सर्वतः संपातः। तत्प्रियामंशुकेनाच्छाद्य सुदूरमपसरामि।

(तथा करोति)

विद्याधरी— दिष्ट्या एतेन विमलमुक्ताशैलशीतलस्निग्धमसृण–मांसलेन, नाथदेहस्पर्शेनानन्दसंदलितघूर्णमानवेदनाया अर्धोदित एवान्त–रितो मे सन्तापः।[1]

विद्याधरः— अयि, किमत्र मया कृतम्? अथवा–

न किंचिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं, यो हि यस्य प्रियो जनः।।5।।

(**अन्वय**— हि यः यस्य प्रियः जनः, तत् तस्य किम् अपि द्रव्यम्, किंचित् अपि न कुर्वाणः, सौख्यैः दुःखानि अपोहति।।5।।)

---

1. दिट्ठिआ, एदेण विमलमुत्तासेअसीअलसिणि द्धमसिझमंसलेण, णाहदेहप्पंसेण, आणन्दसंदलिदघुण्णमाणवेअणाए अद्धोदिदो एव्व अन्दरिदो मे संदावो!

विद्याधर— तो क्या आज निश्चय ही,

विश्वकर्मा द्वारा शानयन्त्र पर घुमाए गए, सूर्य के उज्ज्वल प्रकाश का या भगवान् शंकर के मस्तक पर स्थित, तीसरे नेत्र का उन्मीलन हुआ है?।।3।।

(सोचकर) अहो, समझ गया। क्षुब्ध हुए चन्द्रकेतु ने असाधारण 'आग्नेयास्त्र' का प्रयोग किया है, जिसकी अग्नि के समान, यह बाणों की धारा विद्यमान है, क्योंकि इस समय–

कुछ जले हुए, बर्बर शब्द करने वाले, ध्वजाओं तथा चामरों से युक्त, विमानों के समूह भाग ही गए हैं और नए पलाश पुष्प की कान्ति के समान अग्नि, ध्वजाओं की पंक्तियों को जला रहा है।।4।।

आश्चर्य है कि अत्यधिक प्रचण्ड वज्रखण्ड के टूटने के समान, तेजी से शब्द करते हुए, चिनगारियों के कारण ऊँचे और लपलपाती हुई लपटों से भयंकर, अग्निदेव ही चारों ओर फैल गए हैं। इसलिए अपनी प्रियतमा को कपड़े से ढ़ककर दूर चला जाता हूँ।

(वैसा करता है)

विद्याधरी— सौभाग्य से, कुछ ही उत्पन्न होकर मेरा सन्ताप, निर्मल मोती के पर्वत के समान, शीतल, स्निग्ध, कोमल तथा मांसल प्रिय पतिदेव के इस शरीर के स्पर्श से, आनन्द के कारण, फैलती हुए पीड़ा के दूर होने के कारण शान्त हो गया है।

विद्याधर— अरी, इसमें मैंने क्या कर दिया? अथवा

जो जिसका प्रिय जन होता है, वह उसका कुछ अनिर्वचनीय पदार्थ ही होता है, जो उसके लिए कुछ भी न करता हुआ, सुखों के माध्यम से दुःखों को दूर कर देता है।।5।।

मध्यम श्रेणी के पात्रों (विद्याधर एवं विद्याधरी) द्वारा प्रस्तुत वार्तालाप वस्तुतः कवि ने **शुद्ध विष्कम्भक** के रूप में अंक के आरम्भ में प्रयुक्त किया है, जिसमें लव और चन्द्रकेतु के हो रहे भयंकर युद्ध तथा नायक राम को भविष्य में होने वाली पुत्र–प्राप्ति विषयक सूचना को दिया गया है।

विद्याधरी– कथमविरलविलोलघूर्णमानविद्युल्लताविलासमांसलैर्मत्त–मयूरकण्ठश्याम लैरवस्तीर्यते नभोंगणं जलधरैः?[1]

विद्याधर– कुमारलवप्रयुक्तवारुणास्त्रप्रभावः खल्वेषः। कथमविरल–प्रवृत्तवारिधारासंपातं प्रशान्तमेव पावकास्त्रम्?

विद्याधरी– प्रियं मे, प्रियं मे।[2]

विद्याधर– हन्त भोः! सर्वमतिमात्रं दोषाय। यत्प्रलेयवातोत्क्षोभ–गम्भीरगुलुगुलायमानमेघमेदुरितान्धकारनीरन्ध्रनद्धमिव एकबारविश्वग्रसन–विकटविकरालकालमुखकन्दरविवर्तमानमिव युगान्तयोगनिद्रानिरुद्धसंव–द्वारं नारायणोदरनिविष्टमिव भूतं विपद्यते। साधु चन्द्रकेतो! साधु! स्थाने वायव्यमस्त्रमीरितम्। यतः–

विद्याकल्पेन मरुता मेघानां भूयसामपि।
ब्रह्मणीव विवर्तानां क्वापि प्रविलयः कृतः।।6।।

(अन्वय– विद्या–कल्पेन मरुता, भूयसाम् मेघानाम् अपि विवर्तानाम् ब्रह्मणि इव, क्व अपि प्रविलयः कृतः।।6।।)

विद्याधरी–नाथ! कः इदानीमेष ससंभ्रमोत्क्षिप्तकरभ्रम दुत्तरीयांचलो दूरत एव मधुरस्निग्धवचनप्रतिषिद्धयुद्धव्यापार एतयोरन्तरे विमानवरमव–तारयति?[3]

विद्याधर– (दृष्ट्वा) एष शम्बूकवधात्प्रतिनिवृत्तो रघुपतिः।

शान्तं महापुरुषसंगदितं निशम्य,
तद्गौरवात्समुपसंहृतसंप्रहारः।
शान्तो लवः प्रणत एव च चन्द्रकेतुः,
कल्याणमस्तु सुतसंगमनेन राज्ञः।।7।।

(अन्वय– शान्तम् महापुरुष–संगदितम् निशम्य, तत् गौरवात् सम–उपसंहृत–संप्रहारः लवः शान्तः, चन्द्रकेतुः च प्रणतः एव, सुत–संगमनेन राज्ञः कल्याणम् अस्तु।।7।।)

---

1. कहं अविरलविलोलघुम्ममाणविज्जुल्लदाविलाससमसलेहिमत्तमयूर कण्ठसामलेहि ओत्थरीअदि णहंगणं जलहरेहिं?
2. पिअं मे पिअं मे।
3. णाह! को दाणिं एसो ससंभमोक्खित्तकरब्भसदुत्तरी– अंचलो दूरदो एव्व महुरसिणिद्धवअणपडिसिद्ध जुद्धव्वावारो एदाणं अन्दरे विमाणवरं ओदरावेदि?

विद्याधरी– किस प्रकार निरन्तर चंचल एवं घूमती हुई, विद्युल्लताओं के चमकने के कारण, परिपुष्ट तथा मत्त मोरों के कण्ठों के समान, श्यामवर्ण मेघों से आकाश आच्छादित हो रहा है।

विद्याधर– यह कुमार लव द्वारा छोड़े गए 'वारुणास्त्र' का प्रभाव है, जिससे निरन्तर गिरती हुई जल–धाराओं से 'आग्नेयास्त्र' शान्त ही हो गया है।

विद्याधरी– मेरे लिए बहुत प्रिय है, बहुत हितकर है।

विद्याधर– हन्त, अरे! अतिशयता सभी जगह दोष का कारण होती है। यह जो प्रलयकाल की वायु से क्षुब्ध गम्भीर 'गुल गुल' शब्द करने वाले, मेघों से समृद्ध एवं घने अन्धकार से अविरलरूप से बँधा जाता हुआ, एक ही बार में संसार को निगलने के लिए, कराल–काल की मुखरूपी गुफा में छटपटाता हुआ सा, प्रलयकाल की योगनिद्रा से रोके गए, मुख आदि निर्गम मार्गों से युक्त और नारायण के उदर में प्रविष्ट सा होकर, यह सम्पूर्ण संसार नष्ट हो रहा है। वाह, चन्द्रकेतु वाह, तुमने सही समय पर 'वायव्यास्त्र' का प्रयोग किया है, क्योंकि–

जिसप्रकार तत्त्वज्ञान से नामरूपात्मक सभी सांसारिक पदार्थों का ब्रह्म में विलय हो जाता है, उसीप्रकार ज्ञान के समान इस वायव्यास्त्र ने अगणित मेघों का भी कहीं पर विलय कर दिया है।।6।।

विद्याधरी– नाथ! इस समय यह कौन शीघ्रता से हाथ को ऊँचा करके, अपने उत्तरीय वस्त्र को हिलाता हुआ, दूर से ही मधुर एवं स्नेहमय वचनों से युद्ध को रोकता हुआ, इन दोनों के बीच में विमान को उतार रहा है?

विद्याधर– (देखकर) शम्बूक का वध करके, ये रघुकुल के स्वामी राम लौटे हैं।

महापुरुष का शान्तिपूर्ण वचन सुनकर, उनके गौरव से शस्त्रों के प्रयोग को बन्द करके, लव शान्त हो गया है तथा चन्द्रकेतु भी प्रणाम करते हुए नतमस्तक हो गया है। पुत्र के समागम से महाराज का कल्याण हो।।7।।

तदितस्तावदेहि ।

(इति निष्क्रान्तौ)

।। विष्कम्भकः ।।

(ततः प्रविशति रामो लवः प्रणतश्चन्द्रकेतुश्च)

रामः– (पुष्पकादवतरन्)

दिनकरकुलचन्द्र! चन्द्रकेतो!
सरभसमेहि दृढ़ं परिष्वजस्व।
तुहिनशकलशीतलैस्तवांगैः,
शममुपयातु ममापि चित्तदाहः।।8।।

(अन्वय– दिनकर–कुल–चन्द्र! चन्द्रकेतो! सरभसम् एहि दृढ़म् परिष्वजस्व, तुहिन–शकल–शीतलैः तव अंगैः, मम चित्त–दाहः अपि शमम् उपयातु ।।8।।)

(उत्थाय सस्नेहास्रं परिष्वज्य)

अप्यनामयं नूतनदिव्यास्त्रायोधनस्य तव ?

चन्द्रकेतुः– अभिवादये। कुशलमत्यद्भुतप्रियवयस्यलाभाभ्युदयेन। तद्विज्ञापयामि मामिवाविशेषेण स्निग्धेन चक्षुषा पश्यत्वमु वीरमनरालसाहसं तातः।

रामः– (लवं निरूप्य) दिष्ट्या अतिगम्भीरमधुरकल्याणकृतिरयं वयस्यो वत्सस्य।

त्रातुं लोकानिव परिणतः कायवानस्त्रवेदः,
क्षात्रो धर्मः श्रित इव तनुं ब्रह्मकोशस्य गुप्त्यै।
सामर्थ्यानामिव समुदयः संचयो वा गुणाना–
माविर्भूय स्थित इव जगत्पुण्यनिर्माणराशिः।।9।।

(अन्वय– लोकान् त्रातुम् कायवान् परिणतः, अस्त्र–वेदः इव, ब्रह्म–कोशस्य गुप्त्यै ब्रह्मकोशस्य गुप्त्यै, तनुम् श्रितः क्षात्रः धर्मः इव, सामर्थ्यानाम् समुदयः इव, गुणानाम् संचयः, वा जगत्–पुण्य–निर्माण–राशिः आविर्भूय स्थितः इव ।।9।।)

लवः– (स्वगतम्) अहो! पुण्यानुभावदर्शनोऽयं महापुरुषः।

आश्वास इव भक्तीनामेकमायतनं महत्।
प्रकृष्टस्येव धर्मस्य प्रसादो मूर्तिसुन्दरः।।10।।

तो जरा इधर आओ।

(यह कहकर दोनों निकल जाते हैं)

।। विष्कम्भक।।

(उसके बाद, राम, लव और प्रणाम करता हुआ चन्द्रकेतु प्रवेश करता है)

राम– (पुष्पक विमान से उतरते हुए)

सूर्यवंश के चन्द्र! हे चन्द्रकेतु! शीघ्र आओ और मेरा प्रगाढ़ आलिंगन करो, जिससे तुम्हारे हिम–खण्ड के समान, शीतल अंगों से मेरे मन का भी ताप शान्त हो जाए।।8।।

(उठकर, स्नेह के साथ अश्रुपूर्वक आलिंगन करके) दिव्य अस्त्रों से नया–नया युद्ध करने वाले, तुम्हारा स्वास्थ्य तो ठीक है?

चन्द्रकेतु– मैं प्रणाम करता हूँ। अत्यधिक अद्भुत प्रियमित्र के प्राप्त होने रूप अभ्युदय से सभी कुछ कुशल है। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे ही समान, इस सरल, साहसी और वीर को विशेष स्नेहपूर्ण दृष्टि से ही देखें।

राम– (लव को देखकर) सौभाग्य से लव का मित्र, अत्यधिक गम्भीर, सुन्दर तथा शुभ लक्षणों से युक्त आकृति से सम्पन्न है,

सभी लोकों की रक्षा के लिए क्या धनुर्वेद ही अवतीर्ण हो गया है, या फिर वेदरूपी कोष की रक्षा के लिए क्षत्रिय धर्म ने ही शरीर धारण कर लिया है? अथवा शक्तियों का समूह, गुणों का संग्रह या संसार का पुण्यरूपी पुँज ही, मानो इसके रूप में प्रकट हो गया है।।9।।

लव– (मन में) अहो! ये महापुरुष पुण्य प्रभाव एवं दर्शनों वाले हैं।

श्रद्धालुओं को सुख प्रदान करने वाले स्थान के समान, ये अद्वितीय और महान् आधार एवं लोकोत्तर धर्म की मूर्तिमयी प्रसन्नता के समान हैं।।10।।

(अन्वय– भक्तीनाम् आश्वासः इव, एकम् महत् आयतनम्, प्रकृष्टस्य धर्मस्य मूर्ति–सुन्दरः प्रसादः इव ।।10।।)

आश्चर्यम्!

विरोधो विश्रान्तः, प्रसरति रसो निर्वृत्तिघन–
स्तदौद्धत्यं क्वापि व्रजति, विनयः प्रह्वयति माम्।
झटित्यस्मिन्दृष्टे किमिति परवानस्मि? यदि वा,
महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः।।11।।

(अन्वय– विरोधः विश्रान्तः, निर्वृत्तिः घनः रसः प्रसरति, तत् औद्धत्यम् क्व अपि व्रजति, विनयः माम् प्रह्वयति, अस्मिन् दृष्टे किम् इति झटिति परवान् अस्मि, यदि वा हि महा–अर्घः तीर्थानाम् इव महताम् कः अपि अतिशयः (भवति)।।11।।)

रामः– तत्किमयमेकपद एव मे दुःखविश्रामं ददात्युपस्नेहयति च कुतोऽपि निमित्तादन्तरात्मानम्? अथवा 'स्नेहश्च निमित्तसव्यपेक्ष' इति विप्रतिषिद्धमेतत्।

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु–
र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतंगस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः।।12।।

(अन्वय– कः अपि आन्तरः हेतुः, पदार्थान् व्यतिषजति, खलु प्रीतयः बहिः उपाधीन् न संश्रयन्ते, हि पतंगस्य उदये पुण्डरीकम् विकसति, हिमरश्मौ उद्गते चन्द्रकान्तः द्रवति च ।।12।।)

लवः– चन्द्रकेतो! क एते?

चन्द्रकेतुः– प्रियवयस्य! ननु तातपादाः।

लवः– ममापि धर्मतस्तथैव, यतः प्रियवयस्येति भवतोक्तम्। किन्तु चत्वारः किल भवन्त्येवं व्यपदेशभागिनस्तत्रभवन्तो रामायणकथापुरुषाः। तद्विशेषं ब्रू हि।

चन्द्रकेतुः– ज्येष्ठतात इत्यवेहि।

लवः– (सोल्लासम्) कथं रघुनाथ एव? दिष्ट्या सुप्रभातमद्य, यदयं देवो दृष्टः। (सविनयं निर्वर्ण्य) तात! प्राचेतसान्तेवासी लवोऽभिवादयते।

आश्चर्य है कि

इनके दर्शन से विरोध शान्त हो गया है, प्रगाढ़ प्रेम अत्यधिक आनन्दपूर्वक फैल रहा है। वह उद्दण्डता कहीं चली गयी है। विनय मुझे विनम्र बना रहा है। इन्हें देखने मात्र से मैं शीघ्र ही पराधीन सा क्यों हो रहा हूँ अथवा निश्चय ही, तीर्थों के समान, महापुरुषों का भी कोई बहुमूल्य उत्कर्ष होता है।।11।।

राम– तो यह बालक मेरे दुःख को सहसा ही क्यों समाप्त कर रहा है? और किसी अज्ञात आन्तरिक कारण से मेरे अन्तःकरण को स्नेह से सींच रहा है अथवा प्रेम किसी कारण की अपेक्षा रखता है, यह कथन ठीक नहीं है।

कोई आन्तरिक कारण पदार्थों को आपस में मिला देता है, प्रेम कभी भी बाह्य कारणों का आश्रय नहीं लेता है, क्योंकि सूर्य के उदित होने पर, श्वेतकमल खिल ही जाता है तथा चन्द्रमा के उदय होने के बाद चन्द्रकान्त मणि पिघलती ही है।।12।।

लव– चन्द्रकेतु! ये कौन हैं?

चन्द्रकेतु– प्रियमित्र! ये पूजनीय तात (पिताश्री) हैं।

लव– तब तो मेरे भी ये धर्म से वैसे ही लगते हैं, क्योंकि तुमने मुझे प्रियमित्र कहा है, किन्तु आपके 'तात' शब्द से व्यवहार करने योग्य, रामायण के कथापुरुष, चार समादरणीय हैं। इसलिए तुम मुझे विशेषरूप से बताओ (उनमें ये कौन हैं?)।

चन्द्रकेतु– तब तो आप इन्हें ज्येष्ठ पिताश्री इस रूप में समझिए।

लव– (प्रसन्नतापूर्वक) क्या ये रघुनाथ ही हैं? सौभाग्य से आज सुप्रभात है, जो इन महाराज का दर्शन हो गया। (विनम्रतापूर्वक देख कर) पिताश्री! महर्षि वाल्मीकि का शिष्य लव आपको अभिवादन करता है।

रामः— आयुष्मन्! एह्येहि। (इति सस्नेहमांलिग्य) अयि वत्स! कृतमत्यन्तविनयेन। अंगेन मामपरिश्लथं परिरम्भस्व।

परिणतकठोरपुष्करगर्भच्छदपीनमसृणसुकुमारः।
नन्दयति चन्द्रचन्दननिष्यन्दजडस्तव स्पर्शः।।13।।

(**अन्वय**—परिणत—कठोर—पुष्कर—गर्भ—च्छद—पीन—मसृण—सुकुमारः चन्द्र—चन्दन—निष्यन्द—जडः तव स्पर्शः नन्दयति ।।13।।)

लवः— (स्वगतम्) ईदृशो मां प्रत्यमीषामकारणस्नेहः। मया पुनरेभ्य एवाभिद्रोग्धुमझेनायुधपरिग्रहः कृतः। (प्रकाशम्) मृष्यन्तां त्विदानीं लवस्य बालिशतां तातपादाः।

रामः— किमपराद्धं वत्सेन?

चन्द्रकेतुः— अश्वानुयात्रिकेभ्यस्तातप्रतापाविष्करणमुपश्रुत्य वीरा—यितमनेन।

रामः— नन्वयमलंकारः क्षत्रियस्य।

न तेजस्तेजस्वीं प्रसृतमपरेषां विषहते,
स तस्य स्वो भावः प्रकृतिनियतत्वादकृतकः।
मयूखैरश्रान्तं तपति यदि देवो दिनकरः,
किमाग्नेयो ग्रावा निकृत इव तेजांसि वमति।।14।।

(**अन्वय**— तेजस्वीम् प्रसृतम् अपरेषाम् तेजः न विषहते, तस्य सः प्रकृति—नियतत्वात् अकृतकः स्वः—भावः, यदि दिनकरः मयूखैः अश्रान्तम् तपति, देवः आग्नेयः ग्रावाः निकृतः इव तेजांसि किम् वमति।।14।।)

चन्द्रकेतुः— अमर्षोऽप्यस्यैव शोभते महावीरस्य। पश्यन्तु हि तात—पादाः प्रियवयस्यनियुक्तेन जृम्भकास्त्रैण विक्रम्य स्तम्भितानि सर्व—सैन्यानि।

रामः— (सविस्मयखेदं निर्वर्ण्य। स्वगतम्) अहो! वत्सस्य ईदृशः प्रभावः? (प्रकाशम्) वत्स! संह्रियतामस्त्रम्। त्वमपि चन्द्रकेतो! निर्व्यापारतया विलक्षाणि सान्त्वय बलानि।

चन्द्रकेतुः— यथा निर्दिष्टम्। (इति निष्क्रान्तः)

(लवः प्रणिधानं नाटयति)

लवः— तात! प्रशान्तमस्त्रम्।

राम— आयुष्मन्! आओ, आओ। (ऐसा कहकर स्नेह के साथ आलिंगन करके)

पूर्णरूप से खिले हुए कमल के भीतर की पंखुड़ियों के समान, परिपुष्ट, स्निग्ध तथा कोमल एवं चन्द्रमा और चन्दन के रस के जैसा तुम्हारा शीतल स्पर्श मुझे आनन्दित कर रहा है।।13।।

लव— (मन में) इनका मुझ पर स्वयं ही ऐसा अहेतुक स्नेह है, किन्तु मुझ मन्दमति ने इनसे ही द्रोह करने के लिए शस्त्र को ग्रहण किया था। (प्रकट में) समादरणीय तात! अब आप लव की मूर्खता को क्षमा कर दीजिए।

राम— वत्स ने क्या अपराध किया है?

चन्द्रकेतु— अश्व का अनुगमन करने वाले रक्षकों से, आपके प्रताप की अधिकता को सुनकर, इन्होंने वीर पुरुष के समान आचरण किया है।

राम— निश्चय ही, यह तो क्षत्रिय का आभूषण है,

तेजस्वी व्यक्ति फैले हुए, दूसरे के तेज को सहन नहीं करता है, उसका वह कार्य स्वभाव से निश्चित होने के कारण, स्वाभाविक अपना ही धर्म है। भगवान् भास्कर अपनी तीक्ष्ण किरणों द्वारा अत्यधिक तपते हैं तथा सूर्यकान्त मणि तिरस्कृत के समान, अग्नि क्यों उगलता है?।।14।।

चन्द्रकेतु— यह असहनशीलता ही इस महावीर को भी सुशोभित कर रही है। तात! देखिए, प्रिय मित्र द्वारा छोड़े गए 'जृम्भकास्त्र' ने पराक्रम प्रदर्शित करके, हमारी सम्पूर्ण सेना को निश्चेष्ट कर दिया है।

राम— (आश्चर्य एवं खेदपूर्वक देखकर, मन में) अहो, वत्स का ऐसा प्रभाव है? (प्रकट में) वत्स! अस्त्र लौटा लो। हे चन्द्रकेतु! तुम भी स्तम्भित होने के कारण लज्जित सेनाओं को सान्त्वना प्रदान करो।

चन्द्रकेतु— जैसी आपकी आज्ञा।

(इसप्रकार कहकर निकल जाता है)

(लव ध्यान का अभिनय करता है)

लव— तात! अस्त्र शान्त हो गया है।

रामः— सरहस्यप्रयोगसंहारजृम्भकास्त्राणि दिष्ट्या वत्सस्यापि संपद्यन्ते।

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा,
परःसहस्रं शरदस्तपांसि।
एतान्यदर्शन्गुरवः पुराणाः,
स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि।।15।।

(**अन्वय—** ब्रह्म—आदयः पुराणाः गुरवः, ब्रह्म—हिताय परः—सहस्रम् शरदः तपांसि तप्त्वा, स्वानि एव एतानि तपोमयानि तेजांसि अदर्शन् ।।15।।)

अथैतामस्त्रमन्त्रोपनिषदं भगवानकृशाश्वः परः सहस्राधिकसंवत्सर—परचर्यानिरतायान्तेवासिने कौशिकाय प्रोवाच। स भगवान् मह्यमिति गुरुपूर्वानुक्रमः। कुमारस्य कुतः सम्प्रदायः? इति पृच्छामि।

लवः— स्वतः प्रकाशान्यावयोरस्त्राणि।

रामः— (विचिन्त्य) किं न सम्भाव्यते? प्रकृष्टपुण्योपादानकः कोऽपि महिमा स्यात्? द्विवचनं तु कथम्?

लवः— भ्रातरावावां यमौ।

रामः— स तर्हि द्वितीयः कः?

(नेपथ्ये)

दण्डायन!

आयुष्मतः किल लवस्य नरेन्द्रसैन्यै—
रायोधनं ननु किमात्थ? सखे! तथेति।
अद्यास्तमेतु भुवनेषु च राजशब्दः,
क्षत्रस्य शस्त्रशिखिनः शममद्य यान्तु।।16।।

(**अन्वय—** सखे! आयुष्मतः लवस्य नरेन्द्र—सैन्यैः आयोधनम् ननु किल तथा इति आत्थ किम्? अद्य भुवनेषु च राज—शब्दः अस्तम् एतु, अद्य क्षत्रस्य शस्त्र—शिखिनः शमम् यान्तु।।16।।)

रामः—

अथ कोऽयमिन्द्रमणिमेचकच्छवि—
र्ध्वनिनैव बद्धपुलकं करोति माम्।

राम— सौभाग्य से वत्स को भी प्रयोग एवं संहार के गुप्त मन्त्रों के साथ, जृम्भकास्त्र प्राप्त हैं।

ब्रह्मा आदि पुराण पुरुषों ने वेद अथवा ब्राह्मणों के हित के लिए, हजारों वर्षों से भी अधिक तपस्या करके, अपने तपोमय तेजों को ही इन अस्त्रों के रूप में देखा था।।15।।

इस अस्त्रमयी गोपनीय विद्या को भगवान् कृशाश्व ने हजारों वर्षों से भी अधिक वर्षों तक सेवा में रहने वाले, शिष्य विश्वामित्र को बताया था तथा उसी भगवान् विश्वामित्र ने मुझे इसका उपदेश दिया था। इसीप्रकार आचार्यों का इसके विषय में प्राचीन क्रम (परम्परा) है, तो फिर कुमार को इसका उपदेश कहाँ से प्राप्त हुआ, यह पूछ रहा हूँ।

लव— हम दोनों में इन अस्त्रों का स्वयं ही प्रादुर्भाव हुआ है।

राम— (सोचकर) क्यों नहीं हो सकता है? क्योंकि उच्चकोटि के पुण्य से उत्पन्न यह कोई अद्भुत महिमा ही होगी, किन्तु इसने द्विवचन का प्रयोग क्यों किया?

लव— हम दोनों जुड़वाँ भाई हैं।

राम— तो वह दूसरा कहाँ है?

(नेपथ्य में)

हे दण्डायन!

हे मित्र! क्या आयुष्मान् लव का राजा की सेनाओं से युद्ध हो रहा है? क्या कहते हो? निश्चय ही, वैसा ही है, तब तो आज लोकों से 'राजा' शब्द विनाश को प्राप्त होवे तथा आज ही क्षत्रिय की शस्त्ररूपी अग्नि शान्त हो जावे।।16।।

राम—

इसके अतिरिक्त अब इन्द्रनील मणि की छवि के समान, श्यामल कान्ति से युक्त, यह कौन शब्द से ही मुझे नए तथा श्यामवर्ण के मेघ के गम्भीर गर्जन की समय पर विकसित होने वाले, कदम्ब की कलिकाओं की भाँति, रोमांचित कर रहा है?।। 17।।

नवनीलनीरधरधीरगर्जितक्षण–
बद्धकुड्मलकदम्बडम्बरम्।।17।।

(**अन्वय–** अथ इन्द्र–मणि–मेचक–छविः कः अयम् ध्वनिना एव माम् नव– नील – नीरधर–धीर–गर्जित–क्षण–बद्ध–कुड्मल–कदम्ब–डम्बरम् बद्ध–पुलकम् करोति? ।।17।)

लवः–अयमसौ मम ज्यायानार्यः कुशो नाम भरताश्रमात्प्रतिनिवृत्तः।

रामः–(सकौतुकम्) तर्हि वत्स! इत एवैतमाह्वयायुष्मन्तम्।

लवः–यदाज्ञापयति। (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति कुशः)

कुशः– (सक्रोधं कृतधैर्यं धनुरास्फाल्य)

दत्तेन्द्राभयदक्षिणैर्भगवतो वैवस्वतादामनो–
दृप्तानां दमनाय दीपितनिजक्षत्रप्रतापाग्निभिः।
आदित्यैर्यदि विग्रहो नृपतिभिर्धन्यं ममैतत्ततो,
दीप्तास्त्रस्फुरदुग्रदीधितिशिखानीराजितज्यं धनुः।।18।।

(**अन्वय–** भगवतः वैवस्वतात् मनोः आ दत्त–इन्द्र–अभय–दक्षिणैः, दृप्तानाम् दमनाय,दीपित–निज–क्षत्र–प्रताप–अग्निभिः आदित्यैः नृपतिभिः यदि विग्रहः, ततः दीप्त–अस्त्र–स्फुरत् उग्र–दीधिति–शिखा–नीराजित–ज्यम् एतत् मम धनुः धन्यम् ।।18।।)

(विकट परिक्रामति)

रामः– कोप्यस्मिन्क्षत्रियपोतके पौरुषातिरेकः। तथाहि–

दृष्टिस्तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा,
धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम्।
कौमारकेऽपिगिरिवद्गुरुतां दधानो,
वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव।।19।।

(**अन्वय–** दृष्टिः तृणीकृत–जगत्–त्रय–सत्त्व–साराः धीरोद्धताः गतिः धरित्रीम् नमयति इव, कौमारके अपि गिरिवत् गुरुताम् दधानः, अयम् किम् वीरः रसः? उत दर्पः एव इति।।19।।)

लव– (उपसृत्य) जयत्वार्य।

लव– ये मेरे बड़े भाई सम्मानीय 'कुश' भरत मुनि के आश्रम से लौटे हैं।

राम– (कौतूहलपूर्वक) तब तो वत्स! इस आयुष्मान् को भी यहीं पर बुलाओ।

लव– आपकी जैसी आज्ञा।

(ऐसा कहकर निकल जाता है)

(उसके बाद कुश प्रवेश करता है)

कुश– (क्रोध एवं धैर्यपूर्वक धनुष की टंकार करके)

भगवान् वैवस्वत मनु से लेकर, इन्द्र को भी अभय दक्षिणा प्रदान करने वाले, अहंकारयुक्त लोगों के दमन के लिए, अपने क्षत्रिय तेज रूपी अग्नि को प्रज्वलित करने वाले, सूर्यवंशीय राजाओं के साथ, यदि युद्ध हो जाए, तो प्रज्वलित अस्त्रों की देदीप्यमान एवं भयंकर किरणों वाली, शिखा द्वारा आरती की गयी, ज्या से युक्त मेरा यह धनुष धन्य हो जाएगा।।18।।

(विकटरूप से घूमता है)

राम– इस क्षत्रिय बालक में किसी अनिर्वचनीय तेज का अतिरेक है, क्योंकि–

इसकी दृष्टि तीनों लोकों के बल के उत्कर्ष को तिनके के समान, तुच्छ कर देने वाली है तथा धीर एवं उद्धत गति पृथ्वी को झुका सा रही है। बाल्यावस्था में भी पर्वत के समान, गुरुता को धारण करता हुआ, यह वीर क्या स्वयं वीररस है, या फिर मूर्तिमान् अभिमान ही इधर आ रहा है।।19।।

लव– (उपसृत्य) आर्य की जय हो।

महाकवि ने प्रस्तुत षष्ठ अंक में लव, कुश का प्रभावशाली चरित्र चित्रण करके, राम की मर्मान्तक पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान करके हुए, उनके चरित्र के सीता–त्याग विषयक कलंक को भी प्रक्षालित करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। तृतीय अंक के समान ही यहाँ भी उनके भावों को अभिव्यक्ति मिली है।

कुशः— नन्वायुष्मन! किमियं वार्ता युद्धं युद्धमिति।

लवः— यत्किंचिदेतत्। आर्यस्तु दृप्तं भावमुत्सृज्य वर्तताम्।

कुशः— किमर्थम्?

लवः— यदत्र देवो रघुनन्दनः स्थितः। स रामायणकथानायको ब्रह्मकोशस्य गोप्ता।

कुशः— आशंसनीयपुण्यदर्शनः स महात्मा। किन्तु स कथमस्माभि-रुपगन्तव्यः? इति न संप्रधारयामि।

लवः— यथैव गुरुस्तथोपसदनेन।

कुशः— कथं हि नामैतत्?

लवः— अत्युदात्तः सुजनश्चन्द्रकेतुरौर्मिलेयः प्रियवयस्येति सख्येन मामुपतिष्ठते। तेन संबन्धेन धर्मतस्तात एवायं राजर्षिः।

कुशः— संप्रत्यवचनीयो राजन्येऽपि प्रश्रयः।

(उभौ परिक्रामतः)

लवः— पश्यत्वेनमार्यो महापुरुषमाकारनुभावगाम्भीर्यसंभाव्यमान-विविधलोकोत्तरसुचरितातिशयम्।

कुशः— (निर्वर्ण्य)

अहो प्रासादिकं रूपमनुभावश्च पावनः।
स्थाने रामायणकविर्देवीं वाचमवीवृधत्!।।20।।

(**अन्वय**— अहो प्रासादिकम् रूपम्, पावनः अनुभावः च, रामायण-कविः देवीम् वाचम् स्थाने अवीवृधत्!।।20।।)

(उपसृत्य) तात! प्राचेतसान्तेवासी कुशोऽभिवादयते।

रामः— एह्येह्यायुष्मन्!

अमृताध्मातजीमूतस्निग्धसंहननस्य ते।
परिष्वंगाय वात्सल्यादयमुत्कण्ठते जनः।।21।।

(**अन्वय**— अयम् जनः वात्सल्यात् अमृत-अध्मात-जीमूत-स्निग्ध-संहननस्य ते परिष्वंगाय उत्कण्ठते ।।21।।)

कुश— आयुष्मन्! यह युद्ध, युद्ध, भला क्या है?

लव— यह जो कुछ भी है। आर्य तो उग्रभाव को त्याग करके, नम्रता से व्यवहार करें।

कुश— किसलिए?

लव— क्योंकि यहाँ पर रघुनन्दन राम विद्यमान हैं। वे रामायण कथा के नायक और वेद-कोष की रक्षा करने वाले हैं।

कुश— निश्चय ही, वे महात्मा अभिलषित पवित्र दर्शन वाले हैं, किन्तु उनके पास मुझे किस प्रकार जाना चाहिए, मैं यह निश्चय कर लेता हूँ।

लव— जिसप्रकार गुरु के पास जाया जाता है, उसीप्रकार आपको उनके पास जाना चाहिए।

कुश— भला यह कैसे सम्भव है?

लव— अत्यधिक उदात्त विचारों से युक्त, सज्जन, उर्मिला के पुत्र चन्द्रकेतु 'प्रियमित्र' ऐसा सम्बोधन करके, मेरे साथ मित्रता का व्यवहार कर रहे हैं, इसलिए इस सम्बन्ध से यह राजर्षि धर्म से हमारे पिता ही हैं।

कुश— इस समय क्षत्रिय में हमारा नम्र व्यवहार भी निर्दोष है।

(दोनों घूमते हैं)

लव— आकार, प्रभाव और गम्भीरता द्वारा, जिनके चरित्रों का अनेक प्रकार के लोकोत्तर चरितों से अनुमान किया जा सकता है, इस प्रकार के इन महापुरुष का आर्य दर्शन करें।

कुश— (ध्यानपूर्वक देखकर)

आश्चर्य है कि इनका रूप प्रसादगुण युक्त तथा प्रभाव पवित्र है। रामायण के कवि ने अपनी वाणी को उचित स्थान पर ही परिवर्धित किया है।।20।।

(पास जाकर) तात! वाल्मीकि ऋषि का शिष्य कुश आपको अभिवादन कर रहा है।

राम— आयुष्मान् आओ, आओ।

यह व्यक्ति वात्सल्यभाव से अमृत से भरे हुए, मेघ के समान, स्निग्ध शरीर वाले, तुम्हारे आलिंगन के लिए उत्कण्ठित हो रहा है।।21।।

(परिष्वज्य स्वगतम्) तत्किमित्ययं च दारकः–

अंगादंगात्सृत इव निजः स्नेहजो देहसारः,
प्रादुर्भूय स्थित इव बहिश्चेतनाधातुरेकः।
सान्द्रानन्दक्षुभितहृदयप्रस्रवेणावसिक्तो,
गाढाऽऽश्लेषः स हि मम हिमच्योतमाशंसतीव।।22।।

(**अन्वय–** अंगात्–अंगात् सृतः स्नेहजः निजः देह–सारः इव, एकः चेतना–धातुः बहिः प्रादुर्भूय स्थितः इव, सान्द्र–आनन्द–क्षुभित– हृदय–प्रस्रवेण अवसिक्तः सः गाढ़–आश्लेषः, हि मम हिमच्योतम् आशंसति इव।।22।।)

लवः– ललाटन्तपस्तपति घर्माशुः। तदत्र सालवृक्षच्छायायां मूहूर्त–मासनपरिग्रहं करोतु तातः।

रामः– यदभिरुचितं वत्सस्य।

(सर्वे परिक्रम्य यथोचितमुपविशन्ति)

रामः– (स्वगतम्)

अहो प्रश्रययोगेऽपि, गतिस्थित्यासनादयः।
साम्राज्यशंसिनो भावाः कुशस्य च लवस्य च।।23।।

(**अन्वय–** अहो, प्रश्रय–योगे अपि, कुशस्य च लवस्य च, गति–स्थिति–आसन–आदयः भावाः साम्राज्य–शंसिनः (सन्ति)।।23।।)

वपुरवियुतसिद्धा एव लक्ष्मीविलासाः,
प्रतिकलकमनीयां कान्तिमुद्भेदयन्ति।
अमलिनमिव चन्द्रं रश्मयः स्वे यथा वा,
विकसितमरविन्दं बिन्दवो माकरन्दाः।।24।।

(**अन्वय–** यथा वा स्वे रश्मयः, अमलिनम् चन्द्रम्, माकरन्दाः बिन्दवः विकसितम् अरविन्दम् उद्भेदयन्ति इव, अवियुत–सिद्धाः एव लक्ष्मी–विलासाः वपुः प्रति–कल–कमनीयाम् कान्तिम् (उद्भेदयन्ति)।।24।।)

भूयिष्ठं च रघुकुलकौमारमनयोः पश्यामि।

(आलिंगन करके मन में) तब यह बालक किसलिए?

प्रत्येक अंग से निकला हुआ, स्नेह से उत्पन्न होने वाला, मेरे शरीर के सार भाग के समान, एकमात्र चैतन्य तत्त्व ही मानो बाहरी प्रदेश में उत्पन्न होकर, स्थित हो गया है। अत्यधिक आनन्द से क्षुभित हृदय के द्रव द्वारा सींचा हुआ, वह प्रगाढ़ आलिंगन मुझे निश्चय ही मानो बर्फ से सींच रहा है।।22।।

लव– सूर्य ललाट को तपाने वाला होकर तप रहा है, इसलिए तात यहाँ पर शाल के वृक्ष की छाया में थोड़ी देर के लिए आसन ग्रहण करें।

राम– जो वत्स को अच्छा लगे।

(सभी घूमकर यथोचित रूप में बैठ जाते हैं)

राम– (मन में)

आश्चर्य है कि विनम्रता का सम्बन्ध होने पर भी, कुश और लव की गति, स्थिति और बैठना आदि सभी क्रियाएँ साम्राज्य की सूचना देने वाली हैं।।23।।

अथवा जिसप्रकार अपनी ही रश्मियाँ निर्मल चन्द्रमा को प्रकाशित करती हैं, जिसप्रकार पुष्प के रस की बूँदें खिले हुए कमल को सुशोभित करती हैं, उसीप्रकार स्वभाव से ही सिद्ध शोभा के विलास, प्रत्येक क्षण कमनीय, इस शरीर की मनोहर कान्ति को उद्भाषित कर रहे हैं।।24।।

इन दोनों में मैं रघुवंश में उत्पन्न होने वाले, कुमारों का बहुत कुछ साम्य देख रहा हूँ, (क्योंकि)

श्रीराम का कुश के प्रति वात्सल्यभाव अभिव्यक्त हुआ है। साथ ही, पिता के रूप में उनके चरित्र की उज्ज्वलता भी दर्शनीय है।

लव द्वारा राम के लिए शालवृक्ष की छाया में बैठने का निवेदन, उसके आतिथ्य सत्कार आदि गुण को उद्घाटित करने वाला है तथा उसके प्रत्युत्पन्न–मतित्व को भी प्रतिपादित कर रहा है।

कठोरपारावतकण्ठमेचकं,
वपुर्वृषस्कन्धसुबन्धुरंसयोः।
प्रसन्नसिंहस्तिमितं च वीक्षितं
ध्वनिश्च मांगल्यमृदंगमांसलः।।25।।

(**अन्वय–** वृष–स्कन्ध–सुबन्धुर्–अंसयोः वपुः, कठोर–पारावत–कण्ठ–मेचकम्, वीक्षितम् प्रसन्न–सिंह–स्तिमितम् च, ध्वनिः च मांगल्य–मृदंग–मांसलः।।25।।)

(निपुणं निरूपयन्) अये, न केवलमस्मद्वंशसंवादिन्याकृतिः?

अपि जनकसुतायास्तच्च तच्चानुरूपं,
स्फुटमिह शिशुयुग्मे नैपुणोन्नेयमस्ति।
ननु पुनरिव तन्मे गोचरीभूतमक्ष्णो–
रभिनवशतपत्त्रश्रीमदास्यं प्रियायाः।।26।।

(**अन्वय–** अपि इह शिशु–युग्मे नैपुण–उन्नेयम्, तत् च तत् च जनक–सुतायाः अनुरूपम् स्फुटम् अस्ति, ननु अभिनव–शतत्पत्र–श्रीमत्–तत् प्रियायाः आस्यम्, पुनः मे अक्ष्णोः गोचरीभूतम् इव।।26।।)

मुक्ताच्छदन्तच्छविसुन्दरीयं, सैवोष्ठमुद्रा, स च कर्णपाशः।
नेत्रे पुनर्यद्यपि रक्तनीले तथापि सौभाग्यगुणः सः एव।।27।।

(**अन्वय–** मुक्ता–अच्छ–दन्त–छवि–सुन्दरी इयम्, ओष्ठ–मुद्रा सा एव, पुनः च कर्ण–पाशः सः, यद्यपि नेत्रे रक्त–नीले तथापि सौभाग्य–गुणः सः एव ।।27।।)

(विचिन्त्य) तदेतत्प्राचेतसाध्युषितमरण्यं, यत्र किल देवी परित्यक्ता। इयं चानयोराकृतिर्वयाऽनुभावश्च। यत्स्वतः प्रकाशान्यस्त्रा– णीति च, तत्रापि स्मरामि खलु तदपि चित्रदर्शनप्रासंगिकमस्त्राभ्यनुज्ञानं प्रबुद्धं स्यात्। न ह्यसंप्रदायिकान्यस्त्राणि पूर्वेषामपि शुश्रुमः। अयं विस्मयसंप्लव–मानसुखदुःखातिशयो हृदयस्य मे विप्रलम्भः। यमाविति च भूयिष्ठमा–त्मसंवादः। जीवद्वयापत्यचिह्नो हि देव्या गर्भिणीभाव आसीत्।

(सास्रम्)

सांड़ के कन्धों के समान, सुन्दर कन्धों वाले, इन दोनों कुमारों का शरीर, युवा कबूतर के कण्ठ जैसा श्यामवर्ण है। दृष्टि, प्रसन्न सिंह के समान, निश्चल है तथा शब्द मंगलसूचक मृदंग के समान गम्भीर है।।25।।

(ध्यानपूर्वक देखते हुए) अरे! केवल आकृति ही हमारे कुल के साथ समानता नहीं रखती है, अपितु

इन दोनों बालकों में, निपुणता से अनुमान करने योग्य, सीता की वे–वे समानताएँ पूर्णरूप से स्पष्ट हो रही हैं तथा निश्चय ही, नूतन कमल के समान शोभायुक्त, प्रियतमा सीता का वह मुख, फिर से मेरे नेत्रों के सामने प्रकट सा हो गया है।।26।।

श्वेत एवं स्वच्छ दाँतों की कान्ति से सुन्दर, यह ओष्ठों की मुद्रा, भी वही है और कर्णपाश भी वही है। यद्यपि नेत्र लाल और नीले हैं, फिर भी सौभाग्यरूपी गुण वही है।।27।।

(सोचकर) वाल्मीकि ऋषि द्वारा निवास किया गया, यह वही वन है, जहाँ पर सीता का परित्याग किया गया था और इन दोनों की यह जो आकृति, आयु तथा प्रभाव है एवं जो इन्हें जृम्भकास्त्र स्वतः ही प्रकाशित हुए हैं, उस विषय में भी मैं स्मरण कर रहा हूँ कि निश्चय ही, चित्रदर्शन के प्रसंग में शस्त्र प्रदान की वह अनुमति ही प्रदर्शित हो गयी है। पूर्व पुरुषों में भी गुरु के उपदेश के अभाव में ये जृम्भकास्त्र प्रकट नहीं हुए, ऐसा हमने सुना है। साथ ही, मेरे हृदय का यह वियोग सुख और दुःख के अतिरेक के आश्चर्य में डुबा देने वाला हो गया है तथा ये दोनों जुड़वाँ हैं, इस सम्बन्ध में भी बहुत कुछ संगति बैठ रही है, क्योंकि सीता का गर्भिणीभाव भी दो सन्तानों के चिह्नों से युक्त ही था।

(अश्रुपूर्वक)

परां कोटिं स्नेहे परिचयविकासादधिगते,
रहो विस्रब्धाया अपि सहजलज्जाजड़दृशः।
मयैवादौ ज्ञातः करतलपरामर्शकलया,
द्विधा गर्भग्रन्थिस्तदनु दिवसैः कैरपि तया।।28।।

(**अन्वय–** परिचय–विकासात् स्नेहे पराम् कोटिम् अधिगते, रहः विस्रब्धायाः अपि सहज–लज्जा–जड–दृशः, आदौ करतल–परामर्श–कलया मया एव द्विधा गर्भ–ग्रन्थिः ज्ञातः, तत् अनु कैः दिवसैः तया अपि (ज्ञातः)।।28।।)

(रुदित्वा) तत्किमेतौ पृच्छामि केनचिदुपायेन?

लवः– तात किमेतत्?

बाष्पवर्षेण नीतं वो जगन्मंगलमाननम्।
अवश्यायावसिक्तस्य, पुण्डरीकस्य चारुताम्।।29।।

(**अन्वय–** जगत्–मंगलम् वः आननम् बाष्प–वर्षेण अवश्याय–अव–सिक्तस्य पुण्डरीकस्य चारुताम् नीतम्।।29।।)

कुशः– अयि वत्स–

विना सीतादेव्याः किमिव हि न दुःखं रघुपतेः?
प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति।
स च स्नेहस्तावानयमपि वियोगो निरवधिः,
किमेवं त्वं पृच्छस्यनधिगतरामायण इव ?।।30।।

(**अन्वय–** सीता–देव्याः विना रघुपतेः किम् इव न हि दुःखम्? प्रिया–नाशे कृत्स्नम् जगत्–अरण्यम् हि भवति, सः च तावान् स्नेहः, अयम् अपि वियोगः, निरवधिः किल, अनधिगत–रामायणः इव, त्वम् एवम् किम् पृच्छसि?।।30।।)

रामः– (स्वगतम्) अये तटस्थ आलापः। कृतं प्रश्नेन। मुग्धहृदय! कोऽयमाकस्मिकस्ते संप्लवाधिकारः? एवं निर्भिन्नहृदयावेगः शिशुजनेनाप्यनुकम्पितोऽस्मि। भवतु तावदन्तरयामि (प्रकाशम्) वत्सौ! 'रामायणं रामायणमिति श्रूयते भगवतो वाल्मीकेः सरस्वतीनिष्यन्दः प्रशस्तिरादित्यवंशस्य' तत्कौतूहलेन यत्किंचिच्छ्रोतुमिच्छामि।

कुशः– कृत्स्न एव सन्दर्भोऽस्माभिरावृत्तः, स्मृतिप्रत्युपस्थितौ तावदिमौ बालचरितस्यासाते द्वौ श्लोकौ।

परिचय के विकास से प्रेम के अत्यधिक उत्कर्ष को प्राप्त होने पर, (एक दिन) एकान्त में विश्वासयुक्त होने पर भी, स्वाभाविक लज्जा के कारण, नेत्रों को बन्द करने वाली, सीता के उदर पर हाथ के सर्व प्रथम स्पर्श के चातुर्य से मैंने ही दो सन्तानों की गर्भ–ग्रन्थि को जाना था, उसके बाद, कुछ दिनों में उन्होंने भी इसे जान लिया था।।28।।

(रोकर) तब क्या इन दोनों से किसी उपाय द्वारा पूछता हूँ?

लव– तात! यह क्या है?

संसार के लिए मंगलस्वरूप आपका मुख, आँसुओं की वृष्टि द्वारा तुषार से सींचे गए, श्वेत कमल की सुन्दरता को प्राप्त करा दिया गया है।।29।।

कुश– अरे! वत्स,

सीता देवी के बिना श्रीराम को भला क्या दुःखदायी नहीं है? क्योंकि प्रियतमा के विनाश होने पर, सम्पूर्ण संसार ही जंगल हो जाता है और वह उतना प्रेम एवं यह वियोग भी तो अवधिशून्य ही है, फिर भी तुम रामायण को न पढ़े हुए के समान, इसप्रकार क्यों पूछ रहे हो?।।30।।

राम– (मन में) अरे! इसका कथन उदासीन (के समान) है। इसलिए प्रश्न करने से लाभ नहीं है। हे मूर्ख हृदय! इसप्रकार अकारण ही तुझे दूर जाने का क्या अधिकार है? इसप्रकार मानसिक क्षोभ के प्रदर्शित हो जाने से तो, मैं इन बालकों की भी दया का पात्र हो गया हूँ। ठीक है, तब तो इस विषय को छुपाता हूँ। (प्रकट में) वत्स! 'रामायण' ऐसा सुना जाता है, जो वस्तुतः भगवान् वाल्मीकि की वाणी के प्रवाह रूप में सूर्यवंश की वस्तुतः प्रशस्ति ही है। इसलिए मैं कौतूहल वश उसके कुछ अंश को सुनना चाहता हूँ।

कुश– हम लोगों ने तो इस सम्पूर्ण ग्रन्थ का ही अभ्यास किया है। सम्प्रति बालचरित के ये दो श्लोक स्मृतिपटल पर विद्यमान हैं।

रामः— उदीरयतं वत्सौ!

कुशः—

प्रिया तु सीता रामस्य दाराः पितृकृता इति।
गुणैर्रूपगुणैश्चापि प्रीतिर्भूयोऽप्यवर्धत।।31।।

(**अन्वय**— प्रिया सीता तु, रामस्य पितृ—कृता दाराः इति, गुणैः, रूपगुणैः च अपि प्रीतिः भूयः अपि अवर्धत।।31।।)

तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत्।
हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम्।।32।।

(**अन्वय**— तथा एव रामः सीतायाः प्राणेभ्यः अपि प्रियः अभवत्, तु हृदयम् एव परस्परम् प्रीति—योगम् जानाति ।।32।।)

रामः— कष्टमतिदारुणो हृदयमर्मोद्घातः। हा देवि! एवं किलैत—दासीत्। अहो!निरन्वयविपर्यासविप्रलम्भस्मृतिपर्यवसायिनस्तावकाः संसार—वृत्तान्ताः।

क्व तावानानन्दो निरतिशयविस्रम्भबहुलः?
क्व वान्योन्यप्रेम? क्व च नु गहनाः कौतुकरसाः?
सुखे वा दुःखे वा क्व नु खलु तदैक्यं हृदययोः?
तथाप्येष प्राणः स्फुरति, न तु पापो विरमति।।33।।

(**अन्वय**— निरतिशय—विस्रम्भ—बहुलः तावान् आनन्दः क्व? क्व वा अन्योन्य—प्रेम? गहनाः कौतुक—रसाः च क्व नु? सुखे वा, दुःखे वा, हृदययोः तत् ऐक्यम् क्व नु खलु ? तथा अपि पापः अप्राणः स्फुरति, न तु विरमति।।33।।)

भो कष्टम्!

प्रियागुणसहस्राणां क्रमोन्मीलनतत्परः।
य एव दुःसहः कालस्तमेव स्मारिता वयम्।।34।।

(**अन्वय**— प्रिया—गुण—सहस्राणाम् क्रम—उन्मीलन—तत्परः, यः एव दुःसहः कालः, वयम् एव तम् स्मारिताः।।34।।)

राम— तब तो हे बालकों! तुम उन्हें कहो।

कुश—

प्रिया सीता राम की पिता जनक द्वारा प्रदान की गयी, पत्नी थी। (दया दाक्षिण्य आदि आन्तरिक) **गुणों तथा** (सौन्दर्य आदि बाह्य) **गुणों से उनका प्रेम भी बहुत बढ़ा हुआ था।। 31।।**

उसीप्रकार राम भी सीता को प्राणों से भी अधिक प्रिय थे, क्योंकि हृदय ही तो आपस के प्रेम—सम्बन्ध को जानता है।।32।।

राम— कष्ट है, हृदय के मर्मस्थल पर होने वाला, यह प्रहार अत्यधिक कठोर है। हा देवि! निश्चय ही, यह वैसा ही था। ओह! तुम्हारे संसार के वृत्तान्त, आकस्मिक परिवर्तन के कारण, वियोग एवं स्मरण में बदलने वाले हैं।

अत्यधिक विश्वास से बढ़ा हुआ, उस परिमाण वाला, वह आनन्द कहाँ? अथवा वह परस्पर प्रेम कहाँ? गहन क्रीड़ाओं के वे अनुराग कहाँ? सुख में या दुःख में दोनों हृदयों की वह एकता कहाँ? किन्तु फिर भी पापी ये प्राण चल ही रहे हैं, रुक तो नहीं रहे हैं।।33।।

अरे! (अत्यधिक) **कष्ट है,**

प्रियतमा सीता के हजारों (दया दाक्षिण्यादि) **गुणों को क्रमशः प्रकाशित करने वाला, जो समय है, हमें उसी की स्मृतियों को करा दिया गया है।।34।।**

कुश ने यहाँ पर आदिकवि वाल्मीकि द्वारा विरचित रामायण के केवल दो ही श्लोकों को प्रस्तुत किया है, जिनमें सीता के प्रति श्रीराम के तथा उनके प्रति सीता के अनन्य प्रेम को उद्घाटित किया गया है, जिससे उनके हृदय में विद्यमान सीता—वियोग विषयक पीड़ा को प्रदर्शित होने का अवसर मिला है। साथ ही, सीता के आन्तरिक तथा बाह्य गुणों की चर्चा करके, उनके चरित्र के उज्ज्वल पक्ष को भी प्रस्तुत किया गया है, जिसके कारण राम आज भी उनके प्रशंसक हैं तथा उन्हें हृदय से प्रेम करते हैं।

तदा किंचित्किंचित्कृतपदमहोभिः कतिपयै–

स्तदीषद्विस्तारि स्तनमुकुलमासीन्मृगदृशः।

वयः स्नेहाकूतव्यतिकरघनो यत्र मदनः,

प्रगल्भव्यापारः स्फुरति हृदि, मुग्धश्च वपुषि।।35।।

(**अन्वय–** यत्र वयः स्नेह–आकूत–व्यतिकर–घनः मदनः हृदि, प्रगल्भ–व्यापारः वपुषि च, मुग्धः स्फुरति, तदा च मुग्धः स्फुरति किंचित् –किंचित्–कृत–पदम् मृग–दृशः, तत् स्तन–मुकुलम् कतिपयैः अहोभिः ईषत् विस्तारि आसीत् ।।35।।)

लवः– अयं तु चित्रकूटवर्त्मनि मन्दाकिनीविहारे सीतादेवीमुद्दिश्य रघुपतेः श्लोकः।

त्वदर्थमिव विन्यस्तः, शिलापट्टोऽयमायतः।

यस्यायमभितः पुष्पैः, प्रवृष्ट इव केसरः।।36।।

(**अन्वय–** अयम् आयतः शिलापट्टः, त्वत् अर्थम् इव विन्यस्तः, यस्य अभितः अयम् केसरः पुष्पैः प्रवृष्टः इव ।।36।।)

रामः–(सलज्जास्मितस्नेहकरुणम्) अति हि नाम मुग्धः शिशुजनः विशेषतस्त्वरण्यचरः हा देवि! स्मरति वा तस्य तत्समयविस्रम्भाति–प्रसंगस्य?

श्रमाम्बुशिशिरीभवत् सृतमन्दमन्दाकिनी,

मरुत्तरलितालकाकुलललाटचन्द्रद्युति।

अकुङ्कुमकलंकितोज्ज्वलकपोलमुत्प्रेक्ष्यते,

निराभरणसुन्दरश्रवणपाशमुग्धं मुखम्।।37।।

(**अन्वय–** श्रम–अम्बु–शिशिरी–भवत्–सृत–मन्द–मन्दाकिनी–मरुत् –तरलि–तालक–आकुल–ललाट–चन्द्र–द्युतिः अकुङ्कुम–कलंकित–उज्ज्वल–कपोलम् निर्–आभरण–सुन्दर–श्रवण–पाश–मुग्धम् मुखम् उत्प्रेक्ष्यते।।37।।)

(स्तम्भित इव स्थित्वा, सकरुणम) अहो न खलु भोः,

जिस समय युवावस्था में प्रेम, आपस की अभिलाषा के सान्निध्य से संसर्ग द्वारा प्रगाढ़, हृदय में प्रौढ़ व्यापार वाला होकर, शरीर में मुग्धरूप में स्फुरित होता है। उस अवसर पर अपना थोड़ा–थोड़ा स्थान बनाने वाले, मृग के समान नेत्रों वाली सीता के वे स्तन, कली के समान मनोरम, कुछ ही दिनों में विस्तार को प्राप्त हो गए थे।।35।।

लव– यह तो वस्तुतः चित्रकूट के मार्ग में गंगा विहार के अवसर पर देवी सीता को लक्ष्य करके, (कहा गया) रघुनाथ का श्लोक है–

यह विस्तृत शिलापट्ट मानो तुम्हारे लिए ही स्थापित किया गया है, जिसके चारों ओर यह बकुल का वृक्ष, मानों पुष्पों से वृष्टि कर रहा है।।36।।

राम– (लज्जा, स्मित, स्नेह तथा करुणापूर्वक) शिशुजन वस्तुतः अत्यधिक सौम्य स्वभाव वाले होते हैं, उनमें भी विशेषरूप से वन में विचरण करने वाले। हे देवि सीते! उस समय विश्वास के कारण, जो विशेष घटना हुई थी, क्या तुम उसे याद करती हो?

जो परिश्रम के जल से शीतल सा हो रहा है एवं मन्द–मन्द प्रवाहित होते हुए, मन्दाकिनी की वायु से चंचल अलकों द्वारा, जिसके ललाटरूपी चन्द्रमा की शोभा को ढ़का जा रहा है, केसर के लेप न होने पर भी, जिसके कपोल चमक रहे हैं, आभूषणों के अभाव में भी सुन्दर कर्णपाशों से मनोरम, तुम्हारे उस मुख को मैं मानो प्रत्यक्ष सा देख रहा हूँ।।37।।

(स्तम्भित के समान स्थित होकर, करुणापूर्वक) अहो, अरे! भला क्या हो सकता है?

महाकवि का मर्यादित श्रृंगार दर्शनीय है। भवभूति वस्तुतः कालिदास के समान उन्मुक्त श्रृंगार–चित्रण के पक्षपाती नहीं है। इसीलिए उन्होंने करुणरस प्रधान प्रस्तुत कृति में कुछ ही स्थलों पर अंगरूप में श्रृंगार का चित्रण करते हुए, उचित मर्यादा का पालन किया है, जो उनके व्यक्तित्व को भी प्रदर्शित करने वाला है। उपर्युक्त अंश से कवि की उक्त मान्यता की पुष्टि होती है।

चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निहित इव निर्माय पुरतः,
प्रवासे चाश्वासं न खलु न करोति प्रियजनः।
जगज्जीर्णारण्यं भवति च कलत्रे ह्युपरते,
कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव।।38।।

(अन्वय– प्रवासे च चिरम् ध्यात्वा ध्यात्वा, निर्माय पुरतः निहितः इव, प्रियजनः आश्वासम् न करोति, इति न खलु। कलत्रे हि उपरते जगत् जीर्ण–अरण्यम् हि भवति, तदनु च हृदयम् कुकूलानाम् राशौ पच्यते इव।।38।।)

(नेपथ्ये)

वसिष्ठो वाल्मीकिर्दशरथमहिष्योऽथ जनकः,
सहैवारुन्धत्या शिशुकलहमाकर्ण्य सभयाः।
जराग्रस्तैर्गात्रैरथ खलु सुदूराश्रमतया,
चिरेणागच्छन्ति त्वरितमनसो विश्लथजटाः।।39।।

(अन्वय– अरुन्धत्या सह एव वसिष्ठः, वाल्मीकिः दशरथ–महिष्यः, अथ जनकः, शिशु–कलहम् आकर्ण्य, सभयाः, त्वरित–मनसः विश्लथ–जटाः (सन्तः), अथ सुदूर–आश्रमतया जरा–ग्रस्तैः गात्रैः चिरेण आ–गच्छन्ति खलु ।।39।।)

रामः– कथं भगवत्यरुन्धती? वसिष्ठोऽम्बाश्च जनकश्चात्रैव? कथं खलु ते द्रष्टव्याः? (सकरुणं विलोक्य) तातजनकोऽप्यत्रैवायात इति वज्रेणैव ताडितोऽस्मि मन्दभाग्यः।

सम्बन्धस्पृहणीयताप्रमुदितैर्ज्येष्ठैर्वसिष्ठादिभि–
र्दृष्ट्वापत्यविवाहमंगलविधौ तत्तातयोः संगमम्।
पश्यन्नीदृशमीदृशः पितृसखं वृत्ते महावैशसे,
दीर्ये किं न सहस्रधाहमथवा रामेण किं दुष्करम्।।40।।

(अन्वय– सम्बन्ध–स्पृहणीयता–प्रमुदितैः, ज्येष्ठैः वसिष्ठ–आदिभिः, अपत्य–विवाह–मंगल–विधौ तत् तातयोः संगमम् दृष्ट्वा, महा–वैशसे वृत्ते ईदृशम् पितृ–सखम् पश्यन्, ईदृशः अहम् सहस्रधा किम् न दीर्ये अथवा रामेण किम् दुष्करम्?।।40।।)

प्रवासकाल में भी लम्बे समय तक बार–बार ध्यान करके, कल्पना से उसकी रचना करके, अपने सामने उपस्थित हुआ सा किए जाने पर, प्रियजन, प्रेमी को सान्त्वना न देता हो, ऐसी बात नहीं है, (अपितु देता ही है) किन्तु स्त्री के मर जाने पर तो सम्पूर्ण संसार ही अरण्य हो जाता है और उसके बाद हृदय मानो 'तुष' की अग्नि के समूह पर पकता रहता है।।38।।

(नेपथ्य में)

अरुन्धती के साथ ही वसिष्ठ, महर्षि वाल्मीकि, महाराज दशरथ की महारानियाँ तथा जनक, (ये सभी) बालकों के युद्ध के विषय में सुनकर, भय से युक्त तथा शीघ्रतायुक्त चित्त वाले, शिथिल जटा वाले, आश्रम से दूर होने के कारण, वृद्धावस्था से पीड़ित अंगों के कारण, अत्यधिक विलम्ब से आ रहे हैं।।39।।

राम– क्या भगवती अरुन्धती, महर्षि वसिष्ठ, माताएँ तथा जनक भी यहीं पर हैं? मैं उन लोगों का दर्शन भला कैसे कर सकता हूँ?

(करुणापूर्वक देखकर)

पिता जनक भी यहीं पर आ गए हैं, इसलिए मन्दभाग्य मैं वज्र से आहत के समान हो गया हूँ।

सम्बन्ध की प्रशंसनीय स्थिति होने से अत्यधिक प्रसन्न, वसिष्ठ आदि श्रेष्ठ ऋषियों द्वारा अनुष्ठान कराए गए, सन्तानों के विवाह की मांगलिक विधि में, उनके पितृजनों का मिलना देखकर, इसप्रकार की महान् हिंसा के होने पर, इसप्रकार के पिता के मित्र को, इस प्रकार से देखता हुआ मैं, हजारों टुकड़ों में विदीर्ण क्यों नहीं हो रहा हूँ? अथवा राम द्वारा भला क्या दुष्कर नहीं है? ।।40।।

प्रस्तुत अंश में कवि ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को उद्घाटित किया है कि कल्पना द्वारा व्यक्ति किसी भी वस्तु या व्यक्ति के चित्र को साक्षात्रूप से अपने समक्ष स्थापित करने में समर्थ है, वह उस चित्र से बात कर सकता है, उसके स्पर्श का आनन्द भी कल्पनाओं में ही उठाने में समर्थ होता है। ऐसा करके वह अपनी उस वस्तु या व्यक्ति विषयक वेदना को, पीड़ा को कुछ सीमा तक कम कर सकता है। यह अंश महाकवि के अपने जीवन का अनुभव भी प्रतीत हो रहा है।

(नेपथ्ये)

भो भोः! कष्टम्।

अनुभावमात्रसमवस्थितश्रियं सहसैव वीक्ष्य रघुनाथमीदृशम्।

प्रथमप्रबुद्धजनकप्रबोधिता, विधुराः प्रमोहमुपयान्ति मातरः।।41

(**अन्वय–** अनुभाव–मात्र–सम्–अवस्थित–श्रियम्, ईदृशम् रघुनाथम्, सहसा एव वीक्ष्य, प्रथम–प्रबुद्ध–जनक–प्रबोधिताः मातरः विधुराः प्र–मोहम् उपयान्ति ।।41।।)

रामः–

जनकानां रघूणां च, यत्कृत्स्नं गोत्रमंगलम्।

तत्राप्यकरुणे पापे, वृथा वः करुणा मयि।।42।।

(**अन्वय–** जनकानाम् रघूणाम् च, यत् कृत्स्नम् गोत्र–मंगलम्, तत्र अपि अकरुणे पापे, मयि वः करुणा वृथा।।42।।)

यावत्संभावयामि।

(इत्युत्तिष्ठति)

कुशलवौ– इत इतस्तातः।

(सकरुणं परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे)

।। इति महाकवि भवभूति विरचित उत्तररामचरिते 'कुमारप्रत्यभिज्ञानो' नाम षष्ठोऽङ्कः।।

(नेपथ्य में)

अरे! रे, अत्यधिक कष्ट है,

प्रभाव मात्र से शोभायुक्त, इसप्रकार के राम को, अकस्मात् ही देखकर, पहले होश में आए हुए जनक द्वारा, होश में लायी गयी, माताएँ व्याकुल होकर, अत्यधिक मूर्च्छा को प्राप्त हो रही हैं।।41।।

राम–

जनक वंश तथा रघुकुल के राजाओं की, जो सीता सम्पूर्णरूप से इन दोनों ही कुलों की कल्याण स्वरूप थी, उसके ऊपर निर्दय तथा पाप से युक्त होने वाले, मुझ राम के ऊपर आप लोगों की अनुकम्पा व्यर्थ है।।42।।

जब तक मैं इन लोगों का सत्कार करता हूँ।

(ऐसा कहकर उठते हैं)

कुश औरलव– तात! इधर से, इधर से।

(करुणापूर्वक परिक्रमा करके सभी निकल जाते हैं)

।। इसप्रकार महाकवि भवभूति विरचित उत्तररामचरित में 'कुमार प्रत्यभिज्ञान' नामक षष्ठ अंक का डॉ. राकेश शास्त्री, बाँसवाड़ा द्वारा किया हुआ हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ।।

।। श्रीः ।।

सप्तमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति लक्ष्मणः)

लक्ष्मणः– भोः, किं नु खलु भगवता वाल्मीकिना सब्रह्मक्षत्र–पौरजानपदाः प्रजा सहाऽस्माभिराहूय कृत्स्न एव सदेवासुरतिर्यङ्निकायः सचराचरो भूतग्रामः स्वप्रभावेण संनिधापितः? आदिष्टश्चाहमार्येण–

'वत्स लक्ष्मण! भगवता वाल्मीकिना स्वकृतिमप्सरोभिः प्रयुज्यमानां द्रष्टुमुपनिमन्त्रिताः स्म। तद् गंगातीरमातोद्यस्थानमुपगम्य क्रियतां समाज–सन्निवेशः' इति। कृतश्च मर्त्यामर्त्यस्य भूतग्रामस्य समुचितस्थान–सन्निवेशो मया। अयं तु–

राज्याश्रमनिवासोऽपि प्राप्तकष्टमुनिव्रतः।
वाल्मीकिगौरवादयं, इत एवाभिवर्तते।।1।।

(अन्वय– राज्य–आश्रम–निवासः अपि प्राप्त–कष्ट–मुनि–व्रतः, वाल्मीकि–गौरवात् अयम् इत एव अभिवर्तते।।1।।)

(ततः प्रविशति रामः)

रामः– वत्स लक्ष्मण! अपि स्थिता रंगप्राश्निकाः?

लक्ष्मणः– अथ किम्?

रामः– इमौ पुनर्वत्सौ कुमारचन्द्रकेतुसमां प्रतिपत्तिं लम्भयितव्यौ।

लक्ष्मणः– प्रभुस्नेहप्रत्ययात्तथैव कृतम्। इदं चास्तीर्णं राजासनम्। तदुपविशत्वार्यः।

रामः– (उपविश्य) प्रस्तूयतां भोः।

सप्तम अङ्क

(उसके बाद लक्ष्मण प्रवेश करता है)

लक्ष्मण– अरे! भगवान् वाल्मीकि ने हम लोगों के साथ, ब्राह्मण, क्षत्रिय, नगर एवं ग्रामवासी, लोगों सहित प्रजाओं को बुलाकर, सभी देव, दैत्य तथा नाग आदि सहित, स्थावर, जंगम समस्त प्राणिसमुदाय को अपने प्रभाव से किसप्रकार एकत्र कर लिया है? इसके अलावा आर्य श्रीराम ने मुझे आज्ञा प्रदान की है कि–

'वत्स! लक्ष्मण, भगवान् वाल्मीकि ने अप्सराओं द्वारा अभिनय की जाने वाली, अपनी नाट्यकृति को देखने के लिए, हम सभी को आमन्त्रित किया है। इसलिए चार प्रकार के वाद्ययन्त्रों (आतोद्य) के साथ, गंगा के तट पर (रंगशाला में) जाकर समाज के बैठने के उचित स्थान का प्रबन्ध करो।' मैंने भी मनुष्यों, देवों आदि प्राणिसमूह का समुचित स्थान निर्धारित कर दिया है। ये तो,

राज्यरूपी आश्रम में निवास करते हुए, मुनियों के समान कठोर व्रत का पालन करने वाले, आर्य वाल्मीकि के प्रति श्रद्धा होने के कारण इधर ही आ रहे हैं।।1।।

(उसके बाद राम प्रवेश करते हैं)

राम– वत्स! लक्ष्मण, क्या रंगशाला में सामाजिक लोग ठीक से बैठ गए हैं?

लक्ष्मण– और क्या?

राम– इन दोनों वत्सों को भी कुमार चन्द्रकेतु के समान ही सम्मानित किया जाना चाहिए।

लक्ष्मण– प्रभु के प्रेम को दृष्टिगत रखते हुए, वैसा ही किया है। यह राजसिंहासन बिछा हुआ है, आर्य इसपर विराजमान होवें।

राम– (बैठकर) अरे! प्रारम्भ करो।

सूत्रधारः– (प्रविश्य) भगवान्भूतार्थवादी प्राचेतसः स्थावरजंगमं जगदाज्ञापयति– यदिदमस्माभिरार्षेण चक्षुषा समुद्वीक्ष्य पावनं वचनामृतं करुणाद्भुतरसं च किंचिदुपनिबद्धम्। तत्र काव्यगौरवादवधातव्यम् इति।

रामः– एतदुक्तं भवति– साक्षात्कृतधर्माणो महर्षयः। तेषामृत-म्भराणि भगवतां परोरजांसि प्रज्ञानानि न क्वाचिद्व्याहन्यन्त इति न हि शङ्कनीयानि।

(नेपथ्ये)

हा आर्यपुत्र! कुमारलक्ष्मण! एकाकिनीमशरणामासन्नप्रसववेदना मरण्ये हताशां श्वापदा अभिलषन्ति। हा, इदानीं मन्दभाग्या भागीरथ्या-मात्मानं निक्षिपामि।[1]

लक्ष्मणः– कष्टं बतान्यदेव किमपि।

सूत्रधारः–

विश्वंभरात्मजा देवी, राज्ञा त्यक्ता महावने।
प्राप्तप्रसवमात्मानं, गंगादेव्यां विमुंचति।।2।।

(अन्वय– राज्ञा महावने त्यक्ता, विश्वंभरा–आत्मजा, देवी, प्राप्त–प्रसवम् आत्मानम् गंगा–देव्याम् विमुंचति।।2।।)

(इति निष्क्रान्तः)

प्रस्तावना

रामः– (सावेगम्) देवि! देवि! लक्ष्मणमवेक्षस्व।

लक्ष्मणः– आर्य! नाटकमिदम्।

रामः– हा देवि दण्डकारण्यवासप्रियसखि! एष ते रामाद्विपाकः।

लक्ष्मणः– आर्य! आश्वस्य दृश्यताम्। प्रबन्धस्त्वार्षः।

रामः– एष सज्जोऽस्मि वज्रमयः।

(ततः प्रविशति उत्संगितैकैकदारकाभ्यां पृथिवीगंगाभ्यामलम्बिता प्रमुग्धा सीता)

---

[1]. हा अज्जउत्त! हा कुमार लक्खण! एआइणिं असरणं आसण्णप्पसववेअणं अरण्णे हदासं सावदा अहिलसन्दि। हा दाणिं मन्दभाईणी भईरईए अत्ताणं णिक्खिविस्साम्।

सूत्रधार– (प्रवेश करके) सत्य वचनों का प्रयोग करने वाले, भगवान् वाल्मीकि सम्पूर्ण चराचर जगत् को आज्ञा प्रदान करते हैं कि– हमारे द्वारा जो आर्ष दृष्टि से देखकर, पवित्र तथा अमृत के समान वचनों से युक्त एवं करुण और अद्भुत रस वाला, कुछ बनाया गया है, उसके काव्यगौरव की ओर आपको ध्यान देना चाहिए।

राम– यह कहा जाता है कि महर्षि लोग धर्म का साक्षात्कार करने वाले होते हैं। उन ऐश्वर्य से युक्त, ऋषियों के सत्य से युक्त, रजस् से सर्वथा रहित, विज्ञान कभी भी कुण्ठित नहीं होते हैं, इसलिए निश्चय ही वे शंका के योग्य नहीं हैं।

(नेपथ्य में)

हाय, आर्यपुत्र! कुमार लक्ष्मण! रक्षक से रहित, अकेली, आसन्न प्रसववेदना से युक्त, वन में आशा से पूर्णतया रहित, मुझे जंगली जानवर खाने की इच्छा कर रहे हैं। हाय, मन्दभाग्य वाली मैं तो इस समय अपने को गंगा में डाल रही हूँ।

लक्ष्मण–कष्ट है, यह तो कुछ और ही है।

सूत्रधार–

राजा राम द्वारा विशाल वन में त्याग दी गयी, पृथ्वी की पुत्री, महारानी सीता, प्रसव वेदना के होने से अपने को गंगा देवी (के जलप्रवाह) **में डाल रही हैं।।2।।**

(ऐसा कहकर निकल जाता है)

।।प्रस्तावना।।

राम– (आवेगपूर्वक) देवि! देवि! लक्ष्मण को देखो।

लक्ष्मण– आर्य! यह तो नाटक है।

राम– हाय, देवि! दण्डक वन में निवास करने वाली, प्रिय सखि! राम द्वारा तुम्हारा यह परिणाम किया गया है।

लक्ष्मण– आर्य, धैर्य रखकर अवलोकन करें, यह तो ऋषि की रचना है।

राम– यह मैं वज्रमय होकर तैयार हूँ।

(उसके बाद, एक–एक बालक को गोद में लिए हुए, पृथ्वी और गंगा द्वारा अवलम्ब दी गयी, मूर्च्छावस्था में सीता प्रवेश करती है)

रामः— वत्स! असंविज्ञातपदनिबन्धने तमसीवाहमद्य प्रविशामि, धारय माम्।

देव्यौ—

समाश्वसिहि कल्याणि! दिष्ट्या वैदेहि वर्धसे।
अन्तर्जले प्रसूतासि, रघुवंशधरौ सुतौ।।3।।

(**अन्वय**— कल्याणि! वैदेहि! समाश्वसिहि, दिष्ट्या वर्धसे, अन्तर्जले रघुवंश–धरौ सुतौ प्रसूता असि।।3।।)

सीता— (आश्वस्य) दिष्ट्या दारकौ प्रसूतास्मि। हा आर्यपुत्र।[1]

लक्ष्मणः— (पादयोर्निपत्य) आर्य! दिष्ट्या वर्धामहे। कल्याणप्ररोहो रघुवंशः। (विलोक्य) हा कथं क्षुभितबाष्पोत्पीडनिर्भरः प्रमुग्ध एवार्यः?

(वीजयति)

देव्यौ— वत्से! समाश्वसिहि।

सीता— (समाश्वस्य) भगवत्यौ! के युवाम्? मुंचतम्।[2]

पृथिवी— इयं ते श्वशुरकुलदेवता भागीरथी।

सीता— नमस्ते भगवति![3]

भागीरथी— चारित्रोचितां कल्याणसंपदमधिगच्छ।

लक्ष्मणः— अनुगृहीताः स्मः।

भागीरथी— इयं ते जननी विश्वंभरा।

सीता— हा अम्ब! ईदश्यहं त्वया दृष्टा?[4]

पृथिवी— एहि पुत्रि वत्से सीते?

(उभे आलिंगय मूर्च्छतः)

लक्ष्मणः— (सहर्षम्) कथमार्या गंगापृथिवीभ्यामभ्युपपन्ना?

रामः— दिष्ट्या खल्वेतत्। करुणानन्तरं तु वर्तते।

---

1. दिट्ठआदारए पसूदह्मि! हा अज्जउत्त!
2. भअवदीओ! का तुह्मे? मुंचह।
3. णमो दे भअवदि!
4. हा अम्ब! ईरिसी अहं तुए दिट्ठा?

राम— वत्स! मैं आज अज्ञात स्थान एवं सम्बन्ध वाले, अन्धकार में प्रवेश सा कर रहा हूँ, मुझे सम्भालो।

दोनों देवियाँ— हे कल्याणि! वैदेहि! धैर्य धारण करो, सौभाग्य से तुम वृद्धि को प्राप्त हो रही हो, तुमने जल के भीतर रघुवंश को धारण करने वाले, दो पुत्रों को जन्म दिया है।।3।।

सीता— (आश्वस्त होकर) सौभाग्य से मैंने दो पुत्रों को जन्म दिया है। हाय, आर्यपुत्र!।

लक्ष्मण—(चरणों में गिरकर) आर्य! सौभाग्य से हम लोग बढ़ रहे हैं। रघुवंश कल्याणमय अंकुर वाला हो गया है। (देखकर) हाय, बढ़े हुए (क्षुभित) अश्रुओं की बाढ़ के कारण आर्य मूर्च्छित हो गए हैं।

(पंखे से हवा करता है)

दोनों देवियाँ— पुत्री! धैर्य धारण करो।

सीता— (आश्वस्त होकर) भगवति! आप दोनों कौन हैं? मुझे छोड़िए।

पृथ्वी— ये तुम्हारे श्वसुर–कुल की देवता भगवती भागीरथी हैं।

सीता— भगवती आपको नमस्कार है।

भागीरथी— चरित्र के योग्य कल्याण प्रदान करने वाली, सम्पत्ति को प्राप्त करो।

लक्ष्मण— हम लोग अनुगृहीत हुए।

भागीरथी— ये तुम्हारी माता विश्वंभरा हैं।

सीता— हाय, अम्बा! तुम्हारे द्वारा मैं ऐसी दशा में देखी गयी हूँ?

पृथ्वी— पुत्रि, वत्से, सीते, आओ।

(दोनों आलिंगन करके मूर्च्छित हो जाती हैं)

लक्ष्मण—(प्रसन्नतापूर्वक) आर्या, गंगा और पृथ्वी द्वारा भला किस प्रकार अनुगृहीत हुई हैं?

राम— निश्चय ही, यह सौभाग्य की बात है (कि माता और पुत्री का मिलन हो रहा है) जबकि यह अत्यधिक कारुणिक दृश्य भी है।

भागीरथी– अत्रभवती विश्वंभरा व्यथत इति जितमपत्यस्नेहेन। यद्वा सर्वसाधारणो ह्येष मनसो गूढग्रन्थिरान्तरश्चेतनावतामुपप्लवः संसारतन्तुः। सखि भूतधात्रि! वत्से वैदेहि! समाश्वसिहि।

पृथिवी– (आश्वस्य) देवि! सीतां प्रसूय कथमाश्वसिमि?

सोढश्चिरं राक्षसमध्यवास स्त्यागो
द्वितीयस्तु सुदुःसहोऽस्याः।

भागीरथी–

को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तु–
र्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे?।।4।।

(**अन्वय– पृथिवी–** अस्याः चिरम् राक्षसम् अध्यवासः सोढः, द्वितीयः त्यागः तु सु–दुःसहः, **गंगा–** कः नाम जन्तुः, पाक–अभिमुखस्य दैवस्य द्वाराणि पिधातुम् ईष्टे?।।4।।)

पृथिवी– भगवति भागीरथि! युक्तमेतत्सर्वं वो रामभद्रस्य?

न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये, बालेन पीडितः?
नाहं न जनको नाग्निर्न तु वृत्तिर्न सन्ततिः।।5।।

(**अन्वय–** बाल्ये बालेन पीडितः पाणिः न प्रमाणी–कृतः? न अहम्, न जनकः, न अग्निः, न तु वृत्तिः, न सन्ततिः।।5।।)

सीता– हा आर्यपुत्र! स्मरसि?[1]

पृथ्वी– आः, कस्तवार्यपुत्रः?

सीता– (सलज्जास्रम्) यथाम्बा भणति।[2]

रामः– अम्ब पृथिवि! ईदृशोऽस्मि?

भागीरथी– भगवति वसुन्धरे! शरीरमसि संसारस्य। तत्किम–संविदानेव जामात्रे कुप्यसि?

घोरं लोके विततमयशो या च वह्नौ विशुद्धि–
लंकाद्वीपे कथमिव जनस्तामिह श्रद्दधातु?
इक्ष्वाकूणां कुलधनमिदं यत्समाराधनीयः,
कृत्स्नो लोकस्तदिह विषये किं स वत्सः करोतु।।6।।

---

1 . हा अज्जउत्त! सुमरेसि?

2 . जह अम्बा भणादि।

भागीरथी– सम्पूर्ण विश्व को धारण करने वाली (विश्वंभरा) भी दुःखी हो रही हैं, इस कारण निश्चय ही सन्तान के स्नेह की विजय हुई है अथवा सन्तान का यह प्रेम सभी में सामान्यरूप से रहने वाला, मन का मोह बन्धनरूप प्राणियों के आन्तरिक चंचलता का कारण एवं संसार का तन्तुरूप है। प्राणियों को धारण करने वाली, सखि, वसुन्धरे! पुत्रि सीते! धैर्य धारण करो।

पृथ्वी– (आश्वस्त होकर) देवि! सीता को उत्पन्न करके, भला मैं कैसे धैर्य धारण कर सकती हूँ?

मैंने इस सीता का राक्षसों के बीच में बहुत समय तक रहना सहन किया, किन्तु पति द्वारा किया हुआ यह दूसरा परित्याग तो अत्यधिक असह्य हो रहा है।

भागीरथी– (इस संसार में) **भला कौन प्राणी है, जो फल देने के लिए तत्पर भाग्य के द्वारों को बन्द करने में समर्थ हो सकता है?।।4।।**

पृथ्वी– हे भगवति, भागीरथि! यह सब कुछ करना, (क्या) आपके राम के लिए भी उचित है?

इस बालक ने बाल्यावस्था में स्वीकार किए गए, पाणिग्रहण को भी प्रमाण नहीं माना और न ही मुझे, न जनक को, न अग्नि को तथा न ही (सीता के) **पातिव्रत्व को, न सन्तान को ही प्रमाणरूप में स्वीकार किया।।5।।**

सीता– हाय, आर्यपुत्र! क्या आप मेरा स्मरण कर रहे हैं?

पृथ्वी– अरे! तुम्हारा कौन आर्यपुत्र है?

सीता– (लज्जा एवं अश्रुपूर्वक) जैसा माता कहती हैं।

राम– हे माता पृथिवी! (वास्तव में) मैं ऐसा ही हूँ।

भागीरथी– हे भगवति, वसुन्धरे! आप तो संसार की शरीर हैं। इसलिए भला क्यों अनजान सी होकर, अपने जामाता पर कुपित हो रही हैं?

संसार में भयंकर अपयश फैल गया था, जो लंका में अग्नि द्वारा निर्दोषता सिद्ध हुई, उसपर यहाँ के लोग भला कैसे विश्वास करें? इक्ष्वाकुवंश के राजाओं का यह वंश परम्परा से आया हुआ धन है कि

(**अन्वय**– लोके घोरम् अयशः विततम्, या च लंका–द्वीपे वह्नौ विशुद्धिः, जनः ताम् इह कथम् इव श्रद्दधातु? इदम् इक्ष्वाकूणाम् कुल–धनम् यत् कृत्स्नः लोकः सम्–आराधनीयः, तत् इह विषये सः वत्सः किम् करोतु।।6।।)

लक्ष्मणः– अव्याहतान्तःप्रकाशा हि देवताः सत्त्वेषु।

भागीरथी– तथाप्येष तेऽञ्जलिः।

रामः– अम्ब! अनुवृत्तस्त्वया भगीरथकुले प्रसादः।

पृथिवी– नित्यं प्रसन्नास्मि तव। किंत्वसावापातदुःसहः स्नेहसंवेगः न पुनर्न जानामि सीतास्नेहं रामभद्रस्य?

दह्यमानेन मनसा दैवाद्वत्सां विहाय सः।
लोकोत्तरेण सत्त्वेन, प्रजापुण्यैश्च जीवति।।7।।

(**अन्वय**– सः दैवात् दह्यमानेन मनसा, वत्साम् विहाय लोकोत्तरेण सत्त्वेन, प्रजा–पुण्यैः च जीवति।।7।।)

रामः– सकरुणा हि गुरवो गर्भरूपेषु।

सीता– (रुदती कृतांजलिः) नयतु मामात्मनोऽगेषु विलयमम्बा।[1]

भागीरथी– किं ब्रवीषि? अविलीना वत्से। संवत्सरसहस्राणि भूयाः।

पृथिवी– वत्स! अवेक्षणीयौ ते पुत्रौ।

सीता– किमेताभ्यामनाथाभ्याम्?[2]

रामः– हृदय! वज्रमसि।

भागीरथी– कथं वत्सौ सनाथावप्यनाथौ।

सीता– कीदृशं मे अभाग्याया सनाथत्वम?[3]

देव्यौ–

जगन्मंगलमात्मानं, कथं त्वमवमन्यसे?
आवयोरपि यत्संगात्पवित्रत्वं प्रकृष्यते।।8।।

(**अन्वय**– त्वम् जगत्–मंगलम् आत्मानम् कथम् अवमन्यसे? यत् संगात् आवयोः अपि पवित्रत्वम् प्रकृष्यते।।8।।)

---

1. णेदु मं अत्तणो अंगेषु विलअं अम्बा।
2. किं एहिं अणाहेहि?
3. कीरिसं मे अभग्गाए सणाहत्तणम्?

सभी प्रजाजनों की आराधना करनी चाहिए। अतः इसप्रकार की परिस्थिति में वत्स राम भला क्या करें?।।6।।

लक्ष्मण– देवता वस्तुतः प्राणियों के अन्तःकरण को जानने में अप्रतिहत सामर्थ्य से युक्त होते हैं।

भागीरथी– फिर भी आपको यह प्रणामांजलि है।

राम– हे माते! भगीरथ के कुल में आपने, अपने अनुग्रह का पालन किया है।

पृथ्वी– मैं तो तुमसे हमेशा ही प्रसन्न हूँ, किन्तु स्नेह का आवेग आरम्भ में कठिनाई से सम्भाला जाता है। मैं सीता के प्रति श्रीराम के स्नेह को नहीं जानती हूँ? ऐसा नहीं है। (निश्चय ही जानती हूँ).

वह राम तो भाग्यवश दग्ध होते हुए चित्त से, सीता का परित्याग करके, अलौकिक धैर्य तथा प्रजा के पुण्यों से ही जीवित है।।7।।

राम– निश्चय ही, गुरुजन अपने बच्चों पर दयालु होते हैं।

सीता– (रोते हुए हाथ जोड़कर) हे माते! मुझे अपने अंगों में विलीन कर लीजिए।

भागीरथी– **क्या कह रही हो? पुत्रि! हजारों वर्षों तक जीवित रहो।**

पृथ्वी– पुत्रि! तुम्हें अपने पुत्रों की देखभाल करनी चाहिए।

सीता– इन दोनों अनाथ बालकों से क्या?

राम– हे हृदय! तू (वस्तुतः) वज्र है।

भागीरथी– पुत्रों के रक्षक के होते हुए भी, तुम इन्हें अनाथ क्यों कह रही हो?

सीता– मुझ मन्दभागिनी की सनाथता भला कैसी?

दोनों देवियाँ–

विश्व की कल्याण स्वरूपा तुम, अपने आपको तिरस्कृत क्यों कर रही हो? जिस तुम्हारे संग से हम दोनों की पवित्रता भी बढ़ रही है।।8।।

लक्ष्मणः— आर्य! श्रूयताम्।

रामः— लोकः शृणोतु।

(नेपथ्ये कलकलः)

रामः— अद्भुततरं किमपि।

सीता— किमत्याबद्धकलकलं प्रज्वलितमन्तरिक्षम्?[1]

देव्यौ— ज्ञातम्।

कृशाश्वः कौशिको राम, इति येषां गुरुक्रमः।
प्रादुर्भवन्ति तान्येव, शस्त्राणि सह जृम्भकैः।।9।।

(**अन्वय—** कृशाश्वः कौशिकः रामः, इति येषाम् गुरु—क्रमः, तानि एव शस्त्राणि जृम्भकैः सह प्रादुर्भवन्ति ।।9।।)

(नेपथ्ये)

देवि! सीते! नमस्तेऽस्तु गतिर्नः पुत्रकौ हि ते।
आलेख्यदर्शनादेव, ययोर्दाता रघूद्वहः।।10।।

(**अन्वय—** देवि! सीते! ते नमः अस्तु, हि ते पुत्रकौ नः गतिः, आलेख्य दर्शनात् एव ययोः दाता रघूद्वहः।।10।।)

सीता— दिष्ट्या अस्त्रदेवता एताः आर्यपुत्र! अद्यापि ते प्रसादाः परिस्फुरन्ति।[2]

लक्ष्मणः— उक्तमासीदार्येण 'सर्वथेदानीं त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ती' ति।

देव्यौ—

नमो वः परमास्त्रेभ्यो, धन्याः स्मो वः परिग्रहात्।
काले ध्यातैरुपस्थेयं, वत्सयोर्भद्रमस्तु वः।।11।।

(**अन्वय—** परम—अस्त्रेभ्यः वः नमः, वः परिग्रहात् धन्याः स्मः, काले ध्यातैः वत्सयोः उपस्थेयम् वः भद्रम् अस्तु ।।11।।)

---

1. किंति आबद्धकलकलं पज्जलिअं अन्तरिक्खम्?
2. दिट्ठिआ अत्थदेवताओ एदाओ। अज्जउत्त! अज्जावपि दे पसादा पडिप्फुरन्दि।

लक्ष्मण— आर्य! सुन लीजिए।

राम— संसार सुन ले।

(नेपथ्य में कोलाहल होता है)

राम— यह सभी कुछ अत्यधिक आश्चर्यजनक है।

सीता— कोलाहल भरा हुआ यह आकाश, चमक क्यों रहा है?

दोनों देवियाँ—जान लिया,

कृशाश्व, विश्वामित्र और राम इसप्रकार का, जिनका गुरुक्रम (परम्परा) **है, वे ही शस्त्र जृम्भकों के साथ प्रकट हो रहे हैं।।9।।**

(नेपथ्य में)

हे देवि! सीता, आपको नमस्कार है। आपके दोनों पुत्र ही हमारी गति हैं, जिनके लिए हम चित्रदर्शन के समय से ही, रघुकुल नन्दन, श्रेष्ठ, श्रीराम द्वारा दिए गए हैं।।10।।

सीता— सौभाग्य से ये अस्त्र देवता हैं। हे आर्यपुत्र! आज भी आपके अनुग्रह प्रकाशित हो रहे हैं।

लक्ष्मण— आर्य ने कहा था कि—'ये सभीप्रकार से तुम्हारी सन्तति को प्राप्त होंगे।'

दोनों देवियाँ—

श्रेष्ठ अस्त्रों आपको नमस्कार है। आपको ग्रहण करने से हम धन्य हो गए हैं। युद्ध आदि के अवसर पर ध्यान करने से, आपको हमारे इन दोनों पुत्रों के पास में आना चाहिए। आपका कल्याण हो।।11।।

प्रस्तुत गर्भांक वस्तुतः राम और सीता को मिलाने के लिए कवि की अद्भुत कल्पना या सृष्टि कहा जा सकता है, क्योंकि लोक की सहमति के अभाव में राम द्वारा सीता को स्वीकार न किए जाने के कारण, इस स्थिति के समाधान के लिए उन्होंने इस अंक की अवतारणा की है। इसी अंक में सीता, लोक की सहानुभूति अर्जित करती है तथा राम अपनी भूल को स्वीकार करते हैं एवं अरुन्धती के आदेशानुसार वे सीता को स्वीकार भी कर लेते हैं। इसप्रकार यह अंक नाटकीय तथा मनोवैज्ञानिक दोनों ही दृष्टियों से उपयुक्त और महत्त्वपूर्ण है।

रामः—

क्षुभिताः कामपि दशां कुर्वन्ति मम सम्प्रति।
विस्मयानन्दसंदर्भजर्जराः करुणोर्मयः।।12।।

(**अन्वय—** सम्प्रति क्षुभिताः, विस्मय—आनन्द—संदर्भ—जर्जराः करुणोः मयः, मम काम् अपि दशाम् कुर्वन्ति ।।12।।)

देव्यौ— मोदस्व वत्से! मोदस्व। रामभद्रतुल्यौ ते पुत्रकाविदानीं संवृत्तौ।

सीता— भगवत्यौ! क एतयोः क्षत्रियोचितविधिं कारयिष्यति?[1]

रामः—

एषा वसिष्ठशिष्याणां रघूणां वंशनन्दिनी।
कष्टं सीतापि सुतयोः संस्कर्तारं न विन्दति।।13।।

(**अन्वय—** वसिष्ठ—शिष्याणाम् रघूणाम् वंश—नन्दिनी एषा सीता, सुतयोः अपि संस्कर्तारम् न विन्दति, कष्टम् ।।13।।)

भागीरथी— भद्रे! किं तवानया चिन्तया? एतौ हि वत्सौ स्तन्यत्यागा— त्परेण भगवतो वाल्मीकेरर्पयिष्यामि।

वसिष्ठ एव ह्याचार्यो रघुवंशस्य सम्प्रति।
स एव चानयोर्ब्रह्मक्षत्रकृत्यं करिष्यति।।14।।

(**अन्वय—** सम्प्रति वसिष्ठः एव रघुवंशस्य आचार्यः हि, सः एव च अनयोः ब्रह्म—क्षत्र—कृत्यम् करिष्यति।।14।।)

यथा वसिष्ठांगिरसावृषिः प्राचेतसस्तथा।
रघूणां जनकानां च वंशयोरुभयोर्गुरुः।।15।।

(**अन्वय—** रघूणाम् जनकानाम् च उभयोः वंशयोः यथा वसिष्ठ—आंगिरसौ तथा प्राचेतसः ऋषिः गुरुः।।15।।)

रामः— सुविचिन्तितं भगवत्या।

लक्ष्मणः— आर्य! सत्यं विज्ञापयामि। तैस्तैरुपायैरिमौ वत्स कुशल-वावुत्प्रेक्षे!

एतौ हि जन्मसिद्धास्त्रौ प्राप्तप्राचेतसावुभौ।
आर्यतुल्याकृती वीरौ वयसा द्वादशाब्दकौ।।16।।

1 भअवदीओ। को एदाणं खत्तिओइदविहि कारइस्सदि?

राम—

इस समय क्षोभ से युक्त, आश्चर्य तथा आनन्द के संयोग से जर्जर हुईं शोक की तरंगें, मेरी कुछ अनिर्वचनीय अवस्था को ही उत्पन्न कर रही हैं।।12।।

दोनों देवियाँ— प्रसन्न हो जाओ, पुत्रि! प्रसन्न हो जाओ। इस समय तुम्हारे दोनों पुत्र, रामभद्र के समान हो गए हैं।

सीता— हे भगवती! इन दोनों बालकों का क्षत्रियोचित संस्कार कौन करेगा?

राम—

महर्षि वसिष्ठ के शिष्य, रघुकुल के राजाओं के वंश को आनन्द प्रदान करने वाली, यह सीता भी अपने पुत्रों के संस्कार करने वाले, आचार्य को नहीं पा रही है, यह अत्यन्त कष्ट की बात है।।13।।

भागीरथी— हे कल्याणि! तुम्हें इस चिन्ता की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि स्तन—त्याग के बाद, इन दोनों पुत्र को मैं भगवान् वाल्मीकि को अर्पित कर दूँगी।

इस समय महर्षि वसिष्ठ ही रघुकुल के आचार्य हैं, वे ही इन दोनों का ब्राह्म एवं क्षत्रियोचित संस्कार करेंगे।।14।।

रघु तथा जनक, इन दोनों के जिसप्रकार वसिष्ठ और आंगिरस शतानन्द गुरु हैं, उसीप्रकार वाल्मीकि ऋषि भी गुरु हैं।।15।।

राम— भगवती गंगा ने बहुत ठीक विचार किया है।

लक्ष्मण— आर्य! मैं सत्य निवेदन कर रहा हूँ कि उन—उन प्रमाणों से मैं इन दोनों वत्सों (कुश तथा लव) की, सीता के पुत्रों के रूप में ही सम्भावना कर रहा हूँ।

क्योंकि ये दोनों वीर, जन्म से ही सिद्ध अस्त्रों वाले, महर्षि वाल्मीकि से संस्कार प्राप्त करने वाले, आर्य के समान आकार वाले तथा आयु से बारह वर्ष वाले हैं।।16।।

(अन्वय– हि एतौ उभौ वीरौ जन्म–सिद्ध–अस्त्रौ, प्राप्त–प्राचेतसौ, आर्य–तुल्य–आकृती वयसा द्वादश–अब्दकौ।।16।।)

रामः– वत्सावित्येवाहं परिप्लवमानहृदयः प्रमुग्धोऽस्मि।

पृथिवी– एहि वत्से! पवित्रीकुरु रसातलम्।

रामः– प्रिये! लोकान्तरं गतासि?

सीता– नयतु मामात्मनोऽङ्गेषु विलयमम्बा। न सहिष्यामीदृशं जीवलोकस्य परिभवमनुभवितुम्।[1]

लक्ष्मणः– किमुत्तरं स्यात्?

पृथिवी– मन्नियोगतः स्तन्यत्यागं यावत्पुत्रयोरवेक्षस्व। परेण तु यथा रोचिष्यते तथा करिष्यामि।

भागीरथी– एवं तावत्।

(इति निष्क्रान्ते देव्यौ सीता च)

रामः– कथं विलयः प्रतिपन्न एव तावत्। हा चारित्रदेवते! लोका–न्तरे पर्यवसितासि? (इति मूर्च्छति)

लक्ष्मणः– भगवन् वाल्मीके! परित्रायस्व, परित्रायस्व। एष ते काव्यार्थः?

(नेपथ्ये)

अपनीयतामातोद्यम्। भो जंगमस्थावराः प्राणभृतो मर्त्यामर्त्याः! पश्यन्त्विदानीं वाल्मीकिनाभ्यनुज्ञातं पवित्रमाश्चर्यम्।

लक्ष्मणः– (विलोक्य)

मन्थादिव क्षुभ्यति गांगमम्भो, व्याप्तं च देवर्षिभिरन्तरिक्षम्।
आश्चर्यमार्या सह देवताभ्यां, गंगामहीभ्यां सलिलादुपैति।।17

(अन्वय– मन्थात् इव क्षुभ्यति गांगम् अम्भः व्याप्तम् च देवर्षिभिः अन्तरिक्षम् आश्चर्यम् आर्या सह देवताभ्याम् गंगा–महीभ्याम् सलिलात् उपैति।।17।।)

(नेपथ्ये)

[1]. णेदु मं अत्तणो अंगेसु विलअं अम्बा। ण सहिस्सं ईरसिं जीअलोअस्स परिभवं सणुभविदुम्।

राम– इन दोनों वत्सों को 'पुत्र' समझकर ही मैं, हृदय से चंचल तथा अत्यधिक मोह से युक्त हो रहा हूँ।

पृथ्वी– आओ पुत्रि! पाताल को पवित्र करो।

राम– हाय, प्रिये! दूसरे लोक में चली गयी हो?

सीता– हे माते! आप मुझे अपने अंगों में विलीन कर लो, क्योंकि मैं मनुष्य–लोक के इसप्रकार के अपमान को सहन करने में समर्थ नहीं हूँ।

लक्ष्मण– अब क्या उत्तर होगा?

पृथ्वी– मेरी आज्ञा से दूध छोड़ने तक, इन दोनों पुत्रों की देख भाल करो, उसके पश्चात् जैसी इच्छा होगी, वैसा करुँगी।

भागीरथी– ऐसा करना ही उचित होगा।

(ऐसा कहकर दोनों देवियाँ और सीता निकल जाती हैं)

राम– क्यों सीता ने तो स्वीकार ही कर लिया है। हाय, चरित्र की देवी, दूसरे लोक में चली गयी हो?

(ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाते हैं)

लक्ष्मण– भगवान् वाल्मीके! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। क्या यही आपके काव्य का प्रयोजन है?

(नेपथ्य में)

वाद्य आदिकों को बन्द कर दो। हे स्थावर, जंगम प्राणियों! मनुष्यों! देवताओं! आप लोग इस समय महर्षि वाल्मीकि द्वारा आज्ञा प्रदान किए गए, पवित्र आश्चर्य को देखिए।

लक्ष्मण– (देखकर)

गंगा का जल मानो क्षुभित हो रहा है और अन्तरिक्ष भी देवों तथा ऋषियों से व्याप्त है। आर्या देवी सीता, गंगा और पृथ्वी के साथ जल से निकल रही हैं।।17।।

(नेपथ्य में)

अरुन्धति! जगद्वन्द्ये! गंगापृथिव्यौ जुषस्व नौ।
अर्पितेयं तवावाभ्यां सीता पुण्यव्रता वधूः।।18।।

(**अन्वय–** जगत्–वन्द्ये! अरुन्धति! नौ गंगा–पृथिव्यौ जुषस्व, आवाभ्याम् इयम् पुण्य–व्रता वधूः सीता, तव अर्पिता।।18।।)

लक्ष्मणः– अहो आश्चर्यमाश्चर्यम्। आर्ये! पश्य। कष्टमद्यापि नोच्छ्वसित्यार्यः।

(ततः प्रविशत्यरुन्धती सीता च)

अरुन्धती–

त्वरस्व वत्से! वैदेहि मुंच शालीनशीलताम्।
एहि जीवय मे वत्सं, सौम्यस्पर्शेन पाणिना।।19।।

(**अन्वय–** वत्से! वैदेहि, त्वरस्व शालीन–शीलताम् मुंच, एहि, सौम्यस्पर्शेन पाणिना मे वत्सम् जीवय।।19।।)

सीता– (ससम्भ्रमं स्पृशति) समाश्वसितु समाश्वसित्वार्यपुत्रः।[1]

रामः–(समाश्वस्य सानन्दम्) भोः! किमेतत्? (दृष्ट्वा सहर्षाद्भुतम्) कथं देवी जानकी? (सलज्जम्) अये! कथमम्बारुन्धती? कथं सर्वे ऋष्यशृंगादयोऽस्मद् गुरवः!

अरुन्धती– वत्स! एषा भागीरथी रघुकुलदेवता देवी गंगा सुप्रसन्ना।

(नेपथ्ये)

जगत्पते रामभद्र! संस्मर्यतामालेख्यदर्शने मां प्रत्यात्मवचनम्। 'सा त्वमम्ब! स्नुषायामरुन्धतीव सीतायां शिवानुध्याना भवेति' (प्रथम अंक) तदनृणास्मि।

अरुन्धती– इयं ते श्वश्रूर्भगवती वसुन्धरा।

(नेपथ्ये)

उक्तमासीदायुष्मता वत्सायाः परित्यागे 'भगवति वसुन्धरे! सुश्लाघ्यां दुहितरमवेक्षस्व जानकीम्' (प्रथम अंक) इति। तदधुना कृतवचनास्मि।

रामः– कृतापराधोऽपि भगवति! त्वानुकम्पयितव्यो रामः प्रणमति।

---

[1]. समस्ससदु समस्ससदु अज्जउत्तो।

हे लोकवन्दनीये! अरुन्धति! आप हम दोनों को प्रसन्न कीजिए, हम दोनों द्वारा पवित्र व्रत वाली, यह वधू सीता आपको सौंपी जा रही हैं।।18।।

लक्ष्मण– अहो, आश्चर्य है, अत्यधिक आश्चर्य है। आर्य! देखिए, देखिए। कष्ट है कि आर्य अभी तक भी होश में नहीं आ रहे हैं।

(उसके बाद अरुन्धती एवं सीता प्रवेश करती हैं)

अरुन्धती–

पुत्रि! वैदेहि! शीघ्रता करो, लज्जाशीलता को त्याग दो, आओ, कोमल स्पर्श वाले, अपने हाथ से मेरे पुत्र राम को जीवित करो।।19।।

सीता– (घबराहटपूर्वक स्पर्श करती है) धैर्य धारण कीजिए, आर्यपुत्र! धैर्य धारण कीजिए।

राम– (आश्वस्त होकर आनन्दपूर्वक) अरे! यह क्या है?

(देखकर, हर्षपूर्वक आश्चर्य के साथ)

क्या देवी जानकी हैं? (लज्जापूर्वक) अरे! क्या माता अरुन्धती हैं? क्या ऋष्यशृंगादि हमारे सभी गुरुजन हैं?

अरुन्धती–पुत्र! ये रघुकुल की देवी भागीरथी, तुम पर अत्यधिक प्रसन्न हैं।

(नेपथ्य में)

हे संसार के स्वामी, श्रीराम! चित्रदर्शन के अवसर पर, मेरे प्रति कहे गए, अपने वचनों को स्मरण कीजिए–' हे माते! आप पुत्रवधू सीता में अरुन्धती के समान, कल्याण की चिन्ता करने वाली होवें।' इस कारण अब मैं ऋणमुक्त हो गयी हूँ।

अरुन्धती– ये आपकी सास भगवती वसुन्धरा हैं।

(नेपथ्य में)

हे आयुष्मन्! तुमने सीता के त्याग के अवसर पर कहा था कि– 'हे भगवति! वसुन्धरे! अपनी प्रशंसनीया पुत्री की देखभाल करना।' इसलिए अब मैं तुम्हारे वचनों का पालन करने वाली हो गयी हूँ।

राम– हे भगवति! अपराध करने पर भी आप द्वारा अनुकम्पा करने योग्य, राम प्रणाम कर रहा है।

अरुन्धती– भो भोः, पौरजानपदाः! इयमधुना वसुन्धराजाह्नवीभ्यामेवं प्रशस्यमाना, मया चारुन्धत्या च समर्पिता, पूर्वं भगवता वैश्वानरेण **हे** निर्णीतपुण्यचारित्रा, सब्रह्मकैश्च देवैः स्तुता, सावित्रकुलवधूर्देवयजन-संभवा, जानकी परिगृह्यताम्। कथमिह भगवन्तो मन्यन्ते?

लक्ष्मणः– आर्य! एवमम्बयारुन्धत्या निर्भर्त्सिताः। पौरजानपदाः, कृत्स्नश्च भूतग्राम आर्यां नमस्कुर्वन्ति। लोकपालाः सप्तर्षयश्च पुष्पवृष्टिभिरुपतिष्ठन्ते।

अरुन्धती– जगत्पते रामभद्र!

नियोजय यथाधर्मं, प्रियां त्वं धर्मचारिणीम्।

हिरण्मय्याः प्रतिकृतेः, पुण्यां प्रकृतिमध्वरे।।20।।

(**अन्वय–** त्वम् हिरण्यमय्याः प्रतिकृतेः, पुण्याम् प्रकृतिम् प्रियाम् धर्म-चारिणीम्, अध्वरे यथा धर्मम् नियोजय।।20।।)

सीता–(स्वगतम्) अपि जानात्यार्यपुत्रः सीताया दुःखं परिमार्ष्टुम्?[1]

रामः– यथा भगवत्यादिशति।

लक्ष्मणः– कृतार्थोऽस्मि।

सीता– प्रत्युज्जीवितास्मि।[2]

लक्ष्मणः– आर्ये! अयं लक्ष्मणः प्रणमति।

सीता– वत्स! ईदृशस्त्वं चिरं जीव।[3]

अरुन्धती– भगवन् वाल्मीके! उपनयेदानीं सीतागर्भसम्भवौ रामभद्रस्य कुशलवौ। (इति निष्क्रान्ता)

राम–लक्ष्मणौ– दिष्ट्या तथैवैतत्।

सीता– क्व तौ पुत्रकौ?[4]

(ततः प्रविशति वाल्मीकिः कुशलवौ च)

वाल्मीकिः– वत्सौ! वां एष रघुपतिः पिता। एष लक्ष्मणः कनिष्ठतातः, एषा सीता जननी। एष राजर्षिजनको मातामहः।

---

1. अवि जाणादि अज्जउत्तो सीदाए दुक्खं पडिमज्जिदुम्?
2. पज्जुज्जीविदाह्मि।
3. वच्छ! इरिसो तुमं चिरं जीअ।
4. कहिं ते पुत्तआ?

अरुन्धती– अरे! अरे! नगर और ग्राम में रहने वालों! इस समय वसुन्धरा एवं भागीरथी द्वारा इसप्रकार प्रशंसा की जाने वाली, मुझ अरुन्धती द्वारा समर्पित, पूर्व में भी जिसके पवित्र चरित्र का निर्णय भगवान् अग्निदेव कर चुके हैं और ब्रह्मा जी के साथ सभी देवों ने जिसकी प्रशंसा की है। यज्ञ की भूमि से उत्पन्न, उन सूर्यवंश की वधू सीता को राम ग्रहण कर लें, इस सम्बन्ध में आप सभी लोग क्या मानते हैं?

लक्ष्मण– इसप्रकार माता अरुन्धती द्वारा झिड़की (डाँट) खाकर, सभी नागरिक तथा जनपदों के निवासी एवं सभी प्राणियों का समूह, आर्या सीता को प्रणाम कर रहा है। लोकपाल एवं सप्तर्षि भी पुष्प वृष्टि द्वारा (आर्या सीता की) पूजा कर रहे हैं।

अरुन्धती– हे संसार के स्वामी, रामभद्र!

तुम स्वर्णमयी प्रतिमा की पवित्र और मूल प्रकृति, इस प्रिया सीता को यज्ञ में धर्म के अनुसार सहधर्मचारिणी के रूप में प्रतिष्ठित (नियुक्त) **करो।।20।।**

सीता– (मन में) क्या आर्यपुत्र सीता के दुःख को दूर करना (पोंछना) भी जानते हैं?

राम– भगवती जैसा आदेश करती हैं।

लक्ष्मण– मैं कृतकृत्य हो गया हूँ।

सीता– मैं पुनर्जीवित हो गयी हूँ।

लक्ष्मण– आर्ये! यह लक्ष्मण प्रणाम कर रहा है।

सीता– वत्स! इसीप्रकार के तुम दीर्घकाल तक जीवित रहो।

अरुन्धती– हे भगवन् वाल्मीके! इस समय सीता के गर्भ से उत्पन्न कुश तथा लव को रामभद्र के समीप में ले आइए।

(यह कहकर निकल जाती हैं)

राम और लक्ष्मण– सौभाग्य से यह वैसा ही है।

सीता– वे दोनों पुत्र कहाँ हैं?

(उसके बाद वाल्मीकि, कुश तथा लव प्रवेश करते हैं)

वाल्मीकि– अरे पुत्रों! ये रामभद्र तुम्हारे पिता है, ये लक्ष्मण तुम्हारे कनिष्ठ पिता (चाचा) हैं। ये माता सीता हैं और ये राजर्षि जनक तुम्हारे नाना हैं।

सीता– (सहर्षकरुणाद्भुतं विलोक्य) कथं तातः? कथं जातौ?[1]

वत्सौ– हा तात! हा अम्ब! मातामह!

रामलक्ष्मणौ– (सहर्षमालिंग्य) ननु वत्सौ! युवां प्राप्तौ स्थः।

सीता– एहि जात कुश! एहि जात लव! चिरस्य मां परिष्वजेथां लोकान्तरादागतां जननीम्![2]

कुशलवौ– (यथा कृत्वा) धन्यौ स्वः।

सीता– भगवन्! एषाहं प्रणमामि।[3]

वाल्मीकिः– वत्से! एवमेवं चिरं भूयाः।

(नेपथ्ये)

उत्खातलवणो मधुरेश्वरः प्राप्तः।

लक्ष्मणः– सानुषंगानि कल्याणानि।

रामः– सर्वमिदमनुभवन्नपि न प्रत्येमि। यद्वा प्रकृतिरियमभ्यु–दयानाम्।

वाल्मीकिः– रामभद्र! उच्यतां? किं ते भूयः प्रियमुपहरामि?

रामः– अतः परमपि प्रियमस्ति? किंत्विदं भरतवाक्यमस्तु।

पाप्मभ्यश्च पुनाति वर्धयति च श्रेयांसि सेयं कथा,
मांगल्या च मनोहरा च जगतो मातेव गंगेव च।
तामेतां परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यस्तरूपां बुधाः,
शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतां प्राज्ञस्य वाणीमिमाम्।।21।।

(**अन्वय–** जगतः माता इव, गंगा इव च, मांगल्या च, मनोहरा च, सा इयम् कथा, पाप्मभ्यः पुनाति च, श्रेयांसि वर्धयति च, बुधाः अभिनयैः विन्यस्त–रूपाम् शब्द–ब्रह्म–विदः प्राज्ञस्य कवेः परिणताम् इमाम् ताम् एताम् वाणीम् परिभावयन्तु।।21।।)

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

।। इति महाकविभवभूतिविरचिते उत्तररामचरिते 'सम्मलेनं नाम सप्तमोऽङ्कः।।

।। इति पूर्णमिदमुत्तररामचरितं नाम नाटकम्।।

---

[1] . कहं तादो? कहं जादा?

[2] . एहि जाद कुस! एहि जाद लव! चिरस्स मं परिस्सजह लोअन्दरादो आअदं जणणिम्।

[3] . भअवं! एसा हं पणमामि।

सीता– (प्रसन्नता, करुणा एवं आश्चर्यपूर्वक देखकर) क्या पिता–श्री? और क्या दोनों पुत्र (आ गए हैं?)

दोनों पुत्र– हा, पिताजी, हा माताश्री, हा नाना जी।

राम और लक्ष्मण– (प्रसन्नतापूर्वक आलिंगन करके) हे पुत्रों! तुम दोनों निश्चय ही, मिल गए हो।

सीता– पुत्र कुश! आओ। पुत्र लव! आओ। दूसरे लोक से आयी हुई मुझ माता का लम्बे समय तक आलिंगन करो।

कुश और लव– (वैसा करके) हम दोनों धन्य हैं।

सीता– भगवन्! यह मैं आपको प्रणाम कर रही हूँ।

वाल्मीकि– पुत्रि! इसीप्रकार बहुत समय तक पति से युक्त तथा पुत्रवती रहो।

(नेपथ्य में)

लवणासुर को मारने वाले, मथुरा के अधीश्वर शत्रुघ्न आ गए हैं।

लक्ष्मण– कल्याण क्रमशः उपस्थित हो रहे हैं।

राम– मैं इन सभी विषयों को अनुभव करता हुआ भी, विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ अथवा कल्याणों का यही स्वभाव होता है।

वाल्मीकि– हे रामभद्र! कहो, अब मैं तुम्हारे लिए, दूसरा कौन सा प्रिय कार्य सम्पन्न करूँ?

राम– इससे भी अधिक क्या कुछ प्रिय है? किन्तु फिर भी आचार्य भरत का यह वाक्य पूरा होवे–

संसार की माता एवं गंगा के समान, यह मंगलमयी, मनोहर और प्रसिद्ध कथा, जो संसार को पापों से शुद्ध करती है तथा पुण्यों को बढ़ाती है। उसी ब्रह्मज्ञानी की अभिनय आदि द्वारा भलीप्रकार प्रदर्शित की गयी एवं कवि द्वारा दूसरे रूप में परिवर्तित की गयी, इस रामायण रूप वाणी पर विद्वान् लोग चिन्तन करें।।21।।

(सभी निकल जाते हैं)

।। इसप्रकार महाकवि भवभूति विरचित उत्तररामचरित में 'सम्मेलनम्' नामक सप्तम अंक का डॉ. राकेश शास्त्री, बाँसवाड़ा **द्वारा किया हुआ हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ।।**

।। इसप्रकार उत्तररामचरितम् नामक नाटक पूर्ण हुआ।।

•••

'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या, संस्कृत व्याख्या

प्रथम अङ्क

(क) नान्दी—नन्दयतीति नन्दः, √नन्द्+अच् (पचाद्यच् सूत्र से अच् प्रत्यय का प्रयोग) नन्द एवं नान्दः, √नन्द्+अण् (प्रज्ञादिभ्यश्च से अच्) +ङीप्—नान्दी। नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से मंगलाचरण को ही 'नान्दी' कहा जाता है, क्योंकि इसे करने से देवता प्रसन्न होते हैं—

"नन्दन्ति देवता यस्यां तस्मान्नान्दीति प्रकीर्तिता।"

नाटक की निर्विघ्न समाप्ति के लिए नान्दी मंगलाचरण का पाठ किया जाता है। प्रस्तुत नाटक में नान्दी पाठ रंगमंच पर न करके **नेपथ्य** में किया गया है। इसीप्रकार नाटक के प्रारम्भ में 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' का कथन करके, सूत्रधार का प्रवेश कराया गया है। उल्लेख्नीय है कि नाटककार भवभूति के नाटकों की यह प्रमुख विशेषता रही है, जो उनके परम्परा विषयक प्रेम को भी सिद्ध करती है।

साहित्यदर्पणकार ने 'नान्दी' का लक्षण इसप्रकार किया है—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।। 6/24।
मंगल्यशंखचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी।
पदैर्युक्ताद्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत।।6/25।।

अर्थात् ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए, आठ या बारह पदों से युक्त, देव, द्विज, नृपादि को प्रसन्न करने वाली **'नान्दी'** कहलाती है। इसमें शंख, चन्द्र, कमल, चक्रवाक, कुमुद आदि मंगलवाची शब्दों का प्रयोग होता है। इसे प्रायः नाटक के प्रारम्भ में प्रयुक्त करते हैं।

(ख) सूत्रधार— सूत्रं धारयति, इति— सूत्रधारः। सूत्र+√धृ+णिच्+अण् (कर्मण्यण् सूत्र से) यह रंगमंच पर अभिनय किए जाने वाली सभी घटनाओं को नियन्त्रित करता है। वर्तमान समय में इसी को **'डायरेक्टर'** भी कहते हैं। वस्तुतः यह रंगमंच का अधिष्ठाता होता है, जो नाटक की प्रस्तावना में स्वयं उपस्थित होकर नाटक का आरम्भ करता है तथा सभी दूसरे पात्रों को अभिनय सम्बन्धी निर्देश भी प्रदान करता है।

इसके अलावा नाट्य के उपकरणों को सूत्र भी कहते हैं—

"नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।"

इसलिए नाट्य के उपकरणों अर्थात् सूत्रों को धारण करने के कारण ही इसे 'सूत्रधार' कहते हैं, क्योंकि इसी के मार्गदर्शन में सम्पूर्ण नाटक का अभिनय किया जाता है। संगीतसर्वस्वकार ने सूत्रधार का लक्षण इसप्रकार किया है—

नाटकस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सबीजकम्।
रंगदैवतपूजाकृत् सूत्रधार उदीरितः।।
वर्तनीयतया सूत्रं प्रथमं येन सूच्यते।
रंगभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते।।

दशरूपककार धनंजय का इस सम्बन्ध में मानना है कि —

पूर्वरंगं विधायादौ सूत्रधारे विनिर्गते,
तद्वन्नरः प्रविश्यान्यः सूत्रधार गुणकृतिः,
सूचयेद्वस्तुबीजकम्।।

(1) 'चन्द्रिका' इदमिति— महाकवि भवभूति उत्तररामचरितम् नाटक की निर्विघ्न समाप्ति की कामना से प्रस्तुत मंगलवाची नान्दी का प्रयोग करते हुए कहते हैं कि—

हम महर्षि वाल्मीकि, व्यास, भास आदि प्राचीन कवियों को प्रणाम करके, यह अभिलाषा करते हैं कि— परमब्रह्म परमात्मा की अमृतमयी अर्थात् नित्य रहने वाली, कलारूप सरस्वती, हमारे मनरूपी मन्दिर में हमेशा ही प्रकाशित होती रहे, जिससे हमारे अन्तःकरणों में सभीप्रकार के अर्थों का स्फुरण होने की सामर्थ्य बनी रहे, क्योंकि ऐसा होने पर

ही प्राचीन कवियों के ग्रन्थों 'का अनुशीलन किया जाना सम्भव है। इसलिए सर्वप्रथम उन्हीं को प्रणाम करना उचित है।

विशेष– (i) यहाँ प्रयुक्त 'आत्मनः' पद का अभिप्राय परमपिता परमात्मा से ग्रहण करना चाहिए, जो सभी देवों से ऊपर विद्यमान हैं तथा शब्दब्रह्म रूप वाणी वस्तुतः उसी का अंश है।

(ii) मंगलाचरण तीन प्रकार का माना गया है। आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक और वस्तुनिर्देशात्मक। प्रस्तुत मंगलाचरण नमस्कारात्मक एवं आशीर्वादात्मक दोनों ही रूपों में प्रयुक्त हुआ है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक का अर्थ वीरराघव आदि विद्वानों ने भिन्न–भिन्न किया है, जैसे कुछ ने शाश्वत वाग्देवता, तो कुछ ने मोक्ष प्रदान करने वाले परमात्मा का प्रतिपादन करने वाली विद्या, अन्यों ने वाल्मीकि की अमर वाणी रामायण को प्राप्त करने की कामना की है।

(iv) यहाँ प्रयुक्त 'कविभ्यः' पद में बहुवचन का प्रयोग, व्राल्मीकि आदि पुरातन कवियों के प्रति आदर व्यक्त करने के लिए किया है।

(v) यहाँ परमात्मा से अभिप्राय इस नाटक के नायक श्रीराम तथा उनकी शक्तिस्वरूपिणी सीता के अर्थ की भी अभिव्यंजना हो रही है, जिनकी प्राप्ति के लिए, यहाँ नमन किया गया है, क्योंकि प्रस्तुत सम्पूर्ण कृति में सीता की ही प्रधानता दृष्टिगोचर होती है।

(vi) वस्तुतः प्राचीन कवियों के ग्रन्थों के अध्ययन से दैवी शक्ति स्वतः ही उद्‌बुद्ध हो जाती है। इसलिए उन्हीं की वन्दना करना उचित भी है।

(vii) यहाँ 'इदम्' पद में प्रयुक्त 'इ' को अलग करते हुए भी कुछ अर्थों की कल्पनाएँ की गयी हैं। **जैसे–** इः अर्थात् खेद, और उसका विनाश करने के लिए 'मंगल' पद का प्रयोग करते हैं, क्योंकि गुप्तचर दुर्मुख के लोकापवाद विषयक कथन से श्रीराम को खेद हुआ था, उसकी शान्ति नमस्कार से ही सम्भव है।

(viii) इसीप्रकार 'इ' अर्थात् कोपविषयक उक्ति को शान्त करने वाले 'मंगल' का प्रयोग, क्योंकि सीता के उसप्रकार के परित्याग से वाल्मीकि, माता कौशल्या, जनक, पृथ्वी, वनदेवी वासन्ती आदि सभी कुपित हो गए थे, उन सभी के क्रोध को शान्त करने के लिए नमन।

(ix) प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द[1] का प्रयोग करके, महाकवि ने महर्षि वाल्मीकि के प्रति भी श्रद्धा की अभिव्यक्ति की है, क्योंकि वे ही इस लौकिक छन्द के आविष्कारक माने गए हैं।

(x) निरपराध होने पर भी परित्याग की गयी सीता की रक्षा, उनके पुत्रों का पालन–पोषण एवं शिक्षादि का दायित्व, अन्त में सीता तथा उनके दोनों पुत्रों को राम से मिलाना आदि भी महर्षि वाल्मीकि द्वारा ही किया गया, इसलिए भी वाल्मीकि, कवि की श्रद्धा के पात्र हैं।

(xi) महाकवि का यह कथन नाटक के श्रोता तथा दर्शकों के कल्याण के लिए भी प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि सरस्वती की कृपा प्राप्त करके ही वे यहाँ प्रयुक्त गम्भीर भावों को समझने में समर्थ हो सकेंगे।

(xii) यहाँ प्रयुक्त 'कविभ्यः' में 'नमःस्वस्तिस्वाहा....' इत्यादि सूत्र से चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

(xii) 'इदम्' पद के अनेक अर्थ किए जाने से श्लेष अलंकार[2] एवं भगवद् या गुरु विषयक रति भाव का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(xiii) उपर्युक्त श्लोक में कवि द्वारा द्वादश पदा नान्दी का प्रयोग किया गया है तथा मंगलाचरण के साथ–साथ, कथावस्तु के निर्दिष्ट होने से यह पत्रावली नान्दी के रूप में प्रयुक्त हुई है।

व्या.टि.– (i) **विन्देम–** √विदलृ (लाभे)+विधिलिङ्, उ.पु., बहु.।

(ii) **प्रशास्महे–** प्र+ √शासु(इच्छायाम्)+आत्मने, लट्, उ.पु., बहुव.।

संस्कृत व्याख्या– पुरातनेभ्यः काव्यनिर्मातृभ्यः नमः, इति उक्तिं, परमात्मनः अंशभूतां शाश्वतीं देवीं प्राप्नुयाम। अतएव एतत् वयं प्रार्थयामहे अर्थात् ताम् अनिर्वाच्यां वाणीं सरस्वतीं विन्देमहि, इति।

---

[1]. श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पंचमम्।
द्वि चतुः पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

[2]. श्लिष्टैर्पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते।

अर्थात् प्राचीनेभ्यः गुरुवत्कविभ्यः इदं नमो वाणीं प्रशास्महे, तेषां कृपामात्रेण खलु वयं काव्यरूपां दिव्यां शक्तिं प्राप्नुयाम। जीवने च साफल्यं विकासं वै लमतामिति।

(2)'चन्द्रिका' यमिति– दर्शकदीर्घा में विद्यमान सहृदयों से कवि के असाधारण पाण्डित्य को सूचित करते हुए सूत्रधार कहता है कि–

वाणी की देवी सरस्वती 'यह ब्रह्मा है' ऐसा मानकर जिस ब्राह्मण महाकवि भवभूति का वशवर्तिनी के समान अनुगमन करती हैं, उन्हीं के द्वारा विरचित उत्तररामचरित नामक नाटक का हम लोग यहाँ पर आपके समक्ष अब अभिनय प्रस्तुत करेंगे।

विशेष– (i) अभिनय[1] से अभिप्राय यहाँ आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक चार प्रकार के अनुकरण से ग्रहण करना चाहिए।

(ii) कवि का अभिप्राय है कि जिस महाकवि द्वारा प्रणीत नाटक का हम मंचन करने जा रहे हैं, वह कोई साधारण कवि नहीं है, अपितु स्वयं सरस्वती भी उसे ब्रह्मा मानकर, उसके वश में होकर उनका अनुकरण करती है। दूसरे शब्दों में, सरस्वती को उसने सिद्ध किया हुआ है, इसीलिए वह उसकी वशवर्तिनी है।

(iii) इसप्रकार कवि ने यहाँ अप्रत्यक्षरूप से स्वयं को ब्रह्मा कहा है। उत्प्रेक्षा[2] उपमालंकार[3] एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग दर्शनीय है, महाकवि को ये दोनों ही अत्यधिक प्रिय रहे हैं। द्रष्टव्य–परिशिष्ट।

(iv) प्रस्तुत कृति में राम के उत्तर[4] या उत्कृष्ट चरित को निबद्ध किया गया है। इसलिए इसका नाम यहाँ उत्तररामचरित रखा गया है।

---

[1]. भवेदभिनयोऽवस्थानुकारः च चतुर्विधः।
आंगिको वाचिकश्चैवमाहार्यः सात्त्विकस्तथा।।

[2]. सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।

[3]. प्रस्फुटं सुन्दरं साम्यमुपमेत्यभिधीयते।

[4]. रामस्य उत्तरं चरितं यस्मिन् तत्, तत् चरितं पूर्वोत्तरभेदाद् द्विधा विभक्तम्। राज्याभिषात् पूर्वतनं वनवासादिचरितम्, पूर्वचरितम्। राज्याभिषेकात् अनन्तरं यत्तत् उत्तरं चरितमिति।

(v) 'उत्कृष्ट' पद से अभिप्राय यहाँ सीता का परित्याग करके भी स्वयं सीता के वियोगरूप कष्ट को सहन करके, राम द्वारा प्रजारंजन रूप उत्कृष्ट कार्य को सम्पादित करने से ग्रहण करना चाहिए।

व्या.टि.– (i) **प्रणीतम्**– प्र+ √नी+क्त, बनाया गया ।

(ii) **अनुवर्तते**– अनु+ √वृत्+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iii) **प्रयोक्ष्यते**– प्र+ √युज्+लृट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– **सः कविः नैव साधारणः, अपितु साक्षात् ब्रह्मा वै वर्तते। अनेनैव कारणेन स्वयं भगवती सरस्वती तस्य भवभूतेः सर्वदा अनुवर्तनं करोति, असौ वस्तुतः सिद्धसरस्वतीकोऽस्ति। तेन खलु प्रणीतम् 'उत्तररामचरितम्' सम्प्रति अभिनेष्यते।**

(3) 'चन्द्रिका' वसिष्ठेति– श्रीराम के राज्याभिषेक के अवसर पर भी चौराहों के चारण शून्य होने के विषय में सूत्रधार का सहयोगी नट कारण बताते हुए उससे कहता है कि–

वस्तुतः राम के राज्याभिषेक के अवसर पर आए हुए, सभी अतिथियों को विदा करने के बाद, वसिष्ठ ऋषि की अध्यक्षता में भगवती अरुन्धती को आगे करके, श्रीराम की माता कौशल्या आदि दूसरी सभी माताएँ, जामाता ऋष्यश्रृंग द्वारा आयोजित बारह वर्षीय यज्ञ में भाग लेने के लिए, उनके आश्रम में चली गयी हैं। यही कारण है कि गुरुओं तथा अतिथियों की अनुपस्थिति में उत्सव मनाना बन्द कर दिया गया है।

विशेष– (i) सूत्रधार के प्रति नट द्वारा चौराहों के उत्सवशून्य होने के विषय में यह दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण बताया गया है।

(ii) इसके पीछे कवि का मुख्य प्रयोजन, सीता के परित्याग की पृष्ठभूमि तैयार करना है, क्योंकि गुरुजनों की उपस्थिति में तो सीता का त्याग सम्भव ही नहीं था।

(iii) यहाँ प्रयुक्त 'मातरः' से अभिप्राय कौशल्या, सुमित्रा तथा कैकेयी आदि सभी माताओं से ग्रहण करना चाहिए।

(iv) महर्षि वसिष्ठ रघुकुल के गुरु के रूप में प्रयुक्त हुए हैं, वे भी अपनी पत्नी अरुन्धती के साथ, ऋष्यशृंग के आश्रम में यज्ञ में भाग लेने के लिए, दूसरे सभी के साथ चले गए हैं।

(v) अनुष्टुप् छन्द व अनुप्रास[1] अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **पुरस्कृत्य–** पुरस्+√कृ+ल्यप्, आगे करके।

(ii) **अधिष्ठिताः–** अधि+√स्था+क्त, प्र.वि.,ब.व., संरक्षित हुईं।

संस्कृत व्याख्या– महर्षेः वसिष्ठस्य संरक्षणे कृताभिषेकस्य श्री–रामस्य मातरः कैकेयीकौसल्यासुमित्रादयः महर्षेः वसिष्ठस्य पत्नीम् अरुन्धतीं अग्रे कृत्वा, जामातुः ऋष्यशृंगस्य यज्ञे भागं ग्रहणार्थं तस्य आश्रमं गतवत्यः।

(4) 'चन्द्रिका' कन्यामिति– सूत्रधार द्वारा परदेशी होने का कथन करते हुए, यहाँ प्रयुक्त जामाता के सम्बन्ध में नट स्पष्ट करता है कि–

श्रीराम के पिता दशरथ के राम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न, इन चार पुत्रों के अलावा एक **'शान्ता'** नाम की पुत्री भी उत्पन्न हुई, जिसे उन्होंने अपने अभिन्न मित्र अंगदेश के राजा 'रोमपाद' को दत्तक पुत्री के रूप में दे दिया, जिसका विवाह रोमपाद ने ऋष्यशृंग ऋषि के साथ कर दिया था, इसप्रकार ऋष्यशृंग महाराज दशरथ एवं उनकी सभी महारानियों के जामाता हुए।

विशेष– (i) ऋष्यशृंग वस्तुतः विभाण्डक के पुत्र थे। राजा रोमपाद के राज्य में अनावृष्टि हुई, तब उन्होंने सुन्दर वेश्याओं के माध्यम से ऋष्यशृंग को अपने राज्य में बुलाया, तब वृष्टि होने लगी। इसलिए प्रसन्न होकर रोमपाद ने अपनी पुत्री शान्ता का विवाह ऋष्य-शृंग के साथ कर दिया था। यहाँ उसी कथा की ओर संकेत किया गया है।

(ii) कृत्रिम अपत्य के सम्बन्ध में आचार्य मनु ने भी स्वीकृति प्रदान की है।[2]

---

[1]. अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।

[2]. सदृशं तु प्रकुर्याद यं गुणदोषविचक्षणम्।
पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं सुविज्ञेयश्च कृत्रिमा।। मनुस्मृति

(iii) उल्लेखनीय है कि वाल्मीकि रामायण में शान्ता का दशरथ की पुत्री होने का कथन नहीं किया गया है, किन्तु विष्णु पुराण में इसका उल्लेख हुआ है।[1] इस आधार पर कहा जा सकता है कि महाकवि ने यहाँ विष्णु पुराण की कथा को स्वीकार किया है।

(iv) भाषा की सरलता एवं समासरहित शैली दर्शनीय है।

(v) अनुप्रास अलंकार एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) **कन्याम्–** कनति कन्यते वा, कनीदीप्तौ धातु ।

(ii) **व्यजीजनत्–** वि+√जनी प्रादुर्भावे+लुङ्, प्र.पु., एकवचन।

(iii) **अपत्यकृतिकाम्–** कृता एव कृतिका, (स्वार्थे कन्) अपत्यं सा च कृतिका ताम्। दत्तक पुत्री के रूप में गोद ली गयी कन्या को।

(iv) **ददौ–** √दा+लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन, दे दिया।

संस्कृत व्याख्या–'दशरथ' एतन्नाम्ना राज्ञा 'शान्ता' नाम एका कन्या उत्पादिता। सा च कन्या तेन दशरथेन स्वमित्राय 'रामपाद' नाम महाराजाय कृत्रिमकन्यारूपे प्रदत्ता। तेन च रोमपादेन सा कन्या 'ऋष्यशृंग' नाम ऋषिणा सह परिणीता, अनेनैव ऋष्यशृंगः दशरथस्य कौसल्यादयानां च जामाता आसीदिति।

(5) 'चन्द्रिका' सर्वथेति– इसके बाद महाकवि व्यक्ति के दैनिक व्यवहार के विषय में कहते हैं कि–

व्यक्ति को हमेशा ही सभीप्रकार से सावधानीपूर्वक व्यवहार करना चाहिए, किन्तु तब भी इसप्रकार की सम्भावना नहीं की जा सकती है, कि व्यक्ति का कार्य, दोष से रहित ही होगा, क्योंकि जिसप्रकार दुष्ट व्यक्ति स्त्रियों के चरित्र के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की सम्भावनाएँ करता है, वैसे ही वह वाणी की निर्दोषता के विषय में भी दोषों को देखने वाला होता है।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने रावण के पास रहने के कारण पवित्र सीता के विषय में दुष्ट लोगों द्वारा की गयी दोष की

---

[1]. यस्मादजपुत्रो दशरथः शान्तां नाम
कन्यामनपत्याय दुहितृत्वे युयोज।। विष्णु पुराण–4/18।

कल्पना की बात का उल्लेख किया है। महाकवि दुष्ट लोगों की प्रकृति से पूर्णरूप से परिचित रहे हैं, जिससे उनका सज्जन स्वभाव भी अभिव्यंजित हुआ है।

(ii) साथ ही, उन्होंने इसके उत्तरार्द्ध में उत्तररामचरित से पूर्व विरचित कृतियों मालतीमाधव तथा महावीरचरित के सम्बन्ध में तात्कालिक पण्डितों द्वारा की गयी तीखी आलोचना विषयक अपनी गहनवेदना को भी व्यंग्य के माध्यम से सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान की है।

(iii) यहाँ प्रयुक्त 'कुतो ह्यवचनीयता' में उत्तरार्द्ध को कारणरूप में प्रस्तुत करने के कारण काव्यलिंग[1] अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(iv) इसीप्रकार 'स्त्रीणाम्' एवं 'वाचाम्' पदों में तुलना के कारण उपमालंकार[2] तथा दोनों की परस्पर अनपेक्ष स्थिति के कारण संसृष्टि[3] अलंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(v) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति व अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) व्यवहर्तव्यम्– वि+अव+√हृ+तव्यत्।

(ii) **अवचनीयता–** न वचनीयता इति, नञ्, √वच्+अनीयर्,+तल्।

संस्कृत व्याख्या– वस्तुतः असारे खल्वस्मिन् संसारे जनैः सदैव सावधानतया व्यवहारः कर्तव्यः। यतोहि कस्मिन्नपि विषये अवचनीयतायाः सम्भावना नैव भवति। दृश्यते संसारे ये दुर्जनाः सन्ति, ते तु स्त्रीणां विषये वाणी विषये च तयोः शुद्धयोरपि दोषदर्शिणः खलु भवन्ति।

(6) 'चन्द्रिका' देव्येति– इसप्रकार दैनिक व्यवहार में सावधानता का उल्लेख करने के बाद, महाकवि इसी बात को पवित्र चरित्र सीता के सम्बन्ध में कहते हैं कि–

विदेहराज जनक की पुत्री परम पवित्र एवं यज्ञभूमि से उत्पन्न होने के कारण, दिव्यगुणों से सम्पन्न, सीता के सम्बन्ध में भी लोग लांछन लगाने से कतराते नहीं हैं, जिसके मूल में महत्त्वपूर्ण कारण उनका लंकाधिपति, राक्षसराज रावण के घर में लम्बे समय तक रहना

1. हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंगमुदाहृतम्।
2. प्रस्फुटं सुन्दरं साम्यमुपमेत्यभिधीयते।
3. मिथोऽनपेक्षयैतेषां स्थितिः संसृष्टिरुच्यते।

है, क्योंकि लोगों को तो लंका में की गयी, सीता की अग्नि–परीक्षा के विषय में ही पूर्णरूप से सन्देह है।

विशेष– (i) यहाँ पर 'वैदेही' पद का प्रयोग सीता की पवित्रता का कथन करने के लिए सप्रयोजन किया गया है, क्योंकि माता–पिता के गुण सन्तान में आते ही हैं।

(ii) दुष्टों के स्वभाव के विषय में तथ्यात्मक उल्लेख हुआ है।

(iii) यह कटुसत्य है कि पुरुष प्रधान भारतीय समाज में लोग अपने चरित्र के विषय में चिन्तन न करके, स्त्रियों के चरित्र के बारे में अनेक प्रकार की अनर्गल कल्पनाएँ करके उन्हें दूषित करते रहते हैं।

(iv) यही कारण है कि परम पवित्र वैदेही के चरित्र के प्रति भी दुष्ट लोग, लंका में हुई अग्नि परीक्षा पर अविश्वास करते हुए, शंकालु हैं, कवि वस्तुतः समाज के इस व्यवहार से अत्यधिक आहत है।

(v) श्लोक के पूर्वार्द्ध में दोषरूपी कारण के अभाव में भी अपवाद रूप कार्य होने से विभावनालंकार[1] का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(vi) इसके अलावा उत्तरार्द्ध में अग्निशुद्धि रूप कारण के होते हुए भी उसके निश्चयरूप कार्य के अभाव में विशेषोक्ति[2] अलंकार का प्रयोग हुआ है तथा इन दोनों अलंकारों की उपस्थिति से संसृष्टि।

(vii) इन्हीं लोगों के सन्देह का निवारण कवि ने सप्तम अंक में संसार के सभी प्रकार के प्राणियों तथा देवादि के समक्ष कराया है।

(viii) सरल भाषा एवं अनुष्टुप् छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) **रक्षोगृहस्थिति–** रक्षसः गृहे स्थितिः, √स्था+क्तिन्।

(ii) **सापवादः–** अपवादेन सह, इति। **त्वनिश्चयः–** तु+अनिश्चयः।

संस्कृत व्याख्या–वस्तुतः एषः संसारः परमपवित्रे जानक्याः विषये–ऽपि अपवादस्य लांछनस्य कल्पनां करोति, मूले च अस्मिन् तस्याः देव्याः रक्षसः रावणस्य गृहे निवासो विद्यते। यतः कोऽपि जनः स्त्रीणां विषये

1. विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते।
2. सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिर्निगद्यते।

शंकालु कारणेन तत्र लंकायां या अग्निशुद्धिः क्रिया सम्पादिता, तस्यां क्रियायां नैव विश्वसिति।

(7) 'चन्द्रिका' स्नेहादिति– नाटक की प्रस्तावना के अन्तर्गत ही कवि, नायक राम की मंच पर उपस्थिति कराने के लिए नट के माध्यम से महाराज श्रीराम के विषय में पूछता है तथा सुनने का अभिनय करके, लोगों के कथन को प्रस्तुत करते हुए कहता है कि–

प्रेम के कारण, रामादि को सम्मानित करने के लिए, उनके राज्याभिषेक के अवसर पर अयोध्या आकर तथा अभिषेक–समारोह में पूरे समय तक भाग लेते हुए, इस समारोह के पूरा होने पर, महाराज विदेहराज जनक, अपनी राजधानी मिथिला लौट गए हैं। इसलिए उनके चले जाने पर, उनकी पुत्री देवी सीता के खिन्न मन होने पर, श्रीराम उन्हें अनेक प्रकार से समझाने और सान्त्वना देने के लिए अपने न्याय के आसन से उठकर, उनके निवास भवन में प्रवेश कर रहे हैं।

विशेष– (i) राम को न्यायकार्य में लगा हुआ बताकर, कवि ने उनके लोकरंजक रूप को सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान की है।

(ii) 'विदेहान्' देशवाची पदों का बहुवचन में प्रयोग होता है।

(iii) 'जीवन्मुक्त' होने से जनक को भी 'विदेह' कहा जाता था।

(iv) 'विदेह' जनपद मगध के उत्तर–पश्चिम में विद्यमान था, मिथिला इसकी राजधानी थी। वर्तमान में इसे 'दरभंगा' कहते हैं। इस राज्य के संस्थापक राजा निमि थे।

(v) 'परिसान्त्वनाय' में 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' सूत्र से चतुर्थी।

(vi)'धर्मासनात्' में 'ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च' से पंचमी।

(vii) काव्यलिंग तथा स्वभावोक्ति[1] अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं वसन्ततिलका[2] छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) एत्य–आ+ √इण्(गतौ),क्त्वा(ल्यप्),**नीत्वा–** √नी+क्त्वा।

(ii) **सभाजयितुम्–** √सभाज्+णिच्+तुमुन्, सम्मानित करने हेतु।

---

1 . स्वभावोक्तिर्दुरूहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम्।

(iii) **विशति–** √विश्(प्रवेशने)+लट्, प्र.पु., ए.व., प्रवेश करता है।

संस्कृत व्याख्या– अनुरागवशात् सम्मानार्थम् आगत्य अयोध्यायां तत्र च एतावन्ति वासराणि समारोहेण व्यतीत्य, विदेहराजः जनकः अस्मिन्नेव दिने स्व राजधानीं मिथिलानगरीं गतवान्। अनेनैव कारणेन सम्प्रति देवी सीता खिन्ना वर्तते, तां च देवीं सान्त्वनाय तस्याः दुःखापनयनाय श्रीरामः न्यायस्य आसनात् उत्थाय, सीतायाः समीपे तस्याः वासभवनं प्रविशति।

(ग) प्रस्तावना– इसे नाटक का 'आमुख' या इसकी 'स्थापना' भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत सूत्रधार, नट, नटी अथवा विदूषक अपने सेवक के साथ नाटक के प्रारम्भ में, आपस में वार्तालाप करते हुए, नाटक की कथावस्तु की ओर संकेत करते हैं। यहाँ यह वार्तालाप सूत्रधार और नट के मध्य हुआ है, जिसके परिणाम स्वरूप नाटक के पात्र राम और सीता प्रवेश करते हैं। उनके वार्तालाप द्वारा सामाजिकों को इस नाटक की पूर्व में घटित घटनाओं की जानकारी प्राप्त होती है।

स्थाप्यते प्रस्तूयते वा कथावस्तु अस्याम्।

साहित्यदर्पणकार ने इसे इसप्रकार परिभाषित किया है–

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते।
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा।

(साहित्यदर्पण–6 / 31,32)

(घ) नेपथ्य– अभिनय करने से पूर्व एवं मध्य में वेष परिवर्तन करने के लिए निर्धारित स्थान को 'नेपथ्य' संज्ञा प्रदान की गयी है। यह प्रायः मंच के पीछे अथवा उसके दाएँ या बायीं ओर होता है। इसका निर्माण पर्दे के पीछे भी सुविधा की दृष्टि से कर लिया जाता है

'नेपथ्यं स्याज्जवनिका रंगभूमिः प्रसाधनम्।' अमरकोष

अथवा **कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।**

आजकल इसे 'ग्रीनहाउस' भी कहा जाता है। कुल मिलाकर इतना ही अभिप्राय है कि नाट्यकर्म में रंगमंच के आसपास ही, उसी से जुड़ा हुआ 'नेपथ्य' नामक स्थान होता है, जिसमें अभिनय करने वाले कलाकार अपनी वेषभूषा एवं 'मेकअप' आदि को धारण करते हैं, जिस कथावस्तु का मंच पर प्रदर्शन नहीं किया जाता है, केवल दर्शकों के लिए सूचित करना आवश्यक होता है, उसे इसी स्थान से कोई पात्र बोलता है, जिसे नाटक में **'नेपथ्ये'** पद द्वारा कहा जाता है।

(ङ) आकाशे– मंच पर उपस्थित हुआ कोई पात्र जब आकाश की ओर मुख करके, 'क्या कहते हो?' इत्यादि का उल्लेख करके स्वयं ही कथा की सूचना दर्शकदीर्घा को प्रदान करता है, उसे 'आकाशे' इस नाट्यसंकेत द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

(ख) स्वगतम्/आत्मगतम्– कुछ बातें ऐसी होती हैं, जो मंच पर स्थित अन्य पात्र को सुनानी नहीं होती है, किन्तु कथा के प्रवाह की दृष्टि से वे सभी बातें आवश्यक हैं। साथ ही, दर्शकों को भी उन्हें सुनाना आवश्यक होता है। ये सभी बातें नाटक में पात्र, 'स्वगतम्' अथवा 'आत्मगतम्' के अन्तर्गत कहते हैं। साहित्यदर्पणकार ने इसे इसप्रकार परिभाषित किया है–

अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।

(साहित्यदर्पण–6/137)

(8) 'चन्द्रिका' किन्त्विति– इसी क्रम में महाकवि, जनक के मिथिला लौटने की विवशता का कथन, राम के माध्यम से जानकी के समक्ष करके, उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि–

अग्निहोत्रियों की यह विवशता होती है कि वे प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल वैवाहिक अग्नि में हवन आदि करते हैं। इसी दैनिक अनुष्ठान की नित्यता के कारण वे अधिक दिनों तक, अपने घर से बाहर नहीं रह पाते हैं, जो वस्तुतः इस विषय में उनकी स्वतन्त्रता को छीनने वाला होता है। इसीलिए गृहस्थाश्रम में रहना अनेक सामाजिक दायित्वों के निर्वहण के कारण, उनके लिए अत्यन्त कष्टकर होता है, जिसमें कुछ लोग उनसे नाराज़ भी हो जाते हैं।

विशेष– (i) महाराज जनक की अग्निहोत्र सम्बन्धी विवशता के कथन से, कवि का स्वयं भी अग्निहोत्री होना अभिव्यंजित हो रहा है।

(ii) नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य तीन प्रकार के कर्मों में अग्निहोत्री के लिए हवन करना नित्य कर्मों में परिगणित होता है।

(iii) दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि एवं आहवनीयाग्नि, इन तीन अग्नियों में से अग्निहोत्री गार्हपत्य अग्नि में दैनिक यज्ञ करते हैं।

(iv) प्रस्तुत श्लोक के पूर्वार्द्ध में काव्यलिंग तथा उत्तरार्द्ध द्वारा पूर्वार्द्ध का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास[1] अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(v) अनुष्टुप् छन्द, गौड़ी रीति, माधुर्य गुण का प्रयोग हुआ है।

(vi) कुछ टीकाकारों ने यहाँ ओज गुण माना है।

व्या.टि.–(i) **प्रत्यवायैः**–प्रति+अव+√इण्+घञ्, तृ.,वि., बहुवचन।

(ii) **आहिताग्नीनाम्–** आहिताः अग्नयः येन, सः, तेषाम्।

(iii) **अपकर्षति–** अप+√कृष्+लट्, प्र.पु., ए.व.। रोकता है।

(iv) **स्वातन्त्र्यम्–** स्वतन्त्रः, तस्य भावः, स्वतन्त्र+ष्यञ्।

संस्कृत व्याख्या– अस्मिन् संसारे ये जनाः अग्निहोत्रयः सन्ति, प्रतिदिनप्रातःसायमग्निहोत्रात्, तेषां कर्मकाण्डस्य नित्यता स्वच्छन्दतां न सहते, अनेनैव कारणेन अग्निहोत्रिणां गार्हस्थ्यं विघ्नैः संकटापन्नं भवति।

(9) 'चन्द्रिका' विश्वम्भरेति– इसके बाद, महर्षि ऋष्यश्रृंग के आश्रम से आए अष्टावक्र रघुकुल के गुरु भगवान् वसिष्ठ द्वारा भिजवाए गए, सन्देश को देवी सीता को सुनाते हुए कहते हैं कि–

सभी का अन्नादि से भरण–पोषण करने वाली, सब कुछ सहन करने वाली, स्वयं भगवती पृथिवी ने आपको जन्म प्रदान किया है एवं प्रजापति अर्थात् ब्रह्मा के समान, विदेहराज जनक आपके पिता हैं, इसके अलावा हे सौभाग्यवती! तुम तो उन रघुवंशी राजाओं की कुलवधू हो, जिस वंश के प्रवर्तक सभी भुवनों को प्रकाशित करने वाले, स्वयं भगवान् भास्कर हैं तथा हमारे समान तपःपूत गुरु हैं।

---

[1]. सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।। मम्मट

विशेष– (i) सीता की मातृपक्ष, पितृपक्ष एवं गुरुपक्ष की दृष्टि से उत्कृष्टता एवं महिमा प्रतिपादित की गयी है।

(ii) जनक की तुलना ब्रह्मा से की गयी है, क्योंकि उनकी विदेहता अर्थात् जीवन्मुक्तता सर्वत्र प्रसिद्ध है।

(iii) उक्त गुणों से विशिष्ट तुम्हें भविष्य में प्राप्त होने वाले, कष्टों के लिए मानसिक एवं शारीरिक रूप से तैयार रहना चाहिए, यह अर्थ भी अभिव्यंजित हो रहा है।

(iv) साथ ही, महर्षि वसिष्ठ की सर्वज्ञता भी प्रतीत हो रही है।

(v) 'जनकः पिता' में पुनरुक्तवदाभास[1], 'प्रजापतिसमः' में उपमा तथा सविता च गुरुवर्यं च में दोनों पदों के बीच में एक ही गुरुत्व धर्म का सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता[2] अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(vi) प्रसाद गुण, लाटी वृत्ति व वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग।

व्या.टि.– (i) विश्वं भरति, इति। विश्व+√भू+खच्, पृथ्वी।

(ii) **नन्दिनि**– √नन्द्+णिच्+णिनि, कर्तरि स्त्रियाम्। सम्बोधने।

(iii) **सविता**– सर्वं जगत् सुवति, प्रेरयति, इति । सूर्य।

(iv) **असूत**– √सू+लुङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन, उत्पन्न किया।

संस्कृत व्याख्या– सर्वस्य विश्वस्य पालनकर्त्री अन्नादिप्रदानेन, एतादृशी विश्वपालिका पृथिवी देवी, भवतीं सीताम् उत्पादितवती। यथा च सर्वेषां पतिः ब्रह्मा प्रतिदिनं विविधस्वभावां सृष्टिम् उत्पाद्य नैव तत्र कुपितो भवति, एवमेव तव पिता जनकोऽपि प्रजापालनतत्परोऽस्ति। हे नन्दिनि! आनन्दमयि सीते! त्वं तेषां पार्थिवानां वधूरपि, येषां राज्ञां कुलेषु विश्वस्य प्रकाशकः भगवान् भास्करो वंशप्रवर्तकोऽस्ति। एवमेव वयं तपःपूताः वसिष्ठसदृशाः गुरवः यस्मिन् कुले स्मः। तेषां प्रसिद्धानां पार्थिवानां वस्तुतः त्वं कुलवधूः स्नुषा वा असि, सर्वथा प्रशंसनीया इति।

---

[1]. आपततो यदर्थस्य पौनरुक्त्येनभासनम्।
पुनरुक्तवदाभासः स भिन्नाकारशब्दगः।।

[2]. पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत्।
एकधर्माभिसम्बन्धः, स्यात्तदा तुल्ययोगिता।।

(10) 'चन्द्रिका' लौकिकानामिति– सीता की मातृकुल, पितृकुल, गुरुकुलादि की दृष्टि से महर्षि वसिष्ठ के संदेश में प्रशंसा किए जाने के बाद, सीता के लिए वीर पुत्र को उत्पन्न करने का आशीर्वाद प्रदान करने पर श्रीराम कहते हैं कि–

हम तो आपके इस आशीर्वाद को प्राप्त करके कृतार्थ हो गए हैं, क्योंकि इस संसार में लौकिक सत्पुरुषों की वाणी तो सांसारिक पदार्थों का अनुसरण करती है, किन्तु जो भूत, भविष्य तथा वर्तमान का हस्तामलकवत् दर्शन कर सकते हैं, इसप्रकार के आद्य ऋषियों की वाणी के पीछे तो 'अर्थ' स्वयं ही दौड़ता है अर्थात् उनके द्वारा कही गयी बातें कभी भी व्यर्थ नहीं होती हैं।

विशेष– (i) भविष्य में सीता की सन्तति के अद्भुत वीर होने की बात का व्यंजना से कथन किया गया है।

(ii) सामान्य साधुओं की अपेक्षा महर्षि वसिष्ठ आदि का उत्कर्ष वर्णित किया गया है। अतः व्यतिरेक[1] अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(iii) कवि का अभिप्राय है कि मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि जो कहते हैं, सांसारिक अर्थ उन्हीं का अनुकरण करते हैं, जबकि सामान्य महात्मा लोग तो वही कहते हैं, जैसा लोक में होता है।

(iv) उक्त कथन में श्रीराम की ऋषियों के प्रति अगाध श्रद्धा की भी अभिव्यक्ति हुई है, जिससे आगामी घटना–चक्र की अपरिहार्यता की ओर भी संकेत किया गया है।

(v) प्रसाद गुण, लाटी रीति व अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

(vi) अप्रस्तुत साधु के वचनों के वर्णन से तथा प्रस्तुत वसिष्ठ के वचनों की प्रशंसा करने से अप्रस्तुतप्रशंसालंकार[2] भी दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **लौकिकानाम्**– लोके विदिताः इति तेषाम्।

---

[1]. उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः।

[2]. क्वचिद् विशेषः सामान्यात् सामान्यं वा विशेषतः।
कार्यान्निमित्तं कार्यं च हेतोरथ समात्समम्।।
अप्रस्तुतात् प्रस्तुतं चेद् गम्यते पंचधा ततः।
अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात्।।

(ii) आद्यानाम्– आद्यौ भावाः, इति आद्याः, तेषाम्।
(iii) अनुवर्तते– अनु+√वृत्+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।
(iv) धावति– √धाव्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, दौड़ता है।

संस्कृत व्याख्या– असारे खल्वस्मिन् संसारे ये सामान्याः साधवः सन्ति, तेषां वाक् सांसारिकानां पदार्थानाम् अनुकरणं करोति, ते खलु तदैव कथयन्ति, यत् संसारे घटति, किन्तु ये मन्त्रद्रष्टारः ऋषयः सन्ति तेषां तु वाणीं अर्थः सांसारिकाः पदार्थाः पृष्ठे धावन्ति, नैव तेषां वाणीतः विपरीतः संसारे घटति किमपि, इत्यर्थः। तेषां कथनं सत्यं वै भवति।

(11) 'चन्द्रिका' जामात्रेति– इसके बाद अष्टावक्र मुनि राम के लिए भगवान् वसिष्ठ का सन्देश देते हुए कहते हैं कि–

हम लोग दामाद ऋष्यश्रृंग के यज्ञ के कारण, यहाँ पर रुके हुए हैं और तुम्हारा अभी–अभी राज्याभिषेक हुआ है। इसलिए तुम राजकार्य के अनुभव की दृष्टि से अभी बालक ही हो। अतः तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम अपनी प्रजाओं के अनुरंजन में ही तत्पर रहो। ऐसा करने से तुम्हें, जिस यश की प्राप्ति होगी, वही वस्तुतः तुम्हारे लिए सर्वश्रेष्ठ धन होगा, क्योंकि रघुवंशी लोग कीर्ति को ही प्रथम स्थान प्रदान करते रहे हैं।

विशेष– (i) महर्षि वसिष्ठ द्वारा राम के लिए प्रजा की प्रसन्नता को प्रथम स्थान पर रखने का निर्देश दिया गया है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक से कवि ने सीता के भावी निर्वासन की ओर भी संकेत किया है। दूसरे शब्दों में, कथा का बीज वपन किया है।

(iii) विशेषणों के साभिप्राय प्रयुक्त होने से परिकर[1] अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है। इन्द्रवज्रा[2] छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iv) बहुत से कारणों के एकत्र होने से समुच्चय[3] अलंकार है। इसीप्रकार तीसरे चरण के प्रति प्रथम एवं द्वितीय चरण के हेतुरूप में प्रयुक्त करने के कारण काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) निरुद्धाः– नि+√रुध्+क्त, रुक गए हैं।

1. विशेषणैर्यत्साकूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः।
2. स्यादिन्द्रवज्रा तभजाः जगौ गः।
3. तत्सिद्धिहेतावेकस्मिन् यत्रान्यत् तत्करं भवेत्। समुच्चयोऽसौ।

(ii) स्याः– √अस+विधिलिङ्, मध्यम पुरुष, एकवचन, होना।
(iii) जामातृयज्ञेन– जामातुः यज्ञेन, षष्ठी तत्पुरुष।

संस्कृत व्याख्या– वयं वसिष्ठादयः अत्र ऋष्यश्रृंगस्य यज्ञकारणेन उपरुद्धाः संजाताः। त्वं च अधुना राजकार्येषु बालबुद्धिरेव असि, अनुभवाभावे, सम्प्रत्येव त्वां राज्यमेतत् प्राप्तम्। अतएव प्रकृतीनाम् अनुरंजने सन्नद्धः भवेत्। यतोहि कीर्तिरेव युष्माकं श्रेष्ठं द्रविणं विद्यते रघुवंशीनां कृते, अतएव सावधानो भवितव्यः।

(12) 'चन्द्रिका' स्नेहमिति– महर्षि वसिष्ठ के सन्देश को आदेश रूप में स्वीकार करते हुए, राम कहते हैं कि–

प्रजा के अनुरंजन के लिए, यदि मुझे अनुराग का, करुणा का, अपने शारीरिक एवं मानसिक सुखों का, यहाँ तक कि प्राणों से भी प्रिय जानकी का भी यदि त्याग करना पड़े तो मुझे लेशमात्र भी पीड़ा नहीं होगी अर्थात् प्रजा के आराधन के लिए मैं कुछ भी करने के लिए सहर्ष तैयार हूँ, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है।

विशेष– (i) रघुकुल की परम्परा लोकाराधन के प्रति, श्रीराम की कटिबद्धता प्रदर्शित हुई है, जिसे अभिव्यक्त करने के क्रम में वे जानकी को भी छोड़ने की बात कह देते हैं, जो भावी घटना की सूचक है।

(ii) यहाँ प्रयुक्त 'मुंचतः' इस एक क्रियापद का स्नेह, दया, सौख्य आदि पदों से सम्बन्ध होने के कारण तुल्ययोगिता अलंकार तथा अनेक क्रियाओं में कारक एक राम के होने से दीपक[1] अलंकार एवं प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, अनुष्टुप् छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) 'जानकीमपि' पद से अर्थापत्ति[2] अभिव्यंजित हो रही है।

(iv)रामराज्य के रूप में लोकतन्त्र की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

व्या.टि.– (i) सौख्यम्– सुख+ष्यञ्।
(ii) आराधनाय– आ+√राध्+ल्युट्, चतुर्थी विभक्ति, एकवचन।

1. अप्रस्तुताप्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते।
अथ कारकमेकं स्यादनेकासु प्रतिबिम्बनम्।।
2. दण्डापूरिकयान्यार्थागमोऽर्थापत्तिरिष्यते।

संस्कृत व्याख्या– प्रजानां प्रसादनाय प्रेम, करुणां सुखं च अथवा यदि सीतामपि त्यजनं कुर्याम्, तदापि मम लेशमात्रिकी पीड़ा न भवेत्।

(13) 'चन्द्रिका' उत्पत्तिरिति– अर्जुन नामक चित्रकार द्वारा अग्नि–शुद्धि पर्यन्त चित्रों को वीथिका में दर्शाया गया है, लक्ष्मण द्वारा ऐसा कहे जाने पर श्रीराम कहते हैं कि–

लक्ष्मण चुप हो जाओ, तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है। वस्तुतः तो सीता अपने जन्म से लेकर ही पवित्र है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति यज्ञ की भूमि से हुई है, फिर इसकी पवित्रता के लिए अग्नि जैसे किसी दूसरे पदार्थ की क्या आवश्यकता है? अपने कथ्य की पुष्टि में राम, तीर्थजल तथा अग्नि जैसे पवित्र पदार्थों का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि तीर्थों के जल तथा अग्नि को कोई भी दूसरा पदार्थ भला कैसे पवित्र कर सकता है?

विशेष– (i) सीता के विषय में राम की भावनाओं के साथ, सीता की परम पवित्रता भी अभिव्यंजित हो रही है।

(ii) यहाँ पर पूर्वार्द्ध में कहे गए तथ्य को ही उत्तरार्द्ध में अन्य प्रकार से कहा गया है। अतः प्रतिवस्तूपमालंकार[1] का प्रयोग हुआ है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक का उत्तरार्द्ध महावीर चरित (4/27) में भी प्रयुक्त हुआ है। दृष्टान्त[2] अलंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(iv) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) पावनान्तरैः– अन्यानि पावनानि तैः। यहाँ पर 'मयूर–व्यंसकादयश्च' सूत्र से समास का प्रयोग हुआ है।

संस्कृत व्याख्या–रामः लक्ष्मणं प्रति कथयति, यत्– लक्ष्मण! त्वया पुनः एवं न कथनीयम्, यतोहि उत्पत्या खलु परिपूता या सीता, तस्याः परिशोधने अग्निः कः? नैव कोऽपि इत्यर्थः। तीर्थस्य जलं वह्निः च स्वयमेव शुद्धौ स्तः। अन्यस्य सकाशाद् अनयोः शुद्धेः आवश्यकता वै न विद्यते।

---

[1]. प्रतिवस्तूपमा तु सा, सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्यद्वये स्थितिः।।

[2]. दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्।

(14) 'चन्द्रिका' क्लिष्टेति– लक्ष्मण द्वारा सीता की अग्नि–शुद्धि पर्यन्त चित्रों के अंकित किए जाने के विषय में कहे जाने पर राम, सीता को सान्त्वना देते हुए कहते हैं कि–

हे यज्ञ से उत्पन्न देवि सीते! इसे सुनकर तुम्हें दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह प्रवाद तो तुम्हारे साथ आजीवन जुड़ गया है। खिन्न मन व्यक्ति का मनोविनोद उसके समीप स्थित, दूसरे लोगों द्वारा किया जाना उचित है, इसीलिए चित्रकार द्वारा बनाए गए चित्रों को दृष्टि में रखकर ही हम लोगों ने तुम्हारे सम्बन्ध में इस अमंगल वाक्य का प्रयोग किया है, इसके पीछे तुम्हें कष्ट पहुँचाने की अभिलाषा यहाँ लेशमात्र भी नहीं है। वस्तुतः तो यह वाक्य तुम्हारे योग्य ही नहीं है, क्योंकि सुगन्धित पुष्प को तो मस्तक पर धारण करना ही सर्वथा उचित है, न कि उसे चरणों से रौंदना अर्थात् मर्दन करना।

विशेष– (i) लक्ष्मण के वाक्य के विषय में सीता के समक्ष सफाई प्रस्तुत करते हुए, उन्हें सान्त्वना प्रदान की गयी है। राम के चरित्र के विनम्रता आदि गुणों की उज्ज्वलता अभिव्यक्त हुई है।

(ii) सीता की तुलना सुगन्धित पुष्प से दी गयी है, जो सिर पर धारण करने योग्य होता है, कवि की कल्पना चित्ताकर्षक बन पड़ी है।

(iii) कुल की मर्यादा की रक्षा करने वाले, लोग ही घर के सदस्यों की खिन्नता एवं प्रसन्नता आदि के विषय में सचेष्ट रहते हैं, इस बात का उल्लेख कवि के गार्हस्थ्य–जीवन की सुखमयता तथा उसके प्रति उनकी दायित्व भावना की ओर संकेत कर रहा है।

(iv) श्लोक के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध में बिम्बप्रतिबिम्बभाव होने के कारण दृष्टान्त अलंकार, प्रसाद गुण, लाटी रीति एवं वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

(v) कुछ विद्वान् यहाँ अर्थान्तरन्यास तथा अन्य यहाँ पर काव्यलिंग मानने के पक्षधर भी हैं।

(vi) 'क्लिष्टः' के स्थान पर 'कष्टं' पाठभेद भी मिलता है।

व्या.टि.– (i) **अनुरंजनीयः–** अनु+ √रंज्+अनीयर्, पु., प्र.वि.,ए.व.।

(ii) **नैसर्गिकी–** नि+ √सृज्+घञ्+ठक्+ङीप्, स्वाभाविक।

संस्कृत व्याख्या– रामः सीतां प्रति कथयति यत्– यः क्लेशयुक्तः जनः भवति, सः परिवारे सर्वैः जनैः अनुरंजनीयः, इति कृत्वा खलु अस्माभिः एतत् कथनं कृतम् आसीत्, किन्तु तत् तु तव योग्यं नास्ति। यतोहि संसारेऽस्मिन् सुरभिणः कुसुमस्य शिरसि स्थापनमेव उचितं वर्तते, नैव तस्य पादाभ्याम् अवघर्षणम्।

(15) 'चन्द्रिका' ब्रह्मादयेति– चित्रवीथिका में बने हुए जृम्भकास्त्रों को प्रणाम करने के लिए सीता को कहते हुए, राम इनकी महिमा का उल्लेख करते हैं कि–

हे देवि! ब्रह्मा आदि जो सर्वाधिक पुरातन आचार्य हैं, उन्होंने वेदों की सुरक्षा के लिए, हजारों वर्षों से भी अधिक दिनों तक घोर तप का आचरण करते हुए, अपने ही तपोरूप तेज के पुँज द्वारा, इन अस्त्रों का दर्शन किया था अर्थात् ये उन्हीं की तपस्या के परिणामस्वरूप आविर्भूत हुए थे।

विशेष– (i) जृम्भकास्त्रों के प्रादुर्भाव की परम्परा का उल्लेख किया गया है, इनकी विशेषता थी कि इनके प्रयोग से सैनिकों को जम्हाई आने लगती थी और वे सो जाते थे।

(ii) इन्हें विश्वामित्र ने देवों की प्रार्थना पर श्रीराम को प्रदान किया था। चित्र में इन्हें राम की स्तुति करते हुए चित्रित किया था।

(iii) 'परःसहस्रम्' पद में'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' सूत्र से द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

(iv) अद्भुत अस्त्रों का वर्णन करने से भाविक[1] तथा महापुरुषों के कीर्तन से उदात्त अलंकार और उपजाति छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) ब्रह्महिताय– ब्रह्मणः हिताय, इति। 'हितयोगे च' सूत्र से यहाँ चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

(ii) **तप्त्वा–** √तप्+क्त्वा, तप करके।

(iii) **अपश्यन्–** √दृश्+लङ्, प्रथम पुरुष, बहुवचन, देखा।

---

[1] अद्भुतस्य पदार्थस्य भूतस्याथ भविष्यतः।
यत् प्रत्यक्षायमाणत्वं तद्भाविकमुदाहृतम्।।

संस्कृत व्याख्या– चतुर्मुखब्रह्मा प्रभृतयः ये प्राचीनाः उपदेष्टारः आचार्याः सन्ति, तैः वेदशास्त्राणां रक्षार्थं वर्षाणां सहस्रात् अधिकं तपः कृत्वा स्वकीयानि खलु तपोरूपाणि तेजांसि इमानि अद्भुतानि अस्त्राणि अवलोकितानि। एषा वै एतेषाम् आविर्भावस्य कथा वर्तते।

(16) 'चन्द्रिका' सम्बन्धिन इति– इसके बाद लक्ष्मण, सीता को चित्रवीथिका में विवाह के अवसर पर जनक तथा राजपुरोहित शतानन्द द्वारा वरपक्ष के वसिष्ठादिकों की पूजा के दृश्य को दिखाते हुए कहता है कि– हे आर्ये! देखिए,

ये आपके पिताश्री महाराजा जनक तथा उनके कुल के पुरोहित गौतम के पुत्र ऋषि शतानन्द, वर के पक्ष के आदरणीय एवं कुल गुरु वसिष्ठ आदि सम्माननीय लोगों की पूजा कर रहे हैं।

विशेष– (i) रघुकुल के शिष्टाचार के अनुसार लक्ष्मण ने इस कुल के सर्वाधिक पूजनीय वसिष्ठ के नाम का प्रथम उल्लेख किया है, जिससे उनका वसिष्ठ के प्रति आदरभाव अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) 'अर्चति' क्रियापद का तात जनक तथा पुरोहित शतानन्द के साथ सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(iii) 'जनक' पद यहाँ जनकवंशियों के लिए प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि जनक कुल का नाम है। सीता के पिता सीरध्वज जनक थे।

(iv) इसीप्रकार जनक कुल के पुरोहित शतानन्द गौतम ऋषि तथा अहिल्या के पुत्र थे।

(v) प्रसाद गुण, लाटी रीति व अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) जनकानाम्– जनकस्य अपत्यानि पुमांसः, तेषाम्।

(ii) **गौतमः–** गौतमस्य अपत्यं पुमान्, गौतमः। गौतम का पुत्र।

(iii) **अर्चति–** √अर्च्+लट्, प्रथम पुरुष, एकवचन। पूज रहा है।

संस्कृत व्याख्या– लक्ष्मणः कथयति सीतां प्रति यत् आर्ये! पश्यतु तावत् चित्रेऽस्मिन् अयं ते पिता, जनकवंशे उद्भवानां पुरोधा गौतमपुत्रः शतानन्दः इत्याख्यः ऋषिः च, वसिष्ठादीन् वरसम्बन्धयुक्तान् पूजयति।

(17) 'चन्द्रिका' जनकानामिति– इसके पश्चात् राम जनक वंश तथा रघुवंशियों के सम्बन्ध की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि–

जनक वंशियों का तथा रघुकुल में उत्पन्न हुए लोगों का विवाह के माध्यम से होने वाला, आपस में यह सम्बन्ध भला किसे प्रिय नहीं है? अर्थात् सभी के मन को भाने वाला है, क्योंकि इस सम्बन्ध में तो स्वयं कुशिक ऋषि को आनन्द प्रदान करने वाले, भगवान् विश्वामित्र स्वयं ही देने वाले तथा स्वयं ही ग्रहण करने वाले हैं।

विशेष– (i) जनक को कन्यादान की प्रेरणा देने वाले तथा राम को धनुष तोड़ने के लिए कहने के कारण यहाँ पर विश्वामित्र को दाता तथा ग्रहीता दोनों ही कहा गया है, जिससे राम की उनके प्रति कृतज्ञता भी अभिव्यक्त हुई है।

(ii) विश्वामित्र का चरित्र वर्णन होने से उदात्तालंकार।

(iii) इसीप्रकार 'कस्य न प्रियः'? का अर्थ सभी को प्रिय है, इस रूप में प्रतीत होने से अर्थापत्ति अलंकार का प्रयोग दर्शनीय है।

(iv) प्रसाद गुण, लाटी रीति, अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) **दाता**–√दा+तृच् । **ग्रहीता**–√ग्रह्+तृच्।

(ii) **रघूणाम्**– रघोः अपत्यानि पुमांसः, रघवः तेषाम्।

(iii) **कुशिकनन्दनः**– कुशिकस्य नन्दनः, विश्वामित्र।

संस्कृत व्याख्या– रामः कथयति यत्– जनकवंशे उद्भवानां रघुवंशे च उत्पन्नानां विवाहसम्बन्धः कस्य जनस्य अभीष्टः न अस्ति? अवश्यमेव प्रियोऽस्ति, इति भावः। यस्मिन् सम्बन्धे स्वयं साक्षात्‌रूपेण विश्वामित्रः कन्यादानकर्ता अस्ति, स्वयं च कन्यादानस्वीकर्ता च वर्तते।

(18) 'चन्द्रिका' समय इति– चित्रवीथिका में चित्रों का अवलोकन करते हुए, राम विवाह के समय को स्मरण करके सीता से कहते हैं–

हे सुन्दर मुख वाली सीते! इस चित्र को देखकर मुझे तो यह वही समय प्रतीत हो रहा है, जब ऋषि शतानन्द द्वारा प्रदान किए गए, मनोरम कंकण से युक्त, तुम्हारे इस हाथ ने मुझे मानो साक्षात् शरीर धारण किए हुए महोत्सव के समान आनन्द प्रदान किया था अर्थात् ऋषि शतानन्द द्वारा प्रदान किए गए तुम्हारे हाथ को ग्रहण करने से साक्षात् महोत्सव के समान ही मुझे असीम आनन्द की प्राप्ति हुई थी।

विशेष– (i) राम का सीता के प्रति सहृदयता एवं अनुरागातिशय अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) साथ ही, कवि की चित्रात्मक शैली प्रशंसनीय है।

(iv) 'आगृहीत' पद का कुछ विद्वानों ने 'ईषद्' अर्थ भी किया है, जो सामयिक एवं साहित्यिक दोनों ही दृष्टियों से अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। मंजुभाषिणी[1] छन्द का प्रयोग हुआ है।

(v) 'वर्तत इव' में क्रियोत्प्रेक्षा तथा 'मूर्तिमान् महोत्सव इव' में गुणोत्प्रेक्षालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(vi) भूतकालिक वृत्तान्त को प्रत्यक्ष करने से भाविक अलंकार।

(vii) यहाँ पर स्मृति नामक भावध्वनि का भी प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) आगृहीतं कमनीयं कंकणं येन सः (बहुव्रीहि)

(ii) **गौतमार्पितः**– गौतमेन अर्पितः, तृतीया तत्पुरुष।

(iii) **समनन्दयत्**–सम्+ √नन्द्+णिच्+लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– हे सुन्दरि! सीते, चित्रम् एतत् दृष्ट्वा मया प्रतीयते यत् अयं सः खलु पूर्वानुभूतः कालः विद्यते, यस्मिन् समये शतानन्दसमर्पितः धृतसुन्दरकरभूषणः कंकणः ते पाणिः शरीरी महोत्सवः इव मां रामं आनन्दितम् अकरोत्। तदानींतनी अनुभूतिः मया इदानीं क्रियते, चित्रमेतत् दृष्ट्वा, इति भावः।

(19) 'चन्द्रिका' जीवत्स्विति– इसी अवसर पर अपने पूर्व के समय को स्मरण करते हुए, राम कहते हैं कि–

वह समय भी कैसा सुन्दर था, जब हमारे पिता जीवित थे और हमारा नया–नया विवाह हुआ था और आयु में कम होने के कारण प्रतिक्षण माताएँ भी हमारी चिन्ता करती थीं, हमें तो किसी भी प्रकार की चिन्ता ही नहीं थी। वास्तव में सुख के वे दिन अब नहीं रहे हैं, व्यतीत हो गए हैं।

विशेष– (i) राम की सहृदयता एवं भावुकता अभिव्यक्त हुई है।

[1] .सजसा जगौ भवति मंजुभाषिणी।

(ii) 'पाद' पद का बहुवचन में प्रयोग 'पूजा' अर्थ में हुआ है, क्योंकि पूजनीय व्यक्ति का कथन करने के लिए 'पाद' शब्द का प्रयोग करने का विधान है।

(iii) कवि की कल्पनाशीलता दर्शनीय है, ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें भी अपने बचपन, वैवाहिक समय और पिता की स्मृति हो आयी है। श्लोक की मार्मिकता एवं हृदयस्पर्शिता उल्लेखनीय है।

(iv) 'दिवस' पद में अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य ध्वनि का प्रयोग है।

(v) वे दिन अपेक्षाकृत अधिक सुखद थे, आज नहीं, इस अर्थ की प्रतीति के कारण परिसंख्या एवं अनेक कारणों का उल्लेख होने से समुच्चय अलंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(vi) प्रसादगुण, लाटी रीति व अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) **गताः–** √गम्+क्त, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

संस्कृत व्याख्या– पूज्यपितरि जीविते सति, नूतने च विवाहे सति, जननीभिश्च क्रियमाणचिन्तानां सति, अस्माकं स्मरणीयाः आनन्दपूर्णाः ते वासराः व्यतीताः खलु, नैव विषयेऽस्मिन् संशयलेशोऽपि वर्तते।

(20) 'चन्द्रिका' प्रतनुरिति– श्रीराम, विवाह के बाद के सीता के बाल–सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

विवाह के उस अवसर पर यह जानकी भी अपने छोटे–छोटे विरल, पुष्प की कलियों के समान सुन्दर दाँतों और कपालों से सुशोभित होती हुई, अपनी मनोरम काली–काली घुँघराली अलकों से रमणीय तथा भोले–भाले मुख को धारण करते हुए, अल्प आयु में अत्यधिक सुन्दर एवं चन्द्रिका के समान गौरवर्ण, अपनी स्वाभाविक चेष्टाओं द्वारा मेरे और मेरी माताओं के कौतूहल को बढ़ाया करती थी।

विशेष–(i)वाल्मीकि रामायण के अनुसार सीता, विवाह के अवसर पर मात्र छः वर्ष की थीं। कवि ने यहाँ उनके मनोहारी बाल्यस्वरूप का अतिशयोक्तिपूर्ण, स्वाभाविक व चित्ताकर्षक वर्णन किया है।

(ii) कौतूहल के लिए अनेक कारणों का उल्लेख होने से समुच्चय अलंकार, 'चन्द्रिका के समान' गौरवर्ण में उपमा और सम्पूर्ण श्लोक में हरिणी[1] छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) उक्त वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि निश्चय ही महाकवि की अपनी भी पुत्री रही होगी, जिसका उन्होंने यहाँ वर्णन किया है।

(iv) दाँतों की विरलता सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार सौभाग्य की सूचक है, इसके उल्लेख से कवि का सामुद्रिक शास्त्र विषयक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है। (छिद्रदन्तः क्वचिन्मूर्खः)

(v) कुछ स्थलों पर 'पतनविरलैः' पाठ भी मिलता है, क्योंकि छः वर्ष की अवस्था में जन्म के दाँत गिरने लगते हैं।

व्या.टि.– (i) **उन्मीलन्–** उत्+ √मील्+शतृ, प्र.वि., ए.व.।

(ii) प्रान्तयोः उन्मीलन्तः मनोहराः कुन्तलाः तैः।

(iii) दशनाः एव कुसुमानि तैः। मुग्धः आलोकः यस्य तत्।

(iv) ज्योतिः अस्ति अस्यामिति, ज्योत्स्नाभिः प्रायाणि तैः।

(v) अकृत्रिमा विभ्रमा येषां तानि अकृत्रिमविभ्रमाणि तैः।

(vi) **दधती–** √धा+शतृ+ङीप्। **अकृत–** √कृ+लुङ्, प्र.पु., ए.व।

संस्कृत व्याख्या– तदानीं सीता एषा सूक्ष्मैः सान्तरालैः कपोलयोः उपरि विलसत् चिकुरैः पुष्पोपमदन्तैः मनोहरकटाक्षयुक्तम् आननं धारयन्ती, शैशवे लावण्यसुकुमारैः चन्द्रिकासदृशैः अकृत्रिमैः विभ्रमैः स्वाभाविकविलासैः इत्यर्थः। प्रियैः शरीरावयवैः मम जननीनां च कौतुकं कृतवती।

(21) 'चन्द्रिका' इंगुदीति– चित्रवीथिका में विविध प्रकार के चित्रों का अवलोकन करते हुए, राम, सीता को निषादराज के साथ, प्रथम भेंट वाले इंगुदी के वृक्ष को दिखाते हुए कहते हैं कि–

---

[1]. हरिणी न्सौ म्रौ स्लौ गो ऋतुसमुद्रऋषयः।
न, स, म, र, स, ल, गु, 6,4,7 यति।

हे देवि, सीते! शृंगवेर पुर नामक नगर में यह वही इंगुदी अर्थात् हिंगोट का वृक्ष है, जिसके नीचे हमारी निषादराज गुह के साथ प्रथम भेंट हुई थी।

विशेष– (i) प्राचीन काल में इंगुदी वृक्ष के फलों से तेल निकाला जाता था, जिसका प्रयोग आश्रमवासी सिर में लगाने तथा दीपक जलाने आदि में करते थे। इससे निषादराज के स्नेहिल स्वभाव की व्यंजना हो रही है।

(ii) कालिदास ने शाकुन्तलम् में कण्वाश्रम वर्णन (1/13) प्रसंग में इंगुदी के फलों को तोड़ने से चिकने पत्थरों का उल्लेख किया है।

(iii) शृंगवेरपुर तथा निषादराज का वर्णन वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड में किया गया है। 'आससाद महाबाहुः शृंगवेरपुरं प्रति।'

(iv) कुछ विद्वानों ने शृंगवेरपुर को मिर्जापुर के पास में बताया है, किन्तु दूसरे कुछ विद्वानों ने इसका खण्डन किया है।

(v) अनुष्टुप् छन्द एवं अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) पादेन पिबति, इति, पादपः, इंगुद्याः पादपः, इति।

(ii) **आसीत्–** √अस्+लङ्, प्रथमपुरुष, एक वचन, था।

(iii) **समागमः–** सम्+आ+ √गम्+घञ्, मिलन, मेलमिलाप।

(iv) **स्निग्धेन–** स्निह्+क्त, तृतीया, एकवचन, प्रेमी स्वभाव से।

संस्कृत व्याख्या– रामः, सीतां प्रति कथयति चित्रे अंकिते इंगुदी–पादपं दर्शयन् यत्– एषः सः खलु दृष्टपूर्वः इंगुदी नाम वृक्षोऽस्ति। यस्मिन् स्थले पूर्वकाले 'शृंगवेरपुर' एतत् नामके नगरे प्रियेण निषाद–राजेन गुहेन सम्मेलनम् अभवत्।

(22) 'चन्द्रिका' पुत्रसंक्रान्तेति– इसी क्रम में चित्रदर्शन कराते हुए लक्ष्मण, सीता से कहते हैं कि–

इक्ष्वाकु वंश के राजाओं द्वारा, जिस व्रत का पालन, अपने पुत्रों को राज्यभार सौंपकर, अपनी वृद्धावस्था में किया जाता है, उसी पवित्र वानप्रस्थ आश्रम में प्रस्थान करने के व्रत को, आर्य राम द्वारा अपने बाल्यकाल में ही धारण कर लिया गया था।

विशेष–(i)राम के त्यागमय चरित्र की ओर संकेत किया गया है।

(ii) इक्ष्वाकु वंशी राजाओं की दीर्घकालीन परम्परा एवं भारतीय संस्कृति का सुन्दर एवं सरल शैली में प्रस्तुतीकरण हुआ है।

(iii) कालिदास ने भी रघुवंश में इस ओर संकेत किया है–

'गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम्।' रघुवंश।

(iv) इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं की अपेक्षा बालक राम की उत्कृष्टता प्रतिपादित करने से व्यतिरेक अलंकार एवं प्रसाद गुण, लाटी रीति और अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) **संक्रान्त–** सम्+ √क्रम्+क्त। **बाल्ये–** बाल+ष्यञ्।

(ii) पुत्रेषु संक्रान्ता लक्ष्मीः येषां ते, तथोक्ताः, तैः।

(iii) वृद्धाश्च ते इक्ष्वाकवः तैः, इक्ष्वाकु+अञ्(लोप), तृ.वि., बहुव.।

संस्कृत व्याख्या– अस्माकं कुले ये इक्ष्वाकवः राजानः सन्ति तेषाम् एतत् कुलव्रतमस्ति, यत् स्वलक्ष्मीं ते ज्येष्ठपुत्राय अर्पयन्ति, अनन्तरं च वनं गत्वा तत्रैव सपत्नीकाः निवसन्ति, किन्तु अनेन आर्यरामेण एतत् कुलव्रतं बाल्यकाले खलु स्वीकृतम् आसीत्, प्रशंसनीयमेतत्।

(23) 'चन्द्रिका' तुरगेति–इसके बाद श्रीराम चित्रदर्शन में भगवती गंगा को देखकर, उनकी उत्कृष्टता एवं भगीरथ के घोर तप का वर्णन करते हुए, अपनी प्रिया सीता से कहते हैं कि–

हे भगवति! महाराज भगीरथ ने अपने शारीरिक कष्टों की चिन्ता किए बिना ही, घोर तप करके, महाराज सगर के अश्वमेध यज्ञ में देवताओं के राजा इन्द्र द्वारा अपहरण किए गए, घोड़े को खोजने में लगे हुए पृथ्वी का भेदन करने वाले और महर्षि कपिल के क्रोध के कारण भस्म हुए, पिता के भी पितामहों अर्थात् सगर के पुत्रों का आपके जल के स्पर्श के कारण ही लम्बे समय के बाद उद्धार हुआ था। इसलिए आपका हमारे कुल के प्रति अत्यधिक उपकार है।

विशेष– (i) कवि ने यहाँ ऐतिहासिक तथ्य की ओर संकेत किया है, जिसमें राम के पूर्वज सगर द्वारा किए गए 99 वें अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को, भयभीत इन्द्र द्वारा कपिल मुनि के आश्रम में छिपा दिया गया था, जिसकी खोज में गए हुए, उनके साठ हजार पुत्र कपिल के कोप

से भस्म हो गए थे। बाद में, भगीरथ ने घोर तप का आचरण करके गंगा को पृथ्वी पर लाकर, अपने पूर्वजों का उद्धार किया था।

(ii) रघुकुल की देवी होने से गंगा के प्रति राम की एवं स्वयं कवि की भी गहन श्रद्धा अभिव्यक्त हुई है, क्योंकि प्रस्तुत कृति में उन्होंने इसे गरिमापूर्ण वर्णन से विशेष स्थान प्रदान किया है।

(iii) उदात्तालंकार एवं हरिणी छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) तुरेण गच्छति,इति, तस्य विचये व्यग्राः ये तान्, इति।

(ii) उर्वीम् भिदन्ति, इति, उर्वीभिदः, **रोषात्**–हेतु में पंचमी प्रयोग।

(iii) **उदतीतरत्**– उत्+ √तृ+णिच्+लुङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iv) **तप्त्वा**– √तप्+क्त्वा, तपस्या करके।

संस्कृत व्याख्या– हे भगवति, 'भगीरथ' एतत् नाम पूर्वजः राजा उपेक्षितशरीरक्लेशः अनेकप्रकारेण तपेन स्व शरीरं संतप्य नृपस्य सगरस्य अश्वमेधयज्ञस्य अश्वं अन्वेषणे निरतान् पृथ्वीविदारकान् पुत्रान् कोपात् महर्षेः कपिलस्य प्रतापेन दग्धान् पितुः पितामहान् सगरतनयान् त्वया गंगया जलैः खलु स्पर्शात् चिरकालानन्तरं उद्धारयामास।

(24) 'चन्द्रिका' अलसेति– तत्पश्चात् भरद्वाज ऋषि द्वारा बताए गए, चित्रकूट के मार्ग पर यमुना के किनारे स्थित वटवृक्ष के नीचे सीता से जुड़ी अपनी स्मृतियों के विषय में राम कहते हैं कि–

प्रिये! मैं उस प्रदेश को भला कैसे भूल सकता हूँ, क्योंकि यहीं पर तो तुम मार्ग की थकान से आलस्य से भरे हुए अत्यधिक कोमल तथा मन को अच्छे लगने वाले, प्रगाढ़ आलिंगनों से दबाए गए, मर्दन की गयी कमल की नाल के समान, दुर्बल तथा कोमल अपने अंगों को मेरे वक्षःस्थल पर रखकर निद्रा को प्राप्त हो गयी थी।

विशेष– (i) प्रस्तुत कृति में महाकवि ने अनेक मधुर संस्मरणों, स्थानों तथा घटनाओं के वर्णन में अपनी कवित्व एवं कल्पना शक्ति का सुन्दर परिचय दिया है। प्रस्तुत श्लोक इस कथ्य की पुष्टि करता है।

(ii) मधुर प्रेम से श्रृंगार रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हो रही है।

(iii) उपमालंकार व मालिनी[1] छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

(iv) वस्तुतः यह कथन सीता के लिए प्रयुक्त हुआ है, जिससे सामाजिकों को रसानुभूति होती है। चित्रात्मक शैली दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i)**कृत्वा**– √कृ+क्त्वा, करके। **संजातः**–सम्+ √जन्+क्त।

(ii) **परिरम्भैः**– परि+ √रभ्+घञ्, तृतीया विभक्ति, बहुवचन।

(iii) **अवाप्ता**– अव+ √आप्+क्त+टाप्, प्राप्त हो गयी।

संस्कृत व्याख्या– यस्मिन् स्थले हे सीते! त्वं मार्गे गमनात् आलस्ययुक्तानि कोमलानि मनोज्ञानि च प्रगाढालिंगनैः कृतमर्दनानि एतादृशानि मर्दितकमलनालतुल्यानि स्वशरीरस्य अवयवान् मम रामस्य वक्षःस्थले स्थापयित्वा निद्राम् अवाप्ता, प्राप्तवती इत्यर्थः।

(25) 'चन्द्रिका' एतानीति– इसके बाद, महाकवि पर्वत की नदियों के किनारे वानप्रस्थियों के तपोवनों के विषय में कहते हैं कि–

ये वे ही पर्वतीय नदियों के तटों पर बनाए गए, वानप्रस्थियों द्वारा आश्रय लिए हुए, वृक्षों से युक्त तपोवन हैं, जिनमें अतिथि–सत्कार में हमेशा ही तत्पर रहने वाले, मात्र मुट्ठी भर नीवार के धान्य को पकाने वाले, गृहस्थ अपने घरों में निवास करते हैं।

विशेष– (i) कवि ने वानप्रस्थियों के तपोवन स्थलों के सुन्दर वर्णन के साथ–साथ उनकी दिनचर्या एवं स्वभाव का कथन किया है।

(ii) अतिथि–सत्कार भारतीय–संस्कृति की बहुत बड़ी विशेषता है, कवि इससे अत्यधिक प्रभावित रहा है, इसीलिए यहाँ इसका उल्लेख किया है। महाकवि का प्रकृति–प्रेम भी अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) प्राचीनकाल में तपोवन एवं आश्रमों की स्थिति नदियों के किनारे ही होती थी, कवि इस तथ्य से सुपरिचित रहा है।

(iv) उदात्त अलंकार एवं वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है।

(v) नीवर–जंगल में स्वयं उत्पन्न होने वाला अन्न धान्य विशेष।

व्या.टि.– (i) **निर्झरिणी**– निर्झर+इनि+ङीप्, नदी।

(ii) गिरीणां याः निर्झरिण्यः तासां तटेषु (तत्पुरुष समास)

[1]. ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

(iii) **गिरिः**–गिरति इति। √गृ निगरणे बाहुलकात् कि प्रत्यय।

(iv) नीवारमुष्टेः पचनं येषां ते। गृहाणि सन्ति येषां ते, गृहिणः।

(v) अतिथिषु साधु आतिथेयम्, तत् परमं येषां ते।

संस्कृत व्याख्या– पर्वतीयनदीतीरेषु वानप्रस्थैः संसेविततरूणि इमानि तानि प्रसिद्धानि तपोवनानि अत्र संस्थितानि सन्ति। येषु तपो विपिनेषु अतिथिसत्कारे निपुणाः मुष्टिपरिमिताः नीवारधान्यपाचकाः संयमिनः गृहस्थाः अत्र निर्मितानि भवनानि (कुटयः इति) सेवन्ते।

(26) 'चन्द्रिका' स्मरसीति– इसके बाद राम अपनी प्रिया सीता को जनस्थान के मध्यभाग में स्थित 'प्रस्रवण' पर्वत एवं वहाँ पर स्थित गोदावरी आदि की स्मृति दिलाते हुए कहते हैं कि–

हे सुन्दरि! सीते, क्या तुम्हें इस प्रस्रवण पर्वत पर लक्ष्मण द्वारा बार–बार की गयी वह सेवा स्मरण है? जिसे प्रसन्नचित्त भाव से हम दोनों द्वारा स्वीकार किया गया था अथवा फिर तुम वहीं पर स्थित अत्यधिक स्वादिष्ट जल से युक्त गोदावरी को याद करती हो? इसके अलावा क्या तुम्हें इस नदी के पास में स्थित वे प्रदेश याद हैं, जहाँ पर हम दोनों ने एक साथ भ्रमण किया था।

विशेष– (i) महाकवि की चित्रात्मक वर्णन शैली दर्शनीय है।

(ii) यहाँ पर महाकवि ने दाम्पत्य–प्रेम, भ्रातृ–प्रेम तथा प्रकृति विषयक प्रेम का मनभावन चित्रण किया है।

(iii) इससे कवि का वन–विहार भी अभिव्यंजित हो रहा है।

(iv) विद्वानों ने यहाँ पर 'स्मरसि' पद का तीन चरणों में प्रयोग होने से 'प्रक्रमभंग' नामक दोष माना है।

(v) भाषा में लालित्य, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, मालिनी छन्द।

व्या.टि.– (i) सुतनु– शोभना तनुः यस्याः सा, तत्सम्बुद्धौ।

(ii) प्रतिविहितसपर्याम् आ समन्तात् सुखेन स्थितौ, तयोः।

(iii) **प्रतिविहित**– प्रति+वि+ √धा+क्त। सु+ √स्था+क–**सुस्थः**।

संस्कृत व्याख्या– हे सुन्दरि! तस्मिन् पूर्वोक्ते प्रस्रवणपर्वते सौमित्रेण सम्यक्कृतसेवाप्रसन्नयोः तानि पूर्वानुभूतानि दिनानि स्मरणं करोषि न वा? एवं च तस्मिन्नेव स्थाने स्वादुसलिलां गोदावरी' एतत् आख्यां नदीम् स्मरसि न वा? तथा च तस्याः खलु गोदावर्याः प्रान्त–भागेषु तटेषु वा आवयोः सीतारामयोः भ्रमणानि स्मरसि न वा? इति।

(27) 'चन्द्रिका' किमपीति– इसी क्रम में श्रीराम फिर से कहते हैं कि हे सीते!–

उन दिनों अनेक प्रहरों वाली रात्रि कैसे बीत जाती थी, हमें पता ही नहीं चलता था, क्योंकि प्रेम की अधिकता तथा स्थान के जनशून्य होने के कारण, हम दोनों अपने गालों को मिलाने के बाद, धीरे–धीरे बिना किसी क्रम के आपस में बातचीत करते हुए, अपनी एक–एक भुजा से परस्पर प्रगाढ़ आलिंगनबद्ध होकर रहते थे और हमारी रात्रि कब व्यतीत हो जाती थी, हमें पता ही नहीं लगता था। हे सीते! क्या तुम्हें अब वह सबकुछ स्मरण है?

विशेष– (i) 'याम' से अभिप्राय यहाँ प्रहर से ग्रहण करना चाहिए। रात्रि को त्रियामा कहा गया है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक को विद्वानों ने संभोग श्रृंगार की रस ध्वनि का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण स्वीकार किया है।

(iii) यथावत् वस्तुवर्णन होने के कारण स्वभावोक्ति अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है। माधुर्य गुण एवं मालिनी छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iv) दाम्पत्य–प्रेम का मर्यादित एवं स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

व्या.टि.– (i) **आसक्ति–** आ+ √संज्+क्तिन्, अनुराग, प्रेम।

(ii) अविरलितौ कपोलौ यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा।

(iii) अशिथिलः प्रगाढ़ः परिरम्भः तस्मिन्, व्यापृतः एकैकः दोः ययोः, तयोः। **व्यरंसीत्**– वि+ √रम्, लुङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iv) **अविदितगतयामा–** अविदिताः गताः यामाः यस्याः सा।

संस्कृत व्याख्या– रामः कथयति सीतां प्रति यत्– हे देवि! तस्मिन् स्थाने वार्तालापमात्रेण खलु सर्वा अपि रात्रिः व्यतीता, इति। वार्तालापप्रसंगोऽपि न किमपि निश्चितं भवति स्म। प्रत्युत् यः कोऽपि प्रसंगः समापतितः तमेव अवलम्ब्य आवयोः परस्परं कपोलयोः सामीप्यात्, क्रमरहितं भाषमाणयोः एकभुजेन सुदृढ़तया समालिंगने समासक्तयोः

रात्रिः एव व्यतीता भवति स्म। किम् त्वं तादृशीम् अभिरामाम् अवस्थाम् स्मरसि, न वा?

(28) 'चन्द्रिका' अथेदमिति– पुनः लक्ष्मण, चित्रित जनस्थान को देखकर, अत्यन्त पीड़ापूर्वक कहता है कि–

इसके बाद उन मारीच आदि दुष्ट राक्षसों ने स्वर्णमृग का कपट रूपी अनुष्ठान करके, ऐसा घटनाक्रम घटित किया, जिसका हमने बदला भी ले लिया, किन्तु फिर भी उसे स्मरण करके आज भी भयंकर पीड़ा की अनुभूति होती है, क्योंकि उस निर्जन जनस्थान में व्याकुल इन्द्रियों वाले आर्य राम के करुणापूर्ण चरित्रों को देखकर तो पत्थर भी रो पड़े तथा वज्र का हृदय भी विदीर्ण हो जाए।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक में राम के कारुणिक रोदन को सुनकर पत्थर के रोने एवं वज्र के हृदय की विदीर्ण होने के वर्णन से करुणरस का पूर्ण परिपाक हुआ है, जिसके कवि अद्भुत कलाकार हैं।

(ii) लक्ष्मण के मन की पीड़ा की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(iii)प्रसादगुण, लाटीरीति व शिखरिणी[1] छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iv) व्यंजना से इसका अभिप्राय है कि भवभूति के करुण चित्रण से सम्पूर्ण मानवता तो द्रवित होती ही है, किन्तु पाषाण एवं वज्र के समान हृदय वाला व्यक्ति भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता है।

(v) यहाँ पर पाषाण में रुदन तथा वज्र के विदीर्ण होने के कारण असम्बन्ध में सम्बन्ध का वर्णन करने से अतिशयोक्ति अलंकार।

(vi) भवभूति के शिखरिणी छन्द की आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।[2]

व्या.टि.– (i) **विधि–** वि+√धा+कि (उपसर्गे घोः कि) सूत्र से।

(ii) **विकलकरणैः–** विकलानि करणानि इन्द्रियाणि येषु तानि, तैः।

(iii) **कनक–** कनति इति कन्+वुन्, स्वर्ण, सोना।

---

1. रसै रुद्रैश्छिन्ना यमन सभलागः शिखरिणी।
2. भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरंगिणी।
घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति।।

(iv) यहाँ प्रयुक्त 'छद्मविधिना' पद व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि छद्मनः विधिना विग्रह से षष्ठी होगी, जबकि 'कर्मणि च' सूत्र 'कर्मणि षष्ठी' के साथ समास का निषेध करता है।

(v) **दलति–** √दल्+लट्, प्रथमपुरुष, एक वचन, फटता है।

(vi) **रोदिति–** √रुद्+ लट्, प्रथमपुरुष, एक वचन, रोता है।

संस्कृत व्याख्या– तदनन्तरं दुराचारयुक्तैः राक्षसैः स्वर्णमृगस्य कपटस्य अनुष्ठानेन यदिदं सीतापहरणं कृतं, तत् शोधितमपि अस्मान् पीड़यति, तदानींतने समये निर्जने दण्डकारण्ये खिन्नेन्द्रियैः आर्यस्य भ्रातुः महोदयस्य व्यापारैः पाषाणः अपि द्रवति, रोदनं करोति वा, कुलिशस्य च अन्तःकरणं विदीर्यते, नैवास्मिन् संशयलेशोऽपि वर्तते।

(29) 'चन्द्रिका' अयमिति– इसके बाद, राम द्वारा रोके गए, अपने शोक के आवेग के चित्र को दिखाकर, वर्णन करते हुए फिर से लक्ष्मण कहता है कि–

आर्य यह आपका ही चित्र है, जिसमें सीता के वियोग के कारण गहन दुःख के कारण रुदन करते हुए आपके अश्रुओं की बिखरी हुई बूँदों वाला, बहता हुआ धाराओं का प्रवाह, टूटी हुई मोतियों की लड़ियों के समान, पृथिवी पर गिरते हुए अश्रुसमूह के साथ पृथिवी पर लोट रहा है। साथ ही, लम्बे समय तक हृदय में व्याप्त आवेश को जब आपने रोकने का प्रयास किया, तो वह फड़कते हुए आपके होठों एवं नथुनों से सहज ही अनुमान के योग्य हो रहा है।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक में पूर्व में वर्णित सीता के वियोग की असह्यतारूप वस्तु ध्वनि का प्रयोग हुआ है।

(ii) यहाँ उत्तरार्द्ध में अनुमान[1] अलंकार तथा सम्पूर्ण पद्य में शिखरिणी छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक से राम की धैर्यशालिता एवं गम्भीरता के साथ–साथ सहृदयता की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

---

1. अनुमानं तु विच्छित्या ज्ञानं साध्यस्य साधनात्।

(iv) अश्रुओं के प्रवाहरूप में पृथ्वी पर फैलने का उल्लेख होने से अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(v) शोक के आवेग से राम के ओष्ठ एवं नासापुटों के स्फुरण के वर्णन से स्वभावोक्ति अलंकार का प्रयोग भी उल्लेखनीय है।

(vi) अश्रुओं की बूँदों की उपमा टूटी हुई मोतियों की लड़ी से दी गयी है, जो अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रही है, अतः उपमालंकार।

व्या.टि.– (i) **विसर्पन्**– वि+√सृप्+शतृ, फैलता हुआ।

(ii) **त्रुटितः**– √त्रुट्+क्त। **निरुद्धः**– नि+√रुध्+क्त, रोका गया।

(iii) **आध्मात**– आ+√ध्मा+क्त। **उन्नेयः**– उत्+√नी+यत्।

(iv) **लुंठति**– √लुण्ठ्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, लोट रहा है।

संस्कृत व्याख्या– **आर्य! एतदपि पश्यतु भवान्, अत्र निरन्तरपातैः विशेषेण सर्पन् खण्डितबिन्दुः असौ अश्रुसमूहः छिन्नो भूत्वा, मुक्तामय–हारः इव पृथिवीं निपतति, इतस्ततः च प्रसरति, इत्यर्थः। दीर्घकालं यावच्च पूरितहृदयः आवेगः दुःखातिशयः इति, संयमितोऽपि कम्पमानौ–ष्ठनासिकत्वेन अन्येषां अनुमेयः वै जायते सारल्येन।**

(30) 'चन्द्रिका' तत्कालमिति– इसके बाद राम, अपने भाई लक्ष्मण को सम्बोधित करके कहते हैं कि– वत्स!

उस समय तो प्रियतमा सीता के वियोग से उत्पन्न होने वाला, शोकरूपी भयंकर रूप से जला डालने वाला, तीक्ष्ण होने पर भी यह अग्नि, शत्रु से बदला लेने की इच्छा के कारण किसी प्रकार सहन कर लिया गया, किन्तु फिर भी मन में पके हुए, हृदय के मर्मस्थल पर विद्यमान, फोड़े के समान इस समय भी भयंकर पीड़ा का प्रसार कर रहा है।

विशेष– (i) हृदय के मर्मस्थल पर पके हुए फोड़े की कवि की परिकल्पनारूप उपमा वस्तुतः मार्मिक एवं तलस्पर्शी बन पड़ी है, जो भावों की अभिव्यक्ति में भी सहायक सिद्ध हुई है। उपमालंकार।

(ii) इसीप्रकार इष्टजन के वियोग से उत्पन्न होने वाले, दुःख में अग्नि का आरोप किया गया है। अतः रूपक अलंकार दर्शनीय है।

(iii) प्रहर्षिणी[1] छन्द, गौड़ी रीति, ओज गुण का प्रयोग हुआ है।

(iv) 'तत्कालं' में 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' से द्वितीया विभक्ति।

(v) इसीप्रकार प्रतिकार की अभिलाषा को, दुःख सहन करने के हेतुरूप में प्रयुक्त किया है, अतः काव्यलिंग अलंकार।

व्या.टि.– (i) **तत्कालम्**– सः चासौ कालः, उस समय में।

(ii) प्रियः यः जनः, तस्य यः विप्रयोगः, तस्मात् जन्म यस्य सः।

(iii) **विपच्यमानः**– वि+√पच्+यक्+शानच्, पकाया जाता हुआ।

(iv) **तनोति**– √तनु विस्तरणे+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(v) **विसोढः**– वि+√सह्+क्त। **मनसि**– मनस्+स.वि., ए.व.।

संस्कृत व्याख्या– **प्रियजनस्य सीतायाः वियोगेन जन्म यस्य, सः शोकानलः तीक्ष्णः अपि प्रतिकारेच्छया तस्मिन् समये येन केनापि प्रकारेण सह्यः कृतः, किन्तु भूयोऽपि विपाकं गच्छन् सः खलु हृदयस्य गूढस्थाने मर्मस्थाने वा स्फोटकः इव सम्प्रति पीड़ां विस्तारयति।**

(31) 'चन्द्रिका' एतस्मिन्निति– इसके बाद, चित्रित पम्पासरोवर की ओर सीता का ध्यान आकर्षित करते हुए राम कहते हैं कि–

हे सीते! इसी पम्पा नामक सरोवर में मद के कारण प्रमत्त एवं मधुर ध्वनि करने वाले, मल्लिकाक्ष हंसों के पंखों की वायु द्वारा प्रकृष्ट रूप से काँपते हुए तथा मन को अच्छे लगने वाले, बड़े–बड़े नालदण्डों से युक्त, श्वेत और नीले कमलों वाले, इस सरोवर के प्रदेशों को, मैंने आँसुओं के गिरने तथा निकलने की अवधि के मध्य के समय में समानरूप से देखा था, क्योंकि आँसुओं के आँखों में भरे होने के कारण तो उन्हें देखा नहीं जा सकता था।

विशेष– (i) महाकवि का अभिप्राय है कि राम पम्पा सरोवर के कुमुदों तथा नीलकमलों के सौन्दर्य का अवलोकन, आँसुओं के निकलने तथा गिरने के बीच की अवधि में ही कर पाते थे, जिससे उन कमलों में रंग विषयक कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता था, वे एक जैसे ही दिखते थे।

---

[1]. म्रौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्।

(ii) पम्पासरोवर की पुष्प समृद्धि का वर्णन वाल्मीकि रामायण तथा कादम्बरी आदि संस्कृत कृतियों में अनेकशः किया गया है।

(iii) 'मल्लिकाक्ष' एक विशेष प्रकार का हंस होता है, जिसके चरण और चोंच लाल तथा शरीर का रंग श्वेत होता है। इसी को राजहंस एवं धार्तराष्ट्र भी कहा गया है।

(iv) उत्प्रेक्षालंकार, ओज गुण, गौड़ी रीति एवं प्रहर्षिणी छन्द।

(v) महाकवि का प्राणिविज्ञान के साथ, वनस्पति विज्ञान विषयक सूक्ष्म ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(vi) सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में अश्रुओं के लिए प्रायः 'बाष्प' पद का ही प्रयोग किया गया है।

व्या.टि.– (i) **व्याधूतः**– वि+आ+ √धू+क्त, हिलाए गए, कम्पित।

(ii) मदेन कलं कूजितं येषां ते तथोक्ताः, तथाविधानाम्।

(iii) **स्फुरत्**– √स्फुर्+शतृ। **संदृष्टाः**–सम्+ √दृश्+क्त,प्र.वि, ब.व.।

संस्कृत व्याख्या– एतस्मिन् पम्पासरोवरे मदेन कलाः मधुराः ये मल्लिकाक्षाः नाम हंसविशेषाः तेषां पक्षैः व्याधूतानि प्रकम्पितानि मनोहराणि बृहन्नालयुक्तानि श्वेतकमलानि, नीलोत्पलानि च तैः विशेषाः ये प्रदेशाः मया रामेण अश्रुक्षरणनिःसरणमध्ये खलु संदृष्टाः अवलोकिताः।

(32) 'चन्द्रिका' दिष्ट्येति– इसके पश्चात् श्रीराम, सीता को हनुमान् का चित्र दिखाते हुए उनके विषय में कहते हैं कि–

हे सीते! सौभाग्यवश ये वे ही माता अंजना के आनन्द में वृद्धि करने वाले, विशाल भुजाओं वाले, पवनपुत्र हनुमान् हैं, जिनके असीमित पराक्रम से हम लोग तथा सभी तीनों लोक कृतार्थ हो गए हैं।

विशेष– (i) श्रीराम का हनुमान् के प्रति कृतज्ञभाव अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि सीता को खोजने तथा उसके बाद की युद्धादि क्रियाओं में उनकी महती भूमिका रही है।

(ii) पुत्र की अनेक प्रकार की बालसुलभ चेष्टाओं तथा पराक्रम को देखकर माता का प्रसन्न होना स्वाभाविक है, जिसकी ओर कवि ने यहाँ संकेत किया है। मातृ–मनोविज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है।

(iii) महापुरुष के चरित्र का वर्णन होने से उदात्त अलंकार तथा पथ्यावक्त्र छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **महाबाहुः**– महान्तौ चासौ बाहू, यस्य सः।

(ii) **वर्धनः**– √वृध्+ल्यु, । **वीर्येण**– वीर+यत्, तृ.वि., ए.व।

(iii) कृतम् च अस्य अस्ति, इति कृती, कृति+इनि।

संस्कृत व्याख्या– रामः स्वप्रियां सीतां प्रति कथयति यत्– एषः खलु सौभाग्येन विशालभुजः प्रसिद्धः स्वमातृहर्षवर्धकः हनुमतोऽस्ति। यस्य पराक्रमेण वयं रामादयः त्रीणि च भुवनानि सिद्धमनोरथाः संजाताः।

(33) 'चन्द्रिका' सोऽयमिति– इसी क्रम में लक्ष्मण माल्यवान् पर्वत की ओर संकेत करते हुए कहता है कि–

यह देखिए, अर्जुन के वृक्षों के पुष्पों से सुगन्धित, यह माल्यवान् नाम का, वही पर्वत है, जिसकी चोटी पर नीला चिकना और नया–नया मेघ विश्राम कर रहा है। लक्ष्मण ने इतना कहा ही था कि इसी बीच में राम कहते हैं कि– ठहरो, ठहरो, अब मैं इसके आगे सुनने तथा इन चित्रों को देखने में समर्थ नहीं हूँ, क्योंकि इस समय मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मेरा पूर्व में अनुभव किया गया, महाराज जनक की पुत्री सीता का वह वियोग फिर से लौट आया है।

विशेष– (i) माल्यवान् वस्तुतः प्रस्रवण पर्वत की श्रेणी का ही एक भाग है, जिसकी ओर लक्ष्मण ने यहाँ संकेत किया है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक लक्ष्मण तथा राम, इन दो पात्रों के कथनों से पूरा हुआ है। कवि की यह विशेषता इस कृति में अनेक स्थलों पर देखी जा सकती है।

(iii) यहाँ कवि ने राम के भावी वियोग की सूचना दी है, अपने वियोगरूप प्रयोजन को संकेत करके चित्रदर्शन प्रकरण वस्तुतः यहीं पर समाप्त हो जाता है।

(iv) कवि के प्रकृति–प्रेम की भी अभिव्यक्ति हुई है।

(v) 'सम्भ्रम' अर्थ में 'विरम' पद का दो बार प्रयोग हुआ है।

(vi) 'प्रत्यावृत्तः इव' में उत्प्रेक्षालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(vii) मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) **प्रत्यावृत्तः**– प्रति+आ+ √वृत्+क्त, लौट आया है।

(ii) **विरम**–वि+ √रम्+लोट्, मध्यमपुरुष, एक वचन, रुको, ठहरो।

(iii) **विप्रयोगे**– वि+प्र+ √युज्+घञ्, स.वि., ए.व., वियोग में।

(iv) **तोयवाहः**– तोयं जलं वहति, इति, तोय+ √वह्+अण्, मेघ।

(v) **श्रयति**– √श्रीश्रयणे+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, ठहरता है।

संस्कृत व्याख्या– **लक्ष्मणः कथयति यत्–एषः अर्जुनकुसुमगन्ध–युक्तः दृश्यमानः माल्यवान् नाम प्रसिद्धः पर्वतोऽस्ति, पर्वते यस्मिन् अयं स्निग्धः श्यामलः, नव्यश्च जलदः शृंगम् आश्रयते। तदैव मध्ये रामः कथयति यत् लक्ष्मण! विरमतु तावत्, सम्प्रति अहम् अनन्तरम् एतत् चित्रं द्रष्टुं न पारयामि, यतोहि मे प्रतिभाति यत् मम प्रियायाः जानक्याः पूर्वानुभूतः वियोगः पुनः आगतवान्, इव। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्।**

(34) 'चन्द्रिका' जीवयन्निति– चित्रदर्शन से पूर्णगर्भा सीता, दोहद उत्पन्न होने के साथ थक भी जाती है, तो राम उसे आराम करने हेतु अपना सहारा लेने के लिए कहते हैं कि–

हे सीते! चित्रदर्शन के कारण भयभीत होने तथा इससे होने वाले परिश्रम से तुम थक गयी हो, इसलिए पसीने की बूँदों से युक्त, चन्द्रमा की किरणों के छूने से पिघलने वाली, चन्द्रकान्त मणियों से निर्मित माला के समान, शोभा सम्पन्न, इस अपनी भुजा को मेरे गले में डाल दो, जो मेरे लिए मानो जीवन प्रदान करने वाली है।

विशेष– (i) महाकवि की आलंकारिक भाषा–शैली दर्शनीय है।

(ii) राम का सीता के प्रति असीम प्रेम अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) महाकवि का मणिविषयक ज्ञान भी प्रदर्शित हुआ है, क्योंकि चन्द्रकान्त मणि की विशेषता है कि वह चन्द्रमा की किरणों के सम्पर्क में आने से, जल–कणों का प्रस्रवण करने लगती है।

(iv) सीता को पसीना आने में दो कारणों का उल्लेख किया गया है। **प्रथम**, चित्रदर्शन से होने वाले भय की अनुभूति। **द्वितीय**, चित्रों को देखने के कारण होने वाली थकान का होना।

(v) **कवि का प्रसूति–विज्ञान** भी अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि गर्भवती स्त्री की विशेषता है कि वह बहुत जल्दी थक जाती है।

(vi) पसीने से युक्त भुजा की सम्भावना में चन्द्रकान्त मणियों से निर्मित माला उपमान का प्रयोग है,जो अत्यधिक मनभावन बन पड़ा है।

(vii) उत्प्रेक्षालंकार, रथोद्धता छन्द, वैदर्भी रीति, माधुर्य गुण।

व्या.टि.– (i) **जीवयन्**– √जीव्+णिच्+शतृ, जीवित करता हुआ।

(ii) **अर्प्यताम्**– √ऋ+णिच्+यक् (कर्मणि)आ.+लोट्, प्र.पु., ए.व।

(iii) साध्वसश्च श्रमश्च स्वेदबिन्दवः चेति तैः सह, अस्याः चित्तं।

(iv) इन्दोः इमे ऐन्दवाः, मयूखाः तैः चुम्बितः, अतएव स्यन्दी यः।

संस्कृत व्याख्या– **भय–आयासोत्पन्नः घर्मबिन्दुसहितः, चन्द्र–सम्बन्धिनः यानि किरणानि तैः स्पृष्टः जलस्रावयुक्तः चन्द्रकान्तमणि–विलासः शोभासम्पन्नः मां उच्छ्वासयन् इव अयं भुजः मम कण्ठे निधीयतामिति हे मम प्रिये!।**

(35) 'चन्द्रिका' विनिश्चेतुमिति– इसके बाद, सीता के स्पर्श की सुखद अनुभूति के विषय में श्रीराम कहते हैं कि–

हे प्रियतमे! तुम्हारे प्रत्येक स्पर्श से मेरी इन्द्रियों के समूह को पूर्णरूप से निश्चेष्ट बना देने वाला, यह विशिष्ट प्रकार का विकार उत्पन्न हो रहा है, जो मेरे चैतन्य को भ्रान्त कर रहा है और संकुचित सा कर रहा है अथवा प्रकाशित कर रहा है। इस स्थिति में मैं यह निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि यह सुख है या फिर दुःख है? अथवा यह मूर्च्छा है, या फिर निद्रा की स्थिति है? अथवा फिर इन सभी से हटकर, क्या यह किसी विष का विकार है, या कोई उन्माद प्रभावी हो रहा है?

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक को दशरूपककार ने शृंगार रस के उदाहरण के रूप में दिया है।

(ii) यहाँ 'विकारः' तथा 'चैतन्यम्' पदों का भ्रमयति च सम्मी–लयति च के साथ सम्बन्ध होने से दीपक तथा निश्चय न कर पाने के कारण संदेह अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) प्रसाद गुण, लाटी रीति एवं शिखरिणी छन्द का प्रयोग।

(iv) महाकवि की सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकता अभिव्यक्त हुई है।

(v) श्रीराम के आन्तरिक भावों तथा आनन्दातिरेक को प्रदर्शित करने के लिए कवि ने मानो चित्र ही प्रस्तुत कर दिया है।

व्या.टि.– (i) **विनिश्चेतुम्**–वि+निः+√चि+तुमुन्, निश्चय करने में।

(ii) **प्रमोहः**– प्र+√मुह्+घञ्। **विसर्पः**– वि+√सृप्+घञ्।

(iii) **परिमूढः**– परि+√मुह्+क्त। **विकारः**– वि+√कृ+घञ्।

(iv) **भ्रमयति**– √भ्रम्+णिच्+लट्, प्रथमपुरुष, एक वचन।

(v) **सम्मीलयति**–सम्+√मील्+णिच्+लट्, प्रथमपुरुष, एक वचन।

(vi) **चैतन्यम्**– चेतना+ष्यञ्, (स्वार्थे), चेतना को।

संस्कृत व्याख्या– **हे सीते! भवत्याः प्रत्येके स्पर्शे निश्चेष्टकरण–समूहः चेतोऽन्यथा खलु भावः वस्तुतः मम चैतन्यम् अस्थिरयति, मुद्रयति च। अयम् विकारः किल अनुकूलवेदनीयं इति वा दुःखम् प्रतिकूल–वेदनीयमिति वा, मूर्च्छा वा स्वापः वा गरलप्रसरणं वा उन्मादः वा इति नैव निर्णेतुं शक्योऽस्मि, अस्मिन्नेव क्षणे।**

(36) 'चन्द्रिका' म्लानस्येति– इसके पश्चात् सीता के मधुर वचनों की प्रशंसा करते हुए, श्रीराम कहते हैं कि–

हे कमल के समान नेत्रों वाली! सीते! तुम्हारे द्वारा बोले गए, ये मधुर वचन वस्तुतः मेरे मुरझाए हुए, जीवनरूपी पुष्प को फिर से खिला देने वाले हैं तथा मन को पूर्णरूप से तृप्ति प्रदान करने वाले हैं। इतना ही नहीं, मेरी सभी इन्द्रियों को मोहित कर देने वाले एवं कानों के लिए अमृत के समान आनन्द प्रदान करने वाले हैं और मेरे मन के लिए तो ये रसायन के समान हैं।

विशेष– (i) रसायन[1] यहाँ औषधि–विशेष के लिए प्रयुक्त हुआ है। सीता के वचनों में रसायन का आरोप करने से रूपक अलंकार।

(ii) इसीप्रकार 'सरोरुहाक्षि' में उपमालंकार, प्रसाद गुण, लाटी रीति, वसन्ततिलका छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) सुवचनानि के स्थान पर वचोऽमृतानि पाठ भी मिलता है।

व्या.टि.– (i) सरोरुहे इव अक्षिणी यस्याः सा, तत्सम्बुद्धौ।

[1]. यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद् रसायनम्। चरक

(ii) सरोरुह+अक्षि+षच्+ङीष्, कमल के समान नेत्रों वाली!

(iii)**सुवचनानि**–शोभनानि वचनानि,**कर्णामृतानि**–कर्णयोः अमृतानि।

(iv) **म्लानस्य**–√म्लै (म्ला)+क्त, ष.वि., ए.व.। मुरझाए हुए का।

(v) **जीवकुसुमस्य**– जीवः एव कुसुमं तस्य, जीवनरूपी पुष्प का।

संस्कृत व्याख्या– **हे कमलनेत्रे! तव इमानि मधुरवाक्यानि शुष्क–प्रायस्य मम जीवनपुष्पस्य आह्लादकानि, सर्वथा तृप्तिकराणि, अखि–लानाम् इन्द्रियानां विह्वलतायाः दूरीकृतानि, श्रोत्राभ्यां कृते अमृततुल्यानि आनन्ददायिनि, अन्तःकरणस्य कृते खलु रसायनतुल्यानि हितकराणि सन्ति। सीतायाः वचनानां प्रशंसा मुक्तकण्ठेन कृता रामेणाऽत्र।**

(37) 'चन्द्रिका' आविवाहेति– इसके बाद, सीता अपने चारों ओर दृष्टिपात करते हुए कुछ खोजती है तो राम उसे कहते हैं कि–

विवाह के समय से लेकर, बाल्यकाल में, घर में तथा उसके पश्चात् यौवनावस्था में एवं यहाँ तक कि वन में भी तुम्हारे लिए निद्रा का जो साधन रहा है, ऐसा दूसरी किसी भी स्त्री के द्वारा सेवा न किया गया, राम का यह बाहु तुम्हारा तकिया (उपधान) है, इसलिए निद्रा के लिए अन्य कुछ साधन खोजना बन्द करो।

विशेष– (i) राम सीता का विवाह अल्पायु में ही हो गया था।

(ii) 'अन्यथा अनुपाश्रितः' पद से राम के एक पत्नीव्रत की अभिव्यंजना एवं अन्योन्य गहन–प्रेम की अभिव्यक्ति भी हो रही है।

(iii) राम की भुजा में उपधान का आरोप होने तथा प्रस्तुत प्रकरण में उपयोगी[1] होने से 'परिणाम' अलंकार एवं रथोद्धता छन्द।

(iv) 'आविवाहसमयात्' में आङ् पद का मर्यादा अर्थ में प्रयोग।

व्या.टिं.–(i)**अनुपाश्रितः**–न उपाश्रितः, इति, उप+आ+√श्रि+क्त।

संस्कृत व्याख्या– **रामः सीतां प्रति कथयति यत्– हे सीते! विवाहकालात् बाल्यावस्थायां गृहे, तत्पश्चात् च तारुण्यावस्थायां वन–प्रदेशे अरण्ये वा, निद्रायाः कारणम्, त्वद्भिन्नया अन्यया स्त्रिया यः**

[1]. विषयात्मतयारोप्ये प्रकृतार्थोपयोगिनि।
परिणामो भवेत्तुल्याधिकरणो द्विधा।।

कदापि न उपाश्रितोऽस्ति, अभवत् वा एतादृशः सोऽयं रामस्य बाहुः त्वत्कृते शिरोपधानम् वर्तते, माऽन्यत्रान्वेषय किमपि इति भावः।

(38) 'चन्द्रिका' इयमिति— तदनन्तर सीता राम के वक्षःस्थल पर अपना सिर रखकर सो जाती है, तो उसे देखकर राम कहते हैं कि—

वक्षःस्थल पर सो रही यह सीता, मेरे घर की लक्ष्मी है। मेरे दोनों नेत्रों के लिए यह अमृतमयी शलाका है। इसके शरीर का यह स्पर्श वस्तुतः गाढ़े चन्दन के रस के समान आनन्द प्रदान करने वाला है। इसीप्रकार मेरे गले में पड़ी हुई, इसकी यह भुजा शीतल तथा कोमल मोतियों की माला है। अन्त में कहते हैं कि इस सीता का भला क्या प्रिय नहीं है? तभी अगले क्षण ही कहते हैं कि यदि इसका कुछ असह्य है, तो केवल वियोग ही है, जिसे किसी भी परिस्थिति में सहन नहीं किया जा सकता है।

विशेष—(i) सीता के प्रति राम के अनन्य दाम्पत्य—प्रेम की अभि—व्यंजना हो रही है। महाकवि की तलस्पर्शी भावाभिव्यक्ति दर्शनीय है। ये विचार वस्तुतः भवभूति के अपनी पत्नी के विषय में प्रतीत होते हैं।

(ii) प्रस्तुत श्लोक के प्रथम तीन चरणों में उपमेय एवं उपमान में अभेद की स्थापना से रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(iii) आचार्य वामन द्वारा काव्यालंकार की सूत्रवृत्ति में इस श्लोक को उद्धृत किया है। इसके चतुर्थ चरण के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। शिखरिणी छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) कवि ने इस श्लोक के तुरन्त पश्चात् पताका स्थानक[1] की सुन्दर योजना की हैं, जब विरह पद के तुरन्त बाद प्रतिहारी प्रवेश करके कहती है कि महाराज! यह (विरह) उपस्थित हो गया है।

(v) सीता का अनेक प्रकार से उल्लेख करने से उल्लेखालंकार तथा रूपक एवं अतिशयोक्ति अलंकारों का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(vi) राम का अभिप्राय है कि सीता की सभी वस्तुएँ अत्यधिक प्रिय हैं, इसका तो केवल वियोग ही अत्यन्त असह्य है।

---

[1]. यत्रार्थे चिन्तितेऽन्यस्मिंस्तल्लिंगोऽन्यः प्रयुज्यते।
आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानकं तु तत्।

व्या.टि.—(i) **अमृतवर्तिः**— अमृतनिर्मिता वर्तिः(शाकपार्थिवादि समास)
(ii) **शिशिरमसृणः**— शिशिरः चासौ मसृणः च, शीतल एवं कोमल।
(iii) **मौक्तिकसरः**— मुक्ता एव मौक्तिकम्, तस्य सरः।

संस्कृत व्याख्या— एषा सीता मम रामस्य गृहे श्रीः अस्ति, इयं च मम नेत्रयोः अमृतवर्तिका अस्ति, अयं च सीतायाः संसर्गः वस्तुतः गात्रे गहनचन्दनरसोऽस्ति, असौ च अस्याः सीतायाः गलप्रदेशे मम भुजः वस्तुतः शीतलः कोमलश्च मुक्तायाः हारः, वस्तुस्थितिस्तु एषा यत् अस्याः जानक्याः किमपि वस्तु न अतिशयं प्रियम्, इति न। सर्वमेव प्रियतमं इति भावः यदि असह्योऽस्ति तु अस्याः, स तु विरहो वै वर्तते।

(39) 'चन्द्रिका' अद्वैतमिति— इसके बाद, सीता, निद्रा में स्वप्न के अन्तर्गत आर्यपुत्र को पुकारती है तो राम उसके अंगों का स्पर्श करते हुए दाम्पत्य—प्रेम की विशेषताओं का कथन करते हुए कहते हैं कि—

जो दाम्पत्य—प्रेम सुख एवं दुःख में एक समान रहता है, सभी प्रकार की अवस्थाओं में एक दूसरे का अनुकरण करता है, जिस प्रेम में हृदय को असीम शान्ति की प्राप्ति होती है, जिसमें प्राप्त होने वाला आनन्द वृद्धावस्था में भी कम नहीं होता है तथा जो विवाह से लेकर मृत्युपर्यन्त सभी कालों में परिपक्व स्नेह के सारतत्त्व के रूप में विद्यमान रहता है। इसप्रकार के अनेक गुणों से सम्पन्न अनिर्वचनीय दाम्पत्य—प्रेम को सौभाग्यवश कुछ ही लोग प्राप्त कर पाते हैं।

विशेष— (i) दाम्पत्य—प्रेम की सुन्दर परिभाषा प्रस्तुत की है, जिसमें वासना के लिए कोई स्थान ही नहीं है।

(ii) कुछ विद्वानों ने इसमें सौजन्यभाव तथा अन्यों ने सुख—दुःख में अद्वैत की स्थिति को स्वीकार किया है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक को दशरूपककार ने अनुकूल नायक के उदाहरणरूप में प्रस्तुत किया है।

(iv) काव्यलिंग, समुच्चय एवं अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(v) प्रस्तुत श्लोक से इस अर्थ की भी अभिव्यंजना हो रही है कि— यह नाटक सुख तथा दुःख दोनों में ही अद्वैत भाव लिए हुए है,

यह सभी कार्यावस्थाओं से परिपूर्ण है एवं इसके देखने से सहृदय को परमशान्ति और आनन्द की अनुभूति होती है, ऐसा कल्याणकारी नाटक सौभाग्य से ही देखने व सुनने को मिलता है।

व्या.टि.– (i) **अद्वैतम्–** द्विता+अण्(स्वार्थे), द्वैतम्, न द्वैतमिति।

(ii) **आवरणात्ययात्–** वरणं च अत्ययश्च इति, तस्मात् आ इति।

(iii) **स्नेहसारे–** स्नेहस्य सारः, तस्मिन्, प्रेम के सारतत्त्व में।

(iv) **सुमानुषस्य–** शोभनं मानुषं यस्मिन् तत्, तस्य। भाग्यशाली।

(v) **अनुगतम्–** अनु+√गम्+क्त। **परिणत–** परि+√नम्+क्त।

(vi) **प्रार्थ्यते–** प्र+√अर्थ्+णिच्+लट् (कर्मवाच्य), प्र.पु., ए.वचन।

संस्कृत व्याख्या– यदपि दाम्पत्य प्रेम भवति, तत् सुखे दुःखे वा उभये काले एकरूपं भवति सर्वासु अवस्थासु अनुसारि भवति, यस्मिन् मनसः विश्रान्तिः, दाम्पत्यस्नेहे रतिः वृद्धया अवस्थया अपरिहरणीयो भवति, यत् दाम्पत्यं समयक्रमेण आविवाहात् मृत्युपर्यन्तं लज्जापगमात् परिपक्वे सति, स्नेहसारतत्त्वे तिष्ठति, परिनिष्ठितं भवति इति भावः। एतादृशस्य पूर्वोक्तस्य दाम्पत्यस्य प्राप्तिः कोऽपि सौभाग्यः जनः खलु केनापि प्रकारेण च प्राप्नोति नैव सर्वे जनाः एतत् लभन्ते।

(40) 'चन्द्रिका' हा हा धिगिति– गुप्तचर दुर्मुख द्वारा सीता के विषय में, रावण के घर रहने के अपवाद को सुनकर, राम प्रलाप करते हुए कहते हैं कि–

हाय, अत्यधिक खेद का विषय है कि वैदेही का दूसरे अर्थात् रावण के घर में रहने के कलंक को वहीं लंका में, जो विस्मयकारक उपायों अग्निशुद्धि आदि के माध्यम से शान्त कर दिया गया था, इसका वही कलंक इस समय हमारे भाग्य की प्रतिकूलता के कारण, ठीक उसीप्रकार फिर से फैल गया है, जैसे कुत्ते के द्वारा काटे जाने पर उसका विष कुछ समय बाद अपना दुष्प्रभाव प्रकट करता है।

विशेष– (i) सीता के अपवाद विषयक कलंक की उपमा कुत्ते के विष से अत्यधिक मनभावन बन पड़ी है, इससे कवि के प्राणिविज्ञान विषयक ज्ञान की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) वाल्मीकि रामायण के अनुसार अपने सतीत्व की परीक्षा के लिए सीता को अग्नि में प्रवेश करके लंका में ही इसका प्रमाण देना पड़ा था।

(iii) कुत्ते के विष की विशेषता होती है कि वह काटे जाने के अनेक वर्षों बाद भी रोगी के शरीर में फैलता है। इस रोग को 'रेबीज़' संज्ञा दी गयी है। इसमें रोगी पागल भी हो जाता है।

(iv) 'अलर्कं विषमिव' में उपमालंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा प्रहर्षिणी छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(v) सीता विषयक अपवाद को सुनकर राम के मन की खिन्नता अभिव्यक्त हुई है।

व्या.टि.– (i) देवस्य दुर्विपाकः, तस्मात्, वि+√पच्+घञ्–विपाकः।

(ii) परस्य गृहाः, तत्र वासः ततः दूषणम्, परगृहवासदूषणम्।

(iii) **आलर्कम्–** अलर्कस्य इदम्, अर्थ में अण् प्रत्यय का प्रयोग।

संस्कृत व्याख्या– हा, हा अतीव कष्टमस्ति, यत् सीतायाः यत् प्रसिद्धं अन्यस्य रावणस्य भवने निवासविषयकः दोषः आश्चर्यजनकैः उपायैः तत्र लंकायां दूरीकृतम् आसीत्, तदेव सम्प्रति दुर्भाग्यवशात् भूयोऽपि रोगेण प्रमत्तस्य कुक्कुरस्य विषमिव सर्वत्र प्रसक्तम् अस्ति।

(41) 'चन्द्रिका' सतामिति– सीता विषयक अपवाद के विषय में सुनकर श्रीराम को इसका कोई उपाय सहसा नहीं सूझ पाता है, तब अन्त में वे प्रजा के रंजन को ही प्राथमिकता देते हुए कहते हैं कि–

वस्तुतः अपने प्रत्येक प्रयास द्वारा प्रजा को प्रसन्न रखना ही सज्जनों का प्रमुख धर्म है, इसी धर्म का ही पिताश्री दशरथ ने मुझे तथा अपने प्राणों को छोड़ते हुए पूर्वकाल में निर्वाह किया था। अतः मेरे लिए लोकरंजन को दृष्टिगत करते हुए ही निर्णय करना उचित है।

विशेष– (i) राम ने सीता की अपेक्षा लोकरंजन को मुख्यता प्रदान की है, अपने पिता के कार्य को प्रमाण मानते हुए, सीता के त्यागने विषयक निर्णय की व्यंजना से अभिव्यक्ति हो रही है।

(ii) उत्तरार्द्ध में प्रयुक्त विशेष से पूर्वार्द्ध के सामान्य कथन का समर्थन करने से अर्थान्तरन्यास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(iii) 'माम्' तथा 'प्राणान्' इन दो वस्तुओं का 'मुंचता' पद से सम्बन्ध होने के कारण तुल्ययोगिता अलंकार दर्शनीय है।

(iv) इसीप्रकार दीपक, काव्यलिंग अलंकारों के साथ–साथ, वैदर्भीरीति, प्रसादगुण, सरलभाषा एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) **आराधनम्**– आ+ √राध्+ल्युट्, प्रसन्न करना।

(ii) **मुंचता**– √मुंच्+शतृ। **पूरितम्**– √पूर्+क्त, पूरा किया।

संस्कृत व्याख्या– **येन केनापि प्रकारेण लोकस्य अनुरंजनं ये सज्जनाः पुरुषाः सन्ति, तेषां उत्कृष्टं अनुष्ठानमस्ति, तत् व्रतं वस्तुतः मम पित्रा दशरथेन मां स्व च प्राणान् अपि त्यजता परिसमाप्तम् पूर्वकाले। अतः मत् कृते अपि सम्प्रति लोकरंजनमेव उचितमस्ति।**

(42) 'चन्द्रिका' यत्सावित्रैरिति– इसी क्रम में पूर्व में भेजे गए महर्षि वसिष्ठ के सन्देश के विषय में भी चिन्तन करते हुए, अपने वंश की पवित्रता के सम्बन्ध में श्रीराम कहते हैं कि–

इस संसार में प्रसिद्ध सूर्यवंशी, जिन राजाओं ने अपने श्रेष्ठ एवं पवित्र आचरण को प्रकाशित किया था, उसी वंश पर यदि मेरे किसी अनुचित कार्य के कारण, किसी भी प्रकार की मलिनता आ जाती है, तो ऐसी स्थिति में पुण्यों से रहित पापी मुझ राम को धिक्कार है।

विशेष– (i) सूर्यवंशी राजाओं के चरित्र की प्रशंसा की गयी है।

(ii) यहाँ प्रयुक्त 'कश्मला' पद से अभिप्राय मलिनता या कलंक से ग्रहण करना चाहिए। राम का अन्तर्द्वन्द्व भी प्रदर्शित हुआ है।

(iii) विषादन और उल्लास अलंकार एवं शालिनी छन्द।

व्या.टि.– (i) **स्यात्**– √अस्+विधिलिङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **लोकश्रेष्ठैः**– लोकेषु श्रेष्ठः, तैः। **कश्मला**–√कश्+कल, मुट्।

संस्कृत व्याख्या– **संसारे ये उत्तमाः पवित्रैः चरित्रविशेषैः श्रेष्ठाः नरेशाः आसन्, तैः कारणेन यः सूर्यवंशः प्रदीपितः, तस्मिन् वंशे यदि मम रामस्य कारणेन काऽपि मलिनता स्यात्, तर्हि मम पुण्यहीनस्य रामस्य जीवनं धिगस्ति, नैव मम जीवनस्य अधिकारोऽस्ति, इति अभिप्रायः।**

(43) 'चन्द्रिका' त्वयेति– इसप्रकार अनेक प्रकार का ऊहापोह करने पर, राम मन ही मन दुःखी होकर, सीता को त्यागने का निर्णय करते हुए कहते हैं कि–

हे देवि! जिस तुम्हारे द्वारा यह संसार पवित्र हो रहा है, उसी तुम्हारे विषय में लोगों की बातें इसप्रकार अपवित्र हैं। यह अत्यधिक दुःख का विषय है कि जिस तुम्हारे द्वारा यह सम्पूर्ण संसार सनाथ है, वही तुम इस समय स्वामी से रहित होकर विपत्तिग्रस्त अर्थात् अनाथ होओगी।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक में अत्यधिक भारी मन से सीता को त्यागने विषयक राम के निर्णय की व्यंजना से अभिव्यक्ति हो रही है।

(ii) सीता की पवित्रता एवं उत्कृष्टता प्रतिपादित की गयी है।

(iii) विरोधाभास अलंकार एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iv) वस्तुतः राम तो परमब्रह्म हैं तथा सीता पराशक्ति हैं, इसीलिए उनसे संसार के पवित्र होने की बात कही गयी है।

(v) कुछ विद्वानों ने यहाँ विभावना अलंकार भी माना है।

व्या.टि.– (i) **पुण्य**– √पू+यत्। **उक्तिः**– √वच्+क्तिन्।

(ii) **विपत्स्यसे**– वि+ √पत्+लृट्, आत्मने, मध्यमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– **हे सीते! त्वया एतानि भुवनानि पवित्राणि भवन्ति, त्वद् विषये खलु एषः लोकः अपवित्राणि वचनानि कथयति, अतीव दुःखस्य विषयोऽयम्, त्वया सीतया जनाः संसारेऽस्मिन् सनाथाः सन्ति, किन्तु सम्प्रति त्वं खलु अनाथा इव आपत्तिं लप्स्यसे।**

(44) 'चन्द्रिका' इक्ष्वाकुरिति– गुप्तचर दुर्मुख द्वारा पौरवासियों को दुर्जन कहने पर, श्रीराम कहते हैं कि उन्हें दुर्जन कहना उचित नही हैं क्योंकि वे कभी भी दुर्जन नहीं हो सकते हैं–

वस्तुस्थिति तो यह है कि प्रजा को इक्ष्वाकुवंशियों का शासन अभिलषित है, किन्तु इस पवित्र कुल में दुर्भाग्यवश यह लोकापवाद उत्पन्न हो गया है, इसलिए प्रजा को इसमें दोष देना उचित नहीं है, क्योंकि सीता की पवित्रता आदि की परीक्षा करने के लिए, जो अग्नि–परीक्षा जैसे अलौकिक उपायों का सहारा लंका में लिया गया था, वह

तो अयोध्यावासियों से इतनी अधिक दूर था। वे उसे स्वयं अपनी आँखों से देख ही नहीं सके थे। अतः इसप्रकार के अद्भुत उपाय पर इतनी दूर रहते हुए भला कौन विश्वास करेगा?

विशेष– (i) श्रीराम का निष्पक्ष चरित्र प्रदर्शित हुआ है।

(ii) महाकवि की भाग्यवादिता एवं तार्किक शैली दर्शनीय है।

(iii) प्रजा के अविश्वास का कारण उपाय का दूरवर्ती होना बताने से काव्यलिंग अलंकार एवं इन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iv) इक्ष्वाकु वंश से अभिप्राय दिलीप, रघु, अज, दशरथ जैसे उत्कृष्ट गुण सम्पन्न प्रजापालक राजाओं की ओर संकेत से है।

(v) सीता को दस माह पर्यन्त रावण के यहाँ रहना पड़ा था। यहाँ उसी ओर इंगित किया गया है।

व्या.टि.– (i) **अभिमतः**– अभि+ √मन्+क्त, अभीष्ट, सहमत।

(ii) **प्रत्येतु**– प्रति+ √इण्+लोट् (विध्यर्थे), प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iii) **जातम्**– √जनी प्रादुर्भावे+क्त, उत्पन्न हुआ।

संस्कृत व्याख्या– **इक्ष्वाकूणां वंशः कुलमिति, वस्तुतः प्रकृतीनां अभीष्टमस्ति, नैव विषयेऽस्मिन् संशयलेशोऽपि वर्तते, किन्तु दुर्भाग्यवशात् एतत् निन्दायाः कारणम् उत्पन्नम्, यतोहि अग्निपरीक्षासमये यदपि अलौकिकं कर्म अभवत्, तत्तु लंकाद्वीपे सम्पन्नम्, अतएव तस्मिन् विषये कोऽपि जनः कथं प्रत्येतुं विश्वसितुं वा शक्नोति?**

(45) 'चन्द्रिका' शैशवादिति– दोहद पूरा करने के बहाने से राम ने सीता को वन में छोड़ने का निर्णय कर लिया, इसी कुत्सित कार्य की ओर संकेत करते हुए, वे अपनी गोद में सो रही सीता को सम्बोधित करके कहते हैं कि–

मैं बाल्यकाल से अत्यन्त प्रेमपूर्वक पाली गयी, कभी भी मुझसे बिछुड़कर अलग न रहने वाली, अपनी इस प्रियतमा सीता को ठीक उसीप्रकार मरने के लिए वन में छोड़ रहा हूँ, जैसे कोई कसाई अपने ही घर में पाली गयी, भोली–भाली चिड़िया को अत्यन्त धोखे से किसी कसाई को मारने के लिए सौंप देता है।

विशेष– (i) स्वयं की उपमा कसाई से देते हुए, राम ने अपने को अत्यन्त नृशंस और सीता को धोखा देने वाला बताया है, क्योंकि बाद में तो उसे योजनाबद्ध तरीके से पूर्व में बताए बिना ही लक्ष्मण के माध्यम से वन में छुड़वा दिया गया था।

(ii) इस कृत्य को करते हुए श्रीराम की अन्तर्वेदना एवं मजबूरी दोनों की सुन्दर एवं प्रभावी अभिव्यक्ति हुई है।

(iii) 'सौनिक' पद यहाँ माँसभक्षी, चिड़ियों के शिकारी के लिए प्रयुक्त हुआ है, जिसे प्रासंगिक तथा सटीक कहा जा सकता है।

(iv) पूर्णोपमालंकार एवं रथोद्धता छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(v) प्रभृति के योग में शैशवात् पद में पंचमी विभक्ति का प्रयोग।

(vi) 'सौहृद' शब्द के अपाणिनीय होने पर भी अनेक कवियों द्वारा बहुप्रयुक्त होने से विद्वानों ने हेय नहीं माना है।

व्या.टि.– (i) **शकुन्तिका**– शकुन्ति+टाप्+कन्(अनुकम्पायाम्)

(ii) **सौहृदात्**– शोभनं हृदयं यस्य सः, तस्य भावः, तस्मात्।

(iii) **परिददामि**– परि+ √दा+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– **बाल्यकालाद् आरभ्य पालितां स्नेहात् पृथगा–श्रयरहितां एतां प्रियां दयितां सीतां वधिके 'कसाई' इति गृहपालितां शकुन्तिकां इव यथा स्यात् तथा, छलेन कालाय प्रयच्छामि।**

(46) 'चन्द्रिका' अपूर्वकर्मेति– इसप्रकार के निकृष्ट कर्म करने के कारण राम, स्वयं को पापी एवं अछूत मानते हुए, सीता को स्पर्श करना भी उचित न मानकर, उसके सिर के नीचे स्थित अपने हाथ को खींचते हुए कहते हैं कि–

हे भोलीभाली सीते! निकृष्टतम कार्य करने वाले, चाण्डाल के समान, मुझे तुम छोड़ दो, मेरे ऊपर विश्वास करना, तुम्हारे लिए उचित नहीं है, क्योंकि वस्तुस्थिति तो यह है कि तुमने चन्दन के भ्रम से मुझ जैसे भयंकर परिणाम वाले, विष के वृक्ष का ही आश्रय ले लिया है।

विशेष– (i) राम ने अपनी उपमा, व्यंजना द्वारा विषवृक्ष से दी है, जो अत्यन्त प्रभावी बन पड़ी है, लिंगसाम्य दर्शनीय है।

(ii) भोली–भाली निर्दोष सीता को इसप्रकार अकारण त्यागते हुए प्रतीत होता है कि राम को स्वयं से ही घृणा हो गयी है, तभी तो वे स्वयं को कसाई तथा विषवृक्ष कहकर, अपनी निन्दा कर रहे हैं, उनकी आन्तरिक गहन पीड़ा की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। करुण रस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

(iii) चन्दन की भ्रान्ति से विषवृक्ष के आश्रय के असम्भव होने से निदर्शना तथा पूर्वार्द्ध में प्रयुक्त 'विमुंच' के प्रति उत्तरार्द्ध के हेतु होने से काव्यलिंग अलंकार का प्रभावी प्रयोग हुआ है।

(iv) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा अनुष्टुप् छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है। व्यंजना शक्ति की प्रधानता भी परिलक्षित हो रही है।

(v) चाण्डाल भी कर्म तथा जन्म की दृष्टि से दो प्रकार का होता है। राम ने यहाँ स्वयं को कर्म से चाण्डाल माना है, क्योंकि सीता का परित्याग चाण्डाल कर्म के समान ही है।

व्या.टि.– (i) **दुर्विपाकम्**– दुष्टो विपाको यस्य तम्, विषवृक्षम्।

(ii) **विमुंच**– वि+ √मुंच्+लोट्, मध्यम पुरुष, एकवचन, छोड़ो।

(iii) **दुर्विपाकः**– दुर्+वि+ √पच्+घञ्। **भ्रान्ति**– √भ्रम्+क्तिन्।

संस्कृत व्याख्या– हे सरले, सीते! विलक्षणनिकृष्टकर्मनिष्पादकं मां रामं त्वं त्यज, यतोहि त्वं चन्दनवृक्षस्य भ्रान्त्या दुष्परिणामं विषवृक्षं आश्रितासि, नैव उचितमेतत्, घोरहानिः कारणेन, इति भावः ।

(47) 'चन्द्रिका' दुःखेति– शयन करती हुई सीता का परित्याग करने का निश्चय करने के बाद, राम प्रलाप करते हुए कहते हैं कि–

ऐसा प्रतीत होता है कि एक बार मूर्च्छित हुए, मेरी चेतना वापस इसीलिए आयी है, क्योंकि मुझे सीता के त्याग विषयक इस गहन पीड़ा को अनुभव करना ही था, जबकि इस चेतना ने फिर से आकर, तो वस्तुतः मर्मस्थल पर आघात करने वाले, मेरे प्राणों ने हृदय में वज्र से निर्मित कील के गड़ जाने के समान कार्य किया है।

विशेष– (i) राम के हृदय की गहन पीड़ा तथा घनी व्यथा की सुन्दर एवं कारुणिक अभिव्यक्ति हुई है, जिससे उनके उज्ज्वल चरित्र की रक्षा हो सकी है।

(ii) प्राणों का मानवीकरण किया गया है। राम का अभिप्राय है कि यदि मूर्च्छा की स्थिति में ही प्राणों ने मेरे इस शरीर को छोड़ दिया होता तो मुझे इसप्रकार का दुराचरण एवं पाप नहीं करना पड़ता।

(iii) प्रस्तुत श्लोक के उत्तरार्द्ध में उपमा तथा पूर्वार्द्ध में उत्प्रेक्षा अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **वज्रकीलायितम्**– वज्रकीलम् इव आचरितम्।

(ii) **मर्मोप...**–मर्माणि उपघ्नन्ति, ये तैः। मर्मन्+उप+ √हन्+णिनि।

(iii) **संवेदनाय**– सम्+ √विद्+ल्युट्,(भावे), चतुर्थी वि, एकवचन।

(iv) वज्रकील+क्यङ्+क्त, (भावे क्त) नामधातु का प्रयोग।

(v) **उपघातिभिः**– उप+ √हन्+णिनि(ताच्छील्ये) तृ.वि., ब.वचन।

संस्कृत व्याख्या– क्लेशस्य अनुभवाय खलु दशरथनन्दने रामे चैतन्यम् अर्थात् प्राणाः संज्ञा वा आगता, वस्तुतस्तु मर्मस्थलघातकैः असुभिः मम हृदये कुलिशशंकुवत् व्यवहृतम्, इति। रामस्य वेदनाधिक्यं प्रतीयते अनेन श्लोकेन।

(48) 'चन्द्रिका' ते हि मन्ये, इति– अनेक प्रकार से प्रलाप करते हुए श्रीराम अरुन्धती आदि सम्माननीय जनों का नाम लेकर, उन्हें अपने द्वारा ठगा हुआ बताते हैं, किन्तु अगले ही क्षण कहते हैं कि–

ये तो सभी वास्तव में महापुरुष हैं, निष्पाप हैं। इसलिए पापी, अकृतज्ञ तथा दुष्ट मुझे तो इनका नाम लेने का भी अधिकार नहीं है, क्योंकि मेरे द्वारा नाम लेने से तो मानो ये भी सभी मेरे पाप से युक्त हो जाएँगे, ऐसा मैं मानता हूँ।

विशेष– (i) सीता के प्रति उसका त्यागरूप अपकार करने के कारण राम ने स्वयं को कृतघ्न तथा दुरात्मा कहा है।

(ii) 'पाप्मना' पद में 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' से तृतीया विभक्ति।

(iii) काव्यलिंग एवं उत्प्रेक्षालंकार, अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग।

व्या.टि.– (i) कृतं हन्ति, इति, **कृतघ्नः**, कृत+√हन्+क्त।

(ii) **स्पृशन्ते**– √स्पृश्+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

(iii) **महात्मानः**– महान् चासौ आत्मा, येषां ते, प्र.वि., बहुवचन।

संस्कृत व्याख्या– मया अरुन्धत्यादीनां महापुरुषाणां नामापि नैव ग्रहीतव्यम्, यतोहि ते पूर्वोक्ताः मनस्विनः अकृतज्ञेन पापात्मना मया रामेण उच्चारितनामधेयाः पापेन मम सम्बध्यन्ते, इति अहम् उत्प्रेक्षे।

(49) 'चन्द्रिका' विश्रम्भादिति– इसी क्रम में पुनः राम कहते हैं–

अत्यधिक क्रूर कर्म करने वाला मैं, पूर्णरूप से विश्वास के साथ मेरे वक्षःस्थल पर सोई हुई तथा पूर्ण गर्भ के उद्वेग के कारण काँपते हुए गर्भभार वाली, अपने घर की प्रिय लक्ष्मीस्वरूपा प्रिय पत्नी को अपने से अलग करके, माँस को खाने वाले, हिंसक प्राणियों को 'बलि' के समान दे रहा हूँ।

विशेष– (i) लोकाराधन के समक्ष सीता के त्याग का निर्णय करने वाले, राम की गहनतम पीड़ा की कारुणिक अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) 'बलिमिव' में उपमालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है तथा प्रस्तुत श्लोक में प्रहर्षिणी छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iii) कवि का प्रसूतिविज्ञान विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(iv) यहाँ प्रयुक्त 'बलि' पद विशेष व्यंजना लिए हुए है, क्योंकि कहीं भी बलि के प्रावधान में स्वार्थ निहित होता है।

व्या.टि.– (i) **उन्मुच्य**– उत्+√मुच्+क्त्वा (ल्यप्), त्यागकर।

(ii) **विस्रम्भात्**– वि+√स्रम्भ्+घञ्, तस्मात्, पंचमी विभक्ति, ए.व.।

(iii) आतंक....गुर्वीम्–आतंकेन स्फुरितः कठोरः गर्भः तेन गुर्वीम्।

(iv) क्रव्यम् अत्ति, इति क्रव्याः, तेभ्यः,माँसाहारी हिंसकों के लिए।

(v) **जातनिद्राम्**– जाता निद्रा यस्याः ताम्, निद्रा को प्राप्त हुई।

संस्कृत व्याख्या– क्रूरोऽयं रामः विश्वासात् वक्षःस्थले स्थित्वा प्रसुप्ताम् उद्वेगेन कम्पितः पूर्णः गर्भः तेन गर्भेण गुर्वी भारसम्पन्ना या सा, ताम् स्वगृहस्य लक्ष्मीं श्रियमिव स्वपत्नीं परित्यज्य, मांसभोजिभ्यः बलिम् इव अर्पयामि।

(50) 'चन्द्रिका' ऋषीणामिति– इसप्रकार राम द्वारा अनेक प्रकार से प्रलाप करने व सीता के चरणों में नमन करने पर, नेपथ्य से ब्राह्मणों के अनिष्ट की सूचना देते हुए, यमुना नदी के किनारे कठोर तप करने वाले, मुनियों के प्रतिनिधि मण्डल के आने की सूचना देते हुए कहा जाता है कि–

कालिन्दी नदी के तट पर रहने वाले एवं कठोर तप में लीन मुनिसमूह के रूप में अर्थात् अनेक संख्या में, जिसे यहाँ मुनियों का प्रतिनिधि–मण्डल भी कहा जा सकता है, 'लवण' नामक राक्षस से भयभीत होकर, आपके समक्ष उपस्थित हुआ है।

विशेष– (i) लवणासुर वस्तुतः रावण की बहन कुम्भीनसी का मधु नामक दैत्य से उत्पन्न पुत्र था, जो मुनियों की तपस्या में अनेक प्रकार से व्यवधान करता रहता था, उन्हें पीड़ा पहुँचाता था। यहाँ उसी ओर संकेत किया गया है।

(ii) अनुप्रास अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, अनुष्टुप् छन्द।

(iii) स्तोमः पद का प्रयोग यहाँ समूह अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

व्या.टि.– (i) यमुनायाः तीरे वसन्ति, इति, तेषाम्।

(ii) उग्रं तपः येषां तेषाम्, मुनीनाम्। लवणेन त्रासितः।

(iii) **उपस्थितः**– उप+√स्था+क्त, **त्रातारम्**– √त्रै+तृच्, द्वि.वि,।

संस्कृत व्याख्या– नेपथ्यात् कथ्यते यत् –कालिन्दी नाम नद्याः तीरे ये वसन्ति, तेषाम् कठोरतपश्चारिणां मुनीनां समूहः प्रतिनिधिमण्डलः वा 'लवण' नाम राक्षसस्य त्रासितः त्रातारम् त्वाम् रामम् निकषे आगतः।

(51) 'चन्द्रिका' जनकानामिति– इसप्रकार 'लवण' राक्षस द्वारा मुनियों को सताए जाने के विषय में सुनने के बाद, उसके विनाश के लिए शत्रुघ्न को भेजने का तत्काल निर्णय लेकर, श्रीराम भगवती वसुन्धरा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि–

महाराजा जनक के कुल तथा रघुवंश के अनेक राजाओं के कुल की, जो सीता सभीप्रकार से कल्याण करने वाली है तथा पवित्र आचरण वाली है, जिसे आपने देवताओं के पवित्र–यज्ञ द्वारा उत्पन्न किया है, इसप्रकार के गुणों से सम्पन्न इस सीता की कपृया आप देखभाल कीजिएगा।

विशेष– (i) सीता के प्रति राम के पवित्रतम भावों की अभिव्यक्ति हुई है। साथ ही, माता पृथिवी से उसकी रक्षा करने का विनम्र निवेदन एवं आग्रह भी किया गया है, जिसका निर्वहण सप्तम अंक में हुआ है।

(ii) यहाँ पूर्वार्द्ध में सीता पर वंश के मंगल का आरोप करने के कारण रूपक अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं अनुष्टुप् छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii)सीता के लिए 'यत्' पद का विधेय 'वंशमंगल' का अनुकरण करते हुए, नपुंसकलिंग में प्रयोग किया गया है।

व्या.टि.– (i) **अजीजनः**– √जनीप्रादुर्भावे+ णिच्+ लुङ्, म.पु.,ए.व.।

(ii) **गोत्रमंगलम्**– गोत्रस्य मंगलम्। देवाः इज्यन्ते, यत्र तस्मिन्।

(iii) **देवयजन**– देव+√यज्+ल्युट्। देवताओं का यज्ञ।

संस्कृत व्याख्या– **रामः सीतायाः मातरं वसुन्धरां सम्बोधयन् कथयति यत्– जनकस्य वंशस्य उद्भवानां रघुवंशस्य उद्भवानां च यत् सीतारूपं सम्पूर्णं कुलकल्याणस्वरूपाम् पवित्राचरणां सुशीलां वा सीतां पवित्रे देवयज्ञक्षेत्रे उत्पादितवती। अतएव त्वमेव अस्याः जानक्याः अवधानं सुरक्षां वा कुरु।**

•••

'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या, संस्कृत व्याख्या

द्वितीय अङ्क

पृष्ठभूमि– प्रस्तुत अंक के आरम्भ में विदुषी आत्रेयी तथा वन देवता वासन्ती के परस्पर वार्तालाप से कवि ने **शुद्ध–विष्कम्भक** का प्रयोग करते हुए, अपवाद के कारण सीता का त्याग, शम्बूक वध के लिए राम का फिर से दण्डकारण्य में आगमन एवं यज्ञ में सीता की स्वर्णमयी मूर्ति का प्रयोग आदि बीती हुई तथा शम्बूक वध के बाद पंचवटी में आगमन, जैसी आने वाली घटनाओं की सूचना दी है। ये दोनों ही पात्र यहाँ संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं।

ध्यातव्य है कि शम्बूक की घटना का नियोजन, नाटककार ने राजकार्य में व्यस्त राम को मुक्ति दिलाकर, प्रजारंजन के लिए ही दण्डक वन में भेजा है तथा वहाँ पर पूर्व स्थलों को देखकर, सीता विषयक उनके गहन प्रेम को अत्यन्त प्रभावी शैली में उद्घाटित किया गया है। प्रथम एवं द्वितीय अंक की घटना में लगभग बारह वर्षों का अन्तराल है। इस बीच कुश और लव बड़े होकर वेद के अध्ययन में निरत हैं, लक्ष्मण का भी पुत्र हो गया है तथा इतने लम्बे समय में प्रकृति में भी पर्याप्त परिवर्तन हो चुका है।

वस्तुतः यहाँ आकर राम का बारह वर्षों तक अन्दर ही अन्दर सिसकता हुआ, सीता विषयक प्रेम प्रदीप्त हो उठा है और वे यहाँ राजा राम से पति राम के रूप में उभर कर आए हैं। साथ ही, कवि को इस अंक में प्रकृति के कठोर तथा कोमल दोनों ही पक्षों का वर्णन करने का अवसर भी प्राप्त हुआ है, जो उनके गहन प्रकृति–प्रेम का परिचायक कहा जा सकता है।

(1) **'चन्द्रिका' यथेच्छेति**– पथिक वेष में तापसी आत्रेयी का वन की देवी वासन्ती अर्घ्य बिखेरकर स्वागत करते हुए कहती है कि–

हे देवि! इस वन में जो भी फल, फूल एवं पल्लव आदि हैं, वे सभी आपकी इच्छा के अनुसार उपभोग के योग्य हैं। इनका आप बिना किसी व्यवधान के उपयोग कर सकती हैं। इस वन में विद्यमान वृक्षों की छाया, नदी, सरोवरों के जल तथा तप के अनुकूल जो भी दूसरी वस्तुएँ फल, फूल, कन्दादि सामग्री हैं, वे सभी आपके लिए परतन्त्र नहीं हैं, उन सभी का आप स्वेच्छा से उपयोग कर सकती हो। आपके साथ मिलना मेरे लिए अत्यन्त शुभ दिन का सूचक है, क्योंकि सज्जनों के साथ सज्जनों का मिलन, वस्तुतः किसी प्रकार के पुण्यों के उदय के परिणामस्वरूप ही होता है।

विशेष– (i) वनदेवी वासन्ती का सरल एवं विनम्र स्वभाव अभिव्यक्त हुआ है, साथ ही, अतिथि–सत्कार एवं सज्जनों के मिलन के विषय में कवि के अपने विचार भी प्रदर्शित हुए हैं।

(ii) अतिथि–सत्कार की भारतीय परम्परा का उल्लेख हुआ है।

(iii) इसके अलावा सामान्य कथन का विशेष कथन द्वारा समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास, प्रसाद गुण, लाटी रीति तथा शिखरिणी छन्द का मनभावन प्रयोग भी दर्शनीय है।

(iv) प्रस्तुत श्लोक से कवि का सज्जन स्वभाव वाला होना भी अभिव्यंजित हो रहा है।

व्या.टि.– (i) **भवति–** √भू+लट्, प्रथम पुरुष, एकवचन, होता है।

(ii) **भोग्यम्–** √भुज्+ण्यत् । **अशनम्–** √अश्+ल्युट्।

(iii) **पराधीनम्**–पर+अधि+ख(ईन आदेश), **पुण्येन** में हेतौ तृतीया।

(iv) इच्छाम् अनतिक्रम्य, आ समन्तात् भोग्यम्, यथेच्छाभोग्यम्।

संस्कृत व्याख्या– वनदेवता वासन्ती, तापसीं प्रति कथयति– एतत् अरण्यं, युष्माकं इच्छानुसारम् उपभोगयोग्यं वर्तते। सम्प्रति एषः मम कृते शोभनो दिवसोऽस्ति, यत् सज्जनानां सत्पुरुषैः सह सम्पर्कः अभवत्। यतोहि एतत्तु सुकृतेनैव भवति। वनेऽस्मिन् यदपि वृक्षच्छाया, सलिलम् अन्यदपि यत् तपश्चरणे भोजने च फलं प्रसूनं कन्दं वा आवश्यकम्, तत् सर्वं युष्माकम् अर्थे नैव परायत्तं वर्तते।

(2) 'चन्द्रिका' प्रियप्रायेति–वनदेवी की अपनत्व भरी मधुर वाणी को सुनकर तापसी सज्जनों के व्यवहार के विषय में कहती हैं कि–

इस संसार में सज्जनों का व्यवहार अत्यधिक सुख प्रदान करने वाला होता है, क्योंकि उनकी वाणी में संयम होता है, जो उनकी विनम्रता के साथ–साथ मधुर भी होता है। उनकी बुद्धि तो हमेशा ही मंगल करने वाली होती है, क्योंकि अनिष्ट के विषय में तो वे सोचते भी नहीं है। उनका तो प्रथम परिचय भी निष्पाप होता है, उसमें किसी प्रकार की कुटिलता विद्यमान नहीं रहती है। इतना ही नहीं, उनका चरित्र तो जैसा सामने होता है, वैसा ही पीठ पीछे एक समान अपनत्व से युक्त, निश्छल तथा निर्मलता लिए होता है।

विशेष– (i) सज्जनों के स्वभाव एवं आचरण की अत्यधिक सुन्दर शैली में व्याख्या की गयी है।

(ii) सज्जनों के चरित्र की अनेक विशेषताओं के उल्लेख करने से समुच्चय अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं शिखरिणी छन्द।

(iii) इसीप्रकार अप्रस्तुत सामान्य सज्जन के चरित्र द्वारा प्रस्तुत विशेष वनदेवता के चरित्र बोध होने से अप्रस्तुत प्रशंसालंकार।

व्या.टि.– (i) **विपर्यासितः–** वि+परि+√अस्+णिच्+क्त।

(ii) **विजयते–** वि+√जि+लट्, आत्मने, सर्वोत्कृष्ट होता है।

(iii) **अवगीतः–** अव+√गै+क्त। **मतिः–** √मन्+क्तिन्।

(iv) **अविपर्यासितम्–** न विपर्यासितः रसः यस्य तत्, नञ् ।

(v) **अनुपधि–** न विद्यते उपधिः यस्मिन् तत्। नञ्।

संस्कृत व्याख्या– सज्जनानां व्यवहारः अतिशयप्रीतिकारकः भवति, तेषां वाण्यां संयमः, शीलश्च हृद्यः भवति, बुद्धिश्च तेषां स्वभावेन मंगलकारिणी भवति। परिचयश्च अनिन्दितो भवति, एवंच तेषां आचरणं समक्षे पृष्ठे वा समानं निष्कपटं, निर्दोषं च भवति। एतादृशं सज्जनानां गहनचरितं सदैव संसारे विजयं प्राप्नोति, उत्कर्षेण वर्तते, इति भावः।

(3) 'चन्द्रिका' अस्मिन्निति– वनदेवता द्वारा दण्डकारण्य में घूमने के प्रयोजन के पूछे जाने पर, तापसी आत्रेयी कहती हैं कि–

इस प्रदेश में महर्षि अगस्य आदि ब्रह्मतत्त्व को जानने वाले अनेक विद्वान् रहते हैं, उन्हीं से वेदान्त विषयक विद्या को जानने के लिए मैं यहाँ पर महर्षि वाल्मीकि के पास से आ रही हूँ।

विशेष– (i) तापसी का प्रयोजन वेदान्त–विद्या का अध्ययन करना है, जो वाल्मीकि आश्रम में नहीं हो पा रहा है। इसीलिए उसने वहाँ से हटकर, महर्षि अगस्त्य के पास जाने का निर्णय किया है।

(ii) यहाँ प्रयुक्त 'उद्‌गीथ' पद ब्रह्म के लिए प्रयुक्त हुआ है। छान्दोग्योपनिषद् में 'ॐ' को उद्‌गीथ कहा गया है।

(iii) इसीप्रकार 'निगमान्तविद्या' से अभिप्राय वेदान्त अर्थात् उपनिषदों से ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि निगम वेदों को कहा गया है तथा इन्हीं वेदों का सारतत्त्व उपनिषदों में निबद्ध किया गया है।

(iv) महर्षि अगस्त्य मित्रावरुण के पुत्र कहे गए हैं, इनकी उत्पत्ति कुम्भ से हुई थी। इसके विषय में अनेक आश्चर्यजमक कथाएँ पुरातन ग्रन्थों में प्रचलित हैं।

(v) काव्यलिंगालंकार तथा इन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) भूयांसः– बहु+ईयसुन्, बहु को भू आदेश, ई लोप।

(ii) **पर्यटामि–** परि+ √अट् (गतौ)+लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन।

(iii) **अधिगन्तुम्–** अधि+ √गम्+तुमुन्, प्राप्त करने के लिए।

(iv) **उद्‌गीथविदः–** उद्‌गीथं विदन्ति, जानन्ति, वेत्ति इति वा।

(v) नितरां गम्यते परतत्त्वं अनेन इति निगमः, तस्य अन्तः तां।

संस्कृत व्याख्या– अस्मिन् दण्डकारण्यभूप्रदेशे अगस्त्यप्रभृतयः बहवः ब्रह्मज्ञाः निवसन्ति, तेभ्यः खलु मुनिभ्यः वेदान्तविद्यां अध्येतुम् अहम् अत्र वाल्मीकिपार्श्वात् आगतास्मि, अनेनैवात्र पर्यटामि, इति भावः।

(4) 'चन्द्रिका' वितरतीति– वाल्मीकि आश्रम को छोड़ने का कारण बताते हुए, तापसी आत्रेयी कहती हैं कि किसी देवता ने उन्हें दो बालकों को दिया है, जो अत्यधिक तीक्ष्ण–बुद्धि वाले हैं, इसलिए उनके साथ अध्ययन करना सम्भव नहीं है। इसी क्रम में वे आगे कहती हैं कि–

विद्या प्रदान करते समय कोई भी गुरु अपने शिष्यों में किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं करता है, क्योंकि वह तो जिसप्रकार बुद्धिमान् छात्र को विद्या प्रदान करता है, ठीक वैसे ही मन्दबुद्धि को भी विद्या देता है। उन दोनों को ज्ञान प्रदान करने में वह, न तो एक के अन्दर शक्ति को ही उत्पन्न करता है और न ही दूसरे शिष्य के अन्दर की शक्ति का विनाश करता है, किन्तु ऐसा होने पर भी फल के विषय में इन दोनों के सम्बन्ध में अत्यधिक अन्तर होता है। प्राप्त होने वाले इस फल को हम उदाहरण द्वारा इसप्रकार समझ सकते हैं। जैसे– निर्मल मणि तो प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने में समर्थ हो जाती है, किन्तु इसके विपरीत मिट्टी आदि पदार्थ, उसी प्रतिबिम्ब को ग्रहण नहीं कर पाते हैं।

विशेष– (i) तीक्ष्ण बुद्धि वाले व्यक्ति की उपमा के लिए निर्मल मणि तथा मूर्ख बुद्धि के लिए मिट्टी के पदार्थ का उपमान अत्यधिक सुन्दर एवं सटीक बन पड़ा है, जो भावाभिव्यक्ति में सहायक रहा है।

(ii) आत्रेयी तापसी की तुलना में उसी आश्रम में अध्ययन करने वाले, छात्र कुश तथा लव सरलता से विषय को ग्रहण कर लेते हैं, इस अर्थ की अभिव्यंजना हो रही है।

(iii) दृष्टान्त एवं उपमालंकार, प्रसादगुण, लाटी रीति तथा हरिणी छन्द का मनभावन प्रयोग दर्शनीय है।

(iv) कुछ विद्वानों ने यहाँ यथासंख्य, अप्रस्तुतप्रशंसा तथा निदर्शनालंकारों की उपस्थिति को भी माना है।

(v) ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने स्वयं भी अध्यापन कार्य किया है, अतः उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर यह बात कही है।

व्या.टि.– (i) 'फलं प्रति' में प्रति के योग में द्वितीया विभक्ति।

(ii) **प्राज्ञे–** प्रज्ञा चास्यास्ति, इति, प्रज्ञा+ण–प्राज्ञः, स.वि, ए.व.।

(iii) **वितरति–** वि+ √तॄ+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iv) **अपहन्ति–** अप+ √हन्+ लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– तापसी, वनदेवतां प्रति कथयति यत्– कोऽपि आचार्यः येन प्रकारेण बुद्धिमति शिष्ये ज्ञानं ददाति, तथैव जड़े अपि

छात्रे वितरति, किन्तु तयोः प्राज्ञमन्दबुद्धयोः बोधविषये नैव स्व सामर्थ्यं जनयति न वा विनाशयति। तदापि अस्य ज्ञानस्य फलविषये महदन्तरं भवति। तद्वैषम्यं वस्तुतः तथैव भवति, यथा— निर्मलमणिः मौक्तिकादिः प्रतिबिम्बग्रहणविषये समर्थो भवति, किन्तु मृत्तिकादयः पदार्थाः नैव तं बिम्बं ग्रहणन्ति ग्रहीतुं समर्थाः न भवन्ति, इत्यर्थः।

(5) 'चन्द्रिका' मा निषादेति— इसप्रकार वाल्मीकि आश्रम में होने वाले, एक व्यवधान का कथन करने के बाद, तापसी आत्रेयी फिर से वहाँ होने वाली दूसरी बाधा के विषय में बताते हुए, महर्षि वाल्मीकि द्वारा नए लौकिक छन्द के सहसा अवतरण के विषय में कहती है कि—

मध्याह्नकालीन स्नान के अवसर पर, तमसा नदी पर गए महर्षि के मुख से, क्रौंच–युगल में से नर को मारने पर, अनायास ही अनुष्टुप् छन्द का प्रथम आविर्भाव इसप्रकार हुआ—

'हे निषाद! तू अनन्तकाल तक अपने जीवन में प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं कर सकेगा, क्योंकि तुमने काम से मोहित हुए, इस क्रौंच के जोड़े में से एक नर पक्षी को मार डाला है।'

विशेष— (i) टीकाकारों ने प्रस्तुत श्लोक के निषाद, राम तथा रावण के पक्ष में तीन अर्थ किए हैं, किन्तु मूलरूप से तो यह निषाद के लिए ही कहा गया है। आद्य अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

(ii) यह श्लोक वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड (2/51) में आया है, इसी को रामायण का बीज माना गया है।

(iii) यहाँ करुणरस का पूर्ण परिपाक हुआ है, क्योंकि क्रौंच आलम्बन, उसका वध उद्दीपन तथा वाल्मीकि का क्रोध अनुभाव एवं चिन्तादि व्यभिचारीरूप में प्रयुक्त हुए हैं, भाषा की सरलता दर्शनीय है।

(iv) ध्वन्यालोककार ने काव्य की आत्मा की व्याख्या करते हुए इस श्लोक के सम्बन्ध में उल्लेख किया है। (ध्वन्यालोक–1/5)

व्या.टि.— (i) **निषाद**— निषीदन्ति अस्मिन् पापानि, इति।

(ii) **अवधीः**— √हन्+लुङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन, मार दिया।

(iii) **क्रौंचमिथुनात्**— क्रौंचश्च क्रौंची च, तयोः मिथुनं तस्मात्।

(iv) **काममोहितम्**— कामेन मोहितम्, तृतीया तत्पुरुष समास।

(v) **अगमः**— √गम्+लुङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन, प्राप्त करो।

संस्कृत व्याख्या— ऋषिः वाल्मीकिः निषादं सम्बोध्य कथयति यत्— हे व्याध! त्वं सनातनीः वर्षाणि यावत् स्थितिं नैव प्राप्नुहि, यतोहि त्वया कामासक्तात् अस्मात् क्रौंचयुगलात् एकः नरः क्रौंचः घातितः। नैवोचितमेतत् अन्यायपूर्णं चास्ति इति, भावः।

(6) 'चन्द्रिका' स एष इति— अगस्त्य आश्रम में जाने का रास्ता बताते हुए पंचवटी की चर्चा होती है, तो आत्रेयी को सीता के साथ व्यतीत किए गए, उन सभी स्थलों की स्मृति आ जाती है। तब वनदेवता उसकी हाँ में हाँ मिलाती है तो आत्रेयी, सीता का स्मरण करते हुए कहती है कि— हाय, बेटी जानकि!

प्रसंगवश प्राप्त हुए बातचीतों के ये विषय और हमारे सामने दिखायी देते हुए, तुम्हारे उन्हीं प्रिय बन्धुओं का यह समूह, आज नाम मात्र के लिए अवशिष्ट होते हुए भी, तुम्हें हमारे लिए मानो प्रत्यक्ष के समान कर रहा है।

विशेष— (i) आत्रेयी, सीता के त्याग आदि की घटनाओं से सुपरिचित है, इसीलिए यहाँ उसके विनाश की कल्पना करके, उसने सीता को नाममात्र के लिए अवशिष्ट कहा है।

(ii) सीता का प्रत्यक्ष के समान वर्णन होने से भाविक अलंकार एवं इव पद के प्रयोग से उत्प्रेक्षालंकार और प्रसादगुण, वैदर्भी रीति तथा उपजाति छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि अपने प्रिय व्यक्ति की अनुपस्थिति में भी, उसके साथ व्यतीत किए गए क्षणों की स्मृति, उन–उन स्थानों को देखकर आ जाती है, जो हमने उसके साथ स्थान विशेष पर बिताए हैं। यहाँ कवि ने इसी मनोविज्ञान को प्रस्तुत किया है।

व्या.टि.— (i) **प्रासंगिकी**— प्र+√संज्+घञ्+ठक्+ङीप्।

(ii) **दृश्यमानः**— √दृश्+यक्(कर्मणि)+शानच्, देखा जाता हुआ।

(iii) **दृष्टाम्**— √दृश्+क्त+टाप्, द्वितीया विभक्ति, एक वचन।

(iv) **करोति**— √कृ+लट्, प्रथम पुरुष, एकवचन, कर रहा है।

संस्कृत व्याख्या– संयोगवशागतानां वार्तानां वर्ण्यविषयः विलोक्यमानः सः प्रसिद्धः एषः पुरोवर्तमानः तव सीतायाः प्रियबन्धुवर्गः, नाममात्रावशिष्टाम् अपि त्वां जानकीं सम्प्रति अस्माकं साक्षात् अवलोकिताम् इव विदधाति।

(7) 'चन्द्रिका' वज्रादपीति– जब वनदेवी वासन्ती को आत्रेयी से यह पता चलता है कि राम ने अश्वमेध यज्ञ करते हुए, पत्नी की जगह, सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा को रखा है तो राम के चरित्र की प्रशंसा करते हुए वह कहती है कि–

वास्तव में महापुरुषों के चरित्र वज्र से भी अधिक कठोर तथा पुष्प से भी अधिक कोमल होते हैं, इसप्रकार के उन लोगों के चरित्रों को भला कौन जान सकता है? अर्थात् कोई भी सामान्य प्राणी इनके चरित्रों को जानने में समर्थ नहीं हो सकता है।

विशेष– (i) कवि का अभिप्राय है कि एक ओर तो राम ने वज्र के समान कठोर होकर पूर्णगर्भा सीता का वन में परित्याग कर दिया और वहीं दूसरी ओर वे ही यज्ञ में, उसी सीता की पत्नीरूप में स्वर्णमयी प्रतिमा को स्थापित कर लेते हैं, यह वस्तुतः विचित्र ही है।

(ii) राम के उज्ज्वल चरित्र का सुन्दर उद्घाटन हुआ है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा, व्यतिरेक, विषम तथा अर्थापत्ति अलंकार एवं प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति और अनुष्टुप् छन्द का सौन्दर्य तथा भाषा की सरलता सभी कुछ दर्शनीय है।

(iv) 'लोकोत्तराणाम्' में शेषे षष्ठी से षष्ठी विभक्ति का प्रयोग।

(v) महाकवि को उपमानरूप में 'वज्र' अत्यधिक प्रिय रहा है।

व्या.टि.– (i) **विज्ञातुम्–** वि+√ज्ञा+तुमुन्, जानने के लिए।

(ii) **अर्हति–** √अर्ह+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, समर्थ है।

संस्कृत व्याख्या– असारे खल्वस्मिन् संसारे ये महापुरुषाः सन्ति तेषां मनांसि प्रसूनात् अपि कोमलानि, कुलिशात् अपि कठिनतराणि भवन्ति, नैव कोऽपि सामान्यजनः तेषां चरितं विशेषेण ज्ञातुं समर्थोऽस्ति।

(8) 'चन्द्रिका' शम्बूकेति– आत्रेयी और वनदेवी वासन्ती के मध्य वार्तालाप के प्रसंग में ब्राह्मण के मरे हुए, पुत्र को जीवित करने के लिए शम्बूक का वध करने की बात का उल्लेख करते हुए, आकाशवाणी की ओर संकेत करके आत्रेयी कहती हैं कि–

तभी सहसा आकाशवाणी ने कहा कि शम्बूक नाम का शूद्र व्यक्ति, पृथ्वी पर घोर तप का आचरण कर रहा है। इसलिए हे राम! वह तुम्हारे द्वारा शिरच्छेद करने योग्य है अर्थात् तुम्हें उसका वध कर देना चाहिए, क्योंकि भारतीय–संस्कृति में शूद्र को तप का अधिकार नहीं है, क्योंकि उसने वर्णव्यवस्था का उल्लंघन किया है। अतः उसे मारकर तुम ब्राह्मण के इस मरे हुए पुत्र को जीवित करो।

विशेष– (i) उक्त कथन आकाशवाणी के द्वारा होने के कारण अद्भुतरस की सृष्टि देखने योग्य है।

(ii) तात्कालिक सामाजिक परिस्थिति में शूद्र को तप का अधिकार नहीं था, ऐसी व्यंजना से अभिव्यक्ति हो रही है।

(iii) शम्बूक अपने कर्तव्यपथ से हटकर तप कर रहा है, इसलिए दण्ड के योग्य है, राजा के दोष से ही प्रजाओं में अकालमृत्यु होती है, इस मान्यता के अनुसार ही इस अर्थ की प्रतीति हो रही है।

(iv) अनुप्रास अलंकार, प्रसादगुण, वैदर्भी रीति, अनुष्टुप् छन्द।

व्या.टि.– (i) **वृषलः**–वृषं धर्मं लुनाति, इति, वृष+√लू+ड, शूद्र।

(ii) **तप्यते–** √तप्+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iii) **शीर्षच्छेद्यः**–शिरश्छेदम् अर्हति, इति, शिरस्+√छिद्+यत्।

(iv)**हत्वा–** √हन्+क्त्वा, मारकर।**जीवय–** √जीव्+लोट्,म.पु.ए.व.।

संस्कृत व्याख्या– आत्रेयी, वनदेवीं वासन्तीं प्रति कथयति यत्– तदैव आकाशवाणी संजाता– हे राम! एकः शम्बूकः नाम शूद्रः धरायां तपश्चरणं करोति। अतएव त्वया सः शम्बूकः शिरसा छेदनयोग्योऽस्ति, अनेन सः मृतब्राह्मणपुत्रः जीविष्यति, इत्यर्थं विप्रसुतं जीवितं कुरु त्वम्।

(9) 'चन्द्रिका' कण्डूलेति– आत्रेयी एवं वासन्ती के वार्तालाप के मध्य में आत्रेयी मध्याह्न होने की बात कहकर, जाने की अनुमति लेती है, तो उससे सहमति व्यक्त करते हुए वासन्ती कहती है कि–

तुम ठीक ही कह रही हो, वास्तव में सूर्य का ताप तीक्ष्ण हो गया है, (1) जिससे गोदावरी के किनारे के वृक्षों की छाया में, उनकी

छाल में से चोंच और पैरों के नाखूनों से कुरेदते हुए पक्षी, अपनी चोंच से कीड़ों को खींच कर खा रहे हैं तथा (2) कूजन करते हुए खिन्न कबूतर और वनमुर्गों के झुण्ड से युक्त पक्षियों के घोंसलों वाले, इसप्रकार की छाल से सम्पन्न वृक्ष, (3) हाथियों द्वारा शरीर की खुज–लाहट दूर करने के लिए, अपने कपोलभाग की रगड़ से हिलने के कारण नीचे गिरते हुए, धूप से ढ़ीली हुई डण्ठल वाले, अपने पुष्पों से मानो गोदावरी नदी की पूजा कर रहे हैं।

विशेष– (i) उक्त प्रसंग से प्रतीत होता है कि महाकवि के इस नाटक का अभिनय ग्रीष्म ऋतु में किया गया था।

(ii) वृक्षों का मानवीकरण करते हुए, महाकवि ने यहाँ ग्रीष्म ऋतु का स्वाभाविक एवं मनभावन कल्पना के साथ वृक्षों की तीन विशेषताओं का उल्लेख करते हुए चित्रण किया है। अतः स्वभावोक्ति अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) एक ही श्लोक में महाकवि का कठोर एवं मृदुल दोनों प्रकार का प्रकृति–प्रेम अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि कीड़ों को खींचकर खाना, हाथी का वृक्ष के तनों को निर्दयतापूर्वक गण्डस्थलों से रगड़ना कठोर प्रकृति का तथा गोदावरी के जलों में गिरने वाले पुष्पों से अर्चन करना, मृदुल प्रकृति के अन्तर्गत आता है।

(iv) इसके अलावा ओज गुण, गौड़ी रीति, शार्दूलविक्रीड़ित छन्द तथा उत्प्रेक्षालंकार का प्रभावी प्रयोग हुआ है।

(v) महाकवि का स्वयं की अनुभूति पर आधारित प्राणी एवं वनस्पति विज्ञान विषयक गहन ज्ञान व्यक्त हुआ है। साथ ही, उनकी सूक्ष्मदृष्टि भी अवलोकनीय है, क्योंकि ग्रीष्मऋतु के मध्याह्न में उपर्युक्त दृश्य को नदी के किनारे गहन वनों में सहज ही देखा जा सकता है।

व्या.टि.– (i) **कण्डूलः**– कण्डू अस्य अस्ति, इति, कण्डू+लच्।

(ii) **अर्चन्ति**– √अर्च्+लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन, पूज रहे हैं।

(iii) **कुलायद्रुमाः**–कुलाययुक्ताः द्रुमाः वृक्षाः, इति। प्र.वि., ब.व.।

(iv) छायायां अपस्किरमाणाः तादृशः विष्किराः तेषां मुखैः व्याकृष्टाः कीटाः याभ्यः ताः तादृशाः त्वचः येषां ते, वृक्षाः।

(v) कूजन्तः क्लान्ताः ये कपोताः कुक्कुटाः च तेषां कुलानि येषु ते कुलाय सहिताः द्रुमाः।

(vi) कण्डूलाः द्विपगण्डपिण्डाः तेषां कषणेन आकम्पः तेन युक्ताः। घर्मेण स्रंसितानि बन्धनानि येषां तैः, घर्मस्रंसितबन्धनैः।

संस्कृत व्याख्या– गोदावर्याः तटे अनातपे अपस्किरमाणः चंच्वा भक्षणनिमित्तं वृक्षाणां त्वचं लिखन्तं, ये विष्किराः पक्षिणः तेषां मुखैः व्याकृष्टाः कीटाः चर्माणि च येषां ते, अव्यक्तशब्दं कुर्वन्ति, खिन्नानि पारावतकुक्कुटानां समूहाः, एतादृशैः द्विजैः कृतनीड़ाः पादपाः,येषु ते, कण्डूयुक्तानां गजगण्डपिण्डानां यत् कषणं तेन योऽऽकम्पः तेन सम्पत–नशीलैः आतपशिथिलवृन्तैः पुष्पैः, 'गोदावरी' एतन्नाम नदीं पूजयन्ति, इति।

(10) 'चन्द्रिका' रे हस्तेति– वासन्ती एवं आत्रेयी के वार्तालाप विषयक शुद्ध विष्कम्भक के बाद, मंच पर श्रीराम प्रवेश करके, अपने दाहिने हाथ को सम्बोधित करके कहते हैं कि–

हे मेरे दाहिने हाथ! उस ब्राह्मण के मरे हुए बालक को जीवित करने के लिए, तपस्या करते हुए, इस शम्बूक नामक शूद्र मुनि पर अपनी तलवार को छोड़ो, क्योंकि तुम तो इसप्रकार के राम के शरीर के अंग हो, जो अत्यधिक कठोरतापूर्वक व्यवहार द्वारा, पूर्ण गर्भ के भार से खिन्न, सीता के निर्वासन रूप क्रूरकर्म में भी समर्थ है। इसलिए तुममें करुणा का होना, भला कैसे सम्भव है?

विशेष– (i) शूद्र तपस्वी का वध करने से राम की गहन मानसिक पीड़ा की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। व्यंग्य से राम ने स्वयं को धिक्कारा है, क्योंकि शूद्र के वध से किसीप्रकार के लोकतन्त्र की रक्षा नहीं हुई है। हाँ, उस समय में ब्राह्मणवाद का प्रभाव अवश्य प्रतीत हो रहा है।

(ii) प्रसादगुण, वैदर्भी रीति, वसन्ततिलका छन्द एवं सीता के निर्वासन की पटुता में करुणा के न होने को, हेतु बताने के कारण काव्यलिंग अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(iii) आचार्य कुन्तक ने यहाँ सहोक्ति अलंकार माना है।

व्या.टि.–(i) **शूद्रमुनौ**–शूद्रः चासौ मुनिः, तस्मिन्, शूद्र मुनि में।

(ii) **जीवातवे**– √जीव्+आतु (उणादि), चतुर्थी विभक्ति, ए.व.।

(iii) निर्भरः चासौ गर्भः, तेन खिन्ना, सा चासौ सीता, तस्याः विवासने पटुः यः,तस्य। पूर्ण गर्भभार से खिन्न सीता के निर्वासन में पटु।

(iv) **विसृज**– वि+√सृज्+लोट्, मध्यम पुरुष, एकवचन, छोड़ो।

(v) **विवासन**– वि+√वस्+णिच्+ल्युट्, निर्वासन।

संस्कृत व्याख्या– हे मम वामेतर कर! त्वं ब्राह्मणस्य मृतस्य बालकस्य जीवनाय शूद्रतापसे खड्गं मुंच। यतो हि त्वं तु रामस्य निष्करुणस्य शरीरस्य अंगोऽसि। येन रामेण परिपूर्णगर्भालसां सीतामपि निर्जने वने निर्वासनं कृतम् आसीत् पूर्वकाले। अतएव त्वयि करुणायाः अंशोऽपि न वर्तते, भवितुं शक्यते न वा इति।

(11) 'चन्द्रिका' दत्ताभये, इति– शूद्र मुनि की मृत्यु के बाद, दिव्यपुरुष प्रवेश करके, श्रीराम की जयकार करते हुए कहता है कि–

दण्ड को धारण करने वाले, आपने मुझे यमराज से भी अभय दान दिला दिया है तथा मेरी मृत्यु के बाद, वह ब्राह्मण बालक भी जीवित हो गया है। इतना ही नहीं, मेरी यह समृद्धि हुई है। इसलिए यह शम्बूक आपके श्रीचरणों में अपने सिर को झुकाकर, प्रणाम करता है। वस्तुतः सज्जनों की संगति से उत्पन्न होने वाले मरण भी लोगों का उद्धार करने वाले ही होते हैं।

विशेष– (i) शम्बूक मुनि की प्रसन्नता एवं राम के प्रति कृतज्ञता अभिव्यक्त हुई है, क्योंकि दिव्य लोकों की प्राप्ति से उसकी उन्नति एवं समृद्धि, जो हो गयी है।

(ii) 'यमात्' पद में भीत्रार्थानां भयहेतुः सूत्र से पंचमी विभक्ति।

(iii) आरम्भ के तीन चरणों में प्रयुक्त विशेष का अन्तिम चरण में प्रयुक्त सामान्य से समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार।

(iv) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं वसन्ततिलका छन्द है।

व्या.टि.– (i) **दत्ताभये**– दत्तम् अभयं येन सः, तस्मिन्।

(ii) **दण्डधारे**– दण्डं धारयति इति दण्डधारः, तस्मिन्।

(iii) **सत्संगजानि**– सतां संगः, सत्संगः, तस्मात्, जायते, इति।

(iv) **तारयन्ति**– √तॄ+णिच्+लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

संस्कृत व्याख्या– मृत्योरपि अभयप्रदे! रामभद्रे! दण्डधारिणि सति, असौ दूरस्थः ब्राह्मणपुत्रः प्रत्यागतः प्राणः संजातः। मम च शम्बूकस्य अपि एषः अभ्युदयोऽभवत्। अनेन अयं शम्बूकनाम मुनिः मूर्ध्ना भवतः चरणौ नमनं करोति। यतोहि सज्जनसंसर्गात् उत्पन्नानि मरणानि अपि उद्धारकारकानि भवन्ति, इति।

(12) 'चन्द्रिका' यत्रानन्देति– शम्बूक मुनि की समृद्धि को सुनकर प्रसन्नतापूर्वक श्रीराम कहते हैं कि– हमें तो ये दोनों ही प्रिय हैं, इसलिए तुम तो अपने कठोर तप के फलों का भोग करो–

जिन लोकों में आनन्द और सुखों की ही स्थिति है एवं जहाँ पर पवित्र विभूतियाँ ही सदा विराजमान रहती हैं, इसप्रकार के वे 'वैराज' नाम के तेजोमय प्रसिद्ध लोक, हे शम्बूक! तुम्हारे लिए हमेशा ही मंगलमय होवें, इसलिए तुम तो उन्हीं लोकों को प्राप्त करो।

विशेष– (i) शम्बूक मुनि को नारायण स्वरूप श्रीराम द्वारा वध प्राप्त होने पर 'तैजस' नामक दिव्य लोकों की प्राप्ति हुई है।

(ii) इन लोकों की दूसरी विशेषता है कि यहाँ पर हमेशा ही आनन्द की स्थिति बनी रहती है। यद्यपि ब्रह्म को भी आनन्दस्वरूप ही कहा गया है– 'आनन्दो ब्रह्मेति व्याजानात्', तैत्तिरीयोपनिषद्।

(iii) इसलिए 'वैराज' पद यहाँ ब्रह्मलोक के लिए प्रयुक्त हुआ है, जो सर्वोत्कृष्ट माना गया है, उसके बाद कोई अन्य लोक नहीं है।

(iv) समुच्चय अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

(v) सम्पत्तियों से अभिप्राय अणिमा, लघिमा आदि आठ सिद्धि और नौ निधियों से ग्रहण करना चाहिए।

व्या.टि.–(i) **वैराजाः**– विशेषण राजते इति विराट्, विराजः इमे।

(ii) **सन्तु**– √अस्+लोट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन, होवें।

(iii) **तेजसाः**– तेजसः इमे। तेजस्+अण्, तेजस्वी लोक।

संस्कृत व्याख्या– येषु लोकेषु आत्मसाक्षात्कारजन्याः हर्षाः दिव्यविषयानुजन्याश्च भोगाः, पुण्याश्च विभूतयः सन्ति, ते खलु तादृशाः

वैराजाः इति नाम्ना प्रसिद्धाः तेजोमयाः लोकाः तव शम्बूकस्य कृते कल्याणकारका भवन्तु, इति, तत्र भवान् प्रस्थानं करोतु।

(13) 'चन्द्रिका' अन्वेष्टव्येति– इसके पश्चात् अपनी सम्पूर्ण उपलब्धि का श्रेय श्रीराम को देते हुए शम्बूक मुनि कहता है कि–

मुझे तो वस्तुतः आप ही की कृपा से इस महत्त्व की प्राप्ति हुई है, क्योंकि सम्पूर्ण संसार में अन्वेषण के योग्य, लोक के स्वामी, सभी की रक्षा करने वाले, आप जो मुझ कुत्सित शूद्र को स्वयं ही खोजते हुए, सैंकड़ों योजनों की दूरी को पार करके, इस दण्डक वन में आए हैं, इस सम्बन्ध में तो सब कुछ इस तपस्या का ही अनुग्रह है। नहीं तो, आप जैसे लोकरंजन में व्यस्त श्रीराम का, आयोध्या से इस दण्डक वन में फिर से आना भला कहाँ हो सकता था?

विशेष– (i) परमब्रह्म स्वरूप श्रीराम की महिमा के साथ–साथ, तप के प्रभाव का भी प्रतिपादन किया गया है।

(ii) वर्णव्यवस्था का पालन न करने से शम्बूक को घोर पापी माना गया है, इसलिए इसके पालन की कठोरता भी प्रदर्शित हुई है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक में राम में कर्मत्व एवं कर्तृत्व दो विरुद्ध कर्मों का कथन किया गया है। अतः विषम अलंकार।

(iv) इसीप्रकार अतिशयोक्ति तथा काव्यलिंग अलंकारों एवं मन्दाक्रान्ता छन्द का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **अन्वेष्टव्यः–** अनु+ √इष्+तव्यत्, खोजने योग्य।

(ii) **शरण्यः–** शरण+यत्। **अन्विष्यन्–** अनु+ √इष्+शतृ।

(iii) **क्रान्त्वा–** √क्रमु चलने+क्त्वा। **उपगमः–** उप+ √गम्+अप्।

संस्कृत व्याख्या– संसारे गवेषणीयः लोकपतिः शरणागतवत्सलः त्वं यत् मां शम्बूकं शूद्रं अन्विष्यन् चतुःक्रोशानां शतानि अतिक्रम्य अत्र समुपागतोऽसि, अतएव विषयेऽस्मिन् तपसः अनुग्रहोऽस्ति खलु। अन्यथा तु भवान् अयोध्यानगरीतः अस्मिन् दण्डकारण्ये कुतः पुनः आगन्तुं शक्नोति? नैव कदापि।

(14) 'चन्द्रिका' स्निग्धेति– शम्बूक के मुख से 'दण्डक' शब्द को सुनकर, राम को अपने अतीत की स्मृति हो आती है और वे कहते हैं कि– क्या ये दण्डकारण्य हैं?

यहाँ पर तो मुझे कहीं चिकने एवं श्यामवर्ण वाले एवं दूसरी ओर भयंकर विस्तार से युक्त, उद्वेग को उत्पन्न करने वाले, स्थान– स्थान पर अनेक झरनों की झंकार से युक्त शब्दों से, सभी दिशाओं को शब्दायमान करने वाले, तीर्थ, आश्रम, पर्वत, नदी, गड्ढे एवं दुर्गम मार्गों से युक्त, जाने पहचाने भू भागों वाले, वे ही ये दण्डक वनप्रदेश मुझे यहाँ दिखायी पड़ रहे हैं।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक में महाकवि ने प्रकृति के मृदुल तथा कठोर दोनों ही पक्षों का सुन्दर एवं प्रभावी चित्रण किया है।

(ii) यहाँ दण्डक वन का स्वाभाविक वर्णन करने के कारण स्वभावोक्ति अलंकार का सौन्दर्य एवं संगीतात्मकता भी दर्शनीय है।

(iii) मान्यता है कि इक्ष्वाकु वंश के दण्डक नामक राजा ने शुक्राचार्य की पुत्री का शीलभंग कर दिया था, जिससे उन्होंने शाप से उसे विनष्ट कर दिया और उसका राज्य भी दण्डकारण्य बन गया।

(iv) इसके अतिरिक्त उत्प्रेक्षा अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग भी अत्यन्त प्रभावी बन पड़ा है।

व्या.टि.– (i) **संदृश्यन्ते–** सम्+ √दृश्+लट्,कर्मवाच्य, प्र.पु.ब.व.।

(ii) **आभोगः–** आ+ √भुज्+घञ्। **स्निग्ध–**स्निह्+क्त, कर्तरि।

(iii) स्निग्धाः च ते श्यामाः, भीषणः च आभोगः, तेन रूक्षाः।

(iv) परिचिताः च भुवः येषां ते। मुखराः ककुभः येषां ते।

(v) तीर्थानि च आश्रमाश्च गिरयश्च सरितश्च गर्ताश्च कान्ता–रश्चेति, तैः मिश्रा इति। परिचिताः भुवः येषु ते, परिचितभुवः।

संस्कृत व्याख्या– अत्र दण्डकारण्ये कस्मिंश्चित् स्थाने रम्याः श्यामलवर्णाः, अपरस्मिन् च भागे भयंकरविस्तारेण विक्षोभकराः सन्ति, यत्र तत्र च निर्झराणां झंकारैः ध्वनितदिशः, मुनिजनसेविताजलानि तीर्थानि, आश्रमाः पर्वताः नद्यः, गर्ताः, कान्ताराः, दुर्गमानि च वर्त्म–

युक्तानि, एताः पूर्वज्ञातप्रदेशाः, एते मम सम्मुखवर्तिनः 'दण्डक' नाम अरण्यस्य प्रदेशाः, सम्यक्रूपेण दृश्यन्ते मया।

(15) 'चन्द्रिका' चतुर्दशेति– राम के कथन का समर्थन करते हुए दिव्य शरीर धारण किए हुए शम्बूक कहता है कि–

महाराज! यह वस्तुतः वही दण्डकारण्य है, जहाँ पर निवास करते हुए, आपने भयंकर कर्म करने वाले, चौदह हजार राक्षसों का एवं खर, दूषण तथा त्रिशिरा नाम वाले, दूसरे तीन विशालकाय राक्षसों का युद्ध में वध किया था।

विशेष– (i) राम के पराक्रम का विशेषरूप से उल्लेख हुआ है।

(ii) 'त्रिमूर्धानः' पद व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है, इसका शुद्धरूप 'द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः' सूत्र से ष प्रत्यय होकर 'त्रिमूर्धाः' बनेगा।

(iii) कुछ टीकाकारों ने यहाँ 'च्युतसंस्कृति दोष' मानते हुए 'त्रिमूर्धाः समरे हताः' पाठ को उपयुक्त कहा है।

(iv) यह श्लोक महावीरचरित में भी प्रयुक्त हुआ है।

(v) भाषा की सरलता व अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i)हताः– √हन्+क्त, प्र.वि., ब.व.। रक्षस्+अण्, **राक्षसाः**।

(ii) **त्रिमूर्धानः–** त्रयो मूर्धानो यस्य सः। भीमं कर्म येषां तेषाम्।

संस्कृत व्याख्या– भयंकरेषु कर्मसु रताः ये राक्षसाः तेषां चतुर्दशगुणितानां त्रिसंख्यकाश्च अन्ये खरदूषणत्रिशिराः इति नामाः ये राक्षसाः आसन्, तेषां सर्वेषां राक्षसानां वधं भवता रामेण युद्धे कृतम् आसीत्। अस्मिन्नेव दण्डकारण्ये पूर्वकाले निवासकृते सति।

(16) 'चन्द्रिका' निष्कूजस्तिमितेति– इसके पश्चात् श्रीराम कहते हैं कि यह केवल दण्डकारण्य ही नहीं, अपितु जनस्थान भी है–

क्योंकि इस वन के प्रान्तभाग, कहीं पर पूर्णरूप से शान्त एवं निःस्तब्ध हैं तो कहीं पर भयंकर प्राणियों के शब्दों से गुंजायमान हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त कुछ स्थलों पर तो ये अपने बिलों के मध्य भागों में स्वेच्छापूर्वक सोए हुए विशालकाय साँपों के श्वाँस के कारण, जली हुई अग्नियों से युक्त हैं, तो कहीं पर यहाँ गड्ढ़ों के बीच में थोड़ा सा

पानी भरा हुआ है तो अन्यत्र कहीं पर प्यासे गिरगिट विशालकाय अजगरों के पसीने की बूँदों को पीकर अपनी प्यास बुझा रहे हैं।

विशेष– (i) रूक्ष एवं भयानक प्रकृति–चित्रण दर्शनीय बन पड़ा है, जिसे महाकवि की महती विशेषता के रूप में देख सकते हैं।

(ii) वन का स्वाभाविक वर्णन करने के कारण स्वभावोक्ति अलंकार एवं शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का सौन्दर्य भी सराहनीय है।

(iii) ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि ने इसप्रकार के वनों की भयानकता का स्वयं अवलोकन किया था, इसी से उनका गहन एवं सूक्ष्म प्राणिविज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(iv) ग्रीष्मऋतु के कारण गड्ढ़ों का जल भी सूख गया है।

(v) 'अज' अर्थात् बकरे को भी निगल जाने के कारण, इसे अजगर कहा गया है। **अजगरः–** अजं गिरति इति। अज+√गृ+अच्।

व्या.टि.– (i) **पीयते–** √पा+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) निष्कूजाः च ताः स्तिमिताः। **प्रदीप्त–** प्र+√दीप्+क्त।

(iii) प्रोच्चण्डानां सत्त्वानां स्वनाः यासु ताः। प्रदराणाम् उदरेषु।

संस्कृत व्याख्या– अस्य जनस्थानस्य प्रान्तप्रदेशाः कस्मिंश्चित् स्थलेषु निरवाः निष्चेष्टाः च सन्ति, कस्मिंन्नपि अन्ये स्थले भयानकाः हिंसकाश्च ये सिंहगजादयः जन्तवः सन्ति, तेषां शब्दैः परिपूरिताः विद्यन्ते। अन्यत्र चात्र स्वेच्छानुसारनिद्रितविशालकायसर्पश्वासैः प्रज्वलिताः ये अग्नयः ताभिः युक्ताः सन्ति। एवंच अस्य जनस्थानस्य मध्यभागेषु गर्तेषु अतीव न्यूनाः आपाः विद्यन्ते। अन्यत्र च पिपासितैः कृकलासैः गिरगिटैः वा 'अजगर' नाम सर्पस्य घर्मबिन्दवः आचम्यन्ते।

(17) 'चन्द्रिका' पश्यामीति– इसप्रकार जनस्थान को देखकर इसी क्रम में फिर से राम कहते हैं कि–

मैं वस्तुतः इस समय 'खर' नामक राक्षस के भूतपूर्व निवास स्थान जनस्थान को देख रहा हूँ एवं इसी के साथ, इस स्थान पर घटी हुई सभी पूर्वकालिक घटनाओं को भी प्रत्यक्ष के समान ही अनुभव कर रहा हूँ।

विशेष– (i) पूर्वकालिक अनुभवों में सभी प्रकार के खट्टे–मीठे अनुभव आ जाते हैं, जिनमें शूर्पनखा आदि के वृत्तान्त भी हैं।

(ii) पूर्ववृत्तान्तों को प्रत्यक्ष के समान अनुभव करने के कारण भाविक अलंकार, अनुष्टुप् छन्द, प्रसाद गुण और वैदर्भी रीति।

(iii) जनस्थान में पहले 'खर' नाम का राक्षस रहता था, जिसे मारकर श्रीराम ने इसे ऋषि–मुनियों के रहने योग्य बना दिया था।

व्या.टि.–(i) अनुभवामि– अनु+ √भू+लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन।

(ii) भूतपूर्व–पूर्वं भूतः, इति, भूतपूर्वे चरट् से भूत का पूर्वप्रयोग।

(iii)भूतपूर्वः खरालयो यस्मिन्, खरस्य आलयः, तम्, खरालयम्।

संस्कृत व्याख्या– जनस्थानं दृष्ट्वा रामः कथयति यत्– एतत् जनस्थानं वस्तुतः पूर्वकाले 'खर' नामकस्य राक्षसस्य निवासस्थानम् आसीत्। इदं अहं सम्प्रति पश्यामि प्रत्यक्षतया तथा च अत्र याः घटनाः घटिताः, ताः सर्वाः इदानीम् अहं प्रत्यक्षरूपेण अनुभवामि, इति मन्ये।

(18) 'चन्द्रिका' त्वयेति– इसी अवसर पर चारों ओर देखकर, सीता द्वारा कही गयी बातों को स्मरण करके श्रीराम कहते हैं कि–

हे नाथ! मैं तो आपके साथ ही पुष्पों की गन्ध से भरे हुए वनों में निवास करूँगी, इसप्रकार बार–बार कहते हुए, वह यहाँ रहकर परम आनन्द का अनुभव करती थी, क्योंकि उनको मेरे तथा इन सभी वनों के प्रति गहन प्रेम था।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक में सीता का, राम एवं वनों के पादप आदि सभी के प्रति गहन–प्रेम अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) 'सह' के योग में त्वया में तृतीया 'सहयुक्तेऽप्रधाने' सूत्र से।

(iii) साथ ही, काव्यलिंग अलंकार, अनुष्टुप् छन्द, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, भाषा की सरलता भी दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) निवत्स्यामि–नि+ √वस्+लृट्, उत्तमपुरुष, बहुवचन।

(ii) **अरमत**– √रम्+लुङ्, प्रथमपुरुष, ए.वचन, रमण करती थी।

(iii) **मधुगन्धिषु**– मधोः गन्धः, यत्र तेषु, इनि, स.वि., ब.व.।

संस्कृत व्याख्या– रामः स्मरति, सीतायाः कथनम्, यत् सा पूर्वकाले एवं कथयति स्म, हे नाथ! अहं त्वया सह पुष्पाणां गन्धः यस्मिन्

एतादृशे अस्मिन् वने खलु निवासं करिष्यामि। इत्थमेव बारं बारं कथितवती सा। वस्तुतः सा सीता अत्र कान्तारेऽपि परमानन्दं लेभे, अतः तस्याः एवंविधः पूर्वानुभूतः अनुरागः अस्मान्, वनान् प्रति चासीत्।

(19) 'चन्द्रिका' न किंचिदिति– इसी क्रम में श्रीराम पहले की स्मृतियों में खो जाने के बाद, अत्यन्त भावुक होते हुए कहते हैं कि–

वस्तुतः इस संसार में जो व्यक्ति जिसका भी प्रिय होता है, वह उसके लिए कुछ न करते हुए भी, मात्र उसके साथ रहने के कारण प्राप्त होने वाले सुखों से, उसके दुःखों को विनष्ट करता है, क्योंकि वह प्रिय पात्र तो प्रेम करने वाले, उस व्यक्ति के लिए कोई अनिवर्चनीय पदार्थ या अनुपम धन ही होता है।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने आन्तरिक विशुद्ध प्रेम की सुन्दर एवं मनभावन मीमांसा की है, जो उनकी स्वानुभूति सी प्रतीत हो रही है। निश्चय ही, उनका किसी से ऐसा गहन प्रेम रहा होगा।

(ii) यहाँ पर अप्रस्तुत प्रियजन सीता का वर्णन होने के कारण अप्रस्तुतप्रशंसा तथा सामान्य का (सीतारूप) विशेष के साथ समर्थन से अर्थान्तरन्यास अलंकार एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **कुर्वाणः–** √कृ+शानच्, करता हुआ। सुख+ष्यञ्।

(ii) **अपोहति–** अप+ √ऊह्, परस्मैपद, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– यः कोऽपि जनः यस्य कस्यापि प्रियो भवति, सः तस्य किमपि न कुर्वन्, अनेन सह सहवासमात्रेण खलु अस्य जनस्य दुःखानि दूरीकरोति, निरस्यति, इत्यर्थः। यतोहि तत् प्रियपात्रं तस्य प्रियस्य जनस्य किमपि अनिर्वचनीयं धनं वै भवति।

(20) 'चन्द्रिका' इहेति– इसी बीच शम्बूक हिंसक जन्तुओं के आश्रय स्थान महावनों की ओर ध्यान दिलाते हुए कहता है कि–

महाराज! आप इन महावनों को भी देखिए, यहाँ पर मदमस्त पक्षियों द्वारा आश्रय लिए हुए, तट पर उगी हुई बैंत की लताओं से पृथ्वी पर गिरे हुए पुष्पों की सुगन्ध से युक्त, ठंडे और निर्मल जलों से भरी पूरी, फलों के समूह के पकने के कारण काले जामुन के वृक्षों के

कुँजों से गिरने के कारण विशेषशब्द से युक्त नदियाँ अनेक प्रवाहों अर्थात् धाराओं में बह रही हैं।

विशेष– (i) सौम्य एवं मधुर प्रकृति का चित्रण दर्शनीय है।

(ii) यहाँ पर ग्रीष्म ऋतु की ऐसी पर्वतीय नदियों का वर्णन किया गया है, जिनके किनारे पर वेतस् की लताएँ उगी हुई हैं तथा उनके ऊपर मतवाले पक्षियों के समूह ने आश्रय लिया हुआ है और इनके सुगन्धित पुष्प नदियों के शीतल एवं स्वच्छ जलों में गिरकर, उन्हें सुगन्धित करते रहते हैं तथा जामुन के पके हुए काले, कसैले फल, इन जलों में गिरकर विशेष प्रकार का शब्द कर रहे हैं।

(iii) महाकवि की चित्रात्मक शैली व प्रकृति–प्रेम दर्शनीय है।

(iv) गर्मी में पर्वतीय नदियों की विशेषता होती है कि वे अनेक प्रवाहों में बहती हैं, जिसकी ओर कवि ने विशेषरूप से संकेत किया है।

(v) कवि का प्राणिविज्ञान के साथ वनस्पति विज्ञान विषयक गहन ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है एवं सूक्ष्मदृष्टि भी प्रशंसनीय है।

(vi) स्वभावोक्ति तथा काव्यलिंग अलंकार, मालिनी छन्द, प्रसाद गुण, गौडी रीति और भाषा की नृत्यात्मकता भी दर्शनीय है।

(vii) प्रस्तुत श्लोक किंचित् अन्तर के साथ मालती माधव (9/24) तथा महावीर चरित (5/40) में भी प्रयुक्त हुआ है।

व्या.टि.– (i) समदाः शकुन्ताः, तैः आक्रान्ताः, इति।

(ii) याः च वानीरवीरूधः तासां ये प्रसवाः, तैः सुवासितानि।

(iii) शीतलानि निर्मलानि च तोयानि जलानि यासाम् ताः।

(iv) फलभरस्य परिणामेन श्यामाः ये जम्बूनिकुंजाः तेषु।

(v) **आक्रान्त–** आ+ √क्रमु+क्त, (कर्मणि)। वि+ √रुध्+क्विप्

(vi) **परिणाम–** परि+ √नम्+घञ्। **वहन्ति–** √वह्+लट्,प्रपु,बव.।

संस्कृत व्याख्या–अत्र महारण्येषु मदमत्तद्विजैः आक्रान्ताः वेतस्–लताः विशेषाः ताम्यः पतितैः पुष्पैः सुगन्धिताः शीतलाः निर्मलाश्च नीराः, यासां ते नद्यः प्रवहन्ति। यासां च जलप्रवाहेषु फलानां परिपाकेन श्यामलजम्बूवृक्षकुंजेभ्यः जम्बूफलानां परिपतनकारणेन विशेषरूपेण शब्दायमानाः अनेकाः स्रोतसः सन्ति।

(21) 'चन्द्रिका' दधतीति– इसप्रकार कोमल प्रकृति की ओर ध्यान दिलाने के बाद, दिव्य शरीरधारी शम्बूक प्रकृति के भयंकर रूप की ओर संकेत करते हुए श्रीराम से कहता है कि–

यहाँ पर गुफाओं में रहने वाले, युवा भालुओं की प्रतिध्वनि से बढ़े हुए, थूक से भरे हुए शब्द, अपनी गहनता और गम्भीरता को धारण कर रहे हैं। एक प्रकार की सल्लकी नामक लताओं को खाने तथा उन्हें अपने पैरों से रौंदने के कारण, बिखरी हुई ग्रन्थियों (गाँठों) से निकलने वाला, उनसे बहता हुआ ठण्डा, तीखा तथा सुगन्धित रस, चारों ओर अपनी विशेष प्रकार की सुगन्ध को फैला रहा है।

विशेष– (i) गुफाओं में रहने वाले भालुओं की थूत्कार की प्रतिध्वनि तथा हाथियों द्वारा सल्लकी लताओं को कुचलने से फैली सुगन्धि की ओर कवि द्वारा विशेष ध्यान दिलाया गया है।

(ii) कवि भालुओं तथा हाथियों के स्वभाव से सुपरिचित प्रतीत होता है, अतः उनका प्राणिविज्ञान के साथ वनस्पति–विज्ञान तथा प्रतिध्वनि के बढ़ने के उल्लेख से भौतिक–विज्ञान विषयक गहन ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) हाथी को सल्लकी लता अतीव प्रिय है, उनके पैरों द्वारा कुचले जाने से इसकी गाँठों से सुगन्धित द्रव निकलता है। यहाँ उसी ओर संकेत किया गया है।

(iv) कवि की स्वानुभूति के कारण चित्रात्मक शैली दर्शनीय है, स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार व मालिनी छन्द।

(v) प्रस्तुत श्लोक किंचित् अन्तर के साथ महावीर चरित (5/41) में भी प्रयुक्त हुआ है।

(vi) यहाँ 'कुहर' का अर्थ 'गुफा' करना अधिक समीचीन प्रतीत हो रहा है।

व्या.टि.– (i) **दधति–** √धा+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) कुहराणि भजन्ते, इति एवं शीलाः कुहरभाजः, तेषाम्, इति।

(iii) विकीर्णाः ये ग्रन्थयः तेषां निष्यन्दस्य गन्धः, इति।

(iv) **अम्बूकृतानि–** अम्बु+च्वि+ √कृ+क्त। थूक से युक्त शब्द।

(v) **स्त्यायते–** √स्त्यै+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एक वचन।

(vi) **निष्यन्द–** नि+√स्यन्द्+घञ्। कुहर0–कुहर+√भज्+ण्वि।

संस्कृत व्याख्या– अत्र अरण्यस्य मध्यभागे गिरिगुहावासिनां यूनां भल्लूकानां अनुरसितेन प्रतिध्वनिना महान्ति, अम्बूविहितानि वृद्धिं प्राप्नुवन्ति। तथा च करिभक्ष्यलतानां सल्लकीनां शीतलतीक्ष्णकषाय–रसयुक्तः हस्तिविमर्दितविकीर्णपर्वरसानाम् आमोदः, वृद्धिं गच्छति, प्रसरति सर्वत्र वा।

(22) 'चन्द्रिका' एतदिति– महर्षि अगस्त्य को प्रणाम करने के लिए शम्बूक के चले जाने पर, श्रीराम वन को देखकर कहते हैं कि–

अरे! आज हमने इस वन को फिर से भला क्यों देख लिया? क्योंकि यहीं पर तो पूर्व में लम्बे समय तक वानप्रस्थ एवं गृहस्थ दोनों ही आश्रमों में एक साथ निवास करते हुए, हम लोग पिता दशरथ के आज्ञारूप अपने कर्तव्यकर्म को सम्पन्न करते थे। साथ ही, इस समय हमने सभी प्रकार के सांसारिक सुखों की अनुभूति भी की थी।

विशेष– (i) कवि का अभिप्राय है कि पिता द्वारा आज्ञा प्रदान किए हुए वनवासरूप कर्तव्य को पूरा करते हुए, रामादि ने गृहस्थ तथा वानप्रस्थ दोनों ही धर्मों का पालन किया था। अतः विशेष अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(ii) इसीप्रकार आरण्यक एवं गृहिणः, इन दो प्रस्तुतों का 'स्व धर्मे रताः' इस एक धर्म से सम्बन्ध होने से तुल्ययोगितालंकार।

(iii) प्रसाद गुण, लाटी रीति एवं वसन्ततिलका छन्द।

व्या.टि.– (i) **आरण्यकाः–** अरण्ये वसन्ति, इति।

(ii) **सांसारिकेषु–** संसारे भवानि सांसारिकानि तेषु।

(iii) **अभूम–** √भू+लुङ्, उत्तमपुरुष, बहुवचन, हुए।

(iv) **वसन्तः–** √वस्+ शतृ, प्र. वि., बहुवचन, रहते हुए।

संस्कृत व्याख्या– अहो आश्चर्यमस्ति यत् दिनेऽस्मिन् एतत् पुरोवर्तमानं वनं भूयः केन प्रकारेण अवलोकितम्, यस्मिन् अरण्ये पुरा काले दीर्घकालं यावत् निवासं कुर्वन्तः, वयं वानप्रस्थाः गृहिणश्च स्वकीये वनवासधर्मे तत्पराः लौकिकेषु आनन्देषु ज्ञातास्वादाः संजाताः।

(23) 'चन्द्रिका' एते, इति– इसी क्रम में श्रीराम दण्डकारण्य के विषय में पुनः कहते हैं कि–

इसके अतिरिक्त ये वे ही पर्वत हैं, जहाँ पर केकारव करते हुए, अनेक मोर विद्यमान हैं तथा ये वे ही वनों के प्रदेश हैं, जिनमें मदमस्त मृग विहरण करते रहे हैं एवं ये वे ही नदियों के तट हैं, जहाँ पर अत्यधिक मनोरम अशोक वृक्ष, लताओं, घने कदम्ब तथा वेतस् की लताएँ विद्यमान हैं।

विशेष– (i) यहाँ पर 'आमंजु' पद का प्रयोग 'रमणीय' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए किया गया है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति।

(ii) प्रस्तुत पद्य में 'आमंजु' तथा 'निरन्ध्र' आदि दोनों प्रस्तुतों का 'सरित् तटानि' पद के साथ सम्बन्ध होने से तुल्ययोगितालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii)राम की स्मृतिरूप में कवि का प्रकृति–प्रेम भी दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **विरुवन्मयूराः–** विरुवन्तः मयूराः येषु ते।

(ii) **मत्तहरिणानि–** मत्ताः हरिणाः येषु तानि, मदमस्त हरिण।

(iii) नीरन्ध्राः नीपाः निचुलाः येषु तानि, र् के लोप से नी दीर्घ।

संस्कृत व्याख्या– केकारवकुर्वाणाः केकिनः येषु ते एते पुरो दृश्यमानाः ते खलु पूर्वपरिचिताः पर्वताः सन्ति। एते च ते किल वन–प्रदेशाः विद्यन्ते, यत्र मत्ताः मृगाः स्वच्छन्देन विचरन्ति। एतानि च पूर्वानुभूतानि तानि सरित्तटानि सन्ति, येषु अतीवमनोहराः घनाः अशोक–वृक्षाः कदम्बवृक्षाः च निचुलाः लताः, हिज्जलवृक्षाः वा सन्ति।

(24) 'चन्द्रिका' मेघमालेवेति– इसप्रकार पर्वत, वनप्रदेश तथा नदियों का उल्लेख करने के बाद, श्रीराम वहीं पर समीप में स्थित प्रस्रवण पर्वत तथा गोदावरी नदी के सम्बन्ध में कहते हैं कि–

इसके अतिरिक्त यह जो अत्यन्त पास में ही मेघों की पंक्ति के समान दिखायी दे रहा है, वही प्रस्रवण पर्वत है, जिसके समीप में ही प्रसिद्ध गोदावरी नदी प्रवाहित हो रही है।

विशेष– (i) प्रस्रवण पर्वत जनस्थान के मध्य में ही स्थित है, रामायण में इसे किष्किन्धा के समीप कहा गया है, किन्तु वर्तमान भौगोलिक अध्ययन में यह पंचवटी से दिखायी नहीं देता है।

(ii) 'मेघमालेव' में उपमा, 'आरादिव' में उत्प्रेक्षालंकार तथा अनुष्टुप् छन्द, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति का प्रयोग दर्शनीय है।

(iii) 'आरात्' पद यहाँ 'सामीप्य' अर्थ के लिए प्रयुक्त हुआ है।

व्या.टि.– (i) **विभाव्यते**– वि+√भू+णिच्+कर्मवाच्य। प्रतीयते।

संस्कृत व्याख्या– अयं पुरो दृश्यमानः यः समीपे इव वर्तते **मेघमाला इव प्रतीयते, सः 'प्रस्रवण' खलु एतन्नामकः पर्वतोऽस्ति,** अस्य **वै पादप्रदेशे एषा गोदावरी एतन्नाम्नी सरित् प्रवहति।**

(25) 'चन्द्रिका' अस्यैवेति– इसके बाद, श्रीराम प्रस्रवण पर्वत के अन्य वैशिष्ट्य के विषय में कहते हैं कि–

वस्तुतः इसी प्रस्रवण पर्वत के सर्वोच्च शिखर पर गृध्रराज जटायु का निवास स्थान था तथा उसी के नीचे हम लोग भी उन पर्णशालाओं में आनन्द एवं सुखपूर्वक रहते थे, क्योंकि हमें यहाँ किसी भी प्रकार का कोई कष्ट नहीं था। इसी के आसपास गोदावरी नदी के जल में फैली हुई, वृक्षों की नीली कान्ति से युक्त, मनोरम वन प्रदेश हैं, जिसमें हमेशा ही अनेक प्रकार के पक्षी कूजन करते रहते थे, जो ऐसा प्रतीत होता था, मानो अन्दर से स्वयं ही शब्द कर रहा हो।

विशेष– (i) ये वस्तुतः वे ही जटायु हैं, जिन्होंने सीता का अपहरण करने वाले, रावण के साथ युद्ध किया था।

(ii) 'पर्णोटज' से अभिप्राय यहाँ पर्णकुटी करना अधिक उचित प्रतीत होता है। स्वाभाविक वर्णन के कारण स्वभावोक्ति अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) 'इव' पद का प्रयोग न होने पर भी प्रतीयमान उत्प्रेक्षा तथा भाविक अलंकार, मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग भी महनीय बन पड़ा है।

(iv) महाकवि का प्रकृति–प्रेम भी अभिव्यक्त हुआ है।

(v) पक्षियों के कूजन से, वनप्रान्त का मानवीकरण करते हुए उसके शब्दायमान होने की कल्पना अत्यधिक मनोरम है।

व्या.टि.– (i) गृध्राणां राजा तस्य। पर्णानाम् उटजेषु।

(ii) वितताः अनोकहाः वृक्षाः, तैः श्यामला श्री यस्य सः।

(iii) अन्तःकूजन्तः मुखराः शकुनाः पक्षिणः यस्मिन् सः।

(iv) **वितत**– वि+√तन्+क्त। **अनोकहः**–अनस्+अक+इन्+उ।

(v) **आसीत्**– √अस्+लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन, था।

संस्कृत व्याख्या– अस्य खलु 'प्रस्रवण' नाम पर्वतस्य उत्तुंगे शिखरे गृध्रराजस्य जटायोः निवासः आसीत्, तस्य शृंगस्य किल अधः प्रदेशे वयमपि रामादयः तेषु वै पूर्वानुभूतेषु पर्णशालासु सुखपूर्वकं अवसाम। यस्मिन्नेव स्थाने 'गोदावरी' एतन्नामनद्याः जले विस्तीर्णानां हरितानां वृक्षाणां कान्तिः यस्मिन् तादृशः, मध्ये च शब्दं कुर्वन् इव रमणीयः वनप्रदेशोऽस्ति।

(26) 'चन्द्रिका' चिरादिति– तत्पश्चात् वहाँ स्थित पंचवटी आदि सभी प्रदेशों तथा उन–उन स्थानों से जुड़ी हुई स्मृतियों से विह्वल होकर, श्रीराम अपनी मनोदशा का कारुणिक चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

लम्बे समय के बाद, पूर्व में स्थित पीड़ा में वेग को उत्पन्न करने वाले, शरीर के अंग–अंग में फैले हुए, भयंकर विष के समान, कहीं से अकस्मात् ही वेगपूर्वक आकर, बेधने वाले बाण के आगे के भाग के समान एवं हृदय के मर्मस्थल में फूटे हुए, फोड़े के समान, मेरा पुराना शोक, इस समय नए के जैसा होकर, मुझे फिर से व्याकुल कर रहा है, यह अत्यधिक कष्ट का विषय है।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने राम की गहन पीड़ा को अभिव्यक्त करने के लिए, हृदयहारिणी चार उत्प्रेक्षाएँ प्रस्तुत की हैं, जिससे उत्प्रेक्षालंकार तथा इन चारों की अनपेक्ष स्थिति होने से संसृष्टि अलंकार का सौन्दर्य भी मनभावन बन पड़ा है।

(ii) पहले अनुभव किए गए स्थलों को देखकर, राम को सीता के वियोग की स्मृतियाँ अत्यधिक पीड़ित कर रही हैं। यहाँ उसी का

सजीव चित्रण किया गया है। उनकी दयनीय दशा का स्वाभाविक वर्णन करने से करुणरस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

(iii) महाकवि की उपमान–योजना भी अद्भुत एवं दर्शनीय है।

(iv) प्रसादगुण, लाटीरीति, शिखरिणी छन्द का प्रयोग हुआ है।

(v) 'नूतन इव' के स्थान पर 'मूर्च्छयति' पाठ भी मिलता है।

व्या.टि.– (i) **वेगारम्भी**– वेग+आ+ √रभ्+णिनि, (ताच्छील्ये)

(ii) **प्रसृतः**– प्र+ √सृ+क्त। **निहितः**– नि+ √धा+क्त।

(iii) **विकलयति**– वि+ √कल्+णिच्+लट्, प्रथमपुरुष, एकव.।

(iv) **शोकः**– √शुच्+घञ्। **निहितः**– नि+ √धा+क्त।

संस्कृत व्याख्या– रामः कथयति यत्– बहुकालात् अनन्तरं **पूर्वस्थिता वेदना शीघ्रत्वम् विस्तारं गतवती, असह्यः तीव्रः खलु** गरलद्रवः **इव, कस्मादपि प्रदेशात् अतिशयवेगात् प्रचलितः बाणस्य** अग्रभागस्य **खण्डः इव हृदये निखातः, हृदयस्य मर्मस्थले च संजातः बन्धनः** (ग्रन्थिः) **विदीर्णः व्रण इव, भूयश्च मां एतत् सर्वं सम्प्रति पुरातनः** शोकः, नूतनः **इव उद्बुध्य अतीव विकलं करोति, अत्र पूर्वप्रदेशे आगमने** सति, एतत् **सर्वं दृष्ट्वा जानकीं स्मृत्वा चेति।**

(27) 'चन्द्रिका' पुरेति– इसके बाद, श्रीराम दीर्घकाल के बाद, आने के कारण वनप्रदेशों में हुए अनेक प्रकार के परिवर्तनों के सम्बन्ध में कहते हैं कि–

मैं यहाँ इतने अधिक समय के बाद आया हूँ कि जहाँ पर पहले नदियों का प्रवाह कल–कल की ध्वनि के साथ बहता था, वहाँ पर इस समय बालुकामय तट विद्यमान है, जिस स्थान पर वृक्षों की घनी स्थितियाँ थीं, वहाँ इस समय वे विरल रूप में स्थित हैं। वस्तुस्थिति तो यह है कि दीर्घकाल के बाद देखा गया यह वन, मुझे इस समय कुछ दूसरा ही प्रतीत हो रहा है। हाँ, एक बात जरूर है पर्वतों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया है, इसीलिए 'यह वही वन है' मेरी इस बुद्धि को उनकी वही स्थिति दृढ़ कर रही है।

विशेष– (i) आचार्य क्षेमेन्द्र ने प्रस्तुत श्लोक को 'देशौचित्य' के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है।

(ii) प्रकृति के परिवर्तित रूप के मनभावन चित्रण में भी महाकवि सिद्धहस्त हैं, प्रस्तुत श्लोक इस तथ्य की पुष्टि कर रहा है।

(iii) यहाँ पर वाक्यार्थ हेतुक काव्यलिंग, उत्प्रेक्षालंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति और शिखरिणी छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) अप्पयदीक्षित ने यहाँ उपमाध्वनि को स्वीकार किया है।

(v) प्रथम अंक एवं प्रस्तुत अंक की घटनाओं में बारह वर्षों का अन्तराल रहा है, जिसे कवि ने प्रकृति के परिवर्तन के माध्यम से अत्यधिक मनभावन व्यंजनात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। कवि का प्रकृति विषयक प्रेम भी अभिव्यक्त हुआ है।

(vi) कुवलयानन्द में यह समासोक्ति के उदाहरण रूप में प्रयुक्त किया गया है, क्योंकि यहाँ विशेषणों के माध्यम से संसार की परिवर्तन शीलता एवं अस्थिरता की ओर भी संकेत किया गया है।

व्या.टि.– (i) **क्षितिरुहाम्**– क्षितौ रोहन्ति, इति, तेषाम्।

(ii) **घनविरलभावः**– घनश्च विरलश्च, तयोः भावः।

(iii) **विपर्यासः**– वि+परि+ √अस्+घञ्, वैपरीत्य को।

(iv) **यातः**–√या (प्रापणे)+क्त। **घन**– √हन्+अप्। √दृश+क्त

(v) **द्रढ़यति**–√दृढ़ (नामधातु)+णिच्+लट्, प्रथमपुरुष, ए.व.।

संस्कृत व्याख्या– यस्मिन् स्थले पुराकाले नदीनां प्रवाहः आसीत्, तस्मिन् स्थाने सम्प्रति सिकतामयं तटं विद्यते। पुरा येषु वृक्षेषु घनता आसीत्, इदानीं तत्र खलु विरलता दृश्यते तेषु वृक्षेषु। अनेकप्रकारेण अत्र वनप्रदेशे सर्वं वैपरीत्यभावं प्राप्तम्, किन्तु विषयेऽस्मिन् एते पर्वताः वै मम बुद्धिं अनेन प्रकारेणैव दृढ़ीकरोति, यत् नैव वनम् अन्यम् अपितु तत् खलु, यतोहि अत्र पर्वताः तत्रैव विद्यन्ते, इति उत्प्रेक्षेऽहम्।

(28) 'चन्द्रिका' यस्यामिति– इसके पश्चात् श्रीराम पंचवटी के आकर्षण को लक्ष्य करके अत्यन्त दुःखपूर्वक कहते हैं कि–

हाय, अत्यधिक कष्ट का विषय है कि जिस पंचवटी में मैंने, अपने घर के समान ही प्रिया सीता के साथ, लम्बे समय तक सुखमय दिनों को व्यतीत किया था तथा वनवास की अवधि पूरी होने पर अयोध्या में जाकर भी जिस पंचवटी में हुई विभिन्न प्रकार की कथाओं एवं घटनाओं को सुनने–सुनाने में ही हमारा समय व्यतीत हो जाता था, उसी पंचवटी को इस समय प्रियतमा सीता को क्रूरतापूर्वक विनष्ट करने वाला, अकेला पापी यह राम भला कैसे देख सकता है? या फिर इसकी उपेक्षा करके, इसका सम्मान किए बिना भी तो यहाँ से जाना मेरे लिए अत्यधिक मुश्किल हो रहा है।

विशेष– (i) श्रीराम के अन्तर्द्वन्द्व का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। पंचवटी का स्त्रीलिंग विषयक साम्य एवं मानवीकरण भी चित्ताकर्षक बन पड़ा है, जिसकी ध्वनि अत्यन्त मनोहारिणी प्रतीत हो रही है।

(ii) ध्वनिकाव्य का सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है, क्योंकि यहाँ प्रयुक्त प्रत्येक शब्द विशिष्ट अर्थ की व्यंजना कर रहा है।

(iii) 'यथा स्वे गृहे' में उपमा का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) श्रीराम के दुःखातिशय की अभिव्यंजना हो रही है। यह शाश्वत तथ्य है कि वियोग में पूर्वानुभूत स्थल अत्यन्त पीड़ा देने वाले हो जाते हैं, महाकवि द्वारा प्रस्तुत सम्पूर्ण कृति में इसी अनुभूति को मूर्तरूप दिया गया है।

(v) 'दिवसाः' पद से सीता का रात–दिन का सान्निध्य व्यंजित हुआ है, क्योंकि यहाँ पर वे माता–पिता तथा गुरुओं एवं दूसरे वृद्धों की मर्यादाओं से मुक्त थे।

(vi) 'तया सह' में 'सहयुक्तेऽप्रधाने' से तृतीया विभक्ति।

(vii) स्वयं को पापी कहने से राम के भयंकर अपराधबोध की प्रतीति भी दर्शनीय रही है।

(viii) उपमा, विरोधाभास, काव्यलिंग अलंकार के सुन्दर प्रयोगों के साथ शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) यस्याः सम्बन्धिन्यः कथाः ताभिः।

(ii) **अस्थीयत–** आ+ √स्था+लङ्,(भावे) प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iii) **सम्बन्धिनी**–सम्बन्ध+इनि+ङीप्। **नीताः**– √नी+क्त, ब.व।

(iv) **नाशित**– √नश्+णिच्+क्त। **पापः**– पाप+अच्, पापी।

(v) **विलोकयतु–** वि+ √लोक्+णिच्+लोट्, प्र.पु., एकवचन।

(vi) **गच्छतु–** √गम्+लोट्, प्रथम पुरुष, एकवचन। जाएँ।

संस्कृत व्याख्या– यस्यां पंचवट्यां केनापि प्रकारेण स्वकीये गृहे इव मया तया प्रियतमया सह पूर्वानुभूताः दिवसाः यापिताः, तथा च विस्तृताभिः यस्याः पंचवट्याः विषयिण्यः कथाः ताभिः एव निरन्तरं अयोध्यायां मया सीतया सह स्थितो भूत्वा व्यतीताः, इदानीं सा नाशं प्रापिता प्रियतमा सीता, येन सः एकाकी खलु नृशंसकर्मा रामः तामेव प्रियया सह पूर्वकाले अनुभूतां पंचवटीं केन प्रकारेण पश्यतु? अथवा सत्कारं अविधाय कथं अस्मात् स्थानात् यातु, इति रामस्य सूक्ष्मं अन्तर्द्वन्द्वं प्रदर्शितं महाकविना श्लोकेऽस्मिन्।

(29) 'चन्द्रिका' गुंजत्कुंजेति– इसके बाद, महर्षि अगस्त्य को प्रणाम करके लौटा हुआ, उनके तथा उनकी पत्नी लोपामुद्रा के सन्देश को लेकर आया हुआ, शम्बूक मुनि, श्रीराम को वहाँ स्थित क्रौंच पर्वत का दृश्य दिखाते हुए कहता है कि–

महाराज! आप इस क्रौंच पर्वत की शोभा को देखिए, जहाँ पर गूँजते हुए कुँजों रूपी कुटीरों में उल्लुओं के समूहों की घू–घू के समान ध्वनि हो रही है तथा जो वायु के भरने के कारण शब्द करने वाले, बाँसों के झुण्डों से युक्त हैं। इन दोनों प्रकार की ध्वनियों के मिश्रण से भयभीत हुए, कौओं के समूह जहाँ एक दम शान्त होकर बैठ गए हैं। इतना ही नहीं, इस पर्वत में घूमते हुए मोरों के केकारव से डरे हुए विषैले साँप भी, यहाँ विद्यमान पुराने जीर्णशीर्ण चन्दन के वृक्षों के तनों पर इधर से उधर अपने जीवन की रक्षा करने की दृष्टि से रेंग रहे हैं।

विशेष– (i) भयावह प्रकृति–चित्रण एवं महाकवि की चित्रात्मक शैली दर्शनीय है। महाकवि का गहन प्रकृति–प्रेम अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) कुँजरूपी कुटीरों में उल्लुओं की स्थिति, बाँस के छिद्रों से वायु के निकलने से उत्पन्न होने वाली ध्वनि और कौओं के चुप होने आदि का चित्रण तथा मोरों से भयभीत साँपों के वर्णनों से कवि के प्राणिविज्ञान तथा वनस्पतिविज्ञान के गहन ज्ञान की मनोरम अभिव्यक्ति हुई है। वन्य-प्राणियों में भय के कथन से भयानक रस को प्रदर्शित किया गया है।

(iii) वनों में उत्पन्न होने वाले, बाँसों के पौरों पर विद्यमान छिद्रों से जब वायु प्रवाहित होती है, तो विशेष प्रकार की ध्वनि निकलती है, जिसके साथ उल्लुओं की घू-घू ध्वनि मिलकर, कौओं में भय को उत्पन्न कर रही है। अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण होने से स्वभावोक्ति अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) कुँजकुटीर में रूपक, मयूररूपी भय के कारण होने पर भी सर्पों के पलायनरूप कार्य न होने से विशेषोक्ति, अनेक व्यंजन वर्णों के साम्य से अनुप्रास, गौड़ी रीति, शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का सुन्दर प्रयोग भी हुआ है।

(v) प्रस्तुत श्लोक की प्रथम पंक्ति का प्रयोग कवि ने मालती माधव (5/16) में भी किया है, ओजगुण का प्रभावी प्रयोग दर्शनीय है।

(vi) प्रस्तुत श्लोक चित्रकाव्य का सुन्दर उदाहरण है, जिसका काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने प्रथम उल्लास के अन्त में वर्णन किया है।

(vii) 'रोहिण' पद चन्दन वृक्ष के लिए प्रयुक्त हुआ है।

व्या.टि.– (i) उद्वेजिताः– उद्+√विज्+णिच्+क्त, उद्विग्न हुए।

(ii) गुंजन्तः ये कुँजकुटीराः तेषु कौशिकघटानां घूत्कारः,तद्वन्तः ये कीचकाः तेषां स्तम्बानां आडम्बरः तेन मूकानि मौकुलिकुलानि यस्मिन्।

(iii)**गुंजत्–** √गुंज्+शतृ। **प्रचलताम्–**प्र+ √चल्+शतृ,ष.वि.,ब.व.।

(iv) **उद्वेल्लन्ति–** उत्+ √विल्ल्(चलने)+लट्+ प्रथमपुरुष, ब.व.।

(v) प्रचलाकः अस्यास्ति, इति प्रचलाकी, तेषाम्।

संस्कृत व्याख्या– शम्बूकः क्रौंचपर्वतस्य शोभां वर्णयन्नाह रामस्य समक्षे– हे देव! अयं क्रौंचनामकः पर्वतोऽस्ति। यत्र घूत्कारं कुर्वन्तः

उल्लूकानां समुदायाः कुँजकुटीरेषु विद्यन्ते, तेषां ध्वनौ सम्मिलितः कीचकानां ध्वनिविशेषः, तीक्ष्णवायुना प्रचलनेन, तेन चात्र स्थितः काकसमूहः मौनः संजातः भयवशात्। एवमेव एतस्मिन्नेव पर्वते इतस्ततः गमनशीलानां मयूराणां केकारवैः भीतियुक्ताः ये विषधराः सर्पाः, ते खलु प्राचीनेषु जीर्णेषु चन्दनवृक्षेषु तेषां च स्कन्धेषु इतस्ततः उद्विग्नो भूत्वा प्रचलन्ति, स्वप्राणानां रक्षणार्थम्।

(30) 'चन्द्रिका' एते त इति–इसी क्रम में महाकवि दक्षिण दिशा में स्थित पर्वत एवं वहाँ पर स्थित नदियों के संगम का वर्णन करके प्रकृति के सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

हे देव! ये दक्षिण दिशा में स्थित पर्वत हैं, जिनकी गुफाओं में गोदावरी नदी का जल 'गद्गद' की मधुर ध्वनि कर रहा है और बादलों की घटाओं के ठहरने के कारण, जिनकी चोटियों के आगे के भाग नीले वर्ण के समान प्रतीत हो रहे हैं, इसके अतिरिक्त आपस में टकराने के कारण, घने रूप में उठती हुई चंचल तरंगों के कोलाहल से भयानक प्रतीत होने वाले, ये वे ही गहरे जलों से युक्त पवित्र नदियाँ के संगम हैं।

विशेष– (i) यहाँ कवि ने पंचवटी की दक्षिण दिशा में स्थित पर्वतों तथा उसी क्षेत्र में विद्यमान नदियों के संगम का मनभावन वर्णन किया है। महाकवि का गहन प्रकृति-प्रेम दर्शनीय है।

(ii) प्रस्तुत कृति के अध्ययन से प्रतीत होता है कि महाकवि ने निश्चय ही गहनवनों का भ्रमण तथा उनका सूक्ष्मरूप से अवलोकन किया था, जो उनके प्रत्येक प्रकृति वर्णन में अभिव्यंजित होता है।

(iii) यहाँ पर्वत के शिखरों द्वारा अपने रंग का त्याग करके, बादलों के नीले रंग को ग्रहण कर लिया गया है। अतः तद्गुण अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) पर्वत शिखरों तथा नदी–संगम का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार, ओज गुण, गौड़ी रीति एवं शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग भी महनीय बन पड़ा है।

(v) प्रस्तुत संगम वर्णन से अग्रिम अंक में वर्णित तमसा, मुरला नदियों के मिलन रूप अर्थ की भी अभिव्यंजना हो रही है।

(vi) साथ ही, अन्तिम अंक में वाल्मीकि की उपस्थिति में होने वाले, सीता–राम के संगम (मिलन) की ध्वनि भी प्रतीत हो रही है।

(vii) महाकवि इस तथ्य से सुपरिचित प्रतीत होता है कि नदियों के संगम पर जल अपेक्षाकृत अधिक गहरा होता है, जिसका यहाँ उन्होंने सूक्ष्मतापूर्वक उल्लेख किया है।

व्या.टि.– (i) क्षोणीं बिभर्ति, इति, क्षोणीभृत्, ते।

(ii) गद्‌गदं नदन्ति, गोदावरीवारीणि येषु ते।

(iii) मेघैः अवलम्बिताः मौलयः येषां ते, अनेन नीलानि शिखराणि येषां ते। **संगमः–** सम्+ √गम्+घञ्।

(iv) अन्योन्यस्य प्रतिघातेन संकुलाः चलन्तः कल्लोलाः, तेषां कोलाहलैः। गभीराणि पयांसि येषां ते।

(v) **प्रतिघातः–** प्रति+हन्+घञ्(ह् को घ् आदेश)।

संस्कृत व्याख्या– शम्बूकः कथयति– एते पुरो दृश्यमानाः दक्षिणदिशावर्तिनः गिरयः सन्ति। येषां गुहासु गद्‌गदं ईदृगव्यक्तशब्दं गोदावर्याः जलानि कुर्वन्ति। एतेषां च शिखरेषु मेघाः अवलम्बिताः सन्ति, तेन च शिखराः एते नीलवर्णाः प्रतीयन्ते। अथ च एते पुण्यसलिलानां नदीनां संगमाः सन्ति, येषां सलिलाः गभीराः विद्यन्ते परस्परं च संघर्षेण संकीर्णाः प्रवहन्तः ये उच्छलतरंगाः कलकलशब्दैः कोलाहलैः वा उत्कटाः सन्ति, इति।

•••

तृतीय अङ्क

(क) **पृष्ठभूमि–** प्रस्तुत अंक की सम्पूर्ण घटना जनस्थान में स्थित पंचवटी के आसपास के भागों में घटी है। वस्तुस्थिति यह है कि राम ने लोकाराधन के लिए कठोरगर्भा सीता का त्याग तो आज से बारह वर्ष पूर्व कर दिया है, किन्तु इसका उन्हें अत्यधिक दुःख है, जो अन्दर ही अन्दर उन्हें खाए जा रहा है, क्योंकि गम्भीर प्रकृति तथा राजा होने के कारण, वे इसे रोकर या किसी के सामने कहकर तो प्रदर्शित नहीं कर सकते हैं।

किन्तु शम्बूक–वध के लिए जनस्थान में आने पर, सीता के साथ व्यतीत किए गए, पूर्व परिचित स्थलों को देखने से, उनकी मानसिक वेदना उभरकर, उनके जीवन को हानि पहुँचा सकती है, जिससे रक्षा करने के लिए देवता भी सहायक रहे हैं, इसीलिए महर्षि अगस्त्य पत्नी लोपामुद्रा ने यहाँ पात्ररूप में प्रयुक्त तमसा नदी को सीता के साथ दोनों अदृश्यरूप में तथा वन की देवी वासन्ती को राम के साथ रहने के लिए कहा है।

इस अंक में सीता को भगवती भागीरथी के आशीर्वाद से अदृश्य रखा गया है, जिसे देवता भी नहीं देख सकते हैं और वह अदृश्यरूप में ही रुदन करके विलाप कर रहे राम के बार–बार मूर्च्छित होने पर अपने जीवनदायी कोमल हाथ के सुखद स्पर्श से उनकी मूर्च्छा को दूर करती है।

जनस्थान में सीता के साथ व्यतीत किए गए क्षणों को स्मरण करके, राम द्वारा किए गए गहन विलापों के माध्यम से सीता के प्रति उनके निश्छल एवं गहन प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है, जिससे अकारण

का राम के प्रति सीता का आक्रोश भी शान्त हुआ है, जो त्यागने का राम के प्रति सीता का आक्रोश भी शान्त हुआ है, जो राम–सीता के भावी मिलन में सहायक सिद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत अंक में राम एवं सीता के अन्तर्द्वन्द्व को भी सुन्दर ढंग से अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। अतः इससे कवि के उत्कृष्ट मनोवैज्ञानिक होने की भी पुष्टि होती है। नाटक में इस अंक के नियोजन का कवि का प्रयास वस्तुतः उनके कारुणिक हृदय का द्योतक भी कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें आरम्भ से लेकर अन्त तक करुणरस की स्रोतस्विनी निरन्तर प्रवाहित हो रही है, जिसे उन्होंने छाया सीता की परिकल्पना द्वारा साकार किया है।

प्रस्तुत सम्पूर्ण तृतीय अंक काश्मीरी प्रत्यभिज्ञा दर्शन पर आधारित रहा है, क्योंकि यहाँ राम को पंचवटी के उन–उन स्थलों को देखकर, सीता की विभिन्न प्रकार की प्रेमपूर्ण क्रियाओं की स्मृति आयी है। प्रमुख पात्र के रूप में तमसा, मुरला, वासन्ती, सीता, राम प्रयुक्त हुए हैं, जबकि लोपामुद्रा, पृथ्वी, गंगा, वाल्मीकि, अरुन्धती एवं वसिष्ठ का केवल नामोल्लेख हुआ है।

(1) **'चन्द्रिका' अनिर्भिन्नेति**– प्रस्तुत अंक तमसा और मुरला इन दो नदियों के परस्पर वार्तालाप से आरम्भ होता है, जिनमें मुरला अपनी सखी तमसा से कहती है कि– मुझे महर्षि अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा ने गोदावरी नदी से राम के जनस्थान में आने पर, अपने शीतल जलकणों से उनके जीवन की रक्षा करने के लिए कहने हेतु भेजा है–

क्योंकि श्रीराम प्रकृति से अत्यन्त गम्भीर है, इसकारण दूसरे लोगों के प्रति व्यक्त न होने वाला, उनका करुण रस अर्थात् अन्दर ही अन्दर दबा हुआ पीड़ा का भाव, सीता त्याग से लेकर अब तब 'पुटपाक' के समान हो गया है, जिसमें अन्दर ही अन्दर तीव्र गर्मीरूपी गहन वेदना छिपी हुई है।

अभिप्राय यह है कि राम की गम्भीरता के कारण, यद्यपि उनके हृदय में सीता के परित्याग की गहन पीड़ा प्रतिक्षण विद्यमान रहती है, किन्तु वे इसे किसी के सामने प्रदर्शित नहीं कर पाते हैं। इसलिए

पुटपाक के समान यह वेदना उनके हृदय को अत्यधिक पीड़ित करती रहती है। अतः यहाँ एकान्त जनस्थान में उसके फूट पड़ने की पूरी पूरी सम्भावना है, जिससे उनके बहुमूल्य जीवन को क्षति पहुँच सकती है, जिसकी रक्षा करना आवश्यक है।

विशेष– (i) यहाँ प्रयुक्त 'पुटपाक' आयुर्वेद का पारिभाषिक शब्द है। वैद्य लोग औषधि के रस को तैयार करने के लिए मिट्टी के पात्र में औषधि रखकर, उसका मुँह मिट्टी से बन्द कर देते हैं। उसके बाद सम्पूर्ण पात्र पर मिट्टी का लेप करके, उसे अग्नि में रख देते हैं तथा पात्र के पूरी तरह लाल होने तक उसे पकाया जाता है, जिससे औषधि तैयार हो जाती है, जिसे उस औषधि का रस कहा जाता है।

(ii) यहाँ प्रयुक्त कुछ पद पुटपाक तथा राम के हृदय के पक्ष में अलग–अलग अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। इसलिए श्लेष अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

(iii) **जैसे**– अनिर्भिन्नः, अन्तः, गभीर पदों का पुटपाक के पक्ष में क्रमशः 'अविदीर्ण', 'मध्य' तथा 'भीतर' अर्थ होगा तथा राम के करुण रस के पक्ष में इनका अर्थ क्रमशः 'अनन्य', 'अन्तःकरण' एवं गाम्भीर्य अर्थ करेंगे।

(iv) प्रस्तुत श्लोक से राम के गम्भीर व्यक्तित्व की सूचना दी गयी है, क्योंकि राजकार्य में गम्भीरता की आवश्यकता होती है।

(v) कवि का आशय है कि जिसप्रकार पुटपाक में तीव्र उष्मा से वहाँ रखा हुआ पदार्थ अन्दर ही अन्दर पकता रहता है, बाहर उसका पता भी नहीं लगता, वैसे ही राम की घनी व्यथा, उनके हृदय में स्थित होकर, उन्हें अन्दर ही अन्दर भयंकर रूप से दुःखी कर रही है, जिसे वे बाहर अभिव्यक्त भी नहीं कर सकते हैं।

(vi) कुछ विद्वानों ने यहाँ प्रयुक्त 'करुण रस' पद में **स्वशब्द वाच्यता दोष** माना है, किन्तु यहाँ पर इसके 'सीता के विरह की व्यथा से पीड़ित राम की दशा के गहन पीड़ा' अर्थ में प्रयुक्त होने से इसे दोष की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।

(vii) राम के हृदय में छिपी हुई गहन वेदना की उपमा पुटपाक से देने के कारण, उपमालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है। कुछ विद्वानों ने इसे श्लिष्टोपमा की संज्ञा भी प्रदान की है।

(viii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा अनुष्टुप् छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है। अनुष्टुप् छन्द का लक्षण इसप्रकार है—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पंचमम्।
द्वि चतुः पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

व्या.टि.—(i) **अन्तर्गूढघनव्यथः**—अन्तः गूढा घनव्यथा यस्मिन् सः।

(ii) **अनिर्भिन्नः**— न निर्भिन्नः, इति, नञ्, निर्+ √भिद्+क्त।

संस्कृत व्याख्या— मुरला माध्यमेन लोपामुद्रा गोदावरीं प्रति कथयति यत्— गाम्भीर्यभावात् अव्यक्तः अन्तःगूढ़ा घनव्यथा, यस्मिन् सः, हृदये गुप्तघनपीडः, इत्यर्थः, दशरथपुत्रस्य रामस्य शोकः 'पुटपाक' तुल्योऽस्ति। अतएव एतादृशस्य रामस्य जीवनस्य संरक्षणं कर्तव्यम्।

(2) 'चन्द्रिका' वीचीति— मुरला नदी, अपनी सखी नदी तमसा से लोपामुद्रा के द्वारा गोदावरी नदी के लिए दिए गए सन्देश के विषय में कहती है कि—

जनस्थान में शम्बूक मुनि के वध के लिए आए हुए, राम द्वारा अपने पूर्वपरिचित प्रदेशों को देखने से उनके बार—बार मूर्च्छित होने की पूरी सम्भावना है, इसलिए तुम अपने छोटी—छोटी बूँदों वाले और धीरे—धीरे बहने वाले, कमल के सुगन्धित पराग कणों से युक्त, शीतल जल कणों से, उन्हें प्रकृतिस्थ करना अर्थात् स्वस्थ रखना, जिससे उनके जीवन को किसी प्रकार की हानि न हो।

विशेष— (i) प्रस्तुत सन्देश से ऋषि पत्नी लोपामुद्रा के राम के प्रति अप्रतिम स्नेह की अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि यदि व्यक्ति कुछ समय के बाद, किसी स्थान पर जाता है, तो उसे पूर्व में वहाँ व्यतीत किए हुए पलों की स्मृति, चित्र के समान उसे सुखी या दुःखी करने वाली होती है, इसलिए यहाँ कवि का मनोविज्ञान विषयक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) गोदावरी नदी के पंचवटी के निकट होने से उक्त कथन पात्र रूप में प्रयुक्त उनके लिए कहा गया है।

(iv) यह भी सत्य है कि किसी व्यक्ति को मूर्च्छा आने पर उसके मुख पर शीतल जल के छींटे मारने से, उसे चेतन किया जाता है, गोदावरी नदी को इसी जल—चिकित्सा के लिए कहा गया है। इससे कवि का चिकित्सा शास्त्र विषयक ज्ञान भी व्यंजित हुआ है।

(v) स्वभावोक्ति अलंकार एवं शालिनी छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है। शालिनी का **लक्षण— शालिन्युक्ता म्लौ तगौ गोऽब्धिलोकैः।**

(vi) मोहे—मोहे तथा स्वैरं स्वैरं पदों में 'नित्यवीप्सयोः' सूत्र से द्वित्व का प्रयोग हुआ है। शीकर—जलकण।

(vii) कवि का अभिप्राय है कि सीता की स्मृति आने से राम के मूर्च्छित होने की सम्भावना है, तब गोदावरी के शीतल कणों से युक्त, मन्द एवं सुगन्धित पवन से उन्हें शान्ति प्राप्त हो सकेगी।

(viii) गोदावरी के गुणों के संकीर्तन से 'गुणसंकीर्तन' नामक नाट्यलक्षण का प्रयोग भी दर्शनीय है।

व्या.टि.— (i) **तर्पय**— √तृप्+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(ii) **शीकरक्षोदशीतैः**— शीकराणां क्षोदाः, तैः शीताः, तैः।

(iii) **पद्मकिंजल्कगन्धान्**—पद्मानां किंजल्काः, तेषां गन्धाः तान्।

(iv) **वीचीवातैः**— वीचीसंस्पृष्टाः वाताः, वीचीवाताः, तैः।

संस्कृत व्याख्या— यदा रामभद्रः जनस्थाने पूर्वपरिचितानां दृश्याणां अवलोकनं करिष्यति, इति। तेन सः विमुग्धो भविष्यति। हे गोदावरि! तदा भवत्या कमलानां गन्धजलकणांश्च आदाय शनैः—शनैः प्रेरितैः स्वकीयैः वीचीनां वायुना तस्य जीवः सन्तर्पणीयः,इति सन्देशः।

(3) 'चन्द्रिका' ईदृशानामिति— तमसा और मुरला के वार्तालाप के मध्य तमसा, सीता का त्याग करने के अनन्तर पुत्र—जन्मादि की कथा मुरला को सुनाती है, तो वह आश्चर्यपूर्वक कहती है कि—

सीता और राम जैसे महान् लोगों की विपत्तियाँ भी अत्यन्त आश्चर्यजनक होती हैं, जिनमें गंगा और पृथ्वी के समान अलौकिक शक्तियाँ स्वयं ही सहयोगी होती हैं अर्थात् सौभाग्यशाली लोगों की

आपत्तियों में भी अनेक प्रकार के साधनों को जुटाने के लिए दैवी शक्तियाँ भी सहयोगी हो जाती हैं।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक गंगा के जल में सीता द्वारा लव और कुश, दो पुत्रों को जन्म देने तथा पृथ्वी एवं गंगा द्वारा, उन्हें पाताल में ले जाने आदि की कथा को सुनने के प्रसंग में कहा गया है।

(ii) काव्यलिंग अलंकार एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) **विपाकः**– वि+√पच्+घञ्, परिणाम।

(ii) **परमाद्भुतः**– परमश्चासौ अद्भुतश्चेति, अतीव आश्चर्यजनक।

(iii) **जायते**– √जनी प्रादुर्भावे+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, ए.व.।

(iv) **आयाति**– आ+√इण् गतौ+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– एतादृशानां सीतारामतुल्यानां महानुभावानां विषयपरिणामोऽपि परमविचित्रो भवति, यत्र एवंप्रकारेण गंगापृथिवीसदृशो जनः सहायकत्वं स्वतः खलु प्राप्नोति, उपस्थितो भवति, इत्यर्थः।

(4) 'चन्द्रिका' ति– तमसा एवं मुरला के वार्तालाप के प्रसंग में ही गोदावरी के गहन जल से निकलकर, जनक पुत्री सीता वन में जाती है, तो उसे देखकर तमसा कहती है कि–

श्रीराम के दीर्घकालिक विरह के कारण पीले तथा दुर्बल कपोलों के होते हुए भी सुन्दर प्रतीत होने वाली, इधर–उधर बिखरे हुए, केशों से युक्त मुख को धारण करती हुई, यह जानकी करुणरस की साक्षात् मूर्ति या फिर शरीर को धारण करने वाली विरह व्यथा के रूप में वन में प्रस्थान कर रही है।

विशेष– (i) राम से अलग हुए सीता को बारह वर्षों का लम्बा समय हो गया है, उनके विरह में उसकी स्थिति का कारुणिक, किन्तु सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। कवि की सूक्ष्मदृष्टि अवलोकनीय है।

(ii) सीता का पातिव्रत्य अभिव्यंजित हुआ है।

(iii) 'विरहव्यथेव' में उत्प्रेक्षालंकार तथा करुण की मूर्ति में अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(iv) वियोगिनी सीता का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करने के लिए कवि ने दो मनोरम कल्पनाओं का प्रयोग किया है। **प्रथम,** वह मानो करुणरस की साक्षात् मूर्ति ही हो या फिर **द्वितीय,** शरीर को धारण किए हुए विरहव्यथा ही हो, जिनसे उनकी दीर्घकालीन विरहवेदना को सुन्दर अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है।

(v) प्रोषितभर्तृका नायिका के लिए प्रसाधन निषिद्ध होने से कवि ने यहाँ सीता को खुली हुई चोटी (कबरी) के रूप में चित्रित किया है, जिससे भारतीय संस्कृति का चित्र भी प्रस्तुत हुआ है।

(vi) सीता के कपोल वियोग के कारण पाण्डु हो गए हैं, यहाँ रोग का निषेध करने के लिए, दुर्बल पद का प्रयोग किया है, इतना होने पर भी सीता का स्वाभाविक सौन्दर्य अभिव्यंजित हो रहा है।

(vii) प्रस्तुत श्लोक में मंजुभाषिणी छन्द का प्रयोग हुआ है। लक्षण इसप्रकार है– **सजसाजगौ भवति मंजुभाषिणी।**

व्या.टि.– (i) **दधती**– √धा+शतृ+ङीप्। धारण करती हुई।

(ii) **विलोलकबरीकम्**– विलोला कबरी यस्मिन् तत्।

(iii) **परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरम्**– परिपाण्डू च दुर्बलौ च तौ कपोलौ ताभ्यां सुन्दरम्, पीले तथा दुर्बल कपोलों से सुन्दर।

(iv) **दधति**– √धा+लट्, प्रथमपुरुष, ए.व., धारण कर रही है।

(v) **एति**– √इण्+ लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, जा रही है।

संस्कृत व्याख्या– इयं जानकी गोदावर्याः बहुतरजलमध्यात् निष्क्रम्य वनं गच्छति, कीदृशी सा इति कथ्यते– अतिशयपाण्डु–कृशगण्डरुचिरं चंचलकेशयुक्तं आननं धारयन्ती, एषा वैदेही करुणरसस्य साक्षात् शरीरं अथवा देहधारिणी विरहवेदना इव पंचवटीवनं प्रति एति।

(5) 'चन्द्रिका' किसलयमिति– तमसा एवं मुरला के वार्तालाप प्रसंग में, सीता को इस समय प्रथम बार देखने पर आश्चर्य तथा प्रश्नवाचक अभिप्राय व्यक्त करके, उसका साक्षात् चित्र पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुरला कहती है कि– क्या यही सीता है?

इस समय तो इसके हृदयरूपी कमल को सुखाने वाला, दीर्घ–कालिक दारुण शोक इसके शाखा से टूटे हुए, कोमल किसलय के

समान दुर्बल और पीले शरीर को ठीक उसीप्रकार सुखाए दे रहा है, जिसप्रकार शरदृऋतु में आकाश से बादलों के हट जाने पर निकली हुई तीखी धूप, केवडे के भीतर विद्यमान कोमल पत्ते को भी सुखा डालती है।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक में दीर्घकालिक शोक से सुखाने के लिए दो उपमानों का प्रयोग किया गया है। **प्रथम,** केतकी के भीतर स्थित अत्यधिक कोमल पत्ता तथा **द्वितीय,** डण्ठल से टूटा हुआ अत्यधिक कोमल किसलय। दोनों ही उपमान विरह व्यथित सीता को चित्रित करने तथा भावाभिव्यंजना में सहायक रहे हैं।

(ii) कवि की सूक्ष्मदृष्टि, चित्रात्मक शैली तथा उपमानों का चयन वस्तुतः प्रशंसनीय एवं सहृदय को आह्लादित करने वाला है।

(iii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं मालिनी छन्द का सुन्दर प्रयोग दर्शनीय है। **छन्द लक्षण–ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।**

(iv) कुछ विद्वानों ने श्लोक से पहले प्रयुक्त 'इयं हि सा' में प्रत्यभिज्ञा को माना है, किन्तु प्रत्यभिज्ञा में पूर्वदृष्ट पदार्थ की स्मृति होने से यहाँ प्रत्यभिज्ञा की उपस्थिति प्रतीत नहीं होती है, क्योंकि मुरला ने सीता को पहले नहीं देखा है।

व्या.टि.– (i)**ग्लपयति**– √ग्लै+णिच्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **क्षामम्**– √क्षै+क्त, क्षायो मः सूत्र से क्त के त को म।

(iii) **शरदिजः**–शरदि जात इति, 'सप्तम्यां जनेर्डः' सूत्र से ड।

(iv) **विप्रलूनम्**– वि+प्र+√लू+क्त, टूटा हुआ ।

संस्कृत व्याख्या– सीतां अभिलक्ष्य मुरला कथयति यत्– मानसनलिनशोषी कठोरः दीर्घमन्युः शोकः वृन्तात् छिन्नं सुन्दरं पल्लवमिव परिपाण्डुः क्षीणं अस्याः सीतायाः शरीरं शरदृतौ यः उत्पन्नो भवति आतपः, तेन केतकीपुष्पाभ्यन्तरदलमिव ग्लपयति यथा स्यात्तथा।

(क) शुद्ध विष्कम्भक– रूपक में जो घटनाएँ मंच पर दिखायी नहीं जाती हैं, उनकी सूचना देने के लिए, यहाँ पाँच प्रकार के अर्थोपक्षेपकों का विधान किया गया है, जिसमें एक प्रकार **विष्कम्भक** भी है। इसमें भूत एवं भविष्य की घटनाओं को संक्षेप में सूचित करने के लिए विष्कम्भक का दो अंकों के मध्य में प्रयोग करने का विधान किया गया है। जब यह एक या दो मध्यम श्रेणी के पात्रों द्वारा प्रयोग किया जाता है, तो इसे **शुद्ध विष्कम्भक** कहते हैं, जबकि नीच तथा मध्यम श्रेणी के पात्रों द्वारा प्रयोग किए जाने पर यही **मिश्र विष्कम्भक** के नाम से जाना जाता है। साहित्यदर्पणकार ने इसका लक्षण इसप्रकार दिया है–

वृत्तं वर्तिष्यमानानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भः आदावंकस्य दर्शितः।।
मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां सम्प्रयोजितः।
शुद्धः स्यात् स तु सकीर्णो नीचमध्यकल्पितः।।

प्रस्तुत अंक के आरम्भ में दो मध्यम श्रेणी के पात्रों तमसा–मुरला के संवाद में **शुद्ध विष्कम्भक** का प्रयोग किया गया है, जिसमें सीता के त्याग से जुड़ी, पूर्व में घटित घटनाओं की तथा भावी घटनाओं की सूचना दी गयी है।

(ख) नेपथ्य– अभिनय करने से पूर्व एवं मध्य में वेष परिवर्तन करने के लिए निर्धारित स्थान को 'नेपथ्य' संज्ञा प्रदान की गयी है। यह प्रायः मंच के पीछे अथवा उसके दाएँ, बायीं ओर होता है। इसका निर्माण, सुविधा की दृष्टि से पर्दे के पीछे भी कर लिया जाता है।

'नेपथ्यं स्याज्जवनिका रंगभूमिः प्रसाधनम्।' अमरकोष
अथवा **कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।**

आजकल इसे "ग्रीनहाउस" भी कहते हैं। यहाँ प्रयुक्त नेपथ्य से वासन्ती द्वारा सीता के पुत्रवत् पाले गए गजशावक को अन्य हाथी द्वारा आक्रान्त करने की बात कही गयी है।

(6) 'चन्द्रिका' ति– प्रस्तुत श्लोक कवि ने संवादात्मक रूप में प्रयुक्त किया है, इसमें नेपथ्य से आयी आवाज़ के पूर्वार्द्ध के बाद, सीता का वाक्य 'उसका क्या हुआ' प्रयुक्त होता है। उसके बाद उत्तरार्द्ध में पुनः नेपथ्य से वही ध्वनि आती है–

अपने वनवास के समय में पंचवटी में निवास करते हुए, देवी सीता ने हाथी के जिस चंचल बच्चे को, अपने कोमल हाथों से

सल्लकी के कोमल पत्तों को दे–देकर पाला–पोसा था, इसके बाद सीता कहती है कि उस बच्चे का क्या हुआ? उत्तर में श्लोक के उत्तरार्द्ध में कहा जाता है कि–

आज जब वह अपनी प्रिया के साथ, जल में विहार कर रहा था, तो किसी दूसरे मदमस्त हाथी ने उसे बलपूर्वक आक्रान्त कर लिया है अर्थात् अन्य बड़ा हाथी उसे दबोच रहा है, उसपर हावी हो रहा है।

विशेष– (i) सीता के हाथों द्वारा पाले गए, गजशावक के बड़े होने की सूचना देकर व्यतीत हुए, इसकी दीर्घकालिक अवधि के व्यतीत होने की सूचना दी गयी है, क्योंकि गजशावक अब युवा हो गया है।

(ii) हाथी के जल–विहार एवं अन्य हाथी द्वारा उसपर आक्रमण करने का कथन करने से, महाकवि का हस्तिविषयक गहन ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) श्लोक के मध्य में सीता की उत्सुकता के कारण, उसके पुत्र–वात्सल्य की भी सुन्दर अभिव्यंजना हो रही है।

(iv) 'करिकलभ' पद का प्रयोग 'गजशावक' के लिए तथा 'उद्दाम' शब्द का 'प्रचण्ड' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए हुआ है।

(v) 'सार्धम्' पद के योग में सहयुक्तेऽप्रधाने सूत्र से 'वध्वा' में तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

(vi) ऐसी स्थिति में यह गजशावक रक्षा करने योग्य है, यह अर्थ भी व्यंजना से प्रतीत हो रहा है।

व्या.टि.– (i) **सन्निपत्य**– सम्+नि+√पत्+क्त्वा (ल्यप्)।

(ii) **अभूत्**– √भू+लुङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन, हुआ।

(iii) **विहरन्**– वि+√हृ+शतृ, विहार करता हुआ।

(iv) **अभियुक्तः**– अभि+√युज्+क्त, समाक्रान्तः, इति।

(v) **द्विरदपतिना**– द्वौ रदौ अस्य, इति, तेषां, द्विरदानां पतिः द्विरदपतिः, स्वामी यः, सः तेन, गजराज द्वारा।

(vi) माधुर्य गुण, वैदर्भी रीति एवं मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग दर्शनीय है। लक्षण– **मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरू चेत्।**

संस्कृत व्याख्या– पूर्वकाले अग्रभागे यः प्रसिद्धः चंचलः गज–शावकः सीतादेव्याः स्वहस्तदत्तैः सल्लकीकिसलयाग्रैः वृद्धिं प्राप्तवान्। सः खलु हस्तिशावकः एषः करेणुकया सह जले विहरति स्म, तदैव अन्येन प्रचण्डेन गजराजेन अवलेपात् स्वमेव तस्य समीपे आगत्य आक्रान्तः। सः खलु करिकलभः सम्प्रति युवा संजातः स्वप्रियया सह अन्येन गजेन दुर्दान्तेन समाक्रान्तः, इति खेदस्य विषयः। अतएव रक्षणीयः एषः, इति।

(7) 'चन्द्रिका' ति– इसी बीच नेपथ्य से पुष्पक विमान को सम्बोधित करके श्रीराम कहते हैं कि विमानराज यहीं पर रुक जाइए, जिस स्वर को पहचान कर, सीता सहसा उत्सुक हो जाती है, जिसे देखकर उसके साथ स्थित तमसा कहती है कि–

जिसप्रकार मेघ के गम्भीर गर्जन को सुनकर, मोरनी हृदय में उत्पन्न आनन्द होने से चकित एवं उत्कण्ठित हो जाती है, ठीक उसीप्रकार कहीं से आते हुए, इस अस्पष्ट शब्द को सुनकर, तुम भी आनन्द से सराबोर होकर चकित और उत्कण्ठित हो गयी हो।

विशेष– (i) यहाँ पर सीता की उपमा मयूरी से तथा श्रीराम की मेघ से और उनके स्वर की उपमा मेघ के गम्भीर गर्जन से दी गयी है, जो अत्यन्त मनोहारिणी बन पड़ी है। अतः उपमालंकार एवं अनुष्टुप् छन्द का सौन्दर्य एवं महाकवि का उपमान चयन दर्शनीय है।

(ii) शब्द यद्यपि दूर से आया है। अतः अस्पष्ट है, किन्तु सीता ने उसे राम के स्वर के रूप में पूर्णरूप से पहचान लिया है, जिसके कारण वह चकित और उत्कण्ठित हुई है। इसलिए सीता के राम के प्रति घनिष्ट एवं अद्भुत प्रेम की अभिव्यक्ति भी हो रही है।

व्या.टि.– (i) **कुतस्त्ये**– कुतो भवः, इस विग्रह में त्यप् प्रत्यय।

(ii) **स्तनयित्नोः**–स्तन+विलुच्–स्तनयित्नु, ष.वि., एकवचन।

(iii) **स्थिता**– √स्था+क्त, टाप्, स्थित हुई।

संस्कृत व्याख्या– तमसा, सीतां प्रति कथयति यत्– पुत्रि! मेघस्य अव्यक्तशब्दे श्रवणे यथा मयूरस्य पत्नी मयूरी, चकितचकिता एवं उत्कण्ठिता भवति, तथैव त्वमपि अस्य अस्पष्टशब्दस्य श्रवणानन्तरं चकितचकिता उत्कण्ठिता च संजाता असि।

(8) 'चन्द्रिका' यत्रेति– तत्पश्चात् नेपथ्य से श्रीराम की आवाज़ आती है कि–

मेरे वनवास काल में जहाँ पर वृक्ष, लता आदि वनस्पतियाँ और मृग आदि वन्यपशु मेरे बन्धु थे तथा जिन स्थानों पर, मैंने अपनी प्रिया सीता के साथ लम्बे समय तक शान्तिपूर्वक निवास किया था। मेरे समक्ष दिखायी दे रहे, ये ही वे मेरे चिरपरिचित, अनेक गुफाओं एवं झरनों से युक्त, भगवती गोदावरी के पास में स्थित 'प्रस्रवण' नामक पर्वत के प्रदेश हैं।

विशेष– (i) राम का जनस्थान में शूद्र तपस्वी के वध के लिए आगमन हुआ है। उसके बाद उन्होंने पंचवटी के प्रदेशों में मन बहलाने का निश्चय किया है, तभी उक्त श्लोक का कथन 'नेपथ्य' से हुआ है।

(ii) वन के वृक्षों तथा वन्यपशु मृगों आदि के प्रति आत्मीयता की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। साथ ही, कवि का प्रकृति–प्रेम भी प्रदर्शित हुआ है, क्योंकि इसी अवसर पर उन्होंने प्रकृति चित्रण के अवसर को भी खोज लिया है।

(iii) प्रत्यभिज्ञा दर्शन, माधुर्य गुण, वैदर्भी एवं लाटी रीति और वसन्ततिलका छन्द का कमनीय प्रयोग हुआ है। छन्द का लक्षण इसप्रकार है– **उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।**

(iv) वृक्ष भी जहाँ बान्धव हैं, दूसरों की तो बात ही क्या? इस अर्थ की अभिव्यक्ति के कारण अर्थापत्ति अलंकार भी प्रयुक्त हुआ है।

लक्षण– दण्डापूपिकयाऽन्यार्थागमोऽर्थापत्तिरिष्यते।

(v) 'अध्यवात्सम्' में प्रयुक्त 'अधि' उपसर्गपूर्वक √वस् धातु का प्रयोग होने से आधार 'यानि तटानि' की कर्मसंज्ञा 'उपान्वध्याङ्वसः' सूत्र से हुई है।

(vi) महाकवि की भाषा की सरलता एवं मधुरता दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **प्रियासहचरः**– प्रिया सीता सहचरी यस्य सः।

(ii) **अध्यवात्सम्**– अधि+ √वस्+ उत्तमपुरुष, एकवचन।

(iii) **बहुकन्दरनिर्झराणि**– बहवः निर्झराश्च कन्दराश्च, इति।

संस्कृत व्याख्या– यत्र वन्यवृक्षाः मृगाश्च अपि मम बन्धवो बभूवुः, यत्र च प्रियया सह सुचिरं मया निवासः कृतः, एतानि बहु–संख्यकानि कन्दरा–निर्झराणि च तैः सहितानि गोदावर्याः परिसरस्य समीपवर्तिनः प्रस्रवणस्य पर्वतस्य तानि खलु तटानि सन्ति। एभिः सह मम गहनान्तरंगता आत्मीयता वा वर्तते।

(9) 'चन्द्रिका' अन्तर्लीनस्येति– पंचवटी को देखने के बाद, राम नेपथ्य से कहते हैं कि–

जिसप्रकार अग्नि प्रज्वलित होने से पहले धुआँ अत्यधिक वेग से उठता है, ठीक उसीप्रकार मेरे अन्तःकरण में लम्बे समय से छिपे हुए प्रबल दुःखरूपी अग्नि के फैलने से पहले ही मूर्च्छा मुझे चारों ओर से घेर रही है और मैं मूर्च्छित हुआ जा रहा हूँ।

विशेष– (i) अग्नि प्रज्वलित होने से पूर्व धूम के अधिकता से उठने की बात के उल्लेख से कवि की सूक्ष्मदृष्टि अभिव्यक्त हुई है।

(ii) यहाँ पर पीड़ा या दुःख की उपमा अग्नि से तथा मूर्च्छा की उपमा धुएँ से देने के कारण उपमालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति व अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है।

(iv) राम की गहन पीड़ा की अभिव्यक्ति होने से करुणरस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

(v) महाकवि हृदय में स्थित भावों की अभिव्यक्ति में निपुण हैं, प्रस्तुत श्लोक को किंकर्तव्यविमूढ़ चित्त की पीड़ा के उदाहरणरूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। कवि की मनोवैज्ञानिकता दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **अन्तर्लीनस्य**– अन्तर्+ √ली+क्त, ष.वि., ए.व.।

(ii) **दुःखाग्नेः**– दुःखं अग्निः इव, उपमित समास।

(iii) **आवृणोति**– आ+ √वृञ्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– नेपथ्यतः रामः कथयति यत्– अनेन पंचवटी दर्शनेन मम गुप्तरूपेण अन्तःवर्तमानस्य दुःखरूपाग्नेः अद्य अतीव वेगेन यथा स्यात् तथा, देदीपिष्यतः धूमस्य समूहः इव मूर्च्छा मां प्राक् खलु आवृणोति, आच्छादयति, इति।

(10) 'चन्द्रिका' त्वमेवेति— पंचवटी दर्शन से, दबे हुए गहन दुःख के जाग्रत हो जाने के कारण राम मूर्च्छित हो जाते हैं, जिसे देखकर अदृश्य सीता घबरा जाती है, तब तमसा, सीता से कहती है कि—

हे कल्याणि! तुम ही अपने कोमल हाथों का स्पर्श करके, संसार के स्वामी और अपने प्रियतम श्रीराम को जीवित करो, क्योंकि तुम्हारे हाथ का स्पर्श अत्यधिक प्रिय है एवं राम इसी स्पर्श के अभ्यस्त भी हैं।

विशेष— (i) सीता और राम के परस्पर गहन अनुराग की तलस्पर्शी अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) यहाँ प्रयुक्त 'कल्याणि' पद से सीता की चारित्रिक पवित्रता एवं उत्कृष्टता की व्यंजना हो रही है।

(iii) इसीप्रकार राम के 'जगत् पतित्व' से सीता का लक्ष्मीरूप होना भी अभिव्यंजित हो रहा है।

(iv) सामान्य का विशेष से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति व अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

(v) इसीप्रकार वाक्यार्थ हेतुक काव्यलिंग अलंकार का स्वाभाविक प्रयोग भी दर्शनीय है।

व्या.टि.— (i) **प्रियस्पर्शः**— प्रियः स्पर्शः यस्य सः, बहुव्रीहि।

(ii) **संजीवय**— सम्+√जीव्+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(iii) **निरतः**— निःशेषेण रतः, इति। नि+√रम्+क्त।

संस्कृत व्याख्या— **तमसा, सीतां प्रति कथयति यत्— हे कल्याणि सीते! त्वम् एव स्वहस्तस्पर्शेन जगत्पतिं रामं संजीवय, जीवितं कुरु, इति। यतोहि तव करस्य कोमलस्पर्शस्य खलु अयं जनः रामः अभ्यस्तः निरतः अनुरक्तश्च वर्तते, इति।**

(11) 'चन्द्रिका' आश्च्योतनमिति—सीता के हाथ के सुखद स्पर्श से राम की मूर्च्छा खुल जाती है और वे चैतन्य को धारण करते हैं तथा आश्चर्यपूर्वक अपने विषय में तीन सम्भावनाओं को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि—

(अ) क्या मेरे हृदय पर किसी ने हरिचन्दन के नए—नए पल्लवों का रस लगाया है?

(आ) क्या किसी ने चन्द्रमा के किरणरूपी अंकुरों को निचोड़ कर उसके रस से मेरे हृदय पर सेक किया है?

(इ) अथवा क्या मेरे सन्तप्त मन एवं प्राण दोनों को ही पूर्णरूप से तृप्त करने वाला, यह **'संजीवन'** नामक औषधि का रस ही मेरे हृदय पर सींच दिया है।

विशेष— (i) राम की आन्तरिक अनुभूति को कवि ने तीन उपमानों के माध्यम से चित्रात्मक शैली में प्रस्तुत किया है।

(ii) महाकवि की शैलीगत विशेषता रही है कि वे अपने काल्पनिक संसार से उपमानों का चयन करते हैं, जिन्हें पूर्णतया मौलिक कहा जा सकता है।

(iii) चन्द्रमा की किरणों के अंकुरों के निचोड़े गए रस से सेक की कवि की सर्वथा मौलिक कल्पना निश्चय ही प्रशंसनीय है।

(iv) सीता के हस्तस्पर्श की महिमा एवं उसकी चमत्कारिक शक्ति का मनोरम शैली में कथन किया गया है।

(v) **हरिचन्दन**[1]— इन्द्र के नन्दन वन में स्थित चन्दन, जिसकी शीतलता अपेक्षाकृत दूसरे चन्दनों से अधिक होती है, यहाँ उसी ओर संकेत किया गया है।

(vi) तीन प्रकार के सन्देहों के कारण सन्देह अलंकार[2], माधुर्य गुण, वैदर्भी रीति तथा वसन्ततिलका छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(vii) विरोधात्मक भाषा का चमत्कार भी दर्शनीय है।

व्या.टि.— (i) **सेकः**— √सिंच्+घञ्, सेचन करना।

(ii) **प्रसिक्तः**— प्र+√सिंच्+क्त, प्रकृष्टरूप से सींचा गया।

---

1 . पंचैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः।
सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम्।

2 . सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः।
शुद्धो निश्चयगर्भोऽसौ निश्चयान्त इति त्रिधा।

(iii) **निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजः**— इन्दोः कराः, ते एव कन्दलाः, निष्पीड़िताश्च ते इन्दुकरकन्दलाः, श्चेति तेषु जायते, इति।

(iv) **आतप्तजीवितमन0**— आतप्तयोः जीवितमनसोः परितर्पणः।

(v) **संजीवनौषधिरसः**— संजीवनस्य ओषधिः तस्याः रसः।

संस्कृत व्याख्या— आश्चर्यपूर्वकं रामः प्राणवान् भूत्वा कथयति यत्— अये, मम हृदये केनचित् हरिचन्दनस्य पल्लवानां रसक्षरणं कृतम्? आहोस्वित् निष्पीडिताः याः चन्द्रकिरणांकुराः तेभ्यः जातः रसः, तस्य सेकः एव कृतः? अथवा आतप्तयोः मम जीवितमनसोः प्रसादकरः केनचित् 'संजीवन' नाम ओषधिः तस्य रसः, खलु प्रकर्षेण सिक्तः? इति। किमेतत्, इति न अवधारयामि अर्थात् न निर्णेतुं शक्नोमि अहम्, इत्यर्थः।

(12) 'चन्द्रिका' स्पर्शेति— तत्पश्चात् राम इसी हाथ के स्पर्श की आनन्ददायिनी अनुभूति के विषय में फिर से कहते हैं कि—

मुझे जीवनशक्ति प्रदान करने का एक मात्र कारण और मेरे मन को पूरी तरह तृप्त करने वाला यह स्पर्श, वस्तुतः मेरा पहले से ही परिचित रहा है, यह मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ। इसके अतिरिक्त वियोग के कारण उत्पन्न होने वाले, भयंकर सन्ताप से पैदा होने वाली मूर्च्छा को दूर करके, एक बार आनन्द प्रदान करने के बाद, यह फिर से किसी अनिर्वचनीय जड़ता को मेरे शरीर में प्रसारित कर रहा है।

विशेष— (i) राम की आन्तरिक विकलता और आनन्द के मिश्रण को महाकवि ने शब्दों में निबद्ध करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। इसी को उनकी 'पदवाक्यप्रमाणज्ञता' भी कह सकते हैं।

(ii) पहले मूर्च्छा को दूर करके, असीम आनन्द की प्राप्ति तथा अगले ही क्षण अनिर्वचनीय जड़ता की अनुभूति का कथन करने से विरोधाभास अलंकार का कमनीय प्रयोग हुआ है।

(iii) अतिशयोक्ति अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

(iv) अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग महाकवि की महती विशेषता रही है, जिसे सम्पूर्ण अंक में देखा जा सकता है।

(v) वस्तुतः यहाँ पर जड़ता दो प्रकार की कही गयी है। **प्रथम,** मूर्च्छा के समय की जड़ता। **द्वितीय,** आनन्द के बाद की जड़ता जिसे यहाँ अनिर्वचनीय भी कहा गया है।

व्या.टि.— (i) **परिचितः**— परि+√चि+क्त, परिचित, जानकार।

(ii) **परिहृत्य**— परि+√हृ+क्त्वा (ल्यप्), दूर करके।

(iii) **परितोषणं**—परि+√तुष्+ल्यु, पूर्णतया सन्तुष्ट करने वाला।

(iv) **नियतम्**— नि+√यम्+क्त। निश्चित।

(v) **संजीवनः**— सम्+√जीव्+ल्यु, भलीप्रकार जीवन देने वाला।

(vi) **संतापजाम्**—संतापे जायते, इति, ताम्। सन्ताप से उत्पन्न।

(vii) **आतनोति**— आ+√तनु विस्तरणे+लट्, प्र.पु., ए.वचन।

संस्कृत व्याख्या— अयं स्पर्शः वस्तुतः मम पूर्वपरिचितोऽस्ति। अनेन खलु मम संजीवनं संजातम्। मनसः च तृप्तिः संभूता। मोहात् पूर्व मम जड़ता आसीत्, अनेन सुखदस्पर्शेन सा दूरीकृता, किन्तु आनन्द— प्रदानेन नवीना काचित् अनिर्वचनीयजडता प्रकटिता किल।

(13) 'चन्द्रिका' तटस्थमिति— सीता द्वारा तमसा से अपने हृदय की विचित्र सी विकलता के विषय में कहने पर, तमसा, सीता से कहती है कि— पुत्रि, मैं तुम्हारे हृदय की अवस्था को जानती हूँ—

इस समय राम से अकस्मात् मिलने के कारण, तुम्हारा हृदय निराशा से फिर कभी हमारा मिलन होगा भी या नहीं, इस भाव से उदासीन अर्थात् **तटस्थता** का भाव लिए हुए है। इसके अतिरिक्त इन्होंने तुम्हें अकारण ही त्याग दिया था, इसलिए क्रोध के कारण **कालुष्य** धारण किए हुए है। इतने दीर्घकालीन वियोग के बाद अकस्मात् ही मिलने से **स्तब्ध** है। इसीप्रकार राम के सौजन्य से प्रसन्न एवं अपने प्रिय के इसप्रकार के करुणामय विलापों के कारण अत्यधिक शोक से **व्याकुल** हो रहा है तथा हृदय में स्थित राम के प्रति स्थायी प्रेमभाव से **द्रवित** सा हुआ जा रहा है।

विशेष— (i) सीता के हृदय की सूक्ष्मतम स्थिति का चित्रण किया गया है। महाकवि की सूक्ष्मदृष्टि व मनोवैज्ञानिकता दर्शनीय है।

(ii) काव्यशास्त्रियों ने इसे अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनि के उदाहरणरूप में प्रस्तुत किया है।

(iii) सीता के हृदय में एक साथ नैराश्य, कालुष्य, स्तब्धत्व, प्रसन्नता, गाढकारुण्य एवं द्रवीभावादि के सम्मिश्रण की स्थिति का सुन्दर चित्रण कवि की गम्भीरता को प्रदर्शित करने वाला है।

(iv) विशेषणों के साभिप्राय प्रयुक्त होने से परिकर और उत्प्रेक्षा अलंकारों एवं सरस शिखरिणी छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(v) वीरराघव ने प्रस्तुत श्लोक की सुन्दर व्याख्या करते हुए, ये तो वे ही परिचित अक्षर हैं, इससे तटस्थता को, त्यागरूप अनुचित कार्य से कालुष्य को, अद्भुत चन्द्रप्रभामण्डल से स्तब्धता को प्रतिपादित किया है।

व्या.टि.– (i) **द्रवीभूतम्**– द्रव+च्वि+ √भू+क्त, पिघलना।

(ii) **सौजन्यात्**– सुजनस्य भावः तस्मात्, सुजन+ष्यञ् ।

(iii) **तटस्थम्**– तटे तिष्ठति, इति। तट+ √स्था+क।

(iv) **प्रसन्नम्**– प्र+ √सद्+क्त। **वियोगे**– वि+ √युज्+घञ्।

संस्कृत व्याख्या– हे पुत्रि! एतस्मिन् क्षणे तव हृदयं निराशायाः कारणात् उदासीनम् इव, अप्रियवशात् आविलम् इव, बहुकालिके अस्मिन् विरहे आकस्मिकमिलनात् निश्चलम् इव, रामस्य सुजनतायाः भावात् प्रीतम् इव, प्रियस्य शोकाकुलावस्थाम् अवलोक्य गहनशोकयुक्तम्, प्रणयेन द्रवत्वं गतम् इव विद्यते।

(14) 'चन्द्रिका' प्रसादेति– सीता के हाथ के सुखद स्पर्श का अनुभव करने तथा उसके दिखायी न देने पर श्रीराम कहते हैं कि–

हे देवि! स्नेह के कारण आर्द्र एवं शीतल तुम्हारे हाथ का स्पर्श इस अवस्था में वस्तुतः मुझे मूर्तिमान् अनुग्रह के समान आह्लादित कर रहा है, किन्तु हे आनन्द प्रदान करने वाली सीते! तुम मुझे कहीं भी दिखायी नहीं दे रही हो, तुम कहाँ हो?

विशेष– (i) प्रलापों से राम की कारुणिक स्थिति का सुन्दर चित्रण होने से करुणरस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

(ii) 'प्रसाद इव' में उत्प्रेक्षालंकार का प्रयोग दर्शनीय है।

(iii) 'प्रसादः' पद का प्रयोग 'अनुग्रह' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए हुआ है। अतः राम की सीता के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित हुई हैं।

(iv) सरल भाषा एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

(v) प्रसंग के अनुसार यहाँ 'नन्दिनि' पद आनन्द प्रदान करने वाली, प्रेयसी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

व्या.टि.– (i) **स्नेहार्द्रशीतलः**– स्नेहेन आर्द्रः शीतलश्च।

(ii) **आनन्दयति**–आ+ √नन्द्+णिच्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iii) **असि**– √अस्+ लट्, मध्यमपुरुष, एकवचन, हो।

संस्कृत व्याख्या– हे देवि सीते! तव एषः प्रेम्णा आर्द्रः शीतलश्च हस्तस्पर्शः मत्कृते मूर्तिमान् अनुग्रहः इव वर्तते, सम्प्रति खलु एषः मां आनन्दयति, हे नन्दिनि! हे आनन्दप्रचुरे! त्वं पुनः क्वासि, नैव दृश्यसे।

(15) 'चन्द्रिका' येनादगच्छेति– राम, वासन्ती के साथ गोदावरी के किनारे जाने पर, सीता द्वारा पुत्रवत् पाले गए, विरोधी मदमस्त हाथी पर विजय प्राप्त किए हुए, गजशावक को अब पूर्ण युवारूप में देखकर, प्रसन्नतापूर्वक सीता को सम्बोधित करके कहते हैं कि–

हे देवि! सौभाग्य से तुम वृद्धि को प्राप्त हो रही हो, क्योंकि, हे शोभान अंगों वाली! पंचवटी प्रवासकाल में उगते हुए मृणाल के किसलय के समान, चिकने दाँतों द्वारा, जिस करिकलभ ने तुम्हारे कानों में लगे हुए, लवली लता के पत्ते को खाने के लिए खींच लिया था, वही तुम्हारा यह पुत्र इससमय मदमस्त दूसरे हाथियों का विजेता हो गया है तथा युवावस्था का जो सुख, अपनी प्रिया से प्रेम करना होता है, उसका भी यह पात्र हो गया है अर्थात् अपनी प्रियतमा हथिनी के साथ युवावस्था के सुखों को भोग रहा है।

विशेष– (i) प्रकृति के उपादान हाथी के प्रति महाकवि की वात्सल्यमयी दृष्टि उनके गहन प्रकृति–प्रेम का परिचायक रही है।

(ii) उपमालंकार एवं मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

(iii) करिकलभ के उगते हुए छोटे–छोटे दाँतों को अँकुर के रूप में प्रस्तुत करके, उनके चिक्कणत्व के लिए मृणाल के किसलय की उपमा अत्यन्त हृदयहारिणी बन पड़ी है।

(iv) सीता का गजशावक के प्रति वात्सल्यभाव भी अभिव्यंजित हुआ है। कोई भी माँ अपने युवापुत्र को देखकर प्रसन्न होती है, इस भाव की अभिव्यक्ति के लिए राम ने आरम्भ में सीता को बधाई दी है।

(v) यहाँ प्रयुक्त 'भाजनम्' पद नित्य नपुंसकलिंग होता है।

(vi) कर्णमूलात् के स्थान पर कर्णपूरात् पाठभेद भी मिलता है।

(vii) हाथी के इस बच्चे के प्रसंग को जोड़ने के पीछे कवि का उद्देश्य सीता के वात्सल्यभाव को इंगित करना रहा है। साथ ही, इससे यह भी व्यंजना हो रही है कि– जो सुख मैं तुम्हें प्रदान न कर सका, तुम्हारे सौभाग्य ने तुम्हें पुत्र–सुख प्रदान कर दिया है

व्या.टि.– (i) **व्याकृष्टः–** वि+आ+ √कृष्+क्त, खींचा गया।

(ii) उद्गच्छत् विसकिसलयवत् स्निग्धः दन्तांकुरो यस्य तेन।

संस्कृत व्याख्या– हे देवि! त्वं सौभाग्येन वृद्धिं प्राप्नोषि, यतोहि अयं करिकलभः त्वया पोषितः, सम्प्रति ईदृशः युवा संजातः। हे सुतनु! येन करिशावकेन बाल्यकाले तव श्रोत्रमूलात् लवलीलतायाः पल्लवस्य आकर्षणं कृतम् आसीत्। सः वै तव सुतः, इदानीं मदस्राविणां द्विपानां विजयकर्ता संजातः। अधुना अयं नवीने तरुण्ये अवस्थायां वर्तते, अस्याम् अवस्थायां यत् भद्रं भवति, तस्यापि एषः पात्रम् सम्पन्नः, प्रियायाः प्रेम–सौख्यमिति, अतीव प्रसन्नतायाः विषयोऽयं खलु।

(16) 'चन्द्रिका' लीलोत्खातेति– इसके बाद कवि उस युवा गजशावक द्वारा अपनी प्रिया को प्रसन्न करने की गतिविधियों का चित्रात्मक शैली में सूक्ष्मतापूर्वक कथन करते हुए कहते हैं कि–

हे वासन्ति! देखो तो इसने अपनी प्रिया को प्रसन्न करने की कला भी सीख ली है, जिसमें निपुण इस बच्चे ने सबसे पहले तो अनायास ही बिना किसी कष्ट के उखाड़े गए, कमलनाल के ग्रासों को अपनी प्रियतमा को खिलाने के बाद, खिले हुए कमलों की सुगन्ध से सुवासित जल को अपने मुख में भरकर, अपनी प्रेमिका हथिनी के मुख में अत्यन्त प्रेमपूर्वक उडेल दिया और तत्पश्चात् जल की बूँदों की वर्षा करने वाली, अपनी सूँड़ से उसे प्रेमस्नान भी कराया। उसके बाद अन्त में अत्यधिक प्रेम से एक सीधी नाल वाले, कमल के पत्ते को अपनी

सूँड़ में लेकर उसके ऊपर धूप से इसकी रक्षा करने के लिए, छत्ररूप में तान दिया।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में प्रयुक्त 'छेद' पद का अर्थ 'कमल नाल को उखाड़कर प्रियतमा को खिलाने' से ग्रहण करना चाहिए।

(ii) यही श्लोक महाकवि द्वारा विरचित मालतीमाधव (9/34) में भी इसीरूप में प्रयुक्त हुआ है, किन्तु वहाँ 'यत्' के स्थान पर 'न' का प्रयोग किया गया है।

(iii) मुँह में जल भरकर, उड़ेलने की क्रिया को गण्डूष संक्रान्तयः कहा जाता है।

(iv) हथिनी को प्रसन्न करने के लिए युवा हाथी द्वारा की जाने वाली प्रेमपूर्ण स्वाभाविक क्रियाओं के उल्लेख से कवि का हस्ति विज्ञान विषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(v) युवा हाथी की प्रेमपूर्ण क्रियाओं का स्वाभाविक वर्णन करने से स्वभावोक्ति अलंकार का सौन्दर्य एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द का कमनीय प्रयोग दर्शनीय है।

(vi) 'कर' पद का प्रयोग 'हाथी की सूँड़' के अर्थ में हुआ है।

व्या.टि.– (i) **धृतम्–** √धृ+क्त। **उत्खात–** उत्+ √खन्+क्त।

(ii) लीलया उत्खातानि मृणाल–काण्डानि तेषां कवलाः तेषां छेदेषु। लीलापूर्वक उखाड़े गए कमल–दण्डों के ग्रासों के अन्त में।

(iii) पुष्यन्ति च तानि पुष्कराणि तैः वासितस्य।

संस्कृत व्याख्या– करिकलभस्य स्वकान्तानुवृत्तिचातुर्यम् आख्यातुं रामः वासन्तीं प्रति कथयति यत्– अयं करिवरपोतः सहचरी आराधने निपुणो जातः। यतोहि– एषः स्नेहात् क्रीडया एव उत्पाटिताः ये मृणालानां काण्डाः बिसस्तम्बाः तेषां ग्रासानां शकलेषु विकासं भजमानानि यानि कमलानि तैः सुगन्धितं तस्य जलस्य मुखजलानां प्रदानानि सम्पादिताः कृताः, एवं च जलकणयुक्तेन शुण्डादण्डेन पर्याप्तं यथा स्यात्तथा जलेन सेकः कृतः, अन्ते च वक्रतारहितं दण्डो यस्य तत् एवंविधं यत् कमलिन्याः दलं आतपनिवारणार्थं तत् छत्रं धृतम्।

(17) 'चन्द्रिका' अन्तःकरणेति– इसके बाद तमसा, पुत्र की महिमा का कथन करके, उसे माता–पिता को परस्पर जोड़कर रखने वाली 'ग्रन्थि' बताते हुए सीता से कहती है कि–

स्नेह का आश्रय लेने के कारण, पति और पत्नी दोनों के अन्तःकरण में विद्यमान रहने वाले 'आनन्द' नामक के तत्त्व की एकमात्र 'ग्रन्थि' अर्थात् गाँठ को ही सन्तान कहा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि दम्पति के प्रेमपूर्ण हृदयों को एक बन्धन में बाँधने वाली ग्रन्थि एवं दोनों के हृदयों में बिखरे हुए प्रेमकणों के मूर्तरूप को ही 'सन्तान' कहते हैं।

विशेष– (i) महाकवि ने अपनी मान्यता के अनुसार 'सन्तान' पद को अत्यन्त सुन्दर एवं सटीक शब्दों में परिभाषित किया है।

(ii) वीरराघव ने यहाँ आनन्द और ग्रन्थि को अलग–अलग पद मानकर अर्थ किया है।

(iii) ग्रन्थि से यहाँ 'सूत्र' या 'बीज' अर्थ भी ग्रहण किया जा सकता है, क्योंकि पति–पत्नी के मध्य यह प्रेमरूप सूत्र या बीज ही तो होता है।

(iv) रूपकालंकार एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **दम्पत्योः–** जाया च पतिः च दम्पती तयोः।

(ii) **अन्तःकरणतत्त्वस्य–** अन्तःकरणमेव तत्त्वम्, तस्य ।

(iii) **स्नेहसंश्रयात्–** स्नेहस्य संश्रयः स्नेहसंश्रयः, तस्मात्।

संस्कृत व्याख्या– तमसा, सीतां प्रति कथयति यत्– पतिपत्न्योः अन्तःकरणस्य यत् तत्त्वं तस्य प्रीतिसंश्रयात् अयं एकः अद्वितीयः सुखस्य ग्रन्थिः सन्ततिः खलु भवति। सन्तत्याः परिभाषा कृताऽत्र।

(18) 'चन्द्रिका' अनुदिवसेति– सीता के पुत्रवत् पाले गए, करिकलभ की चेष्टाओं का वर्णन करने के बाद, वासन्ती, सीता द्वारा पाले गए युवा मोर की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कहती है कि–

नए निकले हुए सुन्दर तथा चंचल पंखों से युक्त, जिस मोर को आपकी प्रिया सीता ने प्रतिदिन स्नेहपूर्वक पाला था, मानो किरणों को ऊपर की ओर फैलाने वाली, मणियों से जड़ी हुई, ऊँची कलगी से

युक्त, वही यह मोर इस समय अपनी पत्नी के साथ, कदम्ब के वृक्ष पर बैठा हुआ आनन्दपूर्वक केकारव कर रहा है।

विशेष– (i) युवा मोर की स्वाभाविक चेष्टाओं का वर्णन करने के कारण स्वभावोक्ति अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(ii) माधुर्य गुण, उत्प्रेक्षालंकार एवं पुष्पिताग्रा[1] छन्द का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(iii) महाकवि का प्रकृति विषयक प्रेम अभिव्यक्त हुआ है।

(iv) हस्तिशावक एवं मोर का सपत्नीक वर्णन करने का महाकवि का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य राम को यह सन्देश देना भी रहा है कि– 'पत्नी के अभाव में व्यक्ति की संसार यात्रा निष्फल होती है। वन के ये प्राणी भी अपना जीवन सपत्नीक ही प्रेमपूर्ण व्यतीत करते हैं, आपका जीवन सीता के बिना निरर्थक है।'

व्या.टि.– (i) **नदति–** √नद्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **अवर्धयत्–** √वृधवर्धने+ णिच्+लुङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iii) **शिखण्डी–** शिखण्डोऽस्यास्ति, इति। शिखण्ड+इनि।

(iv) **वधूसखः–** वधू+सखिन्+टच्, (राजाहः सखिभ्यष्टच् से)

(v) **मणिमुकुटः–** मणिखचितं मुकुटं यस्य सः। बहुव्रीहि समास।

(vi) **उच्छिखः–** उद्गता शिखा यस्य सः। बहुव्रीहि समास।

संस्कृत व्याख्या– वासन्ती रामं मयूरं प्रति संकेतो कृत्वा कथयति यत्– पश्यतु तावत् एषः पर्वतीयः मयूरः सद्यः विनिर्गतं मनोहरं चंचलं पुच्छं यस्य तं, यं तव प्रिया सीता प्रतिदिवसं पोषितवती, सम्प्रति उत्कृष्टा शिखा यस्य सः मणिजटितमुकुटः इव स्ववधूसहितः अस्य कदम्बस्य उपरि अव्यक्तस्वरेण केकारवं करोति।

(19) 'चन्द्रिका' भ्रमिष्विति– सीता की सखी वासन्ती द्वारा कदम्ब के वृक्ष पर बैठे हुए, मोर की ओर ध्यान आकृष्ट करने पर, राम को मोर के प्रति की गयी प्रिया सीता की मधुर क्रियाओं की स्मृति आ जाती है और वे उस मोर को सम्बोधित करके कहते हैं कि–

---

[1]. लक्षण–अयुजि नयुगरेफतो यकारो। युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।

जब प्रियतमा सीता अपने हाथरूपी कोमल किसलयों द्वारा ताल देकर, तुम्हें नचाया करती थी, उस समय तुम चारों ओर गोलाकार रूप में घूमते थे। ठीक उसीप्रकार प्रिया के नेत्रों की पुतलियाँ अन्दर ही अन्दर तथा बाहर की ओर विलासपूर्वक भौहें भी घूमती थीं। भौहों के इस सुन्दर नृत्य से उसकी अत्यधिक शोभा होती थी। आज भी मैं उन सभी बातों को ध्यान करके, प्रेमपूर्वक मन से पुत्र के समान तुम्हारा स्मरण करता हूँ।

विशेष– (i) मोर के माध्यम से कवि ने राम के हृदय में सीता की स्मृति को, फिर से वात्सल्यपूर्ण नयारूप प्रस्तुत किया है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में प्रयुक्त 'चटुल' एवं 'प्रचल' शब्दों को कुछ विद्वानों ने पर्यायवाची मानकर 'अधिकपदत्व' दोष की परिकल्पना की है, जो प्रस्तुत प्रसंग में आन्तरिक सूक्ष्मता की दृष्टि से उचित प्रतीत नहीं होती है।

(iii) उपमालंकार एवं मालिनी छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) कृता पुटान्तः मण्डलावृत्तिः येन तत् तथाभूतं चक्षुः।

(ii) **स्मरामि**– √स्मृ+लट्, उत्तम पुरुष, ए.व., स्मरण करता हूँ।

(iii) **मण्डन्त्या**– √मण्ड्+णिच्+शतृ, तृतीया विभक्ति, एकवचन।

(iv) **करकिसलय0**–करौ किसलये इव इति, तयोः तालाः, तैः।

संस्कृत व्याख्या– रामः मयूरं दृष्ट्वा कथयति यत्– भ्रमणेषु सम्पादिता लोचनावरणयोः मध्यभागे मण्डलाकारेण आवर्तनं तत्, नेत्र प्रकर्षेण चलिते इति यावत् स्वभावेनैव चपले ये भ्रुवौ तयोः नर्तनैः अलंकुर्वन्त्या मनोहरया, सीतया करकिसलयोः तालैः नर्तनपरायणं क्रियमाणं त्वां मयूरं पुत्रम् इव प्रीतिसहितेन चित्तेन अहं ध्यायामि।

(20) 'चन्द्रिका'कतिपयेति– मोर को देखकर, सीता द्वारा वात्सल्यभाव से की गयी चेष्टाओं को स्मरण करने के बाद, श्रीराम पुनः कहते हैं कि– अरे, पशु–पक्षी भी परिचय का ध्यान रखते हैं, क्योंकि–

प्रियतमा सीता ने जिस कदम्ब के पौधे को जल आदि सींचकर बड़ा किया था, (राम के इस वाक्य को सुनकर नेत्रों में वात्सल्यपूर्ण

अश्रुओं को भरकर सीता कहती है कि– आर्यपुत्र ने ठीक पहचान लिया है) उसके बाद श्रीराम पुनः कहते हैं कि–

उसी कदम्ब के वृक्ष पर बैठकर, यह पर्वतीय मोर अपनी माता सीता देवी को याद कर रहा है, क्योंकि कदम्ब के इस वृक्ष पर बैठकर इसे आत्मीयजन के समान आनन्द की प्राप्ति हो रही है।

विशेष– (i) उपर्युक्त श्लोक महाकवि ने संवादात्मक रूप में प्रस्तुत किया है, क्योंकि पूर्वार्द्ध के बाद 'आर्यपुत्र ने ठीक ही पहचाना' इत्यादि सीता द्वारा प्रयुक्त वाक्य आया है, उसके बाद ही श्लोक का उत्तरार्द्ध आया है।

(ii) कदम्ब वृक्ष से कवि का विशेष लगाव रहा है। प्रस्तुत कृति में इसका अनेक स्थलों पर वर्णन किया गया है।

(iii) कवि का अभिप्राय है कि वन्य पशु–पक्षी भी परिचय का ध्यान रखते हुए, अनुराग को प्रदर्शित करते हैं, फिर आपने अपनी विवाहिता पत्नी सीता को उनके प्रेम का ध्यान रखते हुए क्यों त्याग दिया? यही प्रश्न कवि ने आगे वासन्ती से कराया भी है।

(iv) 'स्वजन इव' में उपमा एवं हेतुवाक्य के कारण काव्यलिंग अलंकार तथा पुष्पिताग्रा छन्द का संवादात्मक प्रयोग दर्शनीय है।

(v) कदम्ब के वृक्ष पर भी कुछ पुष्पों के उद्‌गम से उसकी युवावस्था की अभिव्यंजना हो रही है। साथ ही, इन सभी पशु, पक्षी तथा वृक्षों की युवावस्था होने से, सीता के दोनों पुत्र भी इस समय युवा हो गए होंगे, यह व्यंजित करना कवि का अभिप्राय है।

व्या.टि.– (i) **स्मरति**– √स्मृ+लट्, प्रथम पुरुष, एकवचन।

(ii) **आसीत्**– √अस्+लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन, था।

(iii) **परिवर्धितः**– परि+√वृध्+णिच्+क्त, बढ़ाया हुआ।

(iv) **गिरिमयूरः**– गिरिप्रियः मयूरः, पर्वत पर रहने वाला मोर।

संस्कृत व्याख्या– कतिपयपुष्पोद्गमः अयं कदम्बस्य वृक्षः दयितया सीतया संवर्धितोऽभवत् जलादि प्रदानेन। एवं च एषः पुरो दृश्यमानः पर्वतीयमयूरः देव्याः सीतायाः स्मरणं करोति, यतोहि अयं मयूरः अस्मिन् कदम्बवृक्षे आत्मबन्धवः इव हर्षम् अनुभवति।

(21) 'चन्द्रिका' निरन्ध्रेति– यहाँ तक हाथी, मोर, कदम्ब के विषय में राम का ध्यान दिलाने के बाद, वनदेवी वासन्ती सुकुमार केलों के बीच में स्थित शिलातल की ओर संकेत करते हुए, श्रीराम से कहती है कि–

घने तथा छोटे–छोटे केले के वन के बीच में स्थित यह शिलातल है, जिसपर आप विश्राम करते थे एवं इसी शिलातल पर बैठकर सीता वन में घूमने वाले, हरिणों को अपने हाथों से कोमल–कोमल घास के तिनके खिलाया करती थी। इसी कारण उसे हरिण चारों ओर से घेरे रहते थे, उनका साथ नहीं छोड़ते थे।

विशेष– (i) सीता का वन्य–जीवों के प्रति वात्सल्यभाव प्रदर्शित हुआ है, जिससे कवि का प्रकृति–प्रेम भी अभिव्यंजित हुआ है।

(ii) महाकवि की चित्रात्मक शैली व लाटी रीति, काव्यलिंग, स्वभावोक्ति तथा अनुप्रास अलंकार का प्रयोग द्रष्टव्य है।

(iii) प्रसाद गुण, वसन्ततिलका छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) घने केलों के कुँज में शिलातल की स्थिति के वर्णन से उसमें शैत्यभाव की भी अभिव्यक्ति हुई है, जो उनका विश्रामस्थल था।

व्या.टि.– (i) **कान्तासखस्य**– कान्तायाः सखा, तस्य।

(ii) **शयनीयशिलातलम्**– शयनीयं च तत् शिलातलं चेति।

(iii) **स्थिता**– √स्था+क्त+टाप्। **हरिणकैः**–हरिण+कन्, तृ.वि.।

(iv) **नीरन्ध्रबालकदलीवनमध्यवर्ति**– बाला चासौ कदली, इति, तस्याः वनम्, इति। निर्गतः रन्ध्रः यस्मात् तद्, बालकदलीवनं चेति, तस्य मध्ये वर्तते, इति, एवं शीलं यस्य सः।

(v)**वनगोचरेभ्यः**–गवि चरति, इति गोचरः,तेभ्यः, गो+ √चर्+ट।

संस्कृत व्याख्या– वासन्ती पूर्वकालिकं शयनीयशिलातलं दर्शयितुं रामं प्राह– एतत् सघनबालकदलीनां वने तव सीतासहितस्य शिलातलम् अस्ति। अत्र स्थिता सीता देवी वनचरेभ्यः मृगेभ्यः तृणानि अर्पितवती। अतएव ते तां न मुंचन्ति स्म, अपितु सीतां परितः प्रतितिष्ठन्ति स्म, इति, भावः।

(22) 'चन्द्रिका' नवकुवलयेति– केलों के वन में स्थित शिलातल को दिखाने के बाद, वासन्ती अपनी सखी अदृश्य सीता को सम्बोधित करके कहती है कि तुम्हारे वियोग में श्रीराम की इस कारुणिक अवस्था को तुम क्यों नहीं देख रही हो–

जो राम अपने वनवास काल में नए नीले कमल के समान, चिकने अंगों से हम सभी के नेत्रों को उत्सव के समान आनन्द प्रदान करते थे और हमेशा ही अपनी–अपनी रुचि के अनुकूल हमें नए ही प्रतीत होते थे, वे ही इस समय तुम्हारे इस दीर्घकालिक वियोग में शोक से दुर्बल, विकल इन्द्रियों से युक्त एवं पीली कान्ति वाले हो गए हैं। साथ ही, ये वे ही हैं, इसप्रकार अत्यधिक कठिनाई के साथ पहचाने जा रहे हैं, किन्तु फिर भी ये हमारी आँखों को अत्यन्त अच्छे लग रहे हैं।

विशेष– (i) सीता पर वियोग के अधिक प्रभाव को प्रदर्शित करने के लिए, परिपाण्डु तथा यहाँ पर पाण्डु पद का प्रयोग किया है।

(ii) उपमा एवं अनुमान अलंकारों की संसृष्टि दर्शनीय है।

(iii) प्रसादगुण, वैदर्भी रीति व हरिणी छन्द का प्रयोग है।

लक्षण– नसमरसला गः षड्वेदैर्हयै र्हरिणी मता।

(iv) यहाँ प्रयुक्त 'नवो नवः' पदों का 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति,' इत्यादि माघ के भावों पर प्रभाव प्रतीत होता है।

व्या.टि.– (i) **ददन्**–√दा+शतृ, देता हुआ। **दृश्यः**–√दृश्+यत्।

(ii) **नवकुवलयस्निग्धैः**– नवानि च तानि कुवलयानि तानि इव स्निग्धानि तैः। उपमानानि सामान्यवचनैः से उपमित समास का प्रयोग।

(iii) **नयनोत्सवम्**– नयनयोः उत्सवः, तम्। नेत्रों का उत्सव।

(iv) **स्वेच्छादृश्यः**– स्वेच्छया दृश्यः, स्वेच्छा से देखने योग्य।

(v) **विकलकरणः**– विकलानि करणानि यस्य सः, बहुव्रीहि।

(vi) **पाण्डुच्छायः**– पाण्डुः छाया यस्य सः, [illegible]।

संस्कृत व्याख्या– हे सखि सीते! रामभद्रस्य एषा कीदृ[illegible] विद्यते? इति त्वं किमु न पश्यसि? [illegible] रामः पूर्वकाले नूतननीलक[illegible] सन्निभैः स्निग्धतरैः शरीरावयवै[illegible]त्रोत्सवं ददानः सततं स्वरु[illegible]

दर्शनीयः प्रतिक्षणं नवः इव आसीत्। सः एव अधुना विरहसन्तापात् शुष्ककलेवरः पाण्डुवर्णः, अतितमां दुर्बलेन्द्रियप्राणः 'सः एव अयमिति' कथम् अपि समुन्नेतव्यः, तथापि एषः लोचनरमणीयोऽस्ति।

(23) 'चन्द्रिका' विलुलितेति– सीता द्वारा अपने प्रिय राम को अत्यन्त लालसापूर्वक अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखने पर, तमसा, सीता का आलिंगन करके रोते हुए कहती है कि–

आनन्द एवं शोक के अत्यन्त प्रबल वेग से उत्पन्न, आँसुओं की वर्षा करती हुई, घने पलकों वाली, विशाल एवं प्रेम की वर्षा करने वाली, प्रिय के मन को हरने वाली, तुम्हारी **दृष्टि, दूध की नदी** (कुल्या) **के समान,** अपने प्राणेश्वर राम को स्नान करा रही है अर्थात् वियोग काल में प्रसाधन न करने के कारण काजल आदि से रहित होने से हे सीते! श्वेत और प्रेम से परिप्लुत, तुम्हारी सौम्य दृष्टि, अपने राम को निरन्तर टकटकी लगाकर देख रही है।

विशेष– (i) यद्यपि नेत्रों में अश्रुओं का आगमन आनन्द एवं शोक दोनों प्रकार से होता है, किन्तु दीर्घकाल के बाद, राम को अपने समक्ष देखकर सीता के ये आनन्द के आँसू हैं।

(ii) जबकि अगले ही क्षण जब वह चिन्तन करती है कि प्रियतम का साहचर्य फिर से प्राप्त हो सकेगा? तो निराश हो जाती है, जिससे ये ही अश्रु शोक वाले हो जाते हैं। इसप्रकार कवि ने यहाँ इन्हें आनन्द और शोक दोनों से एक साथ उत्पन्न कहा है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा एवं समासोक्ति अलंकारों एवं मालिनी छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(iv) कवि की कल्पना व सूक्ष्मदृष्टि अति मनोरम बन पड़ी है।

(v) नेत्रों की विशालता अर्थात् बड़ा होना, स्त्री के लिए सौन्दर्य का प्रतीक माना गया है, जिसका कवि ने यहाँ सीता के लिए 'दीर्घा' पद का प्रयोग करके उल्लेख किया है।

(vi) 'पक्ष्मल' पद के प्रयोग से सीता का पद्मिनी नायिका होना भी अभिव्यंजित हो रहा है तथा सीता की प्रेममयी दृष्टि का 'दुग्ध-कुल्या' के माध्यम से तलस्पर्शी चित्रण किया गया है।

(vii) 'धवल' पद का कुछ व्याख्याकारों ने 'नेत्रों में अंजन के प्रयोग का अभाव' अर्थ किया है, किन्तु यहाँ पर यह भी उन नेत्रों के स्वाभाविक सौन्दर्य को कम करने वाला नहीं है।

व्या.टि.– (i) **अवसृजंन्ती**– अव+√सृज्+ङीप्, प्र.वि., ए.व.।

(ii) **स्नपयति**– √स्नप्+णिच्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iii) **स्नेहनिष्यन्दिनी**– स्नेह+नि+√ष्यन्द्+णिच्+णिनि+ङीप्।

(iv) मधुरा च सा, मुग्धा च सा, धवला च सा, इति।

(v) पक्ष्मला च सा उत्ताना च सा, दीर्घा च सा, इति।

संस्कृत व्याख्या– **हे सखि! सीते! अतीवप्रवाहैः विकीर्णम् आनन्दशोकप्रभवम् अश्रुजलम् उत्पादयन्ती, पक्ष्मलोत्तानायता श्वेतप्रिय–सौन्दर्योपेता दुग्धकुल्या इव तव दृष्टिः प्रेमवर्षिणी भूत्वा रामभद्रं स्नपयति।**

(24) 'चन्द्रिका' ददत्विति– इसके बाद वनदेवी वासन्ती, श्रीराम के पुनः वन में आने पर, वन में स्थित वृक्षों तथा वायुओं को, उनका स्वागत करने के लिए कहती हैं कि–

हे मकरन्द की वृष्टि करने वाले वृक्षों, आप सभी अपने फूलों एवं फलों द्वारा श्रीराम को अर्घ्य प्रदान करो। पूरी तरह खिले हुए कमलों की सुगन्धि को अपने साथ लेकर, वन की वायुएँ प्रवाहित होवें तथा अनुराग से युक्त कण्ठ वाले, सभी पक्षीगण निरन्तर मधुर कलरव करें, क्योंकि महाराज राम का आज स्वयं ही, इस वन में फिर से शुभागमन हुआ है।

विशेष– (i) स्वयं वनदेवी के माध्यम से प्रकृति के उपादानों द्वारा राम का भावभीना स्वागत कराया गया है। इससे महाकवि का प्रकृति विषयक गहन प्रेम अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, उदात्त एवं काव्यलिंग अलंकार और हरिणी छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

(iii) वन में फिर से आए हुए अतिथि राम के आतिथ्य हेतु फूल एवं फलों के साथ अर्घ्य देने से भारतीय संस्कृति के परिपोषण

की व्यंजना हो रही है, जिससे कवि की राष्ट्रीय भावना भी अभिव्यक्त हुई है।

(iv) यहाँ प्रयुक्त 'मधुश्च्युतः' पद के टीकाकारों ने मकरन्द बिखेरने वाला, मकरन्द का आसेचन करने वाला, मकरन्द झरने वाला और मधु से च्युत आदि भिन्न–भिन्न अर्थ किए हैं।

व्या.टि.– (i) **ददतु–** √दा+लोट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन, देवें।

(ii) स्फुटितानि च तानि कमलानि, तेषाम् आमोदः, येषु ते।

(iii) **प्रवान्तु–** प्र+√वा+लोट्, प्रथमपुरुष, बहुव., प्रवाहित होवें।

(iv) **क्वणन्तु–** √क्वण्+ लोट्, प्रथमपुरुष, बहुव., कलरव करें।

(v) **आगतः–** आ+√गम्+क्त। **अर्घ्यम्–** अर्घ+यत्।

संस्कृत व्याख्या– रामस्य स्वागतं कर्तुं वनदेवी वासन्ती तत्रत्यान् पादपादीन् आदिशति यत्– अयं महाराजो रामः अधुना स्वयं खलु वनं पुनरेव आगतवान्। अतएव सर्वेऽपि भवन्तः मधुवर्षिणः पुष्पैः, फलैश्च अस्य स्वागतं कुर्वन्तु, इति। एवमेव विकसितानां कमलानाम् आमोदं गृहीत्वा वनस्य अनिलाः प्रवहन्तु, पक्षिणश्च अनुरक्तेन कण्ठेन निरन्तरं अव्यक्तं मधुरं च कूजन्तु, इति।

(25) 'चन्द्रिका' करकमलेति– वासन्ती द्वारा वन के उपादानों को राम का स्वागत करने के लिए कहने पर, राम इस बात को न सुनने का अभिनय करते हुए कहते हैं कि–

मेरी प्रिया जानकी ने अपने कमल के समान कोमल हाथों द्वारा दिए गए, जल, नीवर और घास आदि के माध्यम से इस वन के जिन वृक्षों, पक्षियों और मृगों का बढ़ाया था, परिपुष्ट किया था, उन्हें देखने के बाद, मेरे हृदय में झरने के फूट पड़ने के समान, कोई पिघला देने वाला विकार उत्पन्न हो रहा है।

विशेष– (i) यहाँ पर कवि ने राम के मन की अप्रतिम विकलता का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है, जिससे मन के भावों को शब्दों में निबद्ध करने की महाकवि की अद्भुत क्षमता प्रदर्शित हुई है।

(ii) भावों की अभिव्यक्ति एवं शब्दचयन प्रशंसनीय है।

(iii) वृक्षों, पक्षियों तथा मृगों में क्रमशः जल, नीवार, घास के क्रम विषयक निर्वाह से यथासंख्य अलंकार एवं द्रव इव में उपमालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) प्रसादगुण, वैदर्भी रीति तथा मालिनी छन्द का प्रयोग है।

(v) राम का सीता के प्रति अप्रतिम प्रेम अभिव्यक्त हुआ है।

(vi) **शष्पम्–** छोटी हरी कोमल घास को कहा जाता है।

(vii) विशेषरूप से राम के प्रलापों में करुणरस का द्रवित करने वाला प्रवाह, प्रायः सर्वत्र देखा जा सकता है।

व्या.टि.– (i) करौ कमले इव, ताभ्यां वितीर्णैः, इति।

(ii) **कमलम्–**कं जलम् अलति, अलंकरोति, इति कं+अल्+क।

(iii) अम्बूनि च नीवाराश्च शष्पाणि च, इति तैः।

(iv) तरवः च शकुनयः च, कुरंगाश्च, इति तान्।

(v) **प्रसवोद्भेदयोग्यः–** प्रसवस्य उद्भेदः तस्य योग्यः, इति।

संस्कृत व्याख्या– वासन्त्याः कुमारलक्ष्मणस्य कुशलप्रश्नं अश्रुतं कृत्वा रामः कथयति यत्– यान् एतान् वृक्षान्, शकुनीन्, कुरंगान् स्व करकमलद्वारा प्रदत्तैः जलैः, नीवारैः तृणैश्च क्रमशः अपुष्यत् पुष्टम् अकरोत्, तेषां दर्शनमात्रेण मम रामस्य हृदये कोऽपि विकारः इव प्रादुर्भवति, प्रस्रवस्य उद्भेदयोग्यः हृदयस्य द्रवः इव सम्भवति, इति। यथा निर्झराणां प्रवाहो वेगेन प्रवहति, तथा मम हृदयमपि द्रवीभावं भजते, इति भावः।

(26) 'चन्द्रिका' त्वं जीवितमिति– लक्ष्मण का कुशलप्रश्न पूछने के बाद, राम को हृदय से कठोर बताकर, वासन्ती कहती है कि–

तुम ही मेरा जीवन हो, तुम तो मेरा दूसरा हृदय ही हो, तुम मेरे लिए नेत्रों की चाँदनी के समान आनन्द प्रदान करने वाली हो, तुम तो मेरे लिए अमृत के समान सुख देने वाली हो, इसप्रकार के सैकड़ों मधुर लगने वाले, वचनों के माध्यम से उस भोलीभाली मेरी सखी सीता को बहला फुसलाकर, आपने उसी को............ अथवा रहने ही दो, क्योंकि इसके आगे कहने से क्या लाभ है? अर्थात् कोई नहीं। वस्तुतः

आपको स्वयं ही उसे समझ लेना चाहिए। इतना कहकर वासन्ती मूर्च्छित हो जाती है।

विशेष– (*i*) प्रेमिका को रिझाने वाले प्रेमी के प्रणय–वाक्यों का कमनीय प्रयोग हुआ है, जिससे कवि का प्रेमी–हृदय अभिव्यक्त हुआ है।

(*ii*) साथ ही, उक्त कथनों से राम की असत्यवादिता तथा स्वार्थमयी वृत्ति भी अभिव्यंजित हुई है।

(*iii*) आक्षेप, अतिशयोक्ति तथा रूपक अलंकारों एवं वसन्त–तिलका छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(*iv*) वासन्ती द्वारा राम के ऊपर कठोर आक्षेप किया गया है। वेदनातिरेक से भावों की अभिव्यक्ति की असमर्थता के साथ, सीता के प्रति इसका सात्त्विक प्रेम भी अभिव्यक्त हुआ है।

(*v*) कुछ टीकाकारों ने यहाँ पर **दुष्क्रमत्व** नामक दोष की कल्पना की है, उनके अनुसार यहाँ पर महत्त्व की दृष्टि से सर्वप्रथम **कौमुदी,** पुनः **हृदय,** उसके बाद **जीवन** तथा अन्त में **अमृत** का प्रयोग करना चाहिए था, क्योंकि अमृत तो मृत्प्रायः में भी जीवन डाल देता है।

व्या.टि.– (i) **अनुरुध्य**–अनु+ √रुध्+क्त्वा(ल्यप्)अनुरोध करके।

(ii) **असि**– √अस्+लट्, मध्यमपुरुष, एकवचन, हो।

संस्कृत व्याख्या– वासन्ती, रामं प्रति पुनः कथयति यत्– हे सीते! त्वं खलु मम जीवनम् असि, त्वं किल मे अपरं हृदयम्, त्वं वै मम नेत्रयोः कृते चन्द्रिका असि तथा मम अंगे अमृतमेव त्वं असि, इत्यादिभिः प्रियवाक्यैः शतसंख्यकैः मधुरस्वभावां तां प्रलोभ्य किमिति वनं निर्वासित–वान्? इति भावः। अनन्तरं वाक्यम् अनुक्त्वा एव वासन्ती प्राह– यत् अथवा नैव कथनेन कोऽपि लाभः तव निष्ठुरस्य समक्षे, अतएव शान्तं भवितव्यमेव, इति उक्त्वा सा वासन्ती मुग्धा जातेति।

(27) 'चन्द्रिका' अयि कठोरेति– मूर्च्छा से उठकर वासन्ती फिर से राम को उपालम्भ देते हुए कठोर भाषा में कहती है कि–

अरे कठोर हृदय वाले राम! आपको तो यश ही अत्यधिक प्रिय है। इसीलिए लोक को प्रसन्न करने के लिए आपने यह कुकृत्य किया

है, किन्तु थोड़ा विचार तो करो कि इससे बड़ा अपयश भला क्या होगा? कि आपने मेरी सखी सीता का निरपराध और गर्भवती होते हुए भी परित्याग कर दिया। ऐसा करते हुए आपने लेशमात्र भी नहीं सोचा कि हिंसक जन्तुओं से भरे वन में मृग के समान नेत्रों वाली, उस बेचारी का क्या होगा? हे नाथ! इस विषय में आप कुछ तो बताइए। आप क्या सोच रहे हैं? हाय, मुझे आपके इस कृत्य पर अत्यन्त दुःख हो रहा है।

विशेष– (i) वासन्ती के हृदय की वेदना अभिव्यक्त हुई है।

(ii) 'कठोर' पद का प्रयोग यहाँ 'निष्ठुर' अर्थ में हुआ है। कुछ टीकाकारों ने इसे सम्बोधन में प्रयुक्त माना है, **अयि** तथा **नाथ** इन दो पदों के सम्बोधन में प्रयुक्त होने से ऐसा मानना समीचीन प्रतीत नहीं होता है।

(iii) यहाँ प्रयुक्त 'यशः' पद व्यंजना से विशेष अभिप्राय लिए हुए है अर्थात् आपको यश तो प्रिय है, किन्तु परम साध्वी, पतिव्रता धर्मपत्नी सीता की लेशमात्र भी चिन्ता नहीं है, क्यों?

(iv) यहाँ प्रयुक्त प्रत्येक पद वस्तुतः विशिष्ट अर्थ लिए हुए है। अतः इसे व्यंजना का उत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है।

(v) प्रस्तुत श्लोक में विषादन, आक्षेप, विषम तथा लुप्तोपमा अलंकारों का सौन्दर्य तथा द्रुतविलम्बित छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **मन्यसे**– √मन्+लट्, आत्मने, मध्यमपुरुष,ए.व.।

(ii) **अभवत्**– √भू+लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन, हुआ।

(iii) **कथय**– √कथ्+लोट्, मध्यम पुरुष, एकवचन, कहो।

(iv) हरिण्यः दृशौ इव दृशौ यस्याः सा हरिणीदृक्, तस्याः।

संस्कृत व्याख्या– लोकः मम भवने सीतायाः निवासं न सहते, इति रामस्य कथने वासन्ती कथयति रामं प्रति– अयि, निष्ठुरराम! स्व यशस्तु तव प्रियम् अस्ति, अनेनैव अस्य खलु त्वया चिन्ता कृता, तदैव सा वाराकी कठोरगर्भा वने परित्यक्ता, अस्य घोरम् अयशः किं भविष्यति? तस्याः मृगलोचनायाः वने किं भविष्यति? एतदपि त्वया क्षणमात्रं न चिन्तितम्, इति। हे नाथ! विषयेऽस्मिन् भवान् किं

चिन्तयति? राजा भूत्वापि त्वया एतत् न विचारितम्, यत् अस्याः वराक्याः अपराधः कः? येन अस्याः वने त्यागः क्रियते, इति भावः।

(28) 'चन्द्रिका' त्रस्तैकेति– वासन्ती द्वारा यह कहने पर कि वन में उस मृगनयनी का क्या हुआ होगा? राम कहते हैं कि–

सखि, इस विषय में तो विचार करने के लिए अवसर ही नहीं है, क्योंकि डरे हुए एक वर्ष के मृग के छोने के समान, चंचल नेत्रों वाली तथा कम्पित गर्भ के भार से अलसायी हुई, उस मेरी सखी सीता के छोटे कोमल मृणाल के समान, चाँदनी से बनाए गए, कोमल लता के समान, कृश शरीर को वन में स्थित हिंसक जन्तुओं द्वारा निश्चय ही विनष्ट कर दिया गया होगा, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।

विशेष– (i) पूर्णगर्भा सीता के कमनीय चित्रण से महाकवि का प्रसूति विज्ञान विषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) सीता के लिए यहाँ प्रयुक्त अधिकाँश विशेषण, विशेष व्यंजना लिए हुए हैं, जिसकी व्याख्या में अनेक पृष्ठ लिखे जा सकते हैं। इसलिए इसे ध्वनिकाव्य का उत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है।

(iii) सीता के चित्रण में कवि ने विरह पाण्डुरता के होते हुए भी उसकी कोमलता एवं सौन्दर्य को सुरक्षित रखा है।

(iv) पूर्णगर्भ होने पर जीव गर्भ में थोड़ा हिलने डुलने लगता है, जिसकी ओर कवि ने 'परिस्फुरित' पद से संकेत किया है।

(v) इसीप्रकार गर्भवती स्त्री के शरीर में प्रसव का पूरा समय होने पर गर्भ के भार से आलस्य की मात्रा उसमें अधिक हो जाती है, जिसे यहाँ 'अलसायाः' पद से कहा गया है।

(vi) सीता के पूर्णगर्भा होने की अभिव्यक्ति हुई है, तभी तो बाद में प्रसव की अत्यधिक वेदना से उसने स्वयं को गंगा में डाल दिया है, और वहाँ उसने अपने दो पुत्रों को जन्म दिया है।

(vii) गर्भावस्था में सीता के कोमलतातिशय, अप्रतिम सौन्दर्य व कृशता की प्रतीति कराने के लिए कवि ने मृदुबालमृणालकल्पा, ज्योत्स्नामयी इव, अंगलतिका आदि तीन विशेषणों का प्रयोग किया है।

(viii) सीता के चंचल नेत्रों की उपमा के लिए 'त्रस्तैकहायन' इत्यादि पद का प्रयोग अत्यन्त मनोरम बन पड़ा है।

(ix) कवि की चित्रात्मक शैली एवं करुणरस का मनोरम परिपाक दर्शनीय है।

(x) शब्दचयन, उपमा, उत्प्रेक्षालंकार, पांचाली रीति एवं वसन्ततिलका छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) **ज्योत्स्नामयी–** ज्योतिः अस्ति अस्याम्, इति ज्योत्स्ना+मयट्+ङीप्, चन्द्रिका से निर्मित या बनायी गयी।

(ii) **विलुप्ता–** वि+√लुप्+क्त+टाप्, नष्ट हो गयी होगी।

(iii) **क्रव्याद्भिः–** क्रव्यम् आममांसम् अत्ति, इति, क्रव्याद्, तृ.ब.व।

संस्कृत व्याख्या– रामः, वासन्त्याः प्रश्नस्य विषये कथयति यत्– सखि! विषयेऽस्मिन् नैव संशयलेशोऽपि वर्तते यत्, कोमलकमल–नालसमम्, चन्द्रिकातुल्यं, लतामपि अतिशयानं भयचकितचकितम्, एकवर्षस्य अवस्थासम्पन्नस्य विलोलदृष्टेः मृगस्य दृष्टिरिव चंचला दृष्टिः यस्याः सा, परितः स्फुरता गर्भस्य भरेण अलसयुक्तायाः, तस्याः शरीरं मांसाशिभिः व्याघ्रादिभिः निश्चितरूपेण विनाशितं भवेत्।

(29) 'चन्द्रिका' पूरोत्पीडे, इति– राम के प्रलाप एवं रुदन को देखकर अदृश्य सीता अपनी सखी वासन्ती को उपालम्भ देती है, तो तमसा उससे कहती है कि– वासन्ती का तुम्हारे प्रति प्रेम एवं उसकी दुर्दशा के लिए होने वाला शोक ही उसके द्वारा ऐसा कहलवा रहा है–

वैसे भी उसका यह करना उचित ही है, क्योंकि तालाब में जल का प्रवाह अधिक हो जाने पर, उसके जल को बाहर निकालना ही उसे विनष्ट होने से बचाने का सरल उपाय होता है। ठीक इसी प्रकार शोक के क्षोभ से भरे हुए हृदय को विनष्ट होने से बचाने के लिए इसमें प्रलापों एवं रुदन आदि क्रियाओं का होना अत्यधिक अनिवार्य होता है।

विशेष– (i) कवि ने गहन मनोवैज्ञानिक तथ्य की अभिव्यक्ति की है, जिससे उनका उत्कृष्ट मनोवैज्ञानिक होना सिद्ध होता है।

(ii) अनुष्टुप् छन्द एवं बिम्बप्रतिबिम्ब भाव होने के कारण दृष्टान्त अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

लक्षण– दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्।

(iii) तालाब में बढ़े हुए पानी को निकालने के मार्ग को 'परिवाहः' नाली कहा जाता है।

(iv) यह मनोवैज्ञानिक एवं शाश्वत तथ्य है कि हृदय में भरे हुए दुःख को निकालने के लिए रुदन करते हुए प्रलाप आवश्यक है। आधुनिक चिकित्सक भी इससे सहमत हैं।

(v) भाषा की सरलता, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति का प्रयोग है।

व्या.टि.– (i) **शोकक्षोभे–** शोकेन क्षोभः, तस्मिन्, इति।

(ii) **धार्यते–** √धृञ् धारणे+कर्मवाच्य, लट्, प्रथमपुरुष, ए.व.।

(iii) **परिवाहः–** √वह्प्रापणे+घञ्, परिवहन्ति एभिः, इति।

(iv) **प्रलापैः–** प्र+ √लप्+घञ्, तृतीया विभक्ति, बहुवचन।

संस्कृत व्याख्या– वस्तुतः जलाशये जलस्य आधिक्ये सति तस्मात् जलस्य निःसारणमेव अस्य तटाकस्य सुरक्षायाः उपायो भवति, एवमेव लोके शोकेन क्षोभोत्पन्ने सति हृदयस्य संरक्षणं रोदनेन प्रलापैः च सम्भवति, इति। अतएव रामस्य रोदनम् उचितमेव अस्ति। नैव विषये-ऽस्मिन् संशयलेशोऽपि वर्तते, इति तमसा, सीतां प्रति कथयति।

(30) 'चन्द्रिका' इदमिति– शोक से उत्पन्न होने वाले वैकलव्य को रोने एवं प्रलापों द्वारा शान्त करने के प्रसंग में, इसके औचित्य को विशेषरूप से राम के सम्बन्ध में सिद्ध करते हुए तमसा, कहती है कि–

वस्तुतः श्रीराम के लिए यह संसार अत्यधिक कष्टकर है, क्योंकि सर्वप्रथम तो इन्हें विधिपूर्वक सभी प्रकार की मर्यादाओं का पालन करते हुए, अत्यन्त सावधान चित्त से इस विश्व का पालन करना पड़ता है। उसपर भी यह अन्तरंग सखी, प्रिया सीता का न चाहते हुए भी त्याग विषयक गहनतम शोक, जिसप्रकार कड़ी धूप पुष्प को सुखा डालती है, ठीक वैसे ही यह इनके जीवन को सुखाए दे रहा है।

इसके अतिरिक्त क्योंकि इन्होंने सीता का त्याग स्वयं ही किया है, इसलिए दूसरे किसी के सामने रोया भी तो नहीं जा सकता है,

जिससे मन हलका हो सके। इतना होते हुए भी इनके प्राण अभी तक बचे हुए हैं, यह अत्यन्त भगवत्कृपा ही है। ऐसी दशा में राम का रोना तथा प्रलापों द्वारा पीड़ा को बाहर निकालना, इनके जीवन की सुरक्षा के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

विशेष– (i) मनोवैज्ञानिक तथ्य को राम की परिस्थितियों में तर्कपूर्ण शैली में सुन्दर ढंग से सिद्ध किया गया है।

(ii) उपमा एवं परिणाम अलंकार तथा शिखरिणी छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

(iii) प्रिया के शोक द्वारा सुखाए जा रहे, शरीर की धूप एवं पुष्प की उपमा भी अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है, जिससे राम के शरीर की कोमलता, मृदुलता तथा धूप की तीक्ष्णता से, शोक से होने वाली पीड़ा, वेदना एवं कष्ट की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(iv) यहाँ प्रयुक्त 'अभियुक्तः' पद विशेषरूप से राम के राजा होने से एकाग्र मन से किए जाने वाले, उसके राजकार्य विषयक कर्तव्यों की स्मृति दिलाने वाला है।

(v) रुदन एवं प्रलापों के औचित्य को सिद्ध किया गया है।

व्या.टि.– (i) **अभियुक्तः–** अभि+ √युजिर्समाधौ+घञ्।

(ii) **प्रियाशोकः–** प्रियायाः शोकः, इति, षष्ठी तत्पुरुष समास।

(iii) **कृत्वा–** √कृ+क्त्वा। **विनोदः–** वि+ √नुद्+घञ्।

(iv) **ग्लपयति–** √ग्लै+णिच्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(v) **भवति–** √भू+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, होता है।

संस्कृत व्याख्या– रामस्य सावधानेन चेतसा अस्य संसारस्य विधिवत् पालनं कर्तव्यमस्ति। ततोऽपि यथा आतपः मृदुलं कुसुमं म्लानं करोति, तथैव प्रियायाः शोकः रामस्य जीवं म्लानं करोति। वस्तुतः राजधान्यां निवसतः सर्वेषु जनेषु मध्ये विलापोऽपि सुलभो नासीत्। यतोहि अनेन स्वतः एव सीतायाः त्यागः कृतः। स्वयमेव कृते कर्मणि पश्चात्तापोऽपि कीदृशः, इति न्यायात्। तस्मात् यदि अस्मिन् एकान्ते स्थाने वने रुदितं प्राप्तम् अद्य, तेन तु जीवनस्य कृते लाभो वै भविष्यति, इति विषयेऽस्मिन् नैव संशयलेशोऽपि वर्तते।

(31) 'चन्द्रिका' दलतीति– सीता के वियोग में गहन वेदना का अनुभव करते हुए, राम कहते हैं, अहो अत्यन्त कष्ट का विषय है कि–

हृदय में स्थित इस शोक के उद्वेग से मेरा हृदय विदीर्ण तो हो रहा है, किन्तु दो भागों में विभाजित नहीं हो पा रहा है। इस शोक से व्याकुल हुआ मेरा शरीर मोह को तो धारण कर रहा है, किन्तु अपने चैतन्य का परित्याग नहीं कर रहा है। इसके अलावा अन्तःकरण में स्थित सन्ताप सारे शरीर को जला तो रहा है, किन्तु पूरी तरह से भस्मसात् नहीं कर रहा है और अन्त में कहते हैं कि– मर्म का छेदन करने वाला यह विधाता प्रहार तो कर रहा है, किन्तु मेरे जीवन को पूरी तरह नष्ट नहीं कर रहा है।

विशेष– (i) सीता के वियोग में राम की विकल मनःस्थिति का अत्यन्त सरल भाषा में सुन्दर एवं कारुणिक चित्रण किया गया है। अतः करुण रस का पूर्ण परिपाक दर्शनीय है।

(ii) विषम, विरोधाभास एवं विशेषोक्ति अलंकारों एवं हरिणी छन्द के प्रयोग से कवि की आलंकारिक भाषा, शैली दर्शनीय है।

(iii) कुछ व्याख्याकारों ने यहाँ परिसंख्या को भी माना है।

(iv) यह श्लोक मालती माधव(9/12) में भी प्रयुक्त हुआ है।

व्या.टि.– (i) **कायः**– √चिञ् चयने+घञ्, च को क आदेश।

(ii) **ज्वलयति**– √ज्लल्+णिच्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iii) **प्रहरति**– प्र+ √हृ+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iv) **कृन्तति**– √कृती छेदने+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(v) **भिद्यते**– √भिद्+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(vi) **वहति**– √वह्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(vii) **दलति**–√दल्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– **रामः शोकवेदनाम् असहमानो कथयति यत्– अहो! मम विचित्रा मनोदशा वर्तते। शोकस्य वेगात् मम हृदयं विदलितमिव भवति, किन्तु द्विधा विभक्तं न भवति। हृदयस्य खण्डद्वयं न भवति। एवमेव अतीव विकलोऽयं कायः मम मोहं वहति, किन्तु चैतन्यं न विमुंचति। तथा कोऽपि आन्तरिको दाहः शरीरं ज्वलयति, किन्तु**

सर्वथारूपेण भस्मसात् न करोति। अथ च विधाता मर्मस्थलेषु आघातं तु करुते, किन्तु द्विधा न विभज्यते अर्थात् सीतायाः वियोगेऽतीव शोकाकुलो ऽस्मि, इति। रामस्य वेदनातिरेको व्यज्यते, करुणरसस्य परिपाकश्च।

(32) 'चन्द्रिका' न किलेति– इसके बाद, श्रीराम नागरिकों तथा ग्रामवासियों को सम्बोधित करके, अपनी वेदना को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि–

हे नागरिकों! एवं ग्रामवासियों! आप लोगों को मेरी प्रिया सीता का मेरे घर में रहना स्वीकार्य नहीं था, इसीलिए आपको प्रसन्न करने के लिए अर्थात् लोकाराधन करने हेतु मैंने, उसे जनशून्य वन में तिनके के समान छोड़ दिया और उसके बाद अपने शोक को अभिव्यक्त भी नहीं किया, किन्तु तभी से चिरकाल से परिचित उसके वे–वे भाव मुझे इसप्रकार गलाए डाल रहे हैं, जिनके कारण मैं आज़ निर्जन वन में आकर असहाय होकर रो रहा हूँ। इसलिए आप अब तो मेरी इस दशा को देखकर और भी प्रसन्न होइए, क्योंकि मेरी इस दशा के मुख्य कारण तो आप लोग ही हैं।

विशेष– (i) राम के करुणरस की स्रोतस्विनी निरन्तर प्रवाहित होकर सहृदय को आप्यायित कर रही है।

(ii) विशेषोक्ति अलंकार एवं हरिणी छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iii) यहाँ प्रयुक्त 'न अनुशोचिता' का अभिप्राय है कि मैंने आप लोगों की भावना का आदर करते हुए परमप्रिया सीता का त्याग तो कर दिया, किन्तु उसके बाद अवश्यंभावी शोक भी नहीं किया।

व्या.टि.– (i) **अभिमतम्**– अभि+ √मन्+क्त, स्वीकार्य, अभीष्ट।

(ii) **त्यक्ता**– √त्यज्+क्त+टाप्, त्याग दी गयी।

(iii) **अनुशोचिता**– अनु+शुच्+क्त+टाप्, शोक की गयी।

(iv) **द्रवयन्ति**– √द्रु+णिच्+लट्, प्र. पु., ब.व., पिघला रहे हैं।

(v) **प्रसीदत**–प्र+ √सद्+लोट्, मध्यम पुरुष, ब.व., प्रसन्न होओ।

संस्कृत व्याख्या– **हे भगवन्तः पौराः, जानपदाश्च! सीतादेव्याः मम भवने निवासः भवतां न अभिलषितः आसीत्, अनेनैव मया सा परित्यक्ता निर्जने वने, तदानीं अल्पोऽपि शोकः तस्याः कृते न कृतः,**

किन्तु अत्र वनम् आगते सति, चिरपरिचिताः विविधाः भावाः मां द्रवयन्ति, अतः अवशः इव अत्र रोदिमि। अशरणोऽहम् इदानीं संवृत्तः, अत्र भवन्तः प्रसीदन्तु, मम ईदृशीं दयनीयां दशां दृष्ट्वा।

(33) 'चन्द्रिका' देव्याः, इति– राम की गहनवेदना को देखकर वासन्ती उन्हें धैर्य धारण करने के लिए कहती है, तो राम उससे कहते हैं कि– तुम क्या कह रही हो? मैं धैर्य धारण करूँ, तुम ही देखो,

क्या मैंने अभी तक धैर्य धारण नहीं किया हुआ था, क्योंकि आज देवी सीता से शून्य इस संसार का बारहवाँ वर्ष हो गया है। इतने लम्बे समय तक तो उसका नामोनिशान भी मिट गया होगा, किन्तु फिर भी क्या यह कठोर राम अभी तक जीवित नहीं है? अर्थात् इतनी अवधि तक जीवित रहने का प्रमाण ही है कि मैंने धैर्य धारण किया हुआ है।

विशेष– (i) महाकवि की तार्किक शैली प्रयुक्त हुई है।

(ii) क्रियोत्प्रेक्षालंकार एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **जीवति–** √जीव्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **द्वादशः–** द्वादशानां पूरणः, विग्रह, द्वादशन्+डट् प्रत्यय।

(iii) उक्त श्लोक में दो प्रतिषेधों का प्रयोग करके, कवि ने सद्भाव अर्थ को ही अपेक्षाकृत अधिक पुष्ट किया है।

(iv) उत्तरार्द्ध में व्यंजना से यह अर्थ भी प्रतीत हो रहा है कि– राम के लिए तो वस्तुतः जीवित रहना उचित नहीं है।

संस्कृत व्याख्या–रामः वासन्तीं प्रति कथयति यत्– किं कथयसि? सीताशून्येऽस्मिन् जगति द्वादशवर्षाणि व्यतीतानि, अस्याम् अवधौ तस्याः सीतायाः नामापि विनष्टमिव संजातम्। किमु रामो न जीवति? अपितु जीवत्येव। अतोऽधिकं नाम धैर्यं किं भवेत्, न जानामि।

(34) 'चन्द्रिका' नैताः, इति– तमसा, सीता को सम्बोधित करके कहती है, हे पुत्रि! ऐसा ही है–

राम द्वारा कहे गए ये वचन अत्यधिक प्रिय तथा स्नेह से शीतल तो हैं, किन्तु शोक के कारण कठोर नहीं है, किन्तु वस्तुस्थिति तो यह है कि विष से युक्त शहद की ये धाराएँ तुम्हारे ऊपर प्रवाहित हो रही हैं अर्थात् राम के ये वचन जहाँ एक ओर प्रेम से आप्लावित हैं, वहीं दूसरी ओर अकारण ही पूर्णगर्भ की अवस्था में निर्जन वन में परित्याग करने के कारण, उस स्थिति की स्मृति दिलाने से मानो विष से बुझे हुए प्रतीत हो रहे हैं।

अन्य अभिप्राय– जिसप्रकार मधु से मिश्रित विष की बूँद पहले तो मधुर लगती है, किन्तु बाद में मूर्च्छा देने वाली होती है, ठीक उसीप्रकार राम के ये वचन सुनने में तो अच्छे लग रहे हैं, किन्तु इनमें लोकापवाद का विष लगा हुआ होने से इनका परिणाम शुभ नहीं है।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक में राम के दो गुणों का उल्लेख किया गया है। **प्रथम,** स्नेह से आर्द्रता। **द्वितीय,** शोक की दारुणता।

(ii) यहाँ विरोधाभास एवं निदर्शना दोनों अलंकारों की स्थिति विद्यमान है। अन्य कुछ विद्वानों ने अपह्नुति को भी स्वीकार किया है।

(iii) भाषा की सरलता, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) **सविषाः–** विषेण सहिताः, इति, विष के साथ।

(ii) **शोकदारुणाः–** शोकेन दारुणाः, इति। शोक से कठोर।

(iii) **श्च्योतन्ति–** √श्च्युतिर् क्षरणे+लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

(iv) **स्नेहार्द्राः–** स्नेहेन आर्द्राः, इति। **स्नेहः–** √स्निह+घञ्।

संस्कृत व्याख्या– तमसा, सीतां प्रति कथयति यत्– एताः रामेण उक्ताः व्यवहाराः, इष्टतमाः सन्ति। अनुरागशीलता च एषु वाक्येषु विद्यते। एताः मन्युकठोराः न वर्तन्ते। रामेण पूर्वे उक्ताः गरलसहिताः पुष्परसस्य क्षौद्रस्य वा प्रवाहाः सीतायां स्रवन्ति, इति। आशयोऽयं यत् प्रियतमाः एताः वाण्यः प्रेमार्द्रा मन्युकठोराः न, अपितु ताः गरलसहिताः मधुनः प्रवाहाः त्वयि स्रवन्ति, इति।

(35) 'चन्द्रिका' यथेति– तत्पश्चात् राम, सीता की सखी वासन्ती को सम्बोधित करके, पुनः अपने धैर्य के बारे में कहते हैं कि–

हे वासन्ति! जिसप्रकार हृदय में धँसा हुआ, तिरछा जलता हुआ, लकड़ी का टुकड़ा और विष में डुबोया गया दाँत, असह्य पीड़ा को प्रदान करने वाला होता है, उसीप्रकार मर्मस्थलों को छेदने वाले,

असहनीय हृदय में प्रवेश की हुई लोहे की तिरछी कील को क्या मैंने सहन नहीं किया? अर्थात् निश्चय ही सहन किया है और तुम मुझे धैर्य धारण करने के लिए कह रही हो।

विशेष– (i) कवि का अभिप्राय है कि जिसप्रकार शरीर में तिरछी घुसी हुई प्रतप्त लोह–कील को सरलता से नहीं निकाला जा सकता है। उसीप्रकार राम के हृदय में प्रविष्ट सीता का शोकरूपी शंकु आसानी से नहीं निकाला जा सकता है। इसीलिए राम को अत्यधिक कष्ट और वेदना का अनुभव करना पड़ रहा है।

(ii) उपमा एवं रूपक अलंकार का अंगांगिभाव संकर है।

(iii) प्रसादगुण, पांचाली रीति व उपजाति छन्द का प्रयोग है।

(iv) करुणरस का पूर्ण परिपाक भी दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **तिरश्चीनम्**– तिर्यंच+ख (ईन आदेश)

(ii) **अलातशल्यम्**– अलातं तप्तं शल्यम्, जलता हुआ काष्ठ।

(iii) **प्रत्युतम्**– प्रति+ √वप्+क्त, धँसा हुआ या गड़ा हुआ।

(iv) **कृन्तन्**– √कृन्त्+शतृ। **सोढः**– √सह्+क्त।

संस्कृत व्याख्या– हे वासन्ति! यथा हृदयस्य अन्तर्भागे प्रज्वलितं लौहकीलकं तिर्यग्भूतं कष्टं ददाति, यथा वा सविषः सर्पादीनां दन्तः कष्टप्रदो भवति। तथैव सीतायाः एषः शोकः शंकुरिव मम हृदयस्य मर्मस्थानानि छिन्दन् मया अतिशयरूपेण न सोढः किमु, सहनं कृतमिति। वस्तुतस्तु एषः मम धैर्यस्यैव प्रभावो वर्तते, पुनरपि त्वं मां धैर्यमुपदिशसि।

(36) 'चन्द्रिका' वेलोल्लोलेति– इसके बाद राम अपने अन्तःकरण एवं मन की स्थिति का विस्तार से उल्लेख करते हुए कहते हैं कि– यद्यपि मैंने अपने अन्तःकरण को अत्यधिक गोपनीय ढंग से सीता की स्मृतियों की ओर जाने से रोकने का प्रयास किया है, किन्तु यहाँ पर उसके साथ की परिचित वस्तुओं को देखने पर, मेरा मनोविकार कुछ अद्भुत ही हो रहा है–

इसका कारण यही है कि मर्यादा का उल्लंघन करने वाले, इसप्रकार के शोक की वृद्धि को रोकने के लिए, व्यक्ति द्वारा जो–जो भी उपाय, येन केन प्रकारेण किया जाता है, उस–उस प्रयत्न का कोई

न कहा जा सकने योग्य चित्त का विकार, न रोके जा सकने वाले वेग से युक्त, जलराशि के समान, समस्त बन्धनों को तोड़कर, ठीक उसी प्रकार चारों ओर फैल जाता है जिसप्रकार बालू के पुल को तोडकर जल की तीव्र प्रवाह चारों ओर फैल जाता है।

विशेष– (i) अपने शोकावेग को नियन्त्रण करने के विषय में राम की विवशता की सुन्दर अभिव्यक्ति उदाहरणपूर्वक की गयी है।

(ii) पूर्णोपमा एवं मन्दाक्रान्ता छन्द का कमनीय प्रयोग है।

(iii) प्रथम चरण में ओज गुण तथा शेष में प्रसादगुण का प्रयोग हुआ है। गौड़ी एवं लाटी रीति का सामंजस्य भी दर्शनीय है।

(iv) बढ़े हुए शोक पर नियन्त्रण का प्रयास और बढ़े हुए मनोविकार द्वारा उसे निरर्थक करने को, जलप्रवाह द्वारा रेत के पुल को ध्वस्त करने के उपमान द्वारा सुन्दर एवं साकार रूप दिया गया है।

(v) बड़ी–बड़ी लहरों को 'उल्लोल' कहा जाता है।

व्या.टि.– (i) **प्रसरति**– प्र+ √सृ+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **भित्वा**– √भिद्+क्त्वा,भेदकर। **हित्वा**– √हा+क्त्वा, छोड़कर।

(iii) **समाधीयते**–सम्+आ+ √धा+णिच्+आत्मने, प्र.पु., ए.व.।

संस्कृत व्याख्या– कवेः अभिप्रायोऽयं यत्– मर्यादोल्लोलक्षुभित–शोकाभिवृद्धिं निवारणार्थं जनेन यः यः प्रयासः येन केनापि प्रकारेण क्रियते, तं तं कोऽपि मनसः विकारः अप्रतिहतवेगः तोयराशिः बालुकामयं सेतुमिव हठात् अन्तः गत्वा भित्वा च सर्वत्र प्रसरति।

(37) 'चन्द्रिका' अस्मिन्निति– इसी बीच वासन्ती राम को लतागृह में घटित हुई एक घटना विशेष की स्मृति दिलाते हुए, कहती है कि– हे महाराज!

देखिए, यह वही लतागृह है, जिसमें आप सीता की राह जोहते हुए, उसके मार्ग पर टकटकी लगाए बैठे थे और सीता गोदावरी के बालुकामय तट पर हंसों को कौतुकपूर्वक खिलवाड़ करते हुए देखकर, बहुत समय तक रुकी रही। बहुत देर बाद आती हुई सीता ने जब आपको देरी के कारण कुछ खिन्न सा देखा, तो उसने अत्यधिक

कातरतापूर्वक कमल की कली के समान अपनी सुन्दर प्रणामांजलि को बाँध लिया था।

विशेष– (i) वस्तुतः गोदावरी के तट पर हंसों की जलक्रीड़ा से सीता को कौतूहल हो रहा था, जिसमें आनन्द प्राप्त होने से उन्हें देखते हुए, अपनी सुधबुध खोकर वह वहाँ पर देर तक रुकी रही।

(ii) देवप्रसादन के लिए प्रणामांजलि को प्रशस्त माना गया है, इसलिए यहाँ इसका 'चरणस्पर्श' अर्थ ग्रहण नहीं करना चाहिए।

(iii) दशरूपककार ने इस श्लोक को 'प्रणयमान' के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है।

(iv) कुछ विद्वानों ने विप्रलम्भ श्रृंगार की दृष्टि से इसे गुणीभूत व्यंग्य का उदाहरण भी माना है।

(v) भाविक, उपमा एवं उत्प्रेक्षालंकारों की संसृष्टि दर्शनीय है।

(vi) प्रसाद गुण, लाटी रीति और शार्दूलविक्रीड़ित छन्द है।

(vii) वासन्ती का इस लतागृह को दिखाने का उद्देश्य दुःखी राम का पूर्व की मनोरम घटना से मनोविनोद कराना रहा है।

व्या.टि.– (i) **लतागृहे**– लताभिः निर्मितं गृहं, तस्मिन्।

(ii) **कृतकौतुका**– कृतं कौतुकं यस्याः सा, सीता।

(iii) **गोदावरीसैकते**– गोदावर्याः सैकते तस्मिन्, तटे ।

(iv) **तन्मार्गदत्तेक्षणः**– तस्याः मार्गः तन्मार्गः, तस्मिन् मार्गे दत्ते ईक्षणे येन सः, रामः। **अभूत्**– भू+लुङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(v) **आयान्त्या**– आङ्+√या+शतृ+ङीप्, तृतीया विभक्ति,ए.व.।

संस्कृत व्याख्या– देवी वासन्ती रामं प्रति कथयति यत्– देव! एतत् तदेव स्थानमस्ति, यत्र कदाचित् भवान् सीतायाः प्रतीक्षायां तस्याः मार्गं अन्वीक्षमाणः उपविष्टः आसीत्। सा च गोदावर्याः सैकते तटे हंसैः सह विनोदपरायणा विलम्बम् अकरोत्। विलम्बे समागन्त्या तया दूरतः एव भवन्तं विक्षुब्धमिव दृष्ट्वा कातरया कोमलकमलकलिकाकृतिः प्रणामांजलिः रमणीयः बद्धः आसीत्।

(38) 'चन्द्रिका' हा हेति– सीता के हाथ के स्पर्श की स्मृति से विह्वल राम, सीता को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि–

हे सीते, तुम इधर–उधर मेरे स्पर्श आदि के कारण दिखायी तो दे रही हो, किन्तु मेरे ऊपर कृपा नहीं कर रही हो। हे देवि! तुम्हारे वियोग के कारण मेरा हृदय फटा जा रहा है अर्थात् टुकड़े–टुकड़े हो रहा है। शरीर के बन्धन ढ़ीले हो रहे हैं। यह सम्पूर्ण संसार शून्य की भाँति प्रतीत हो रहा है। मैं भीतर ही भीतर वियोग की अग्नि की घनी लपटों में जल रहा हूँ। तुम्हारे वियोग में व्याकुल हुई मेरी अन्तरात्मा घने अन्धकार में धँसी जा रही है। मूर्च्छा मुझे चारों ओर से निरन्तर घेर रही है। मन्द भाग्य वाला मैं क्या करूँ? मुझे कुछ भी सूझ नहीं रहा है।

विशेष– (i) राम की किंकर्तव्यविमूढ़ता का सुन्दर चित्रण किया गया है। साथ ही, आन्तरिक भावों का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है।

(ii) हा, पद का दो बार प्रयोग शोक एवं वेदना के आधिक्य को अभिव्यंजित करने के लिए किया गया है।

(iii) महाकवि की चित्रात्मक शैली मनभावन एवं दर्शनीय है।

(iv) यहाँ पर 'शोक' नामक स्थायीभाव की पुष्टि के लिए शेष सभी व्यभिचारीभावों विषाद, व्याधि, निर्वेद, ग्लानि, मूर्च्छा, दैन्य आदि का उल्लेख हुआ है, जो वस्तुतः कवि की सूक्ष्मदृष्टि का परिचायक है।

(v) इसप्रकार उक्त व्यभिचारीभावों से संपुष्ट हुआ, राम का 'शोक' नामक स्थायीभाव करुणरस की पराकाष्ठा तक पहुँच गया है।

(vi) अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षालंकारों का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(vii) प्रसादगुण, वैदर्भीरीति व मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग है।

(viii) कुछ परिवर्तनों के साथ यह श्लोक मालती माधव में भी प्रयुक्त हुआ है।

व्या.टि.– (i) **स्थगयति**–√स्थग्+णिच्+लट्, प्र.पु., ए.वचन।

(ii) **ध्वंसते**– √ध्वंस्+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iii) **मज्जति**– √मस्ज्+ लट्, प्रथमपुरुष, ए.व., डूब रहा है।

(iv) **सीदन्**– √सद्+शतृ। **विष्वक्**– विषु+अंच्+क्विप्।

संस्कृत व्याख्या– पीड़ातिशयमभियन् रामः कथयति– हा, हा देवि! सीते, ममेदं हृदयं स्फुटति, देहस्य बन्धः च अधुना शिथिली

भवति। संसारं च सर्वम् अहमिदानीं चिरशून्यमेव अनुभवामि, निरन्तरं शोकज्वालया अन्तःभागे ज्वलामि, चित्ते दाहः प्रादुर्भवति, इति। दुःखम् अतिशयं प्राप्नुवन् मम अन्तरात्मा घोरे अन्धकारे विधुरः सन् निमज्जतीव निमग्नो भवति, इति भावः। हा! परितः मोहः मां आवृणोति। अतएव मन्दभाग्योऽहं सम्प्रति किं करोमि, न जाने। किंकर्तव्यविमूढोऽस्मि, इति।

(39) 'चन्द्रिका' आलिम्पन्निति—पूर्व श्लोक का कथन करके राम मूर्च्छित हो जाते हैं तो सीता उन्हें अपने हाथ के स्पर्श से जिलाती है, तब उठकर राम अत्यन्त आनन्द का अनुभव करते हुए कहते हैं कि—

अमृत से युक्त लेपों के माध्यम से भीतर और बाहर दोनों ओर से शरीर को एवं इसमें विद्यमान सभी धातुओं[1] को लीपते हुए के समान, पहले होश में लाता हुआ, अकस्मात् ही हुआ यह हस्त स्पर्श, वस्तुतः मेरे हृदय में आनन्द को उत्पन्न करके, मानो फिर से मूर्च्छा को ही उत्पन्न कर रहा है, क्योंकि आनन्दातिरेक से भी व्यक्ति अपनी सुधबुध तो खो ही देता है।

विशेष— (i) बाणभट्ट ने शरीर में सात प्रकार की धातुओं को मान्यता प्रदान की है—रस, स्रक्, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र। कवि ने यहाँ इन्हीं सबकी ओर संकेत किया है।

(ii) कवि का अभिप्राय है कि इस सुखद स्पर्श के कारण पहले तो मेरी मूर्च्छा दूर हुई, किन्तु उसके बाद आनन्दातिरेक से मैं फिर से अचेतनता को प्राप्त हो रहा हूँ।

(iii) उत्प्रेक्षालंकार, पांचाली रीति एवं प्रहर्षिणी छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(iv) टीकाकार घनश्याम ने यहाँ प्रयुक्त 'मोह' अर्थ 'परवशता' किया है।

(v) 'अन्तर्वा' में 'वा' पद 'समुच्चय' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

व्या.टि.— (i) **संस्पर्शः**— सम्+ √स्पृश्+घञ्, शोभनं स्पर्शः, इति।

---

1. श्लेष्मादिरसरक्तादिमहाभूतानि तद्गुणाः ।
इन्द्रियाश्मविकृतिः शब्दयोनिश्च धातवः।।

(ii) **आलिम्पन्**— आ+ √लिम्प्+शतृ, पूरी तरह लीपते हुए।

(iii) **जीवयन्**— √जीव्+णिच्+शतृ, जीवित करता हुआ।

(iv) **आदधाति**— आ+ √धा+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या— **सीतायाः करकमलस्य स्पर्शात् आपन्नचेतः रामः सहर्षं कथयति— अहो, अमृतमयैः प्रकृष्टलेपैः शरीरस्य अन्तःभागे बहिर्भागे च स्थितान् धातून् आलिम्पन्निव पुनरपि मां जीवयन् आनन्दातिरेकं दत्वा अपरं खलु मोहं आदधाति, प्रेरयति, इति।**

(40) 'चन्द्रिका' गृहीतेति— राम, स्पर्श किए गए सीता के हाथ को पकड़कर वासन्ती से कहते हैं कि— सखि! ये मेरे प्रलाप नहीं हैं,

क्योंकि जिस कंगन को धारण करने वाले हाथ को, मैंने पहले विवाह की संस्कार—विधि के अवसर पर ग्रहण किया था और जो चन्द्रमा की अमृतमय शीतल किरणों के समान शीतल था। वही लवली की लता के अंकुर के समान कोमल एवं उसी के समान दूसरे किसी भी हाथ की उपमा से भी अधिक सुन्दर, अपनी प्रिया सीता के हाथ को मैंने पा लिया है।

विशेष— (i) प्रस्तुत श्लोक संवादात्मक रूप में प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि इसके पूर्वार्द्ध के बाद, सीता का यह वाक्य कि—' आर्यपुत्र! क्या आज भी आप वही हैं' प्रयुक्त हुआ है।

(ii) यहाँ पूर्वार्द्ध में अर्थश्लेष तथा उत्तरार्द्ध में अनन्वय एवं उपमालंकार और शिखरिणी छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iii) सीता के हाथ की लवली लता के अंकुर से मनोरम उपमा उसकी कोमलता की अतिशयता को प्रदर्शित करने के लिए दी गयी है।

(iv) सीता के हाथ को संसार में अद्वितीय बताने के लिए कवि ने तलस्पर्शी उपमाओं का प्रयोग किया है। अतः प्रस्तुत श्लोक कवि की सूक्ष्मदृष्टि एवं उत्कृष्ट कल्पना शक्ति का द्योतक है।

व्या.टि.— (i) **गृहीतः**—√ग्रह्+क्त। **परिचितः**— परि+ √चि+क्त।

(ii) **परिणयविधौ**— परिणयस्य विधिः परिणयविधिः, तस्मिन्।

(iii) **ललित0**—लवल्याः कन्दलं, ललितं चासौ, तेन तुल्यः इति।

संस्कृत व्याख्या– रामः, सखीवासन्तीं प्रति कथयति– एषः प्रलापः न, वस्तुतः मया सीतायाः करः गृहीतोऽस्ति, कंकणधरः यः करः पूर्वकाले विवाहस्य संस्कारसमये गृहीतः आसीत्। अयं करः चन्द्रस्य पीयूषशीतलैः करैः परिचितोऽस्ति अतिशयशीतलत्वात्। अनन्तरं अप्रत्यक्षसीता कथयति यत्– आर्यपुत्र! भवान् किं सः एव, येन मम विवाहकाले करोऽयं गृहीतः? पश्चात् रामः पुनः प्राह– तस्याः सीतायाः अपरकरस्य उपमा वस्तुतः अनुपमा विद्यते। ईदृशः सोऽयं सीतायाः ललितलवलीलतायाः अंकुरः इव मृदुलपाणिः मया प्राप्तः सम्प्रति। किं त्वं न पश्यसि?

(41) 'चन्द्रिका' करपल्लवेति– सीता का पकड़ा हुआ हाथ अकस्मात् ही राम से छूट जाता है, तो वे कहते हैं कि–

धिक्कार है, यह तो मुझसे बहुत बड़ा प्रमाद हो गया है, क्योंकि जड़, अत्यधिक काँपता हुआ, पसीने से युक्त सीता का वह पल्लव के समान हाथ, स्तब्ध एवं काँपते हुए, पसीने से सराबोर मेरे हाथ से अचानक ही छूट गया है।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने राम और सीता के व्यभिचारीभाव एवं अनुभावों का सुन्दर प्रदर्शन किया है, क्योंकि जड़ता, कम्प तथा स्वेद इन दोनों के हाथों में ही बताया गया है।

(ii) विद्वानों ने इस श्लोक को रसध्वनि के उत्कृष्ट उदाहरण रूप में स्वीकार किया है, क्योंकि कवि ने यहाँ अत्यन्त कौशलपूर्वक सीता और राम के दोनों हाथों का ऐक्य प्रतिपादित किया है।

(iii) उपर्युक्त श्लोक में शृंगाररस का पूर्णपरिपाक होते हुए, उपमा एवं काव्यलिंग अलंकारों और आर्या छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है। आर्या छन्द का लक्षण इसप्रकार है–

यस्या पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पंचदश साऽऽर्या।।

व्या.टि.– (i) **करपल्लवः–** करः पल्लवः इव, इति।

(ii) **परिकम्पिनः–** परि+ √कम्प्+णिनि, पंचमी विभक्ति, एकव

(iii) **परिभ्रष्टः–** परि+ √भ्रंश्+क्त, छूट गया है।

संस्कृत व्याख्या– रामः कथयति– यतोहि ममापि करः जडः स्पर्शसुखात् सीतायाः अपि तादृशः खलु आसीत्। मम प्रकर्षेण कम्पितः, तस्याः अपि तादृशः एव, स्वेदयुक्तो मम पाणिः अभवत्, तस्याः अपि सीतायाः तादृक्विधः खलु, अनेनैव कारणेन सः करपल्लवः मम करात् अकस्मात् परिभ्रष्टः। उभयोरपि रतिभावस्य उदयात् सात्विकभावप्रदर्शनम् उत्कृष्टम्।

(42) 'चन्द्रिका' सस्वेदेति– राम द्वारा हाथ पकड़ लेने तथा उसके बाद उसके छूट जाने के बाद की स्थिति को देखकर, तमसा स्नेह, कौतूहल एवं मुस्कराहट के साथ सीता से कहती है कि–

पुत्री सीता, अपने प्रिय राम के स्पर्शसुख का अनुभव करने के बाद, इससे प्राप्त होने वाले आनन्द के कारण, वायु द्वारा कँपायी गयी, नए–नए जल से सींची गयी, पूर्णतया विकसित कलिकाओं से युक्त, कदम्ब वृक्ष की शाखा के समान स्वेद, रोमांच और प्रकम्पित अंगों से युक्त हो गयी है।

विशेष– (i) सीता के लिए 'वत्सा' विशेषण, तमसा का उसके प्रति वात्सल्य एवं अनन्य अनुराग प्रदर्शित करने हेतु प्रयोग किया है।

(ii) 'कदम्बयष्टिरिव' में उपमालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) कवि की अद्भुत प्रतिभा से प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, उप–जाति छन्द एवं शृंगाररस का पूर्ण परिपाक कमनीय बन पड़ा है।

(iv) सीता की मनःस्थिति का मनभावन चित्रण हुआ है।

व्या.टि.– (i) **सस्वेदम्–** स्वेदेन सह वर्तते, इति।

(ii) **रोमांचितम्–** रोमांचः संजातः अस्य इति, तत्।

(iii) **जाता–** √जनी प्रादुर्भावे +क्त +टाप्, हो गयी है।

(iv) **प्रियस्पर्शसुखेन–** प्रियस्य स्पर्शः, तस्य सुखः तेन, इति।

संस्कृत व्याख्या– सीतायाः कमनीयाम् अवस्थां अवलोक्य तमसा प्राह– वत्सा सीता प्रियतमस्य स्पर्शसुखेन पवनेन सद्यः समानीतेन मेघस्य जलेन सिंचिता, अतएव आर्द्रा प्रकम्पिता, विकासं प्राप्ताः कलिकाः यस्याः सा, कदम्बपादपस्य शाखा इव, स्वेदानि रोमांचितानि च प्रकर्षेण कम्पितानि च अंगानि यस्याः सा तथाविधा संजाता, इति।

(43) 'चन्द्रिका' पौलस्त्येति– राम की मनःस्थिति को देखकर उनका ध्यान दूसरी ओर बँटाने की दृष्टि से वासन्ती कहती है कि–

महाराज! यह भी देखिए। जटायु द्वारा तोड़ा गया, यह रावण का लोहे से बनाया गया रथ, यहाँ पर पड़ा हुआ है और इसी के सामने अस्थिमात्र शेष बचे हुए, पिशाच की तरह दिखायी देने वाले मुख से युक्त रावण के गधे पड़े हुए हैं। यह वही स्थल है, जहाँ से शत्रु रावण अपनी तलवार से जटायु के पंखों को मूल से ही काटकर, काँपती हुई सीता को विद्युत् से युक्त मेघ के समान लेकर, आकाश में उड़ गया था।

विशेष– (i) रावण के लोहनिर्मित रथ को तोड़ने के कारण, जटायु की अप्रतिम शक्ति की अभिव्यंजना हुई है।

(ii) उपमालंकार, ओजगुण, पांचाली रीति एवं शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग दर्शनीय बन पड़ा है।

व्या.टि.– (i) **पौलस्त्यस्य**– पुलस्त्यस्य गोत्रापत्यं पुमान्, तस्य।

(ii) **कार्ष्णायसः**– कृष्णायसस्य विकारः, कृष्ण+अयस्+टच्।

(iii) **पिशाचवदनाः**– पिशाचस्य वदनमिव वदनं येषां ते।

(iv) **कंकालशेषाः**– कंकालः एव शेषाः येषां ते।

(v) **खड्ग0**–जटायोः पक्षतिः, खड्गेन छिन्नाः, येन सः तादृशः।

(vi) **अन्तर्व्याप्तविद्युत्**– अन्तः व्यापृता विद्युत् यस्य सः।

संस्कृत व्याख्या– **पश्यतु महाराज! जटायुषा विखण्डितः रावणस्य अयं कृष्णेन लौहेन निर्मितः रथः अत्र पतितोऽस्ति। अत्रैव च एते राक्षसमुखाः कंकालमात्रावशेषाः खराः पतिताः सन्ति। इतश्च खड्गेन विच्छिन्नः जटायुपक्षसमूहो येन सः, इतस्ततः परिधावन्तीं सीतां परिवहन् अन्तःव्यापारपरा चला विद्युत् यस्य तथाविधः मेघः इव रावणः आकाशे गतोऽभूत्।**

(44) 'चन्द्रिका' उपायानामिति– सीता के वियोग को कुछ दूसरे ही प्रकार का बताते हुए श्रीराम दुःखपूर्वक कहते हैं कि–

पूर्वकालिक उस वियोग एवं वर्तमान इस वियोग में तो पर्याप्त अन्तर है, क्योंकि पहले का वह सीता का वियोग तो अनेक प्रकार के

उपायों के रहने के कारण, मनोविनोद के सम्बन्धों वाला और अनेक वीरों के युद्धों में इस संसार में अत्यधिक अद्भुत रस की उत्पत्ति करने वाला, शत्रु रावण का वध करने पर्यन्त ही था, क्योंकि उसके बाद प्रिया सीता के साथ हमारा मिलन हो गया था, किन्तु वर्तमानकालिक यह विरह तो उससे भी कहीं अधिक कठोर तथा बिना किसी से अपनी वेदना के विषय में कुछ कहे, केवल स्वयं ही चुपचाप सहन करने योग्य है। साथ ही, इसकी तो कोई निश्चित अवधि भी नहीं है अर्थात् यह वियोग तो कभी न खत्म होने वाला अनन्तकालिक है।

विशेष– (i) यहाँ प्रयुक्त अद्भुतरस पद में स्वशब्दवाच्यता रस दोष की परिकल्पना उचित नहीं है, क्योंकि यहाँ पर यह 'आश्चर्यजनक आनन्द' इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

(ii) कवि का अभिप्राय है कि पूर्व में सीता का वियोग रावण के साथ युद्ध करने की व्यस्तताओं के कारण **प्रथम**, तो पता ही नहीं लगा। **द्वितीय,** उसकी अवधि रावण के वधपर्यन्त ही थी।

(iii) जबकि वर्तमान में इस विरह की तो कोई सीमा ही निश्चित नहीं हैं, इसीलिए इसे यहाँ अवधिरहित कहा गया है।

(iv) पूर्व वियोग की अपेक्षा इस वियोग का वैचित्र्य प्रतिपादन करने से व्यतिरेक अलंकार और निरवधित्व के समर्थन से काव्यलिंग अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है। शिखरिणी छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) **मुग्धाक्ष्याः**– मुग्धे अक्षिणी यस्याः सा, बहुव्रीहि।

(ii) **रिपुघातावधिः**– रिपोः घातः सः एव अवधिः यस्य सः।

(iii) **जनितजगत्यद्भुतरसः**– अतिशयेन अद्भुतः, अत्यद्भुतश्च असौ रसः, इति। जनितः जगति अत्यद्भुतरसः येन सः तादृशः।

संस्कृत व्याख्या– **रावणेन अपहृतायाः सीतायाः वियोगः सावधिः आसीत्, किन्तु अयं विरहः तु निरवधिः वर्तते, इति परितापं चिन्तयन् रामः कथयति– अयं वियोगः पूर्ववियोगात् पूर्णतया भिन्नः कष्टदायी च वर्तते, तदानीं बहूनां साधनानां विद्यमानत्वात्। विनोदानां युद्धकौतुकानां सम्पर्कैः सैनिकानां च विनाशं कृत्वा उत्पादितः, संसारे च येन अद्भुत–रसस्य प्रणितिः कृता। एतादृशः सः वियोगः रिपुघातावधिपर्यन्तं खलु**

आसीत्, अयं तु तीक्ष्णः अन्यस्य अग्रे प्रकाशयितुम् अशक्यः निरवधिकः वियोगोऽस्ति, यः पूर्णरूपेण असह्यो वर्तते।

(45) 'चन्द्रिका' व्यर्थमिति– इसी क्रम में राम फिर से कहते हैं कि– हे प्रिये सीते! यह अत्यधिक कष्ट का विषय है कि–

इस वियोग में तो वस्तुतः मेरी सुग्रीव आदि से मित्रता भी व्यर्थ है और पूर्व में प्रदर्शित किया गया वानरों का पराक्रम भी किसी काम में आने वाला नहीं है। इसके अतिरिक्त इस वियोग में तो **विश्वकर्मा का पुत्र नल** भी पुल जैसा कोई मार्ग बनाने में असमर्थ है। इतना ही नहीं, यहाँ तो मेरे मित्र एवं भाई लक्ष्मण के बाणों की पहुँच भी नहीं है अर्थात् यह वियोग पूर्णरूप से उपचार रहित होने से अधिक पीड़ा देने वाला और असह्य है। हे सीते! तुम कहाँ हो? प्रत्युत्तर दो।

विशेष– (i) महाकवि की तार्किक शैली, भाषा की सरलता एवं शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का सुन्दर प्रयोग दर्शनीय है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में खले कपोतिका न्याय से सुग्रीव की मैत्री, वानरों के शौर्य आदि के वैशिष्ट्य प्रतिपादन के कारण समुच्चय अलंकार का प्रयोग हुआ है। कुछ विद्वानों ने यहाँ व्यतिरेक माना है।

(iii) सीता के इस वियोग के उपायरहित होने से राम की अत्यधिक विकल मनःस्थिति की अभिव्यंजना हो रही है।

व्या.टि.– (i) **कपीन्द्रसख्यम्–** कपीनां इन्द्रः, तस्य सख्यमिति।

(ii) **सौमित्रेः–** सुमित्रायाः अपत्यं पुमान्, इति सौमित्रि तस्य।

(iii) **असि–** √अस्+लट्, मध्यमपुरुष, एकवचन, हो।

संस्कृत व्याख्या– तत्पश्चात् जानकीं सम्बोध्य रामः कथयति– हे प्रिये! त्वम् इदानीं कुत्र वर्तसे? लंकायां तु तव परिचयः प्राप्तः आसीत्, किन्तु वियोगेऽस्मिन् तव स्थितिं खलु नैव जानामि अहम्। अत्र तु सुग्रीवेण सह मैत्री नैव कार्यं करोति, वानराणां शौर्यस्य अपि नैव सार्थकत्वम्। जाम्बवतेः बुद्धिरपि सर्वथा व्यर्था, वायो पुत्रः हनुमान् अपि किमपि कर्तुं न क्षमोऽस्ति। विश्वकर्मणः पुत्रस्य नलस्यापि मार्गनिर्माण-सामर्थ्यमत्र नैव उपयोगी विद्यते। मम प्रियस्य मित्रस्य लक्ष्मणस्य बाणाः अपि अकिंचित्कराः सन्ति। अतएव प्रिये! कथय यत्र त्वम् असि।

(46) 'चन्द्रिका' प्रत्युप्तस्येति– इसप्रकार देर तक सीता की स्मृति में उन्मुक्तरूप से विलाप करने के बाद, हलके मन वाले राम, वासन्ती से इस जनस्थान से जाने की अनुमति माँगते हैं, जिसे वासन्ती स्वीकार कर लेती है, उधर अप्रत्यक्ष तमसा भी सीता को वाल्मीकि आश्रम में चलने के लिए कहती है। तब सीता 'हाँ' कहकर भी राम को देखने के लोभ से चल नहीं पाती है, तो तमसा, सीता को सम्बोधित करके कहती है कि–

अपने प्रिय राम में ही मानो जिन नेत्रों को बो (प्रत्युप्तस्य) दिया गया है, इसलिए वहाँ से उन्हें नहीं हटाया जा सकता है तथा तृष्णा के साथ जिन नेत्रों का गहरा सम्बन्ध है, मर्मस्थलों में छेद करने के समान, अर्थात् जिसप्रकार छेद करके किसी वस्तु को बाँध दिया जाता है, उसप्रकार के मर्मस्थलों में छेद करके बँधे हुए, तुम्हारे नेत्रों द्वारा ही राम का देर तक दर्शन करने के लिए, तुम्हें रोका जा रहा है। इसलिए तुम यहाँ से जल्दी भला कैसे चल सकती हो?

विशेष– (i) सीता की रामदर्शन के प्रति लालसा एवं उसके कारणों का सुन्दर चित्र कवि द्वारा इस श्लोक में प्रस्तुत किया गया है।

(ii) यहाँ कवि ने रामदर्शन से विरत न होने के सीता विषयक तलस्पर्शी एवं मार्मिक तीन कारणों का उल्लेख किया है।

(iii) उत्प्रेक्षालंकार एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

(v) साथ ही प्रस्तुत श्लोक व्यंजना शब्दशक्ति का सुन्दर उदाहरण है।

(v) सम्पूर्ण तृतीय अंक में महाकवि का गहन मनोविज्ञान अभिव्यक्त हुआ है, जिससे वे यहाँ पर प्रयुक्त सभी स्थलों के तलस्पर्शी वर्णनों में पूर्णतया सफल सिद्ध हुए हैं।

व्या.टि.– (i) **प्रत्युप्तस्य–** प्रति+√वप्+क्त, ष. विभक्ति, ए.व.।

(ii) **सन्निकर्षः–** सम्+नि+√कृष्+घञ्, सान्निध्य, आकर्षण।

(iii) **निरुध्यते–**नि+√रुध्+णिच्+लट्, आत्मने, प्र.पु.,एकवचन।

(iv) **मर्मच्छेदोपमैः–** मर्मणि छेदः मर्मच्छेदः तेन उपमा यस्य तैः।

संस्कृत व्याख्या– तमसा, सीतायाः अस्मात् स्थानात् अन्यत्र वाल्मीकेः आश्रमं प्रति गमने बाधां निरूपयति– दयिते निखातस्येव वपनस्य वा, तृष्णया दीर्घस्य चक्षुषः मर्मच्छेदसमैः यत्नैः यस्याः तव सन्निकर्षो निरुध्यते अर्थात् अतिशयप्रेम्णा त्वं स्वप्रियतमं पश्यसि। मन्ये, तस्मिन् खलु तृष्णादीर्घं नयनसमासक्तम् इति, कथम् इतः दूरे गमनं भवितुं शक्यते? तव गमनम् अस्मात् स्थानात् वस्तुतः कठिनमिति मन्ये।

(47) 'चन्द्रिका' एकोरसेति– राम और सीता की कारुणिक मनःस्थिति को देखकर, तमसा एकमात्र करुणरस को ही मुख्यरस बताते हुए कहती है कि– अहो, यह भी कैसी सृष्टि है–

जहाँ पर करुणरस ही एकमात्र रस कहलाने योग्य है। विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारीभावों की विलक्षणता के कारण, यही करुणरस वस्तुतः ठीक उसीप्रकार अनेक रूप धारण कर लेता है, **जैसे**– एक ही जल, भँवर, बुलबुले और तरंगों के रूप में हम सभी को दिखायी देता है, जबकि वस्तुस्थिति तो यही है कि बुलबुले, तरंगादि सभी मूलरूप से जल ही होते हैं, वे जल के अलावा अन्य कुछ नहीं होते हैं।

विशेष– (i) महाकवि की मान्यता की सुन्दर प्रस्तुति हुई है, क्योंकि उत्तररामचरित नाटक करुणरस प्रधान सर्वोत्कृष्ट कृति है।

(ii) यहाँ प्रयुक्त 'विवर्त' पद से महाकवि का वेदान्तदर्शन विषयक गहन ज्ञान भी प्रदर्शित हुआ है, क्योंकि वहाँ पर 'जगत्' को, एकमात्र सत्य 'ब्रह्म' का 'विवर्त' कहा गया है, 'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या' जो सीपी में चाँदी की प्रतीति के समान वास्तविक नहीं होता है।

(iii) कुछ विद्वानों के अनुसार– प्रस्तुत अंक में सीता एवं दूसरे पात्रों के हृदय में जो लज्जा, विस्मय आदि भाव हैं, वे सब भी करुण रस के ही रुपान्तर हैं।

(iv) अथवा राम एवं सीता के जीवन से सम्बन्धित यद्यपि दूसरे रसों शृंगार तथा वीर के प्रसंग भी इस नाटक में प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु उन सभी के मूल में करुणरस की धारा ही प्रवाहित हो रही है।

(v) प्रस्तुत श्लोक का यह अर्थ भी किया जा सकता है– करुणरस एक ही है, इसमें नानात्व सम्भव नहीं है, क्योंकि यह रस

पूर्णघन तथा आनन्दस्वरूप होता है, किन्तु यहाँ पर राम, सीता, वासन्ती और तमसा इन सभी में करुणरस का ही संचार हो रहा है, जबकि सीता का करुण यहाँ राम से पृथक् है और राम का सीता से, इसीप्रकार वासन्ती का इन दोनों से सर्वथा भिन्न है, किन्तु यदि तात्विक दृष्टि से देखा जाए तो इन सभी में एक ही करुणरस प्रवाहित हो रहा है।

(vi) प्रस्तुत श्लोक में उपमा, उत्प्रेक्षालंकारों की सुन्दर संसृष्टि, सरल भाषा, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति और वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

(vii) समालोचकों ने प्रस्तुत तृतीय अंक को कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक से प्रभावित माना है, क्योंकि वहाँ पर भी शकुन्तला की विदाई के अवसर पर करुणरस की ही प्रधानता रही है। यद्यपि इन दोनों की सृष्टि में पर्याप्त अन्तर है।

व्या.टि.– (i) **श्रयते**– √श्रि+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **निमित्तभेदात्**– निमित्तानां भेदः तस्मात्, कारणों के भेद से।

(iii) **आवर्त०**–आवर्तश्च बुदबुदश्च तरंगश्चेति, एतद्रूपाः तान्।

संस्कृत व्याख्या– एको करुणरसो वै अस्ति, न तु करुणे तस्मिन् नानात्वं सम्भवति। रसस्य आनन्दघनरूपत्वात्। परमत्र सीता, रामः, वासन्ती सर्वे करुणार्द्रचेताः वर्तन्ते, किन्तु प्रत्यक्षे तु सीतायाः कारुण्यं रामस्य कारुण्यात् पृथगस्ति, सर्वेऽपि अत्र शोकाकुलाः सन्ति,

वस्तुतस्तु अन्ततः करुणो रसः एकः एव अस्ति। एतेषु विभिन्नेषु पात्रेषु या भिन्नता दृश्यते, करुणस्य, सा औपाधिकः एवास्ति। यद्यपि यदा वयं रामस्य करुणं पश्यामः, यदा च सीतायाः कारुण्यम्, उभौ एतौ भिन्नौ प्रतीयन्तौ, किन्तु यथार्थभेदो तु अत्र नास्ति।

(48) 'चन्द्रिका' अवनिरिति– अंक के अन्त में राम अपने पुष्पक विमान से प्रस्थान करते हैं तथा तमसा और वासन्ती सीता एवं राम के प्रति आशीर्वाद का वितरण करते हुए कहती हैं कि–

पृथ्वी, हमारे समान तमसा, मुरला, गोदावरी, भागीरथी गंगा आदि नदियाँ, वन की देवियों के साथ वे कुलपति वाल्मीकि, जिन्होंने

इस संसार में सर्वप्रथम छन्दों का प्रयोग किया है एवं माता अरुन्धती के साथ वे मुनि वसिष्ठ, आप दोनों अर्थात् राम–सीता के लिए प्रचुर मात्रा में कल्याण प्रदान करने हेतु मंगलों का वितरण करें।

विशेष– (i) यहाँ 'कुलपति' पद से अभिप्राय राम के वंश के स्वामी सूर्य से भी ग्रहण किया जा सकता है।

(ii) 'अमरसिन्धु' पद का प्रयोग गंगा के लिए हुआ है।

(iii) 'सार्धम्' पद के योग में 'अस्मद्विधाभिः' में तृतीया विभक्ति का प्रयोग 'सहयुक्तेऽप्रधाने' इत्यादि कारक सूत्र से हुआ है।

(iv) तुल्ययोगितालंकार एवं मालिनी छन्द का प्रयोग है।

(v) आदिकवि वाल्मीकि को छन्द (श्लोक) का प्रथम प्रयोग करने वाला माना गया है, जिसकी ओर कवि ने यहाँ संकेत किया है।

(vi) तमसा और वासन्ती के उक्त आशीर्वचनों से रामसीता के भावी मिलन की ओर भी व्यंजना से संकेत किया गया है।

व्या.टि.– (i) **वितरतु–** वि+√तृ+लोट्, प्रथमपुरुष, एकव.।

(ii) **प्रयोक्ता–** प्र+√युज्+तृच्, प्रथमा विभक्ति, एक वचन।

संस्कृत व्याख्या– तृतीयांकस्यान्ते महाकविः शीघ्रमेव सीता-**रामयोः समागमो भविष्यति, इति सूचनार्थं शुभाशीर्वचनरूपं** पद्यम् **अवतारयति– पद्यमिदं तमसावासन्त्याभ्यां रामसीतां प्रति** कथयतः। **पृथिवी, भगवती जाह्नवी, अस्मत्तुल्याभिः नद्याभिः सह, सः कुलपतिः** यः **छन्दसाम् आद्यः प्रयोक्ता विद्यते, अरुन्धत्या अनुसरणं कृतम्, यस्य** सः **वसिष्ठः, तव सीतायाः रामस्य च अतिशयाय मंगलाय कल्याणं** ददातु।

'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या, संस्कृत व्याख्या

चतुर्थ अङ्क

पृष्ठभूमि– इस अंक का सम्बन्ध द्वितीय अंक से भी है, क्योंकि वहाँ पर तापसी आत्रेयी तथा वनदेवी वासन्ती के वार्तालाप से वसिष्ठ, अरुन्धती, कौशल्या एवं जनक के वाल्मीकि आश्रम में आने, लव एवं कुश को ऋषि वाल्मीकि को सौंपने, राम के अश्वमेध यज्ञ तथा यज्ञ के अश्व की रक्षा का भार, लक्ष्मणपुत्र चन्द्रकेतु को देने तथा वाल्मीकि द्वारा काव्य–रचना आदि की चर्चा की गयी है। यहाँ पर उन्हीं बिन्दुओं का विस्तार से वर्णन हुआ है।

इसके अलावा सीता के पिता जनक का राम एवं कौशल्या के प्रति मनोमालिन्य दूर करना, कौशल्या एवं जनक का लव से परिचय कराना आदि विषय भी इस अंक में प्रमुखता लिए हुए हैं। अंक के आरम्भ में दण्डायन तथा सौधातकि नाम दो तपस्वियों के माध्यम से कवि ने **मिश्र विष्कम्भक** का प्रयोग करके, किंचित् हास्य रस की सृष्टि की है। इसके अलावा यहाँ पर वात्सल्य, करुण तथा वीररस की भी अनुभूति की जा सकती है। वसिष्ठ, अरुन्धती, जनक, कौशल्या आदि के वाल्मीकि आश्रम में अतिथिरूप में आने तथा सीता के दुःख से पीड़ित जनक के वैखानस होने की सूचना भी यहाँ पर दी गयी है।

(क) मिश्र विष्कम्भक– इसके अन्तर्गत यहाँ पर मध्यम एवं निम्न श्रेणी के पात्रों के माध्यम से भूतकालिक एवं भविष्य की सूचनाएँ दी गयी हैं। इनमें दण्डायन मध्यम श्रेणी का पात्र है, जो संस्कृत बोलता है, जबकि सौधातकि निम्न श्रेणी में आता है, जो प्राकृत भाषा का प्रयोग करता है। इसीलिए इसे संकीर्ण या मिश्र विष्कम्भक की संज्ञा प्रदान की गयी है।

(1) 'चन्द्रिका' नीवारेति– अंक के आरम्भ में सौधातकि नामक ब्रह्मचारी वाल्मीकि के आश्रम में अतिथियों के आने से किए जाने वाले आयोजनों की शोभा के विषय में कहता है कि–

तपोवन में पाला गया यह मृग, अभी–अभी ब्याई हुई मृगी के पीने से बचे हुए, गर्म तथा मधुर, जँगली धान्य के माँड़ को पर्याप्तरूप से आनन्दपूर्वक पी रहा है। इसके अतिरिक्त घी से युक्त भात के बनाने से फैलती हुई सुगन्ध द्वारा, थोड़ा अनुकरण की जाने वाली, बेर से मिश्रित अनेक प्रकार के सागों के पकाने की सुगन्ध भी आश्रम में चारों ओर फैल रही है।

विशेष– (i) यहाँ आश्रम में मनाए जाने वाले उत्सवों के अवसर पर, पकाए जाने वाले वन्य–व्यंजनों तथा अनध्याय होने से आश्रम के ब्रह्मचारियों की प्रसन्नता की ओर संकेत किया गया है।

(ii) आश्रम में व्याप्त प्रसन्नता तथा आनन्दमय वातावरण का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति एवं उदात्त अलंकार दर्शनीय।

(iii) सद्यःप्रसूता मृगी को गर्म और मीठा भात पकाकर, देने से कवि का प्रसूतिविज्ञान विषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(iv) प्रसाद गुण, पांचाली रीति तथा शार्दूलविक्रीड़ित छन्द।

व्या.टि.–(i)**परिस्तीर्यते**– परि+ √स्तृ+कर्मवाच्य, लृट्, प्र.पु.,ए.व.।

(ii) **आचामति**– आ+ √चम्+लट्, प्रथम पुरुष, एकवचन।

(iii)**स्फुरता**– √स्फुर्+शतृ+तृ.वि.,ए.व. **प्रसूता**–प्र+ √सू+क्त+टाप्।

(iv) **अनुगतः**– अनु+ √गम्+क्त। **आमोदः**– आ+ √मुद्+घञ्।

संस्कृत व्याख्या– **अयम् आश्रममृगः सद्यः प्रसूतायाः प्रियायाः हरिण्याः पीतात् अवशिष्टं उष्णं माधुर्ययुक्तं च मुनिधान्योदनस्य आस्रावं इच्छानुसारं पिबति। घृतवतश्च ओदनस्य आश्रमे इतस्ततः प्रसरता सुरभिणा किंचित् अनुगतः पच्यमानबदरीफलयुक्तशाकस्य गन्धः परितः व्याप्तो भवति, इति।**

(2) 'चन्द्रिका' हृदीति– सीता के उसप्रकार के दुर्भाग्य को सुनकर, वानप्रस्थ हुए, वाल्मीकि आश्रम के बाहर वृक्ष के नीचे बैठे हुए महाराज जनक की मनःस्थिति के विषय में दण्डायन नामक ब्रह्मचारी अपने मित्र सौधातकि से कहता है कि–

ये महाराज जनक, अपने हृदय में स्थित अपनी पुत्री सीता के गहन शोक के कारण, अन्दर ही अन्दर फैलती हुई अग्नि से युक्त, जीर्णशीर्ण वृक्ष के समान, घने सन्ताप से मन ही मन जलते रहते हैं।

विशेष– (i) निरपराध अपनी पुत्री सीता के इसप्रकार के दुःखद परिणाम के कारण, अन्दर ही अन्दर गहन सन्ताप का अनुभव करने वाले, जनक की मनःस्थिति का सुन्दर एवं कारुणिक चित्रण हुआ है।

(ii) जनक की उपमा के लिए जीर्णवृक्ष उपमान, अत्यन्त उपयुक्त बन पड़ा है तथा उनके मन के अन्दर दहकते हुए, सन्ताप के लिए अग्नि उपमान, उनके गहन सन्ताप को चित्रित करने वाला है, मनभावन उपमालंकार का अद्भुत सौन्दर्य देखा जा सकता है।

(iii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग।

व्या.टि.– (i) **प्रसृप्तः**– प्र+ √सृप्+क्त। **शोकः**– √शुच्+घञ्।

(ii) **अनुसक्तेन**– अनु+ √संज्+क्त, तृ.वि., ए.व.। लगे हुए से।

(iii) **अन्तः प्रसृप्तदहनः**– अन्तः भागे प्रसृप्तः दहनः यस्य सः।

(iv) **तप्यते**– √तप्+कर्मवाच्य+लट्, तपता रहता है।

संस्कृत व्याख्या–**अस्य जनकस्य हृदि सदैव विद्यमानः सीतायाः परित्यागेन उत्पन्नः दुःखः, तेन च दुःखेन अन्तःभागे व्याप्तः शोकः, जीर्णवृक्षस्य अन्तःभागे निरन्तरानुलग्नेन अग्निः इव दह्यते।**

(3) 'चन्द्रिका' अपत्ये, इति– इसप्रकार मिश्र विष्कम्भक के माध्यम से महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ देने के बाद, महाकवि, जनक का प्रवेश कराकर उनकी मनोव्यथा का सुन्दर चित्रण करते हुए कहते हैं कि–

मेरी पुत्री सीता के सम्बन्ध में उसप्रकार का जो लोकापवाद के कारण अनर्थ हुआ, अत्यधिक प्रबल एवं हृदय को विदीर्ण कर देने वाला, कठोर, गहन पीड़ा प्रदान करने वाला, विशेषरूप से हृदय में लगा हुआ, हृदय को छेदन करने में समर्थ (पटुः), धारा के समान निरन्तर व्याप्त रहने वाला, नित–नया सा होता हुआ, वह शोक, इतना

लम्बा समय व्यतीत होने के बाद, आज भी मेरे मर्मस्थलों को 'आरे' (क्रकच) से चीरते हुए के समान, शान्त नहीं हो रहा है।

विशेष– (i) महाकवि ने राजा जनक की कारुणिक मनोदशा का अत्यन्त स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। उनकी शैली की विशेषता है कि वे अमूर्त मनोभावों का शब्दचित्र ही साक्षात् रूप से सहृदय के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं, भाषा की समृद्धि दर्शनीय है।

(ii) पूर्णोपमा, उत्प्रेक्षालंकार एवं शिखरिणी छन्द का प्रयोग है।

(iii) यहाँ प्रयुक्त 'दुरितम्' पद के, व्याख्याकारों ने अनेक अर्थ किए हैं, किन्तु यहाँ लोकापवादरूप पाप करना उचित है।

व्या.टि.– (i) **व्यथयता**– √व्यथ्+णिच्+शतृ, तृ.वि., ए.व.।

(ii) **दुरितम्**– दुर्+ √इण् गतौ+क्त। **व्रणित**– व्रण+इतच्।

(iii)**विषक्तः**– वि+ √संज्+क्त। **धारावाही**– धारा+ √वह्+णिनि।

(iv) **विरमति**– विर+ √रम्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– **सन्ततौ सीताविषये यत् त्यागरूपपापं** जातम्। **तेन मम हृदि शोकः नैव उपशमनं याति। शोकोऽयं मम हृदयं** विपुलेन, **दारुणेन, क्षतान्तःकरणेन वेदनाम् उत्पादयता, सम्बद्धो भूत्वा** पटुतया **निरन्तरसंचरणशीलो भूत्वा, प्रभूतकालेन अतीतेऽपि नवः इव,** अचिरजातः **इव, क्रकचः इव मर्मस्थलानि मम निकृन्तति।**

(4) 'चन्द्रिका' अनियतेति– इसी क्रम में अपनी पुत्री सीता की बाल्यकालीन मधुर स्मृतियों में खोते हुए, जनक कहते हैं कि–

बिना किसी कारण अथवा बिना रुके रुदन करने वाले, कभी हँसने वाले, अत्यधिक सुन्दर, सुशोभित होते हुए, छोटे–छोटे कोमल, विरल दाँतों रूपी कलियों के आगे के भागों से युक्त, तुतलाते हुए, असंगत एवं मनोरम आलापों वाले, हे पुत्रि! मैं तुम्हारे उस शैशवकालीन कमल के समान मुख को इस समय भी याद कर रहा हूँ।

विशेष– (i) सीता के बाल्यकाल की स्वाभाविक चेष्टाओं का मनोहरी चित्रण किया है, शोकमिश्रित वात्सल्य की प्रतीति हो रही है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक मालतीमाधव (10/2) में भी प्रयुक्त हुआ है।

(iii) स्वभावोक्ति, उपमा, परिणाम अलंकार, प्रसाद गुण, पांचाली रीति तथा पुष्पिताग्रा छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(iv) ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि द्वारा स्वयं अनुभव की गयी, बालक की विविध चेष्टाओं को प्रस्तुत किया गया है।

(v) भाषा का माधुर्य, शब्दों की गति तथा भावों की कोमलता सभी कुछ दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **विराजत्**– वि+ √राज्(दीप्तौ)+शतृ, प्र.वि., ए.व.।

(ii) **स्खलत्**– √स्खल्+शतृ। **जल्पितम्**– √जल्प्+क्त।

(iii) **स्मरामि**– √स्मृ+लट्, उत्तमपुरुष, ए.व., स्मरण करता हूँ।

संस्कृत व्याख्या– **हे पुत्रि! अहं तव कमलमिव तन्मुखं स्मरामि बाल्यकालस्य, यः अव्यवस्थितेन रोदनेन हासेन च युक्तः** आसीत्। **शोभमानेन कतिपयसुकुमारेण दन्तमुकुलाग्रेण च युक्तोऽभवत्। तथा च सः मुखः पूर्णोच्चारणस्य सामर्थ्यस्य अभावात् अस्पष्टं च असंगतं च मनोरमं च जल्पति स्म शैशवास्थायाम्। हा एतादृशि त्वं कुत्र गतासि? इति भावः।**

(5) 'चन्द्रिका' त्वमिति– निरपराध सीता के राम द्वारा, त्याग के लिए भगवती वसुन्धरा को उपालम्भ देते हुए जनक कहते हैं कि–

हे पृथ्वी! निश्चय ही, तुम कठोर हृदया हो, क्योंकि जिस अपनी पुत्री सीता के माहात्म्य को तुम स्वयं, अग्नि देवता, सभी ऋषि लोग, वसिष्ठ की धर्मपत्नी अरुन्धती, भगवती गंगा एवं रघुकुल के आदिपुरुष स्वयं भगवान् भास्कर भी जानते हैं, जिसप्रकार वाणी की देवी सरस्वती विद्या को उत्पन्न करती हैं, ठीक उसीप्रकार आपने जिसे जन्म दिया है, उस अग्नि द्वारा निर्दोष प्रमाणित की गयी, अपनी पुत्री सीता के इसप्रकार के घोर विनाश को आपने भला कैसे सहन कर लिया?

विशेष– (i) महाकवि द्वारा यहाँ पर सीता की महिमा एवं पवित्रता का विस्तार से कथन किया गया है।

(ii) 'त्वम्' एवं 'वह्नि' आदि का एक ही क्रिया 'विदुः' के साथ सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता एवं 'वागिव' में उपमा अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) पृथ्वी के लिए 'वसुन्धरे पद का प्रयोग विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए किया गया है, क्योंकि वह तो सभी को धारण करती है, फिर अपनी पुत्री सीता को उन्होंने क्यों धारण नहीं किया?

(iv) प्रसादगुण, लाटी रीति, शार्दूलविक्रीड़ित छन्द दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) भाः करोति, इति, भास्करः, भ्रास्+√कृ+ट।

(ii) **अमृष्यथाः–** √मृष्+णिच्+लुङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(iii) वसिष्ठस्य गृहिणी, कुलस्य गुरुः, तव दुहिताः तस्याः।

संस्कृत व्याख्या– हे कठोरचित्ते वसुन्धरे! यस्याः सीतायाः महिमानं त्वं स्वयं, अनलः, ऋषयः, वसिष्ठस्य पत्नी अरुन्धती, भागीरथी, रघुवंशस्य गुरुः वसिष्ठः तथा प्रकाशनशीलः सूर्यः स्वयमेव जानन्ति। यथा शारदा शास्त्राणि तथैव त्वया यां सीतां जनयामास, एतादृशीं पवित्रतां गतायाः तव सुतायाः पुनरपि तेन प्रकारेण हिंसनं कथं संजातम्? भवती एतत् सर्वं कथं सहनम् अकरोत्।

(6) 'चन्द्रिका' आसीदिति– इसके बाद, अरुन्धती के साथ कौशल्या के आने पर, उन्हें देखकर महाराजा जनक कहते हैं कि–

'गृष्टि' नामक कंचुकी द्वारा 'महारानी' पद से कही गयी, ये तो महाराज दशरथ के घर की लक्ष्मी के समान पत्नी हैं अथवा स्वयं लक्ष्मी ही हैं, क्योंकि इनके लिए तो 'लक्ष्मी' उपमान पद का प्रयोग भी उपयुक्त नहीं है। फिर भी अत्यधिक दुःख एवं कष्ट का विषय है कि वे ही ये, तो दुर्भाग्यवश किसी सामान्य दुःखी प्राणी के समान हो गयी हैं। निश्चय ही, यह अत्यधिक आश्चर्यजनक विकार का ही विषय है।

विशेष– (i) सीता के परित्याग के परिणामस्वरूप महारानी कौशल्या की शारीरिक दुर्बलता का आधिक्य व्यंजित हुआ है।

(ii) 'यथा श्रीः' में उपमा, 'श्रीरेव' में अतिशयोक्ति तथा 'अन्यदिव' में उत्प्रेक्षालंकार एवं वसन्ततिलका छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **दुःखात्मकम्–** दुःखम् आत्मा यस्य तत्।

(ii) **उपमान–** उप+√मा+ल्युट् (भावे)। **विकारः–** वि+कृ+घञ्।

(iii) **जाता–** √जन्+क्त+टाप्। **आसीत्–** √अस्+लङ्,प्र.पु.,ए.व.।

संस्कृत व्याख्या– इयं मम समक्षे स्थिता कौसल्या दशरथस्य राजप्रासादे लक्ष्मीरिव आसीत् अथवा विषयेऽस्मिन् उपमानस्य आवश्यकता न, एषा तु तस्य गृहे लक्ष्मीरेव अभवत्, किन्तु सम्प्रति वै एषा सामान्यजनः इव दुर्दैवशादनिर्वाच्ये, दुःखरूपे संजाता, एतत् कीदृशः विकारोऽस्ति? दशाविपर्यासं कथमेतत् संजातमिति? महत्कष्टमेतत्।

(7) 'चन्द्रिका' य एवेति– पुत्री का त्याग करने वाले, राम की माता होने के कारण कौशल्या के विषय में जनक पुनः कहते हैं कि–

जो व्यक्ति इस समय मेरे समक्ष स्थित है, यह सीता परित्याग से पहले, मेरे लिए शरीरधारी महान् उत्सव के समान आनन्द प्रदान करने वाला था, क्योंकि इसे देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती थी, किन्तु आज तो इसका दर्शन मेरे लिए कटे हुए स्थान पर नमक छिड़कने के समान वेदना प्रदान करने वाला, असह्य होता जा रहा है।

विशेष– (i) जनक की राम–माता कौशल्या के विषय में निकृष्टतम किन्तु स्वाभाविक भावाभिव्यक्ति हुई है।

(ii) कवि का अभिप्राय है जीवन में विशिष्ट घटनाएँ व्यक्ति और वस्तुओं के विषय में विचारों में भी विशेष परिवर्तन ला देती हैं।

(iii) 'कटे पर नमक छिड़ना' कवि ने इस कहावत का यहाँ सुन्दर प्रयोग किया है, जो जनक की मानसिक पीड़ा को सटीक रूप में प्रदर्शित करने वाला है।

(iv) रूपक एवं उपमालंकार तथा अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग और भाषा की सरलता व प्रवाहमयता दर्शनीय बन पड़ी है।

व्या.टि.– (i) **महोत्सवः–** महान् चासौ उत्सवः, इति।

(ii) **असह्यम्–** न सह्यमिति, √सह्+यत्। **जातम्–** √जन्+क्त।

संस्कृत व्याख्या– यः खलु अयं जनः कौसल्या इति, मम पुत्र्याः सीतायाः परित्यागात् प्राक् मम जनकस्य कृते, विग्रहवान् महान् उत्सवः इव अतीवानन्ददायकः आसीत्। तस्य वै जनस्य सम्प्रति दर्शनम् शस्त्रादिक्षते अंगे लवणमिव अत्यन्तसोढुम् अशक्यं संजातम्।

(8) 'चन्द्रिका' सन्तानेति– सीता परित्याग के बाद, प्रथम बार मिथिलाधीश के दर्शन से उत्पन्न होने वाली, दुःखी कौशल्या के

शिथिल बन्धन वाले हृदय की विकलता देखकर अरुन्धती कहती हैं कि–

निश्चय ही, इस विषय में कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि लोगों में अविच्छिन्न भाव से प्रवाहित होने वाले, अपने सम्बधियों के वियोग से उत्पन्न होने वाले दुःख, अपने प्रियजन को देखने पर और भी अधिक प्रबलरूप से अनेक प्रवाहों में बहने वाले के समान प्रतीत होते हैं।

विशेष– (i) महाकवि ने शाश्वत सत्य का उद्घाटन किया है, क्योंकि कोई दुःखी व्यक्ति, जब अपने प्रियजन को देखता है, तो मानो उसके मन में किसीप्रकार रोका गया दुःख, अनेक प्रवाहों में एक साथ ही बहने लगता है, जो उसके नेत्रों से अश्रुरूप में निकलता है।

(ii) यहाँ पर अरुन्धती की सांसारिक प्राणियों के प्रति संवेदनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(iii) काव्यकार कालिदास ने भी कुमारसम्भव (4/6) में कामदेव के भस्म होने पर, वसन्त को देखकर रतिविलाप प्रसंग में इसी प्रकार के कारुणिक भावों को प्रस्तुत किया है।

(iv) क्रियोत्प्रेक्षा, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं इन्द्रवज्रा छन्द।

व्या.टि.–(i) सन्तानवाहीनि–सन्तानेन वहन्ति, इति एवं शीलानि।

(ii) **सम्बन्धिवियोगजानि–** सम्बन्धिनः वियोगाः, तेभ्यः जायन्ते।

(iii) **सम्बन्धी–** सम्बन्धः अस्ति, अस्य, इति सम्बन्ध+इनि।

(iv) **स्रोतःसहस्रैः–** स्रोतसां सहस्राणि, अनन्तानि तैः।

(v) **संप्लवन्ते–** सम्+√प्लु+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

संस्कृत व्याख्या– असारे खल्वस्मिन् संसारे जनानां निरन्तर–प्रवहणशीलानि अपि, बन्धुविरहात् समुत्पन्नानि, क्लेशानि प्रियतरे जने दृष्टिपथे आगते सति, असह्यानि भूत्वा, स्रोतः सहस्रैरिव अगणितप्रवाहैः इव उच्छन्ति, प्रायः एतदेव दृश्यते सर्वत्र संसारे, इति अभिप्रायः।

(9) 'चन्द्रिका' एष इति– प्रियवधू सीता के वन में त्याग के बाद, राजर्षि जनक को मुँह न दिखा पाने की माता कौशल्या की बात पर, वसिष्ठ पत्नी अरुन्धती फिर से कहती हैं कि–

वस्तुतः ये राजर्षि जनक तुम्हारे प्रशंसनीय सम्बन्धी अर्थात् समधी हैं। इसके अतिरिक्त ये तो जनक कुल के राजाओं के कुल का प्रवर्तन करने वाले हैं। इतना ही नहीं, इन्हें तो ऋषियों में श्रेष्ठ याज्ञवल्क्य मुनि ने सभी प्रकार की ब्रह्म–विद्याओं का उपदेश प्रदान किया है, इस दृष्टि से ये विद्वानों में अग्रणी हैं। ऐसे उत्कृष्ट व्यक्तित्व से मिलने में तुम्हें लेशमात्र भी संकोच नहीं करना चाहिए।

विशेष– (i) यहाँ प्रयुक्त 'ब्रह्म' से अभिप्राय वेद और वेदान्त विद्या से ग्रहण करना चाहिए।

(ii) पौराणिक मान्यता के अनुसार याज्ञवल्क्य ने सूर्य से वेद (ब्रह्म ज्ञान) को प्राप्त किया। तत्पश्चात् इसे जनक को प्रदान किया।

(iii) महर्षि याज्ञवल्क्य की महत्ता प्रतिपादित की गयी है।

(iv) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति व अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है।

व्या.टि.–(i) **जगौ–** √गै+लिट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, गाया है।

(ii) श्लाघ्यश्चासौ सम्बन्धी। कुलस्य उद्वहः– **कुलोद्वहः।**

(iii) **श्लाघ्यः–** √श्लाघ्+ण्यत्। **पारायणम्–** पारस्य अयनम्।

संस्कृत व्याख्या– एषः मम समक्षे यः विराजमानो वर्तते। सः युष्माकं कौसल्याप्रभृतीनां प्रशस्यस्य पुत्रस्य श्वशुरोऽस्ति, जनकस्य कुले उत्पन्नोऽयं स्वकुले सर्वश्रेष्ठः, एवंच अनेन याज्ञवल्क्य मुनिना ब्रह्मज्ञानं लब्धम्, तेन वेदस्य असौ उपदेशः कृतः, इति अभिप्रायः।

(10) 'चन्द्रिका' यथेति– वसिष्ठ पत्नी अरुन्धती को देखकर, राजर्षि जनक उन्हें अभिवादन करते हुए विनम्रतापूर्वक कहते हैं कि–

पवित्र तेज के निधानरूप महर्षि वसिष्ठ, जो आपके पति हैं तथा अनेक पूर्ववर्ती लोगों के श्रेष्ठ गुरु भी हैं, वस्तुतः वे भी आपके द्वारा स्वयं को पवित्र मानते हैं। इसप्रकार के गुणों से विशिष्ट, तीनों लोकों का कल्याण करने वाली और सम्पूर्ण संसार द्वारा वन्द्य, प्रातःकाल की देवी उषा के समान, ऐश्वर्य से युक्त आपको, यह 'सीरध्वज' मैं पृथ्वी पर मस्तक को रखकर अत्यन्त विनम्रतापूर्वक प्रणाम करता हूँ।

विशेष– (i) अरुन्धती की महिमा–वर्णन के साथ–साथ, राजर्षि जनक का अरुन्धती के प्रति विनम्र भाव भी अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) 'उषसमिव' में पूर्णोपमालंकार, प्रसाद गुण, लाटी रीति तथा शिखरिणी छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

(iii) ऋग्वेद में सूर्य की प्रेमिका रूप में उषस् का अनेकशः वर्णन हुआ है।

(iv) 'उषस्' पद देवतारूप में स्त्रीलिंग तथा उषःकाल के रूप में नुपंसकलिंग होता है।

(v) अरुन्धती को उषस् के समान तेजस्विनी कहा गया है।

व्या.टि.–(i)**पूतम्मन्यः**–आत्मानं पूतं मन्यते, इति। पूत+ √मन्+खश्

(ii) **त्रिलोकी**–त्रयाणां लोकानां समाहारः। मंगलाय हिता, ताम्।

(iii) **निधिः**– नि+ √धा+कि।

संस्कृत व्याख्या– पवित्रस्य तेजसः आधारोऽपि प्राचीनानां आचार्याणां श्रेष्ठतमोऽऽचार्यः तव पतिः त्वया खलु पवित्रं स्वं मन्ये। एतादृशीं लोकत्रये कल्याणस्वरूपां जगद्वन्द्याम् दिव्यगुणसम्पन्नां प्रातःकालस्य देवता उषसमिव ऐश्वर्यशालिनीं पृथिव्यां लीनेन मूर्ध्ना अहं, सीरध्वजः तव चरणयोः नमामि। प्रणतोऽस्मि इति भावः।

(11) 'चन्द्रिका' शिशुरेति– गृष्टि नामक कंचुकी द्वारा सीता के लिए अग्निशुद्धि जैसे शब्द का प्रयोग करने से, जनक के आक्रोशित होने पर, अरुन्धती उनसे सहमति व्यक्त करते हुए कहती हैं कि–

वस्तुतः सीता के लिए 'अग्नि' ये अक्षर अत्यन्त क्षुद्र हैं। केवल सीता इतना कहना ही पर्याप्त है। तत्पश्चात् सीता को स्मरण करते हुए दुःखपूर्वक कहती हैं कि हे बेटी! तुम मेरे लिए पुत्री के रूप में हो या फिर शिष्या रूप में, यह सम्बन्ध जैसा है, वैसा ही बना रहे, किन्तु तुम्हारे उज्ज्वल एवं पवित्र चरित्र के कारण ही मेरी तुम्हारे प्रति आज भी गहन श्रद्धा बनी हुई है। इसके अतिरिक्त तुममें शैशवभाव हो या फिर नारीत्व इन दोनों ही स्थितियों में तुम तो सम्पूर्ण संसार की वन्दनीया हो, क्योंकि गुणी लोगों में गुण ही पूजा के कारण होते हैं, न कि उनका कोई लिंग या अवस्था विशेष कारण होता है।

विशेष– (i) आरम्भ में प्रयुक्त विशेष का अन्तिम चरण में प्रयुक्त सामान्य कथन से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार का प्रयोग।

(ii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं शिखरिणी छन्द दर्शनीय है।

(iii) सीता के प्रति अरुन्धती के पवित्र एवं उत्कृष्ट भावों की अभिव्यक्ति, उसे जगद्वन्द्या एवं पवित्र चरित्रा सिद्ध करती है।

(iv) प्रस्तुत श्लोक के अन्तिम चरण के भावों को अनेक संस्कृत कवियों ने अपनी कृतियों में स्वीकारोक्ति प्रदान की है।

व्या.टि.– (i) **पूजास्थानम्**– पूजायाः स्थानम्। स्त्रियाः भावः इति।

(ii) **द्रढयति**– √दृढ़+णिच्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iii) **वन्द्याः**– √वन्द्+ण्यत्+टाप्, वन्दन करने योग्य।

(iv)**तिष्ठतु**– √स्था+लोट्, प्र.पु.,ए.व.,**भवतु**– √भू+लोट्, प्र.पु.,ए.व.।

संस्कृत व्याख्या– हे पुत्रि! सीते, त्वं मम वत्सा बाला वा, उपदेश्या वा असि, यदपि भवेत् तत् भवतु, आस्तां तावत्, तेनैव प्रकारेण निर्दोषतायाः पराकाष्ठा त्वयि जानक्यां मम अरुन्धत्याः पूज्यभावं बध्नाति, सुस्थिरां करोति वा। वस्तुतः अस्मिन् संसारे जनानां पूजा तेषां गुणैः खलु भवति, नैव तत्र तेषां लिंगं वा आयुः वा कारणं भवति, इति।

(12) 'चन्द्रिका' स राजेति– अपनी दुःखाभिव्यक्ति करने से कौशल्या के मूर्च्छित होने पर अरुन्धती, जनक से कहती हैं कि–

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ये तुम्हारी सखी कौशल्या, पूर्व की मधुर स्मृतियों को ध्यान करके ही मूर्च्छित हो गयी हैं, क्योंकि स्त्रियों का मन तो पुष्प के समान सुकोमल होता है। इन्हें क्या बातें याद आयीं हैं? इस विषय में कहते हैं कि वे राजा दशरथ, उनके साथ व्यतीत किए गए, वे सुख के दिन, सीता एवं रामभद्र का बालकपन, वे सभी सम्बन्धी, आपको देखकर मानो इनकी आँखों के सामने आविर्भूत हो गए हैं। अतः इस सबके घोर परिणामस्वरूप ही ये मूर्च्छित हुई हैं।

विशेष– (i) कौशल्या के सुकुमार हृदय की प्रतीति हो रही है।

(ii) पुरन्ध्री से अभिप्राय यहाँ कुलस्त्रियों से ग्रहण करना चाहिए।

(iii) कुसुमसुकुमार में लुप्तोपमालंकार एवं शिखरिणी छन्द।

व्या.टि.– (i) **सौख्यम्**– सुख+ष्यञ्। **दृष्टे**– √दृश्+क्त, स.ए.व.।

(ii)**विपाके**–वि+ √पच्+घञ् स.ए.व.,**विमूढ़ाः**–वि+ √मुह्+क्त+टाप्।

(iii) **पुरन्ध्रीणाम्**– पुरं धारयति, इति। पुर+ √धृञ्+खच्, ष.,ब.व.।

संस्कृत व्याख्या– अरुन्धती राजर्षिं जनकं प्रति कथयति, कौसल्यायाः मूर्च्छिते सति, यत् निश्चयमेव एषा तव सखी त्वां दृष्ट्वा त्वया सह पूर्वकालिकानां घटितानाम् अनेकाः घटनाः स्मृत्वा मूर्च्छितवती। नैव विषयेऽस्मिन् संशयलेशोऽपि वर्तते। यतोहि ये कुलवधवः भवन्ति तेषां हृदयं कुसुममिव सुकुमारं भवति। अतः अस्याः स्मृतौ सः लब्धकीर्तिभूतः राजा दशरथः आगतवान्, तेन सह च यत् सुखम् अनुभूतं तदपि स्मृतम्। सीतारामादीनां बालसमुदायानां ये उत्सवपूर्णानि दिनानि पूर्वकाले व्यतीतानि, तानि समस्तानि स्मृतौ आविर्भूतानि। अनेनैव कारणेन सम्प्रति दारुणे विपाके ते सम्बन्धिनी निश्चेष्टा संजाता।

(13) 'चन्द्रिका' स सम्बन्धीति– इसके पश्चात् जनक स्वयं को निर्दय बताते हुए कहते हैं कि–

इतने दिनों के बाद मिलने पर भी मैं अपने प्रिय मित्र दशरथ की पत्नी को स्नेहहीन सा होकर देख रहा हूँ, क्योंकि प्रिय मित्र दशरथ तो वस्तुतः मेरे प्रशंसनीय समधी थे तथा अत्यधिक प्रेम करने वाले प्रिय मित्र थे, मेरे तो वे वास्तव में प्राण ही थे। इतना ही नहीं, वे तो मेरे लिए प्रत्यक्ष आनन्दरूप व जीवन के सभी कुछ थे। यहाँ तक कि वे तो मेरे शरीर या जीवात्मा ही थे। यही नहीं, वे तो जीवात्मा से भी अधिक मेरे लिए परमात्मा तुल्य थे। दूसरे शब्दों में, अत्यधिक शोभा से युक्त वे महाराज दशरथ मेरे लिए भला क्या नहीं थे? अर्थात् सभी कुछ थे।

विशेष– (i) राजर्षि जनक का राजा दशरथ के प्रति गहनतम प्रेम अभिव्यक्त हुआ है, जिसे प्रेम की पराकाष्ठा कहा जा सकता है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में अतिशयोक्ति तथा 'किमिव न' में अर्थापत्ति, दशरथ के हृदय पर शरीर आदि का आरोप होने से रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(iii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति व शिखरिणी छन्द दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **सुहृत्–** शोभनं हृदयं यस्य सः। **श्रीमान्–**श्री+मतुप्।

(ii) **महाराजः–** महान् चासौ राजा, महत्+राजन्+टच्।

(iii) **जीवितफलम्–** जीवितस्य फलम्। **प्रियतरम्–** प्रिय+तरप्।

संस्कृत व्याख्या– राजर्षिः जनकः दशरथं स्मृत्वा कथयति– सः दशरथः मम प्रशंसनीयः सम्बन्धी दुहितुः श्वसुरः, स्निग्धो सखा, अन्तःकरणं च मे आसीत्। सः च कोशलेशः मम कृते विग्रहवान् आनन्दः, अपि च समस्तं जीवनस्य खलु फलमेव अभवत्। सः तु मम कृते साक्षात् शरीरं प्राणाः वा, अस्मात् किल जीवात् अपि अधिकं इतरं प्रीतिकरं सुराज्यलक्ष्मिविभूषितः सार्वभौमः नृपतिः, वस्तुतः मम जनकस्य कृते किमिव न आसीत् अर्थात् सर्वम् वै आसीत्, इत्यर्थः।

(14) 'चन्द्रिका' यदस्याः, इति– इसके बाद, कौशल्या को देखकर जनक कहते हैं कि–

अत्यन्त दुःख का विषय है कि क्या यह वही कौशल्या है, इनका तथा इनके स्वामी का एकान्त स्थानों में जो गुप्तरूप से भाषण या विचार–विमर्श के कारण झगड़ा होता था, उसमें मैं ही इन दोनों पति–पत्नी का अलग–अलग उपालम्भों का आश्रय होता था। इतना ही नहीं, उसके बाद भी एक दूसरे को मनाने या प्रसन्न करने की विधि भी वस्तुतः मेरे ही अधीन थी, किन्तु उन सब मधुर घटनाओं को इस समय स्मरण करना उचित नहीं है, क्योंकि यह सब हृदय को खिन्न तथा जला डालने वाला ही है।

विशेष– (i) जनक की दशरथ के साथ अन्तरंगता की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति का प्रयोग हुआ है।

(ii) निरपराध होने पर भी जनक को उपालम्भ देने के कारण असंगति अलंकार तथा शिखरिणी छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक से ऐसा प्रतीत होता है कि निश्चय ही, महाकवि का भी ऐसा कोई अन्तरंग मित्र रहा होगा।

व्या.टि.–(i) **परमन्त्रायितम्–** परश्चासौ मन्त्रः, णिजन्त से क्त ।

(ii) **दम्पत्योः–** जाया च पतिश्च तयोः। उपालम्भस्य विषयः।

(iii) **अवस्कन्द्य–** अव+ √स्कन्द्+क्त्वा (ल्यप्), आक्रम्य।

संस्कृत व्याख्या– अस्याः कौसल्यायाः भर्तुः दशरथस्य एकान्ते यदपि गुप्तभाषणं अभवत्, तदा अहं सीरध्वजः जायापत्योः भिन्नं यथा स्यात् तथा उपालम्भपात्रं अभवम्। अनन्तरमपि प्रसन्नतायां कोपे वा अपि

अनयोः व्यापारः मदायत्तः खलु आसीत्। तत्तत् पूर्वचरितं स्मृत्वा व्यर्थमेव मम हृदयं आक्रम्य सन्तापयति, इति। अतएव नोचितं तत्स्मरणम्।

(15) 'चन्द्रिका' सुहृदिवेति– मूर्च्छित कौशल्या के हृदय के स्पन्दन के रुकने पर, अरुन्धती चिन्तित होती है तो जनक अपने कमण्डलु से उसके मुख पर जल छिड़कते हुए कहते हैं कि–

विधाता की यह विशेषता होती है कि वह पहले तो मित्र के समान सुख प्रदान करने वाली एवं एकरसमय अनुकूलता के दर्शन कराता है, किन्तु अगले ही क्षण अनुचित अवसर पर ही विपरीत परिस्थिति को उत्पन्न करके, भयंकर स्वरूप वाला होकर, मन की पीड़ा को विशेषरूप से अपेक्षाकृत अधिक बढ़ा देता है।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक मालती माधव (4/7) में भी आया है।

(ii) यहाँ विधाता के स्वभाव का वर्णन किया गया है, जो पहले तो सुख प्रदान करता है तथा बाद में अकस्मात् ही दुःखों का मानो पहाड़ ही गिरा देता है। वस्तुतः तो सुख और दुःख परिवर्तनशील हैं।

(iii) अतः दो विरुद्ध गुण तथा कार्यों का वर्णन होने से विषमालंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(iv) 'सुहृदिव' में उपमालंकार, प्रसाद गुण, पांचाली रीति, द्रुत–विलम्बित छन्द का प्रयोग भी देखने योग्य है।

व्या.टि.– (i) **सुखप्रदाम्–** सुखं प्रददाति, इति, सुखप्रदा, ताम्।

(ii) **प्रकटय्य–** प्र+ √कट्+णिच्+क्त्वा(ल्यप्) प्रदर्शित करके।

(iii) **अनुकूलताम्–** अनुकूल+तल्+टाप्, द्वि.वि, एकवचन।

(iv) **अकाण्ड0–** अविद्यमानः काण्डः यस्मिन् तत्, तेन दारुणः।

(v) **परिशिनष्टि–** परि+ √शिष्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(vi) **विवर्तनम्–** वि+ √वृत्+ल्युट्, परिवर्तन।

संस्कृत व्याख्या– विधिः अर्थात् भाग्यम् सर्वप्रथमं मित्रमिव आनन्दप्रदां प्रेमरसेन आप्लुतां आनुकूल्यं प्रकाश्य तदनन्तरं च अनवसरे खलु परिवर्तनक्रूरो भूत्वा चेतसि व्यथां परिवर्धयति, दुःखानि ददातीति।

(16) 'चन्द्रिका' पंचप्रसूतेति– मूर्च्छा से उठकर, कौशल्या अनेक प्रकार से विलाप करती हैं तो कंचुकी कहता है कि–

महारानी उचित ही कहती हैं, क्योंकि पाँच सन्तानों के होने पर भी उन महाराज दशरथ को श्रीराम अपेक्षाकृत अधिक प्रिय थे। ठीक उसीप्रकार चार पुत्र–वधुओं में भी जानकी ही पुत्री के समान, उन्हें जितनी प्रिय थीं, दूसरा कोई इतना अधिक प्रिय नहीं था।

विशेष– (i) **पंचप्रसूति–** राजा दशरथ की पाँच सन्तान थीं, राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और एक शान्ता नामक पुत्री।

(ii) **वधूचतुष्क–** उनकी क्रमशः चार पुत्र–वधू थीं, सीता, माण्डवी, उर्मिला तथा श्रुतकीर्ति।

(iii) राम ने विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न डालने वाले, सुबाहु नामक राक्षस का वध किया था, इसलिए उन्हें यहाँ 'सुबाहुशत्रु' कहा गया है। यहाँ 'यथा' के प्रयोग से उपमालंकार एवं उपजाति छन्द है।

व्या.टि.– (i) **प्रसूतेः–** प्र+ √सू+ क्तिन्, निर्धारणे षष्ठी।

(ii) **तनूजा–** तन+ √जन्+ड+टाप्। पंचप्रसूतयः यस्य सः।

संस्कृत व्याख्या– कंचुकी कथयति– पंच अपत्यवतः अपि तस्य राज्ञः दशरथस्य सुबाहुनाम्नः असुरः यस्य अरिः, इति रामः विशेषेण अन्येभ्यः अधिकरूपेण प्रियः असीत्। तादृशमेव एतस्य दशरथस्य स्नुषा चतुष्टयेऽपि वैदेही खलु तनूजा इव स्निग्धा अभवत्। सीतेतराः कुलवधवः न तथाविधाः प्रियाः आसन्, यथा सीता इति भावः।

(17) 'चन्द्रिका' कन्यायाः, इति– तत्पश्चात् राजर्षि जनक अपने मित्र दशरथ को स्मरण करके, सम्बन्ध की कारण सीता और उनके संसार में न रहने पर, अपने जीवन का धिक्कारते हुए, कहते हैं कि–

सामान्यरूप से कन्या के पितृगण ही जामाता के आत्मीय जनों का आदर सत्कार करते हैं, यह समाज की सामान्य परिपाटी है, किन्तु हमारे सम्बन्ध के विषय में यह सम्मान विषयक परम्परा सर्वथा उलटी ही थी, क्योंकि यहाँ तो वे ही हम सभी का अत्यन्त समादर करते थे, किन्तु ऐसे सौजन्यशील भी आप मृत्यु के द्वारा छीन लिए गए। साथ ही, हमारे सम्बन्धों का कारण वह पुत्री सीता भी अब नहीं रही, यह अत्यधिक कष्ट की बात है। इतना ही नहीं, इन दोनों के न रहने पर

भी मैं इस कठोर जीवलोक रूपी नरक में जीवित हूँ, इसलिए मुझ पापात्मा के जीवन को धिक्कार है।

विशेष–(i) 'जीवलोकनरके' में रुपक और हेतु अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

(ii) यथार्थ वक्ता को 'आप्तपुरुष' कहा जाता है। 'बीज' पद का प्रयोग यहाँ 'कारण' अर्थ में किया गया है।

(iii) कन्या पक्ष का होने से जनक को वर पक्ष के दशरथादिकों का सम्मान करना चाहिए था, किन्तु यहाँ तो दशरथ ही कन्यापक्ष की पूजा करते थे, यही तो उनका सौजन्य था, जिसे याद करके जनक ने यहाँ अपने गहन दुःख की अभिव्यक्ति की है।

(iv) राजा जनक एवं दशरथ दोनों के ही उज्ज्वल चरित्र को प्रस्तुत किया है। जनक यह सब सीता को मृत मानकर कह रहे हैं।

व्या.टि.– (i) **पूजयन्ति**– √पूज्+णिच्+लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

(ii) **आराधनम्**– आ+ √राध्+ल्युट्, आराधना, पूजा करना।

(iii) **सम्बन्धबीजम्**– सम्बन्धस्य बीजम्, इति।

(iv) **धिक्जीवितम्**– में धिक् के योग में द्वितीया विभक्ति है।

संस्कृत व्याख्या– **सामान्यतया कन्यापक्षस्य जनाः वरपक्षस्य जनानां सम्मानं कुर्वन्ति, एषा परम्परा समाजस्य विद्यते, किन्तु मित्रस्य दशरथस्य विषये तु एतत् सर्वथा विपरीतमेव आसीत्। एतादृशः सः सज्जनः मम अभिन्नमित्रम् दशरथः, मृत्युः द्वारा अपहृतः, एवमेव सीता अपि सम्प्रति न अस्ति, किन्तु अहमेव जनकः इदानीं अस्मिन् नरकतुल्ये जीवलोके जीवामि, इति मे जीवनम् धिगस्ति।**

(18) 'चन्द्रिका' आविर्भूतेति– अरुन्धती द्वारा कहे गए, सीता त्याग के परिणाम के भी मंगलमय होने के महर्षि वसिष्ठ वचनों पर कौशल्या द्वारा अविश्वास करने पर अरुन्धती कहती हैं कि–

'ब्रह्म' विषयक ज्योति का, जिन ब्रह्मर्षियों द्वारा अपने तपोबल से दर्शन कर लिया गया है, ऐसे लोगों की उक्तियाँ असत्य नहीं होती हैं, इसलिए उनके विषय में किसी भी प्रकार का सन्देह उचित नहीं है, क्योंकि इसप्रकार के सिद्ध पुरुषों की वाणी में तो कल्याणों को प्रदान

करने वाली, सिद्धि सदा ही विद्यमान रहती है। इसलिए उनके विषय में असत्य भाषण की कल्पना करना भी उचित नहीं है।

विशेष– (i) ब्रह्मसाक्षात्कार करने वाले, वसिष्ठ जैसे ऋषियों के चरित्र की सुन्दर व्याख्या की गयी है।

(ii) यहाँ पर उत्तरार्द्ध द्वारा पूर्वार्द्ध का समर्थन किए जाने से अर्थान्तरन्यास अलंकार और शालिनी छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

(iii) 'आविर्भूतज्योति' से अभिप्राय जिन्होंने योगादि द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया है, ऐसे सिद्धपुरुषों से ग्रहण करना चाहिए।

(iv) सभी टीकाकारों ने ज्योति का अर्थ ब्रह्म अर्थ ही लिया है।

व्या.टि.– (i) **व्याहाराः**– वि+आ+ √हृ+घञ्, प्र.वि., बहुवचन।

(ii) **आविर्भूतज्योतिषाम्**– आविर्भूतं ज्योतिः येषां ते, तेषाम्।

(iii) **मा भूत**– √भू+लुङ्, मा के कारण 'अट्' आगम का अभाव।

(iv) **वदन्ति**– √वद्+लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन। कहते हैं।

संस्कृत व्याख्या– **ये ऋषयः स्वयंप्रकाशितब्रह्मतेजसाः सन्ति, ईदृशानां तेषां यानि वाक्यानि भवन्ति, तेषु वचनेषु नैव सन्देहः करणीयः, यतोहि एषां सिद्धपुरुषाणां गिरौ शुभा कल्याणकारिणी वा लक्ष्मीः निवसति सदैव, एते ब्राह्मणाः असत्याम् अर्थाम् गिरं नैव भाषन्ते।**

(19) 'चन्द्रिका' कुवलयेति– अनध्याय होने से खेल रहे बालकों में लव को देखकर, उत्सुक कौशल्या से अरुन्धती कहती हैं कि–

नीले कमल के पत्ते के समान कोमल तथा श्याम वर्ण वाले, काकपक्षों से सुशोभित, अपनी पवित्र कान्ति द्वारा, सम्पूर्ण छात्र समुदाय को अलंकृत करता हुआ, वह मेरा पुत्र रामभद्र मुझे फिर से बालक बना हुआ सा प्रतीत हो रहा है। यह कौन है? जो देखने मात्र से शीघ्र ही हमारे नेत्रों में अमृतरूपी अंजन लगा रहा है अर्थात् हमारी आँखों को अमृत के समान आनन्द की अनुभूति करा रहा है।

विशेष– (i) सीता पुत्र लव को देखकर अरुन्धती को राम के बाल्यकाल का स्मरण हो आया है, जो स्वाभाविक भी है।

(ii)उपर्युक्त श्लोक में 'सभाजयन् इव' में क्रियोत्प्रेक्षा, कुवलयदल में लुप्तोपमा, प्रसादगुण, लाटीरीति एवं हरिणी छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iii) अमृतमयी शलाका ऐसा प्रयोग कवियों द्वारा किया जाता है।

व्या.टि.– (i) **सभाजयन्–** स+ √भाज्+णिच्+शतृ। √स्निह्+क्त।

(ii) **अंजन–** √अंज्+ल्युट्। **परिषद्–** परि+ √सद्+क्विप्।

(iii) स्निग्धश्चासौ श्यामश्चेति, कुवलयदमिव स्निग्धश्यामः।

(iv) शिखण्डकः एव मण्डनं यस्य सः। पुण्याश्रीः यस्य सः।

संस्कृत व्याख्या– एषः बालकः नीलोत्पलपत्रचिक्कणनीलः शिखण्डकमण्डनः, काकपक्षभूषणः, पुण्यकान्तिसम्पन्नः शोभया एवं छात्र-समुदायं अलकुर्वन् इव ,पुनः शिशुः भूतः बालरूपः संजातः, सः मम पुत्रः रामभद्रः इव कोऽयम् समीपे स्थितः प्रेक्षितः, शीघ्रमेव नयनयोः सुधांजनं विदधाति।

(20) 'चन्द्रिका' चूड़ाचुम्बितेति– इसके बाद राजर्षि जनक भी उस बालक की क्षत्रियोचित वेशभूषा के विषय में कहते हैं कि–

इस सुन्दर बालक की पीठ के दोनों भागों में चोटी तक स्पर्श करने वाले, कंकपत्रों से युक्त दो तरकश बँधे हुए हैं। इसके वक्षःस्थल पर थोड़ी सी भस्म का चिह्न लगा हुआ है। इसके अलावा इसने रुरु मृग के चर्म को, मूँज की मेखला द्वारा कमर पर बाँधा हुआ है और मंजीठ से रंगे परिधान को धारण किया हुआ है। इसीप्रकार इसने गले में रुद्राक्ष की माला और एक हाथ में धनुष तथा दूसरे में पीपल के वृक्ष के काष्ठ द्वारा निर्मित दण्ड को धारण किया हुआ है।

विशेष– (i) लव का स्वाभाविक एवं आकर्षक चित्र सहृदय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। अतः स्वभावोक्ति अलंकार का प्रयोग है।

(ii) 'धत्ते' एक क्रियापद का अनेक शब्दों से सम्बन्ध होने के कारण दीपक अलंकार एवं शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iii) 'कंक' एक मांसाहारी पक्षी होता है, जिसके पंखों को बाण के पिछली ओर बाण की गति बढ़ाने के लिए लगाया जाता है।

व्या.टि.– (i) **धत्ते–** √धा+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **रौरवीम्–** रुरु+अण्+ङीप्। **अभितः–** अभि+तसिल्।

(iii) **मौर्वी–** मूर्वा+अण्+ङीप्। **मांजिष्ठम्–** मंजिष्ठ+अण्+कन्।

(iv) **पैप्पलम्–** पिप्पल+अण्, पिप्पलस्य अयमिति।

संस्कृत व्याख्या– जनकः कथयति यत् बालकोऽयं पृष्ठभागे उभौ परिचुम्बितानि कंकपत्राणि यस्मिन् तत् तूष्णीद्वयम् धारयति। स्तोकं भस्मस्य अंशं अनेन वक्षःस्थले धारितं चिह्नरूपेण, कृष्णमृगचर्म च धारयति एषः। अधोवस्त्रं कटिवस्त्रं वा अनेन मूर्वा नाम्न्या लतया निर्मितया मेखलया नियन्त्रितम् अस्ति। हस्ते च कार्मुकम्, कण्ठे च रुद्राक्षमाला पैप्पलो दण्डश्च धार्यते अनेन। एतानि सर्वाणि क्षत्रियब्रह्मचिह्नानि सन्ति, अतो निश्चितमेव अयं बालकः क्षत्रियोऽस्ति।

(21) 'चन्द्रिका' महिम्नामिति– तत्पश्चात् उसी बालक को ध्यानपूर्वक देखकर राजर्षि जनक फिर से कहते हैं कि–

अहो! यह तो वस्तुतः अद्भुत ही है, क्योंकि इस बालक में विनय के कारण शीतलता प्रदान करने वाला, महत्त्वपूर्ण गुण है तथा सुन्दरता के कारण कोमल जो गरिमापूर्ण उत्कर्ष है, उसे सामान्य व्यक्ति तो नहीं समझ सकता है, अपितु उसे केवल बुद्धिमान् व्यक्ति ही जानने में समर्थ है। इसे देखकर उत्पन्न होने वाला प्रबल मोह, मुझे अपनी ओर ठीक वैसे ही खींच रहा है। **जैसे–** चुम्बक का छोटा सा टुकड़ा लोहे की बड़े टुकड़े कीलादि को भी अपनी ओर खींच लेता है।

विशेष– (i) चुम्बक द्वारा लोहे को खींचने के उल्लेख से महाकवि का भौतिकविज्ञान विषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) यहाँ द्वितीय चरण में परिसंख्या तथा उत्तरार्द्ध में उपमालंकार एवं शिखरिणी छन्द, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति का प्रयोग दर्शनीय है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक में 'लव' का प्रभावी चरित्र एवं आकर्षक व्यक्तित्व प्रस्तुत किया गया है।

व्या.टि.– (i) **विनयशिशिरः–** विनयेन शिशिरः। महत्+इमनिच्।

(ii) **मौग्ध्यमसृणः–** मौग्ध्येनमसृणः। मुग्धस्य भावः मौग्ययम्, तेन।

(iii) **हरति–** √हृ+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, खींच रहा है।

(iv) **निर्ग्राह्य–** निर्+ √ग्रह+ण्यत्। **अतिशय–**अति+ √शी+अच्।

संस्कृत व्याख्या– शिशौ अस्मिन् प्रश्रयशीतलः सौन्दर्यसुकुमारः माहात्म्यानाम् उत्कर्षश्च विज्ञैः जनैः ग्रहणीयो वर्तते नैव मूर्खैः। अस्य

बालस्य प्रबलः सम्मोहः मम स्थिरं अन्तःकरणमपि अल्पः चुम्बकखण्डः लौहधातुमिव स्वं प्रति आकर्षयति, इति सुनिश्चितमेव अस्ति।

(22) 'चन्द्रिका' वत्सायाश्चेति– बालक लव को देखकर राजर्षि जनक उसके विषय में होने वाली अनुभूति के सम्बन्ध में कहते हैं कि–

इस बालक में मुझे राम और सीता का प्रतिबिम्ब सा दिखायी दे रहा है, क्योंकि इसमें वही आकार, वैसी ही इसकी कान्ति, वैसी ही बोलचाल एवं वैसी ही उनके समान विनम्रता है, इतना ही नहीं, वही पवित्र भाव भी यहाँ पर दृष्टिगोचर हो रहा है। इसके बाद अपनी पुत्री सीता को याद करके विलाप करते हुए, राजर्षि जनक कहते हैं कि–

हाय, सीते! तुम कहाँ हो? इस बालक को देखकर मेरा मन चंचल होकर उन्मार्गों की ओर भला क्यों दौड़ रहा है?

विशेष– (i) महाकवि की पुत्र के विषय में मान्यता की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है, क्योंकि वे पुत्र को माता–पिता की संवृत्ति मानने के पक्षधर हैं। 'उत्पथ' से अभिपाय यहाँ कुमार्ग से ग्रहण करना चाहिए।

(ii) 'इव' के प्रयोग यहाँ बिम्बप्रतिबिम्बभाव अर्थ में न होकर, सहृदय को अद्वैत की स्थिति का बोध करा रहा है।

(iii) उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति तथा तुल्ययोगिता अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) **पुण्यानुभावः–** पुण्यः चासौ अनुभावः।

(ii) **अभिव्यज्यते–** अभि+वि+ √अंज्+लट्, आत्मने, प्र.पु., ए.व.।

(iii) **संवृत्तिः–** सम्+ √वृत्+क्तिन्। **उद्वह–** उद्+ √वह+अच्।

(iv)**प्रतिबिम्बिता–**प्रतिबिम्ब+इतच्+टाप्। **उत्पथैः–**उत्+पथिन्+अ।

संस्कृत व्याख्या– अस्मिन् प्रत्यक्षे बालके पुत्र्याः सीतायाः रामभद्रस्य च सम्बन्धो दृश्यते, स्पष्टेन लक्ष्यते वा। यतोहि तादृशी खलु समग्रा आकृतिः, सा वै कान्तिः, सा वाणी, सः एव किल स्वाभाविकः विनयः अयं च पावनप्रभावोऽस्ति। हा हा देवि! सीते! मम जनकस्य चंचलं अन्तःकरणं कुमार्गैः कथं धावति, शीघ्रं गच्छति वा।

(23) 'चन्द्रिका' नूनमिति– लक्ष्मण द्वारा पूर्णगर्भा सीता को वन में त्यागने के क्षणों को स्मरण करते हुए जनक कहते हैं कि–

लोक द्वारा दुश्चरित्रा होने का कलंक लगने के बाद, इसप्रकार अनादरपूर्वक, उस भयंकर वन में अकेली स्थिति में, प्रसूतिकाल की पीड़ा को प्राप्त करने के बाद, जंगल में हिंसक जन्तुओं से घिर जाने पर, अत्यधिक डरी हुई तुमने, निश्चय ही बार–बार मुझे ही अपने रक्षक के रूप में स्मरण किया होगा, हे पुत्रि, सीते! मैं ऐसा ही मानता हूँ।

विशेष– (i) सन्तति विषयक मनोविज्ञान की सुन्दर अभिव्यक्ति की गयी है, क्योंकि विपत्तिग्रस्त होने पर व्यक्ति को अपने माता–पिता की ही रक्षक के रूप में स्मृति आती है।

(ii) कवि ने सीता के मानसिक धरातल पर उतरकर, प्रस्तुत श्लोक की संरचना की है, जो उसकी शैली की महती विशेषता है।

(iii) तुल्ययोगिता अलंकार एवं वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग है।

व्या.टि.– (i) **अवाप्य–** अव+ √आप्+क्त्वा (ल्यप्) प्राप्त करके।

(ii) **परिवारयत्सु–** परि+ √वृ+णिच्+शतृ, स.वि., बहुवचन।

(iii) **स्मृतः–** √स्मृ+क्त। **परिभवम्–** परि+ √भू+अप्, अनादर को।

(iv) **प्रसवकालकृताम्–** प्रसवस्य कालः, तेन कृताम्।

संस्कृत व्याख्या– जनकः कथयति– हे वत्से सीते! तस्मिन् काले नवेन तिरस्कारेण भयंकरस्य च वनस्य दर्शनेन एतादृशीं अनिर्वचनीयां व्यथाम् उपलभ्य, परितः मांसम् अदन्ति ये तेषाम् व्याघ्रादिषु त्वां परिवारयत्से सत्सु, भयेन विचलितया त्वया रक्षकत्वेन अहमेव भूयोभूयः स्मृतोऽस्मि, इति मन्ये। यताहि मयि पितरि विद्यमानेऽपि तव त्राणकर्ता नैव कोऽपि आसीत् तस्मिन् काले, इति महान् चासौ खेदः कष्ट इति।

(24) 'चन्द्रिका' एतदिति– दुरात्मा नागरिकों की सीता के विषय में निर्दयता तथा श्रीराम की जल्दीबाजी को देखकर, राजर्षि जनक क्रोधपूर्वक कहते हैं कि–

अधिक क्या? अब तो पुत्री सीता की हत्यारूपी इस घोर वज्रपात के नैरन्तर्य को देखते वाले, मुझ जनक के क्रोधरूपी धनुष से या फिर शाप द्वारा, इस अपमान का प्रतिकार लेने का समय आ गया है।

जनक के क्रोध को देखकर भयभीत कौशल्या, अरुन्धती को कुपित जनक को शान्त करने का निवेदन करती है। तभी लव कहता

है कि अपमानित हुए स्वाभिमानियों के क्रोध का तो यही उचित प्रतिकार कहा जा सकता है। तब अरुन्धती, जनक को समझाते हुए कहती है कि–

राजन्! आप किससे प्रतिकार लेंगे? राम तो आपके अपने ही पुत्र हैं और बेचारे प्रजाजन तो सदा ही रक्षा के योग्य होते हैं। इसलिए आपका तो इन दोनों पर ही कोप करना उचित नहीं है।

विशेष– (i) यह श्लोक जनक, कौशल्या एवं लव इन तीन पात्रों के कथनों से पूरा हुआ है, यह कवि की शैलीगत महती विशेषता है।

(ii) अपनी पुत्री पर हुए अत्याचार के कारण वैखानस जनक का भी भयंकर क्रोध प्रदर्शित हुआ है, जिसे देखकर एकबार तो कौशल्या भी काँप उठी है। भयानकरस की अभिव्यक्ति हुई है।

(iii) अरुन्धती का कुशल एवं स्थिर व्यक्तित्व प्रदर्शित हुआ है।

(iv) अनुष्टुप् छन्द, प्रसाद गुण और वैदर्भी रीति दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **घोरवज्रपतनम्**– घोरं वज्रस्य पतनम्।

(ii) **वैशसम्**– विशसति, इति विशसः, तस्य कर्म वैशसम्।

(iii) **ज्वलितुम्**– √ज्वल्+तुमुन्। **उत्पश्यतः**– उत्+ √दृश्+शतृ।

(iv) मनः अस्ति येषाम्, तेषाम्। **पाल्याः**– √पाल्+णिच्+यत्।

संस्कृत व्याख्या– **अहो एतत् सीताप्रतिघातरूपं वज्रस्य घोरं** पतनं **उत्पश्यतः मम, सम्प्रति क्रोधरूपेण चापेन शापेन वा ज्वलितुं प्रवृत्तस्य अवसरः सम्प्राप्तः। अद्यावधिः मया एतत् सर्वं कथंचित् सोढ़म्। परम् अधुना तु चापेन शापेन वा विनाशं करिष्यामि।**

मध्ये परित्राणार्थं कौसल्या अरुन्धतीं प्रति प्रार्थयति, तदैव लवोऽपि जनकस्य तथाविधं कोपं निरीक्ष्य अनुमोदयते यत् तिरस्कृतानां मनस्विनां एतदेव प्रायश्चित्तं भवति। तदा अरुन्धती जनकं प्रति कथयति–

राजन्! सम्प्रति भवतः अयं क्रोधः नैव कथमपि समुचितोऽस्ति। यतोहि रामस्तु तव पुत्रः खलु तथा प्रजास्तु सदैव रक्षणीयाः पालनीयाः **च खलु भवन्ति।**

(25) 'चन्द्रिका' शान्तामिति– अरुन्धती की बात से सहमति व्यक्त करते हुए, अपने क्रोध पर नियन्त्रण करके जनक कहते हैं कि–

अथवा फिर रामभद्र के सम्बन्ध में चाप और शाप इन दोनों का ही प्रयोग अनुचित है, इसलिए इनकी बात करना ठीक नहीं है, क्योंकि वह तो वैसे भी पुत्ररूपी मेरा मूलधन ही है और पुत्र के ऊपर चाप या शाप का प्रयोग नहीं किया जाता है। इसके अलावा नागरिकों में भी ब्राह्मण, बालक, वृद्ध, विकलांग तथा स्त्रियों की अधिकता होने से वे सभी रक्षा के योग्य हैं, न कि चाप या शाप प्रयोग करने के।

विशेष– (i) महाकवि की तर्कपूर्ण शैली दर्शनीय है। जनक का अभिप्राय है जामाता भी पुत्र के समान ही होता है तथा प्रजाजनों में ब्राह्मणादि की अधिकता होने से वे दया के पात्र हैं, क्रोध के नहीं।

(ii) अरुन्धती के तर्क के समक्ष जनक ने स्वयं के क्रोध पर नियन्त्रण किया है, जो उनके उत्कृष्ट व्यक्तित्व का परिचायक है।

(iii) वस्तुतः जनक के लिए क्षत्रिय होने से धनुष का प्रयोग करके, राजर्षि होने से शाप द्वारा दोनों प्रकार से प्रतिकार सम्भव था।

(iv) शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा काव्यलिंग अलंकार।

(v) जीवानन्द ने 25वें श्लोक के पूर्वार्द्ध में अलग संख्या डालते हुए इस अंक के श्लोकों की संख्या 30 मानी है, जो अन्य विद्वानों को मान्य नहीं है। हमने भी इस अंक में 29 श्लोक ही स्वीकार किए हैं।

व्या.टि.– (i) **भूयिष्ठ**– बहु+इष्ठन्। **स्त्रैण**– स्त्री+नञ् प्रत्यय।

(ii) भूयिष्ठाः द्विजाः बालाः वृद्धाः विकलाःस्त्रैणं यस्मिन् तत्।

संस्कृत व्याख्या– **अथवा नैव सम्प्रति मया परिकुप्यते, यतोहि एतौ चापं शापं च रघुनन्दने रामे शान्तौ भवतः। वस्तुतस्तु अयं रामः तु मम पुत्ररत्नमेवास्ति। प्रजाजनेषु च बहवः ब्राह्मणाः, बालाः, वृद्धाः, विकलांगाः, स्त्रियः च सन्ति खलु, अतएव ते सर्वे दयापात्राणि सन्ति। अनेन मम चापं शापं च उभौ शान्तौ भवेताम्।**

(26) 'चन्द्रिका' पश्चादिति– इसी बीच आश्रम के ब्रह्मचारी लव को, अश्वमेध के घोड़े के विषय में विस्तार से बताते हुए कहते हैं कि–

अश्व नाम का वह पहले न देखा हुआ प्राणिविशेष, अपने पिछले भाग में विशाल पूँछ का धारण करने वाला है और इसे वह हमेशा ही हिलाता रहता है। उसकी गर्दन अत्यधिक लम्बी है तथा वह चार खुरों

से युक्त है। सदा घास खाता है एवं आम के आकार की लीद (मल) को बिखेरता है। अरे! भाई लव! अधिक व्याख्यान करने से क्या लाभ है? इतनी देर में तो वह दूर चला जाएगा, आ जाओ, हम तो जा रहे हैं, यदि तुम्हें भी आना हो तो आओ।

विशेष– (i) घोड़े का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति, शकृत्–पिण्ड में साम्य होने से उपमा तथा अश्वरूप कर्ता का अनेक क्रियाओं से सम्बन्ध होने से दीपक अलंकारों का प्रयोग दर्शनीय है।

(ii) महाकवि का प्राणिविज्ञान विषयक ज्ञान व्यक्त हुआ है।

(iii) प्रसादगुण, वैदर्भीरीति, मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iv) महाकवि का गम्भीर व्यक्तित्व हास्य की सुन्दर योजना करने में सफल हुआ है, प्रस्तुत श्लोक इसका प्रमाण है।

(v) कुछ विद्वानों ने 'शकृत्पिण्डान्' में अश्लीलता के दर्शन किए हैं, किन्तु वर्ण्यविषय की दृष्टि से इसे उचित नहीं कहा जा सकता है।

व्या.टि.–(i) **धुनोति**– √धू+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) **आम्रमात्रान्**– आम्रफलं प्रमाणं येषां तान्। आम्र+मात्रच्।

(iii) **प्रकिरति**– प्र+√कृ+ लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iv) **व्याख्यानैः**– वि+आ+√ख्या+ल्युट्, करणे तृतीया से तृ.वि.।

संस्कृत व्याख्या– बटवोऽश्वं वर्णयन्ति– सः पश्चात् विपुलं बालयुक्तं पुच्छं धारयति, तं च निरन्तरं धुनोति, कम्पयति वा, दीर्घा च तस्य ग्रीवा वर्तते, खुराः अपि चत्वारः धारयति। ग्रासं च खादति सदैव, आम्रफलतुल्यान् पुरीषस्य पिण्डान् इतस्ततः प्रकिरति, निक्षिपति वा अये! भ्रात! अधिकस्य व्याख्यानस्य आवश्यकता न, असौ तु दूरं प्रयाति, एहि वयं तु गच्छामः, त्वमपि शीघ्रम् आगच्छ।

(27) 'चन्द्रिका' योऽयमिति– इसके बाद, नेपथ्य से अश्वमेध अश्व के सम्बन्ध में सैनिकों द्वारा घोषणा की जाती है कि–

यह जो घोड़ा है, वह सातों भुवनों में अद्वितीय वीर एवं दस कण्ठ रावण के कुल का विनाश करने वाले, उसके शत्रु श्रीराम चन्द्र की विजयपताका अथवा उनके पराक्रम की वीरता विषयक घोषणा है।

विशेष–(i) महाकवि की सरल भाषा एवं रचना शैली दर्शनीय है।

(ii) यहाँ अश्व को पताका तथा वीरघोषणा के रूप में कहा गया है, अतः अतिशयोक्ति अलंकार एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iii) आचार्य क्षेमेन्द्र ने इस श्लोक को प्रबन्धार्थ–औचित्य के उदाहरण रूप में उद्धृत किया है।

(iv) 'इयम्' पद में विधेयरूप पताका तथा वीरघोषणा के कारण स्त्रीलिंग का प्रयोग किया गया है, अन्यथा तो यह पुल्लिंग होता।

व्या.टि.– (i) दशकण्ठाः यस्य सः, तस्य कुलम्, तत् द्वेष्टि, तस्य।

(ii) सप्तावयवाश्च ते लोकाः, सप्तलोकाः, तेषु एकवीरः, तस्य।

(iii) एकश्चासौ वीरः, सप्तश्लोकेषु । वीराणां घोषणा, इति।

संस्कृत व्याख्या– नेपथ्ये श्रीरामस्य सैनिकाः वदन्ति– योऽयम् अश्वोऽस्ति, सः दशमुखस्य रावणस्य कुलद्वेषिणः भगवतः रामस्य विश्वविजयस्य पताका वर्तते अथवा वीराणां घोषणा विद्यते, इति।

(28) 'चन्द्रिका' यदीति– सैनिकों की अहंकारपूर्ण वीरघोषणा को सुनकर आहत हुआ, तेजस्वी बालक लव कहता है कि–

अरे! इन नीच (जाल्मान्) लोगों को धिक्कार है, यदि तुम्हारे कहने का आशय यह है कि इस पृथ्वी पर कोई राम के अतिरिक्त क्षत्रिय नहीं है, तो मैं कहता हूँ वे आज भी विद्यमान हैं और तुम जो यह सभी को भयभीत कर रहे हो, वह भी उचित नहीं है अथवा इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ? लो मैं तुम्हारी इस विजयपताका रूप अश्व का ही हरण कर रहा हूँ, तुम्हें जा करना हो, कर लो।

विशेष– (i) स्वाभिमानी बालक लव की तेजस्विता की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है, जिससे उसका प्रभावी चरित्र प्रदर्शित हुआ है।

(ii) 'यदि तुममें सामर्थ्य है तो अपनी इस पताका की रक्षा करो', इस अर्थान्तर के व्यंजित होने से अर्थापत्ति अलंकार का सुन्दर प्रयोग।

(iii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है।

व्या.टि.– (i) **विभीषिका**– वि+ √भी+णिच्+षुक्+ण्वुल्+टाप्।

(ii) **सन्ति**– √अस्+लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन, विद्यमान हैं।

संस्कृत व्याख्या– तेजस्वी लवः कथयति– किम् असमीक्ष्य वदन्ति एते जाल्माः, यदि क्षत्रियाः सन्ति नो वा सन्ति, अस्तु तावत्, इयं च

सम्प्रति भयं कथं प्रदर्शयसि अथवा अनेन कथेनेन किं फलम् अस्ति? यतोहि कार्यस्य अवसरे वचनानि निरर्थकानि भवन्ति, अहं एषः लवः युष्माकं एतां पताकां खलु हरामि, भवन्तः अस्य रक्षां कुर्वन्तु।

(29) 'चन्द्रिका' ज्याजिह्वयेति– लव द्वारा अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को पकड़ लेने पर, धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ते हुए वह कहता है कि–

प्रत्यंचारूपी जीभ से ढ़का हुआ, दो भयंकर दाढ़ों के समान, आगे के भागों से युक्त, असंख्य और भयंकर गहरी घरघर की ध्वनि करने वाला, यह मेरा धनुष, सम्पूर्ण संसार को खा जाने में लगे हुए, हँसते हुए यमराज के मुखरूपी यन्त्र की जम्भाई का अनुकरण करने वाला एवं भयानक मध्यभाग से युक्त हो जाए।

विशेष– (i) यहाँ कर्णकटु वर्णों के प्रयोग से दुःश्रवत्व दोष कहा जा सकता है, किन्तु वीररस की प्रतीति से यही प्रशस्य हो गया है।

(ii) ओज गुण, गौड़ी रीति एवं वसन्ततिलका छन्द, अनुप्रास, रूपक, अतिशयोक्ति अलंकारों का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) यहाँ कवि ने धनुष को लोगों को लीलने में लगे हुए, जम्भाई लेने वाले यमराज के मुख का अनुकरण करने वाला बताया है।

(iv) इस श्लोक में ध्वन्यात्मकता एवं चित्रात्मकता भी प्रशस्य है तथा सभी वीररसोचित गुण भी एक साथ मुखरित हो रहे हैं।

(v) किन्तु यहाँ प्रयुक्त वसन्ततिलका को विद्वानों ने वीर रस के लिए उपयुक्त नहीं माना है। (vi) यह श्लोक महावीरचरित के तृतीय अंक में भी प्रयुक्त हुआ है।

व्या.टि.– (i) विकटोदरम्– विकटम् उदरं यस्य तत्।

(ii) ग्रासे प्रसक्तं हसन् अन्तकस्य वक्त्र एव यन्त्रम् तस्य विडम्बनं यत्र तत्। (iii) **प्रसक्त**–प्र+ √संज्+क्त, विडम्ब्+णिनि।

संस्कृत व्याख्या– लवः स्व धनुषः विषये कथयति– ममेदं धनुः यमस्य मुखमिव भवतु। ज्या अस्य जिह्वा अस्ति। उभयकोटी च दंष्ट्रे स्तः। भयंकरघोषस्तु उभौ किल समानमेव। यथा ग्रासभक्षणे यमः स्व मुखं विस्तारयति। तथैव इदं मम धनुः अस्तु, इति।

•••

'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या, संस्कृत व्याख्या

पंचम अङ्क

पृष्ठभूमि– प्रस्तुत अंक का नाम महाकवि ने 'कुमारविक्रम' किया है, जो लव के पराक्रम की दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है। पंचम अंक के अन्त में युद्ध की चर्चा करने के बाद, कवि ने यहाँ युद्ध की सृष्टि की है, जिससे अनेक स्थलों पर यहाँ वीररस का पूर्ण परिपाक देखा जा सकता है। क्षत्रिय योद्धा की दृष्टि से चन्द्रकेतु की अपेक्षा लव का चरित्र अधिक उद्घाटित हुआ है। सुमन्त्र तथा चन्द्रकेतु तो उसके युद्धकौशल को देखकर अभिभूत हुए जा रहे हैं और उसकी प्रशंसा करते हुए थकते नहीं हैं और अन्त में चन्द्रकेतु और लव की मित्रता भी हो जाती है, जिसे षष्ठ अंक में सुन्दर अभिव्यक्ति मिली है।

(1) 'चन्द्रिका' नन्वेष इति– नेपथ्य से कोई सैनिक, सारथि सुमन्त्र द्वारा हाँके जाते हुए रथ से, सेनापति चन्द्रकेतु के आने की सूचना देते हुए, अपने दूसरे साथी सैनिकों से कहता है कि–

हे सैनिकों! आप लोग धैर्य धारण कीजिए। वस्तुतः अब हमें बहुत बड़ा सहारा मिल गया है, क्योंकि सुमन्त्र द्वारा हाँके जाने के कारण, लम्बी–लम्बी छल्लाँगें मारते हुए, जुड़े हुए घोड़ों वाले, रथ से ऊँची–नीची अर्थात् उबड़–खाबड़ भूमि पर अत्यधिक तेज गति से दौड़ने के कारण, हिलती हुई कोविदार अर्थात् कचनार नाम के वृक्ष की लकड़ी से बनी हुई पताका से युक्त रथ द्वारा, ये हमारे सेनापति चन्द्रकेतु, आप लोगों की लव के साथ चल रही युद्ध की बात को सुनकर, यहाँ हम लोगों के पास में आ रहे हैं।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक से पता चलता है कि चन्द्रकेतु इन सभी सैनिकों की रक्षा करने वाला सेनापति है।

(ii) यहाँ सुमन्त्र की प्रेरणा अश्वों की गति में तथा उबड़-खाबड़ भूमि पताका के कम्प में कारण होने से काव्यलिंग अलंकार।

(iii) इसीप्रकार तीसरे और चौथे चरण में केतु, केतुः पदों के प्रयोग से यमक, प्रहर्षिणी छन्द एवं ओजपूर्ण रचना दर्शनीय है।

(iv) नेपथ्य से पात्रों द्वारा इस अंक की घटना की सूचना देने के कारण 'चूलिका' नामक अर्थोपक्षेपक का प्रयोग हुआ है।

अन्तर्जवनिकासंस्थैः सूचनार्थस्य चूलिका। साहित्यदर्पण

(v) 'ननु' पद को अनुनय, आमन्त्रण तथा निश्चय, तीनों ही अर्थों में स्वीकार किया जा सकता है।

(vi) लव द्वारा सभी सैनिकों को परास्त करने की प्रतीति भी हो रही है, साथ ही, गौड़ी रीति का सौन्दर्य भी सुन्दर बन पड़ा है।

व्या.टि.– (i) उत्खातेषु प्रचलितः कोविदारस्य केतुः यस्य सः।

(ii) त्वरितं यथास्यात् तथा सुमन्त्रेण नुद्यमानाः अतएव च प्रकर्षेण उद्वल्गन्तः च ते प्रजविताः वाजिनः यस्मिन् तेन तथोक्तेन ।

(iii) **प्रचलित–** प्र+√चल्+क्त। **श्रुत्वा–** √श्रु+क्त्वा।

(iv) **उपैति–** उप+√इण् (गतौ)+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– नेपथ्यतः कथ्यते केनापि सैनिकेन यत्– भोः सैनिकाः धैर्यं धारयन्तु, यतोहि एष अस्माकं सेनापतिः चन्द्रकेतुः युष्माकं युद्धं श्रुत्वा, शीघ्रं संचालिताः प्रकर्षेण धावन्तः उत्कृष्टवेगयुक्ताः अश्वाः यस्मिन्, तेन रथेन निम्नोन्नतेषु भूमिभागेषु कम्पमानः कोविदारस्य कचनारस्य वा केतुः यस्य सः तथाभूतः सन् समागच्छति।

(2) 'चन्द्रिका' कीरतीति– तत्पश्चात् सारथि सुमन्त्र रथ के साथ प्रवेश करते हैं तथा चन्द्रकेतु उनसे कहता है कि–

आर्य, सुमन्त्र! देखिए, देखिए, यह वीर बालक भला कौन है, युद्ध करते हुए, जिसका मुख क्रोध के कारण लाल हो गया है और जिसके सिर पर बाँधी हुई पाँचों शिखाएँ हिल रही हैं, जो रणभूमि में खड़ी हुई हमारी सेनाओं के ऊपर निरन्तर अपने धनुष की प्रत्यंचा को कानों तक खींचकर, भयंकर टंकार करते हुए, धनुष से ओलों के समान, बाणों की वर्षा कर रहा है।

विशेष– (i) ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय राम के कुल में बालक सिर पर पाँच शिखाओं की निर्मिति करते थे।

(ii) युद्ध करते हुए लव का स्वाभाविक वर्णन करने से स्वभावोक्ति अलंकार, उपमा, ओजगुण, गौडी रीति तथा मालिनी छन्द।

(iii) टीकाकार वीरराघव ने यहाँ लव को मेघ, उसकी पाँच शिखाओं को विद्युत्, धनुष को इन्द्रधनुष तथा उसकी बाणवर्षा को हिम वर्षा के रूप में कल्पित किया है, जो अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है।

व्या.टि.–(i) कलितश्चासौ किंचित् कोपः, तादृशी मुखश्रीः यस्य।

(ii) समररस्य शिरः समरशिरः, तस्मिन्। वीरश्चासौ पोतः।

(iii) चंचन्त्यः पंचचूडाः यस्य सः। रज्यन्ती– √रंज्+श्यन्+शतृ।

(iv) **किरति–** √कॄ (विक्षेपे)+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(v) **अविरत–** न+वि+√रम्+क्त, नञ् समास।

संस्कृत व्याख्या– अत्र लवः कियत्या त्वरया सैनिकानाम् उपरि बाणवृष्टिं करोति, इति सुमन्त्रं प्रति कथयति लक्ष्मणः, यत् पश्य, पश्य, इति। असौ पुरो दृश्यमानः कोऽपि वीरबालकः किंचित् रज्यन् मुखश्रीः यस्य सः, संजातक्रोधत्वात्, प्रकम्पमानपंचशिखः स्वकुलाऽऽचारात् अस्य शिरसि पंचशिखाः निबद्धाः खलु, समरांगणे निरन्तरं मौर्वी शब्दायमान–चापस्य अग्रभागेन सेनायाः सैनिकानाम् शरीराणां उपरि शराः उपलवर्षणमिव वर्षति। अतीवाश्चर्यजनकमिदम्, इति भावः।

(3) 'चन्द्रिका' मुनिजनेति– इसी क्रम में फिर से आश्चर्य व्यक्त करते हुए, चन्द्रकेतु अपने सुमन्त्र नामक सारथि से कहता है कि–

रघुवंश के किसी अप्रसिद्ध, अभी तक न जाने गए, नवीन अंकुर के समान, अकेला ही यह मुनि बालक, अपने अत्यधिक क्रोध के कारण, युद्धस्थल पर चारों ओर हाथियों के विदीर्ण किए गए, गण्ड–स्थलों की गाँठों की टंकार से अत्यन्त भयानक और प्रज्वलित होते हुए हजारों की संख्या में बाणों से युक्त होता हुआ, मेरे मन में आश्चर्य को उत्पन्न कर रहा है।

विशेष– (i) बालक लव का शौर्य प्रदर्शित हुआ है, क्योंकि उसने हाथियों के गण्डस्थलों की कठोर गाँठों को भी अपने तीक्ष्ण बाणों के

प्रहार से विदीर्ण कर दिया है, जिनसे भयंकर टंकार की ध्वनि निकल रही है।

(ii) बाणों के प्रहार से हाथियों की अत्यन्त कठोर हड्डियों के रगड़ने से उनसे अग्नि के प्रज्वलित होने का भयावह वर्णन हुआ है।

(iii) 'नव इव' में उपमालंकार तथा सम्पूर्ण श्लोक में ओजगुण, गौड़ी रीति एवं मालिनी छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) शत्रुपक्ष के वीर बालक की प्रशंसा करने से चन्द्रकेतु का उज्ज्वल चरित्र भी उद्घाटित हुआ है।

(v) बालक लव की आकृति एवं शौर्यादि के कारण, उसके रघुकुल का नवांकुर होने की सम्भावना भी की गयी है। यहाँ वंश में श्लेष का प्रयोग भी हुआ है, इससे बाँस के नए अंकुर के समान, रघुकुल का अंकुर यह अर्थ भी किया जा सकता है।

व्या.टि.– (i) **सम्प्रकोपात्–** सम्+प्र+ √कुप्+घञ्, पं.वि., ए.व.।

(ii) **अप्रसिद्धः–** न प्रसिद्धः, इति। नञ्+प्र+ √सिध्+क्त।

(iii) मुनिश्चासौ जनः, तस्य शिशुः। **प्ररोहः–** प्र+ √रुह्+घञ्।

(iv) सम्यक् प्रकर्षणः कोपः तस्मात्, प्रकृष्टः कोपः तस्मात्।

संस्कृत व्याख्या– अयम् एकाकी मुनिशिशुः रघुवंशस्य कश्चित् अप्रसिद्धस्य अंकुरः इव सम्प्रकोपात् सर्वदिक्षु विदारितानां गजानां ग्रन्थीनां टंकारेण ध्वनिविशेषेण घोरं देदीप्यमानं शराणां सहस्रं यस्य सः एवंविधः मे चन्द्रकेतुं अतीव कौतुकं विस्तारयति, इति।

(4) 'चन्द्रिका' अतिशयितेति– चन्द्रकेतु की बात को सुनकर सारथि सुमन्त्र कहता है कि–

आयुष्मन्! श्रीराम के समान छवि वाले, अत्यधिक प्रभावशाली, जिसने देवों एवं दानवों के प्रभाव का भी अतिक्रमण कर लिया है, ऐसे इस बालक को देखकर, मुझे तो विश्वामित्र के यज्ञ में बाधा डालने वाले, शत्रु राक्षसों का भयंकररूप से संहार करने वाले, धनुर्धारी रामचन्द्र की स्मृति आ रही है अर्थात् युद्ध करता हुआ यह बालक उसी सौन्दर्य तथा क्रियाओं के कारण मुझे श्रीराम के समान प्रतीत हो रहा है।

विशेष– (i) 'कुशिकसुत' यहाँ गाधि पुत्र विश्वामित्र के लिए प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि वे 'कुश' नामक ऋषि के वंशज थे।

(ii) प्राचीन समय में विश्वामित्र अपने यज्ञों की रक्षा के लिए राम लक्ष्मण को, उनके पिता दशरथ से माँगकर ले गए थे।

(iii) यहाँ 'अतिशयित' इत्यादि के कारण अतिशयोक्ति, तथैव में उपमा और बालक को देखकर राम की स्मृति आने से स्मरण एवं तीनों का अंगांगिभाव होने से संकर अलंकारों का सौन्दर्य विद्यमान है।

व्या.टि.– (i) **प्रमाथे–** प्र+ √मथ्+घञ्, स.वि., एक वचन।

(ii) कुशिकसुतस्य विश्वामित्रस्य मखं यज्ञं द्विषन्ति ये तेषाम्।

(iii) **प्रभावः–** प्र+ √भू+घञ्। **अवलोक्य–** अव+ √लोक्+ल्यप्।

(iv) **स्मरामि–** √स्मृ+लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– सुमन्त्रः चन्द्रकेतुं प्रति आह– सुरासुरेभ्योऽपि अधिकसामर्थ्यशालिनं तादृशरूपविशिष्टम् एनं शिशुं दृष्ट्वा अहं विश्वामित्रस्य यज्ञे राक्षसानां विनाशाय धनुर्धरस्य श्रीरामस्य स्मरणं करोमि। यतोहि बाल्यावस्थायां रामोऽपि एवंविधः खलु आसीत्।

(5) 'चन्द्रिका' अयं हीति– लव को अकेले ही अनेक सैनिकों के साथ युद्ध करते हुए देखकर, चन्द्रकेतु कहता है कि–

मेरा मन इस बात को सोचकर लज्जित हो रहा है कि यह अकेला बालक भयंकर सैनिकों से घिरा हुआ है, जो सैनिक केले के वृक्षों के तने के समान, अपनी विशाल और बलशाली भुजाओं में, अत्यधिक चमचमाते हुए, घातक शस्त्रों के समूह को धारण किए हुए, मद के कारण मस्त हैं तथा वे झन–झन शब्द करती हुई, स्वर्ण–निर्मित छोटी–छोटी घण्टियों द्वारा झन–झनाहट करने वाले, रथों पर आरूढ़ हैं और उन्हीं में कुछ दूसरे भयानक सैनिक बरसात के दिनों के समान, अत्यधिक मात्रा में मद के जल को बरसाने वाले, हाथियों के ऊपर विराजमान हैं, जबकि इसके विपरीत यह बालक तो पृथ्वी पर स्थित होकर अकेला ही इन सभी से युद्ध कर रहा है।

विशेष– (i) वस्तुतः युद्ध का नियम है कि पैदल सैनिक ही पैदल सैनिक से युद्ध कर सकता है,, इसलिए नियम विरुद्ध युद्ध को देखकर चन्द्रकेतु को लज्जा की अनुभूति हो रही है।

(ii) वर्षा के दिन को दुर्दिन कहा जाता है। मददुर्दिन में उपमा एवं अतिशयोक्ति अलंकार, पृथ्वी छन्द, गौड़ी रीति का प्रयोग हुआ है।

(iii) इसीप्रकार यहाँ सैनिकों के नीति–विरुद्ध युद्ध का आचरण करने रूप वस्तु के वर्णन से अर्थापत्ति अलंकार ध्वनि भी दर्शनीय है।

(iv) प्रस्तुत श्लोक में तृतीया विभक्ति बहुवचन में प्रयुक्त सभी पद, सैनिकों के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

व्या.टि.– (i) **मदभरेण–** मदस्य भरः, तेन। √भृ+अप्, तृ.वि.,ए.व.।

(ii) भूरि स्फुरन्ति करालानि करकन्दलीषु जटिलानि शस्त्राणां जालानि, यैः तैः। बहुव्रीहि। कराः कन्दल्यः इव तासु। उपमित समास।

(iii) **स्फुरत्–** √स्फुर्+शतृ (अत्)। **क्वणत्–** √क्वण्+शतृ (अत्)।

(iv) स्यन्दन्ते धारे च प्रवहन्ति, इति, तैः स्यन्दनैः।

संस्कृत व्याख्या– चन्द्रकेतुः कथयति यत् अहमतीव लज्जितोऽस्मि यदयं एकाकी बालः मदस्य अधिकतया यथा स्यात् तथा, करालानि देदीप्यमानानि अंकुराणि इव तासु तीव्राणि शस्त्राणां समूहाः येषां तैः तथा शब्दं कुर्वन्त्यः याः सुवर्णनिर्मिताः किंकिण्यः रथेषु क्षुद्रघण्टिकाः तासां झण–झण इति ध्वनिविशेषैः युक्ताः स्यन्दनाः येषां तैः समधिकः यो मदः तदेव वर्षाकालिकं दिनं येषां ते गजाः तैः कृत्वा, भयंकरैः सैनिकैः समाकीर्णः अयं पदाति युद्धं करोति। एतत्तु युद्धनियमविरुद्धमेवास्ति।

(6) 'चन्द्रिका' आगर्जदिति– युद्धभूमि में लव के पराक्रम को देखकर चन्द्रकेतु सारथि सुमन्त्र से शीघ्रता करने के लिए कहता है, क्योंकि उसने तो सैनिकों का अत्यधिक विध्वंस कर दिया है–

यह वीरबालक अकेला ही घोर नगाड़ों की गड़गड़ाहट के कारण, युद्धभूमि में चारों दिशाओं में बढ़े हुए, भय के कारण चिंघाड़ते हुए, पहाड़ी झुरमुटों में रहने वाले, हाथियों के समूहों के कानों में तीव्रता तथा कर्कशता के कारण तीव्र वेदना प्रदान करने वाले, अपने धनुष की प्रत्यंचा से टंकार की ध्वनि को उत्पन्न करता हुआ, छटपटाते हुए

भयानक कबन्ध तथा सिरों के समूहों से, पृथ्वी को ठीक उसीप्रकार आच्छादित कर रहा है, मानो प्यास से व्याकुल यमराज ने अपने भयानक मुख पर लगी हुई जूठन को अपने चारों ओर बिखेर दिया हो।

विशेष– (i) युद्धभूमि का भयानक दृश्य प्रस्तुत किया गया है।

(ii) 'विघस' से अभिप्राय यहाँ भोजन के बाद बचे हुए अंश अर्थात् जूठन से ग्रहण करना चाहिए। वि+ √अद्(भक्षणे)+अद्,–(घस्लृ)

(iii) असम्बन्ध में सम्बन्ध प्रदर्शित करने से अतिशयोक्ति, तथा इव के प्रयोग से उत्प्रेक्षा, रूपकालंकार, वीर एवं अद्भुत रस, ओज गुण, गौड़ी रीति तथा शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **उज्जृम्भयन्–** उत्+ √जृम्भ्+णिच्+शतृ।

(ii) दुन्दुभेः रवः अमन्दश्चासौ दुन्दुभिः तस्य रवः चेति, तैः।

(iii) **आध्मात–** आ+ √ध्मा+क्त। **निस्तीर्ण–** नि+ √स्तृ+क्त।

(iv) **विधत्ते–** वि+ √धा+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(v) **व्याकीर्यमाणां**–वि+आ+ √कृ+शानच्,मुक्, टाप्, द्वि.वि., ए.व.।

संस्कृत व्याख्या– एषः शौर्यसम्पन्नः बालकः लवः इति, तीव्रभेरी–नादैः परिवृद्धम् आगर्जन्तो ये भयवशचीत्कारं कुर्वन् पर्वतनिकुंजनिवासिनः ये गजाः सन्ति, तेषां प्रदत्तश्रोत्रज्वरमौर्वीशब्दम् उत्पादयन् युद्धभूमौ लुण्ठन् भयंकरकबन्धशिरसमूहैः धराम् तृष्यत् मृत्युभयंकरमुखेन भुक्ते अनन्तरं चावशिष्टे संस्तीर्यमाणामिव कुरुते।

(7) 'चन्द्रिका'भो भो, लवेति– भय के कारण अपनी सेनाओं को युद्ध से विमुख देखकर, चन्द्रकेतु बालक लव को सम्बोधित करके कहता है कि–

हे महाबाहु! लव, तुम्हारे जैसे योद्धा द्वारा इन सैनिकों के साथ लड़ने से कोई लाभ नहीं है, क्योंकि सैनिक ही सैनिकों के साथ युद्ध करते हैं और आप सैनिक तो हैं नहीं, इसलिए मेरे साथ ही तुम्हारा युद्ध करना उचित है, क्योंकि तेजस्वी के साथ ही तेजस्वी के युद्ध होने पर दोनों का तेज शान्त हो पाता है।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक में चन्द्रकेतु ने लव को गर्वोक्ति के रूप में युद्ध के लिए ललकारा है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में उत्तरार्द्ध को पूर्वार्द्ध के हेतुरूप में प्रस्तुत करने से काव्यलिंग अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं अनुष्टुप् छन्द तथा भाषा की सरलता दर्शनीय है।

(iii) चन्द्रकेतु का कूटनीतिक स्वरूप भी प्रदर्शित हुआ है, क्योंकि अप्रत्यक्षरूप से लव की प्रशंसा करके, यहाँ उसने सेना के विनाश से उसे रोकने रूप अपने प्रयोजन को सिद्ध किया है।

व्या.टि.– (i) महान्तौ चासौ बाहू यस्य सः (बहुव्रीहि समास)

(ii) सेनायां भवाः सैनिकाः तैः, सैनिकैः। सेना+ठञ्–इक आदेश।

(iii) **शाम्यतु**–√शम्+लोट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, शान्त होवे।

संस्कृत व्याख्या– हे विशालभुज! लव, एतैः सैनिकैः सह तव युद्धस्य प्रयोजनं किम्? तव समीपे तु अहं चन्द्रकेतुः अस्मि, अतएव अत्रागच्छ, मया सह युद्धं कुरु त्वम्। यतोहि सैनिकाः खलु सैनिकैः सह युद्धं कुर्वन्ति, नैव त्वं सैनिकोऽसि। वस्तुतस्तु तेजः वै तेजसा सह युद्धेन शान्तं भवति।

(8) 'चन्द्रिका' विनिवर्तितेति– चन्द्रकेतु के ललकार भरे शब्दों को सुनकर, सैनिकों के साथ युद्ध करना छोड़कर, लव ने जब युद्ध के लिए चन्द्रकेतु का रुख किया तो सारथि सुमन्त्र कहते हैं कि–

कुमार देखो, देखो। आपके द्वारा युद्ध के लिए आह्वान किए जाने पर यह बालक, सेना के विनाशकार्य से ठीक वैसे ही विरत हो गया, जिसप्रकार कोई दर्प से युक्त भयंकर सिंह का शावक, मेघ के गर्जन को सुनकर, दूसरे किसी भारी प्राणी को समझकर, उन हाथियों के समूह का मर्दन करने से रुक जाता है और उसके उत्तर में स्वयं भी भयंकर रूप से दहाड़ने लगता है।

विशेष–(i) पृतनानिर्मथनात् में अपादाने पंचमी से पंचमी विभक्ति।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में पूर्णोपमालंकार, प्रसादगुण, वैदर्भी रीति एवं मालभारिणी छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है। लक्षण द्रष्टव्य– परिशिष्ट।

(iii) दृप्तसिंह शावक से लव की उपमा अतीव मनोरम है।

व्या.टि.– (i) **उपहूतः–** उप+ √ह्वे+क्त। **दृप्त–** √दृप्+क्त।

(ii) **अवमर्द–** अव+ √मृद्+घञ्। **निर्मथन–** निर्+ √मन्थ्+ल्युट्।

(iii) **विनिवर्तितः–** वि+नि+ √वृत्+णिच्+क्त (कर्मणि)

संस्कृत व्याख्या– अयं वीरशिशुः त्वया चन्द्रकेतुना युद्धाय आकारितः सन्, दर्पयुक्तेन केसरिकिशोरेण इव सेनायाः विध्वंसात् प्रत्यावृत्तोऽस्ति। यथा दर्पयुक्तसिंहशिशुः मेघगर्जनं श्रुत्वा गजपंक्तिनाम् मर्दनात् विरतो भूत्वा उच्चस्वरेण गर्जनं करोति तथैव इति।

(9) 'चन्द्रिका' अयं शैलेति– तितर–बितर करने के बाद भी, फिर से उसका पीछा करने वाले, सैनिकों को लक्ष्य करके लव कहता है–

मेरे चारों ओर फैलता हुआ शत्रु की सेना का अत्यधिक बढ़ा हुआ यह भयंकर कोलाहल, ठीक उसीप्रकार मेरी क्रोधरूपी अग्नि का ग्रास हो जाए, जिसप्रकार प्रलयकाल की भयंकर वायु से आहत होकर, विशाल सागर की बाढ़ के समान, मुझ पर्वत से टकराकर, वड़वा घोड़ी नामक समुद्र की अग्नि के मुख में पड़ी हुई प्रत्येक वस्तु, उसके सम्पर्क में आकर पूर्णरूप से विनष्ट हो जाती है।

विशेष– (i) 'वड़वानल' यहाँ समुद्र की आग के लिए प्रयुक्त हुआ है, जो सागर के जल को जलाकर भापरूप में परिवर्तित करके, मानसून को पैदा करती है। इसके पीछे अनेक कथाएँ हैं।

(ii) लव की क्रोधाग्नि में वड़वाग्नि का आरोप होने से रूपक तथा चतुर्थ पंक्ति में उपमालंकार का प्रयोग हुआ है।

(iii) सम्पूर्ण पद्य में ओज गुण, गौड़ी रीति तथा शिखरिणी छन्द।

(iv) वीररस से परिपूर्ण सुन्दर रचना का उदाहरण द्रष्टव्य है।

व्या.टि.– (i) **आस्फालित–** आ+ √स्फल्+णिच्+क्त। √क्षुभ्+क्त।

(ii) **उत्सर्पत्–** उत्+ √सृप्+शतृ। **आघात–** आ+ √हन्+घञ्।

(iii) **हुतभुक्–**हुत+ √भुज्+क्विप्। **अनुसारिणः**–अनु+ √सृ+णिनि।

(iv) **व्रजतु–** √व्रज्+लोट्, प्रथमपुरुष, एकवचन। प्राप्त होवे।

(v) उत्सर्पन् यो घनः तुमुलः हेलयाः कलकलः।

संस्कृत व्याख्या– एषः मम समक्षे सर्वतः प्रसरन् निबिड़संकुल–रणस्य क्रीड़ाकोलाहलः, प्रलयकालीनवायुना प्रताड़ितः समुद्रस्य प्रवाहः इव, मम पर्वताघातेन संवलितवड़वानलकठोरस्य ज्वालासमूहस्य ग्रासत्वं यातु, विनाशं प्राप्नोतु, इत्यर्थः।

(10) 'चन्द्रिका' अत्यद्भुतादिति– 'लव' को सम्बोधित करके, लक्ष्मण का पुत्र चन्द्रकेतु कहता है कि– हे कुमार!

तुम अत्यधिक आश्चर्यजनक गुणों के उत्कर्ष के कारण, मेरे अत्यन्त प्रिय हो, इसीलिए अब मेरे मित्र भी हो गए हो। अतएव इस नई–नई मित्रता के कारण जो भी मेरा है, वह सभी कुछ तुम्हारा ही है। अतः अपने ही आश्रित सेवकों का तुम इसप्रकार विनाश क्यों कर रहे हो? यह चन्द्रकेतु निश्चय ही तुम्हारे गर्व की कसौटी है अर्थात् अपनी वीरता एवं गर्व की परीक्षा के लिए, तुम मेरे साथ युद्ध कर सकते हो, उसके लिए मैं पूर्णरूप से तैयार हूँ।

विशेष– (i) चन्द्रकेतु की कूटनीति में सामनीति के साथ–साथ सखा एवं प्रिय पदों से अपनत्वपूर्ण वचनों को प्रस्तुत किया गया है।

(ii) 'गुणातिशयात्' में हेतु के अर्थ में पंचमी का प्रयोग हुआ है।

(iii) चन्द्रकेतु में 'निकषत्व' के आरोप का उपयोग, दर्प की परीक्षा में किए जाने से परिणाम अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग।

व्या.टि.– (i) **प्रियः**– प्रीणाति, इति प्रियः, √प्रीञ्+क (कर्तरि)।

(ii) **अतिशय**– अति+√शी+अच्(भावे)। **कदनम्**– √कद्+ल्युट्।

(iii) अद्भुतम् अतिक्रान्तः, अत्यद्भुतः, तस्मात्, प्रादिसमास।

(iv) **गुणातिशयात्**– गुणानाम् अतिशयः तस्मात्, षष्ठी तत्पुरुष।

संस्कृत व्याख्या– अत्यन्ताश्चर्यजनकात् शौर्यादिगुणानाम् आधिक्यात् च त्वं लवः मम चन्द्रकेतोः अभीष्टः सखा असि। अनेनैव कारणेन यत् वस्तु मदीयम् अस्ति, तत् त्वदीयमपि वर्तते। तस्मात् स्वकीये परिजनवर्गे कथं पीड़नं कुरुषे, निश्चयमेव अयम् चन्द्रकेतुः इत्याख्यः जनः ते गर्वस्य परीक्षा निकषोऽस्ति। अतएव आगच्छ युद्धस्व।

(11) 'चन्द्रिका' दर्पणेति– आगे से चन्द्रकेतु तथा पीछे से आती हुई सेना पर अपने धनुष से निशाना साधते हुए, लव की शोभा का उल्लेख करते हुए, चन्द्रकेतु सारथि सुमन्त्र से कहता है कि–

आर्य! आप देखने योग्य इस दृश्य को अवश्य देखिए, क्योंकि अत्यन्त कौतूहल के साथ, वीरता के गर्व से मुझ चन्द्रकेतु के ऊपर

अपनी दृष्टि को गाड़ता हुआ अर्थात् तीक्ष्ण दृष्टि से मुझे घूरता हुआ एवं पीछे की ओर से सेना द्वारा पीछा किया जाता हुआ, अपने धनुष को ताने हुए, शौर्यसम्पन्न यह बालक लव, दोनों ओर से भयंकर गति द्वारा चंचल हुए, मनमोहक इन्द्रधनुष को धारण करने वाले, मेघ के समान, शोभा को धारण कर रहा है।

कहने का अभिप्राय यह है कि शौर्य सम्पन्न यह लव, आते हुए मेरा, पीछे से आते हुए सैनिकों का अर्थात् दोनों का अत्यन्त कुशलता के साथ सामना कर रहा है, जिससे यह इन्द्रधनुष से युक्त दोनों ओर से वेगयुक्त गति वाले मेघ की शोभा से युक्त प्रतीत हो रहा है।

विशेष– (i) लव के युद्धकौशल की सुन्दर प्रस्तुति हुई है।

(ii) लव द्वारा मेघ की शोभा को धारण करने में उपमा की परिकल्पना के कारण निदर्शनालंकार, मेघस्य माघादि में अनुप्रास, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति और वसन्ततिलका का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) अद्भुत रस से परिपुष्ट वीररस का परिपाक भी हुआ है।

व्या.टि.– (i) कौतुकम् अस्यास्ति, इति, तेन, कौतुक+मतुप्।

(ii **बद्धलक्ष्यः**– बद्धं लक्ष्यं येन सः, **बद्धः**– बन्ध्+क्त (कर्मणि)

(iii) **उदीर्ण0**– उदीर्ण धनुः येन सः,उद्+ईर्+क्त, धनुष्+अनङ्।

(iv) मघवतः इदम्, तत् चापं धरति, इति तस्य। मघवन्+अण्।

संस्कृत व्याख्या–आर्य! अयं बालकः औत्सुक्यवता गर्वेण च मयि दत्तं लक्ष्यं येन सः, उन्नमितं धनुः येन सः पृष्ठतश्च सैनिकैः अनुगम्यमानः, तान् अपि दर्शयन् सचेष्टो भूत्वा, एवं द्वेधा प्रचलनप्रकारयुग्मेन उभयतः इत्यर्थः, इन्द्रस्य चापः तेन युक्तस्य खलु प्रबलेन वायुना चंचलस्य मेघस्य इव शोभां धारयति, इति।

(12) 'चन्द्रिका' संख्यातीतैरिति– इसप्रकार कुशलतापूर्वक दो ओर से युद्धभूमि में शत्रु का सामना करते हुए, लव को देखकर चन्द्रकेतु अपने सैनिकों तथा राजाओं को सम्बोधित करते हुए कहता है कि–

हे राजाओं! इसप्रकार अगणित हाथी, घोड़ों तथा विशाल रथों पर आरूढ़ होकर, अपने शरीर के मर्मस्थलों पर कवचों को धारण किए हुए, आयु में अधिक, अपनी वृद्धावस्था में भी यश को प्राप्त करने का

लोभ करने वाले, आप सभी राजाओं द्वारा, इसप्रकार सामूहिकरूप से अकेले एवं पैदल ही युद्ध करने वाले, कवच के स्थान पर एकमात्र मृगचर्म को ही उत्तरीय के रूप में धारण करने वाले, इस बालक लव पर युद्धभूमि में, जो यह युद्ध करने का भार डाला गया है, दूसरे शब्दों में, उसे सब ओर से ललकार कर युद्ध के लिए बाध्य किया गया है, इसके लिए आप सभी लोगों को तथा हमें धिक्कार है, क्योंकि अकेले इस तपस्वी बालक से इतने योद्धाओं का एक साथ युद्ध करना, युद्धनीति के भी सर्वथा विरुद्ध है। अतः इस सबसे बस करो।

विशेष– (i) बालक पर विजय पाने के सामूहिक प्रयास की चन्द्रकेतु द्वारा घोर निन्दा की गयी है, जिससे उसका उज्ज्वल चरित्र अभिव्यक्त हुआ है। 'नद्ध' के स्थान पर 'मेध्य' पाठ भी मिलता है।

(ii) नियमविरुद्ध युद्ध होने से विषमालंकार का प्रयोग हुआ है।

(iii) ओजगुण, गौड़ी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द दर्शनीय है।

(iv) प्राचीनकाल में युद्धभूमि में वीरता का प्रदर्शन करना प्रशंसनीय एवं यश देने वाला था, यहाँ जीवन के उत्तरार्द्ध अर्थात् वृद्धावस्था में भी उसी कामना की बात का उल्लेख किया गया है।

(v) 'धिक्' पद के योग में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) संख्याम् अतीताः, संख्यातीताः तैः, द्वितीया तत्पुरुष।

(ii) द्विरदाश्च तुरगाश्च स्यन्दनाश्च, तेषु तिष्ठन्ति, इति तैः।

(iii) कवचैः निचिताः, इति तैः। कालेन ज्येष्ठाः, इति तैः।

(iv) अपरं वयः, तस्मिन् इति तैः। ख्यातः कामो येषां ते, तैः।

(v) समश्चासौ भरः समभरः। पादाभ्याम् अतति, इति पदातिः।

(vi)**नद्ध–** √नह्+क्त। **बद्ध–** √बन्ध्+क्त। **पदाति**–पाद+अत्+इण्।

संस्कृत व्याख्या– असंख्यैः गजतुरगरथस्थितैः बद्धकवचैः वयोऽधिकैः वार्द्धकेऽपि प्रसिद्धिकामैः युष्माभिः सर्वैः एकाकिनि पादचारिणि बद्धचर्मोत्तरीये अस्मिन् बाले लवे युधि योऽयं समभरः बद्धः, अनेन वः सर्वान् धिक्, अस्मानपि च धिगस्ति। यतः नियमविरुद्धम् एतत् सर्वम्।

(13) 'चन्द्रिका' व्यतिकर इति– इसके बाद, सेना के कोलाहल के अकस्मात् ही शान्त हो जाने पर, लव द्वारा जृम्भकास्त्र के प्रयोग की सम्भावना सुमन्त्र द्वारा व्यक्त करने पर, चन्द्रकेतु कहता है कि–

इस विषय में निश्चय ही कोई सन्देह नहीं है, यह अजेय शक्ति वाला, जृम्भकास्त्र ही है, क्योंकि इसके प्रयोग से अन्धकार तथा विद्युत् के एक साथ भयंकर सम्पर्क के समान, यह ध्यान की अवस्था में एकाग्र की गयी दृष्टि को भी पहले तो अन्धकार द्वारा अस्त करके, बाद में, प्रकाश के उदय के कारण उसे मुक्त करता हुआ बाधित कर रहा है अर्थात् इस जृम्भकास्त्र के प्रयोग से अत्यधिक प्रकाश के उत्पन्न होने से पहले तो हमारी दृष्टि अन्धकार से आच्छन्न हो गयी और उसके बाद बिजली के कौंधने के कारण यह चकाचौंध हो गयी। इसके अलावा दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि हमारी सेना इसके द्वारा चित्रलिखित सी निश्चेष्ट कर दी गयी है।

विशेष– (i) बहुत अधिक तेज प्रकाश में भी आँखें देख नहीं पाती है, इसीलिए उनके एक साथ उत्पन्न होने की बात कही गयी है।

(ii) जृम्भकास्त्र की विशेषता है कि उसका प्रयोग करने पर भयंकर प्रकाश उत्पन्न होता है तथा इससे शत्रु सेना के सभी लोग निद्रामग्न होकर निश्चेष्ट हो जाते हैं। अतः इसे सम्मोहन अस्त्र भी कहा जा सकता है। यहाँ उसी का सुन्दर एवं प्रभावी वर्णन हुआ है।

(iii) यहाँ पर 'व्यतिकर इव' में उपमा, 'लिखितमिव' में उत्प्रेक्षा एवं निश्चेष्टता आदि में जृम्भकास्त्र का अनुमान होने से अनुमान तथा इन तीनों अलंकारों का अंगांगिभाव संकर का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(iv) प्रसादगुण, वैदर्भी रीति व मालिनी छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) **ग्रस्तमुक्तम्–** पूर्वं ग्रस्तं पश्चात् मुक्तम्। कर्मधारय।

(ii) **अस्पन्दनम्–** न विद्यते स्पन्दः यस्मिन् तत्, बहुव्रीहि।

(iii) **तामसः–** तमसः अयम्, तमस्+अण्। **वैद्युतः–** विद्युत्+अण्।

(iv) **हिनस्ति–** √हिंस्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(v) **जृम्भते–** √जृम्भ्+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(vi) **व्यतिकरः–** वि+अति+ √कृ+अप् (ऋदोरप् सूत्र से)

संस्कृत व्याख्या— तमः सम्बन्धी, विद्युत्सम्बन्धी च भयोत्पादकः संसर्गः इव एकतानतया विनियुक्तम् अपि पूर्वं तु तमः प्राचुर्यात् निगीर्ण पश्चात् खलु प्रकाशोदयात् तमो विमुक्तं वै इक्षणम् बाधते। दर्शने असमर्थ करोति, इति। अतिरिक्तं च एतत् पुरो विद्यमानं अस्माकं सैन्य-जलं चित्रलिखितमिव निश्चेष्टं संजातम्। अतएव वयं वक्तुं शक्नुमः यत् निश्चयमेव अयं अपराजेयशक्तियुक्तं जृम्भकास्त्रम् अतितरां प्रकाशते।

(14) **'चन्द्रिका' पातालोदरेति—** तत्पश्चात् चन्द्रकेतु जृम्भकास्त्रों का आश्चर्यपूर्वक वर्णन करते हुए कहता है कि—

पाताल के अन्दर विद्यमान, कुँजों में इकट्ठे हुए गहन अन्धकार के समान काले तथा तपे हुए देदीप्यमान पीतल की प्रभा के समान प्रज्वलित कान्ति से सम्पन्न, इन जृम्भकास्त्रों द्वारा इस समय प्रलय काल के भयंकर वायु द्वारा, अपने वेग से उड़ाकर चारों ओर बिखेर दिए गए, भीतरी भाग में स्थित मेघों और आकाशीय बिजली के कारण लाल एवं पीली गुफाओं वाले, विन्ध्यपर्वत के शिखरों के समान बनाकर, सम्पूर्ण आकाश में चारों ओर मानो व्याप्त किया जा रहा है।

विशेष— (i) प्रलयकाल में विन्ध्य के शिखरों का, सृष्टि पर जिसप्रकार का प्रभाव पड़ता है, जृम्भकास्त्रों का ठीक वैसा ही प्रभाव इससमय सैनिकों पर बताया गया है, क्योंकि पौराणिक मान्यता के अनुसार विन्ध्यपर्वत के शिखर उनचास प्रकार की वायुओं के प्रबल प्रवाह के समक्ष ध्वस्त होकर, चारों ओर बिखर जाते हैं और सृष्टि के विनाश का कारण होते हैं।

(ii) जृम्भकास्त्रों के घने कृष्णवर्ण के लिए, पाताल के कुँजों के एकत्रित गहन अन्धकार का उपमानरूप में प्रयोग, इसीप्रकार उनके प्रज्वलित होते समय उन्हें पीतल की कान्ति के समान देदीप्यमान बताना भी कवि के अद्भुत उपमान वैशिष्ट्य को प्रदर्शित करने वाला है।

(iii) इसके अलावा विन्ध्य की गुफाओं में मेघों के प्रविष्ट होने से उनके भीतर कौंध रही विद्युत् की स्थिति के रूप में जृम्भकास्त्रों का लाल पीले रूप में वर्णन किया गया है, जो अत्यन्त प्रभावी एवं चित्ताकर्षक बन पड़ा है।

(iv) कवि का अभिप्राय है कि घोर अन्धकार के तुरन्त बाद, तीव्र प्रकाश के कारण सैनिक, अत्यधिक कष्ट से गहन निद्रामग्न होकर निश्चेष्ट हो गए हैं।

(v) यहाँ पर महाकवि ने प्रलयकाल के विन्ध्यशिखरों के साथ रूप, गुण, क्रिया आदि की दृष्टि से जृम्भकास्त्रों की भयंकरता की समानता दिखाने का सुन्दर प्रयास किया है।

(vi) उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, ओजगुण, भयानक रस, गौड़ी रीति तथा शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

(vii) जृम्भकास्त्र तथा प्रलयकालीन विन्ध्य पर्वत के शिखरों का साम्य अत्यन्त प्रभावी शैली में प्रस्तुत किया गया है।

(viii) पौराणिक मान्यता के अनुसार एक कल्प में एक सहस्र चतुर्युग होते हैं, उसके बाद प्रलय का विधान किया गया है।

(ix) 'कडार' से अभिप्राय यहाँ लालिमा युक्त पीले रंग से है।

व्या.टि.— (i) प्रकर्षेण लीयते जगत् अस्मिन्, इति।

(ii) प्राचेतसोऽपत्यं पुमान् प्राचेतसः, तस्मात्, प्रचेतस्+अण्, प.वि.।

(iii) पातालस्य उदरे ये कुँजाः तेषु पुंजितानि यानि तमांसि तानि इव श्यामानि तैः। कल्पस्य आक्षेपः अत्र ये कठोराः भैरवश्च तैः व्यस्ताः।

(iv) **पुंजित—** पुंजः संजातः अस्य, √पुंज्+इतच्। एकत्र हुए।

(v) **उत्तप्तः—** उत्+ √तप्+क्त। **आक्षेपः—** आ+ √क्षिप्+घञ्

(vi) **अभिस्तीर्यते—** अभि+ √स्तृ+लट्(कर्मणि), प्र.पु., ए.वचन।

संस्कृत व्याख्या— रसातलस्य मध्यभागेषु ये कुंजाः तेषु एकत्रीभूतानि यानि तमांसि तानि इव श्यामवर्णानि तैः उत्तप्तं देदीप्यमानं यत् पित्तलं, तस्य कपिलवर्णः ज्योतिरिव देदीप्यमानः प्रकाशः येषां तानि तैः एवं विधैः जृम्भकास्त्रैः 'जृम्भक' नाम अस्त्रैः प्रलयान्ते ये दृढ़ाः भैरवाः भयंकराः मेघाः येषु तानि अथ च तडिद्भिः पिंगलवर्णानि गुहाः येषां तानि तैः विन्ध्यपर्वतस्य कूटैः शिखरैः इव नभः समाच्छाद्यते व्याप्यते, इति।

(15) **'चन्द्रिका' कृशाश्वेति—** जृम्भकास्त्रों के लव के पास आने के विषय में शंका करने पर, चन्द्रकेतु इन्हें वाल्मीकि से प्राप्त होने की बात करता है, तो सुमन्त्र पुनः स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि—

इन जृम्भकास्त्रों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं है, क्योंकि ये तो वस्तुतः कृशाश्व के पुत्र के समान हैं, क्योंकि उन्होंने ही इनका सर्वप्रथम आविष्कार किया था। उसके बाद कृशाश्व से ये विश्वामित्र के पास पहुँचे। तत्पश्चात् उन विश्वामित्र ने भी यज्ञ की रक्षा करने के उपहार रूप में शास्त्रोक्त विधि से श्रीराम को इन्हें प्रदान किया, किन्तु इन गुरुओं के क्रम में वाल्मीकि का नाम कहीं भी नहीं है। इसलिए उनसे इनके प्राप्ति की कोई सम्भावना नहीं की जा सकती है।

विशेष– (i) जृम्भकास्त्रों के आगमक्रम का उल्लेख हुआ है।

(ii) महाकवि की सरल भाषा एवं तार्किक शैली भी दर्शनीय है।

(iii) सम्प्रदाय का अर्थ यहाँ गुरु–शिष्यपरम्परा से है।

(iv) जृम्भकास्त्रों की अनेकत्र स्थिति होने से पर्याय अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा अनुष्टुप् छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) **कृशाश्वतनयाः**– कृशाश्वस्य तनयाः, इति, ष.तत्पुरुष।

(ii) **कौशिकः**– कुशिकस्य अपत्यं पुमान्, इति। कुशिक+अण्।

(iii)**गताः**– √गम्+क्त, प्र.,ब.व.। **सम्प्रदायः**–सम्+प्र+ √दा+युक्।

संस्कृत व्याख्या– एते जृम्भकाः आयुधविशेषाः कृशाश्वस्य महर्षेः तनयाः इव सन्ति, तेनैव आविष्कृताः एताः इति कारणेन। तस्मादपि कृशाश्वात् एते विश्वामित्रशिष्याय तस्मै दत्ताः। अथ च तस्मात् सम्प्रदायानुसारं तत्र भवति रामभद्रे स्थिताः, इति यावत्। एतदेव एतेषां जृम्भकास्त्राणां आगमक्रमो वर्तते। क्रमेऽस्मिन् महर्षेः वाल्मीकेः नाम न आयाति कुत्रापि। अनेन अस्य बालकस्य समीपे एतेऽस्त्राः कुतः आयान्ति इति चिन्तनस्य विषयोऽस्ति, इति भावः।

(16) 'चन्द्रिका' यदृच्छेति– चन्द्रकेतु और लव ये दोनों कुमार आपस में एक दूसरे को देखकर, उत्पन्न होने वाले, प्रेम के विषय में कहते हैं कि–

इसे देखने के बाद, ऐसा प्रतीत होता है मानो दैव के अधीन रहने वाला हमारा मिलन हो गया हो, पुनः इसके कारण के बारे में कहते हैं कि क्या यह गुणों की अतिशयता से होने वाला उत्कर्ष है? या फिर पूर्व के जन्मों का हम दोनों का कोई अत्यधिक प्राचीन परिचय

है? अथवा फिर भाग्यवश होने वाला कोई अज्ञात सम्बन्ध कारण है? जो मेरे हृदय को इसके प्रति बलपूर्वक एकाग्र बना रहा है अर्थात् आकृष्ट कर रहा है।

विशेष– (i) महाकवि की भाग्यवादिता तथा पुनर्जन्म में दृढ़ आस्था की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) यहाँ प्रयुक्त 'परिचय' एवं 'सम्बन्ध' ये दोनों ही पद क्रमशः 'परिचित' तथा 'सम्बन्धी' अर्थ में लाक्षणिक हैं।

(iii) कवि की इस मान्यता की अभिव्यक्ति हुई है कि लोगों का एक दूसरे से मिलन, उसके पूर्वजन्म के सम्बन्धों के आधार पर होता है, जिसमें भाग्य की महती भूमिका होती है।

(iv) यहाँ चित्त के परस्पर आकर्षण में तीन कारणों की कल्पना की गयी है तथा उनमें अनिश्चय होने से संदेह अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा शिखरिणी छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(v) इसीप्रकार हृदय के परस्पर आकर्षण में कारणों के वर्णन होने से काव्यलिंग अलंकार तथा दोनों अलंकारों का अंगांगिभाव संकर का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(vi) पूर्वजन्म के संस्कार किसप्रकार मन में उद्बुद्ध होते हैं, इस विषय में नाटककार कालिदास (शाकुन्तलम्–पंचम अंक) तथा काव्यकार कालिदास ने (रघुवंश–7/15) में भी विचार प्रयुक्त किए हैं।

व्या.टि.– (i) या ऋदिच्छा तया संवादः। गुणानां गणः तेषाम्।

(ii) **रचयति**– √रच्+लट्+णिच्, प्रथमपुरुष, एकव., बना रहा है।

(iii) **जन्मान्तर0**– जन्मान्तरेषु निबिड़ं यथा भवति, तथा बद्धः।

(iv) विधेः वशात्, षष्ठी तत्पुरुष। न विदितः, इति नञ् समास।

संस्कृत व्याख्या– एतस्मिन् लवौ चन्द्रकेतौ वा दृष्टे सति, दैवाधीनः समागमः, दैवात् समरूपता तुल्यता वृत्तिः वा, किमु इति वितर्के वर्तते। एतत् सम्मेलनं क्षत्रियाभिमानित्वम् अविगुणसमवायस्य उत्कर्षो–ऽस्ति किम्? अथवा अन्यस्मिन् जन्मनि जन्मान्तरेऽपि वा घनिष्ठतया निबद्धः पुराणः खलु परिचयोऽस्ति किम्? अथवा दैवाधीनतया अज्ञातः कश्चनः अयम् एवंरूपः यः वक्तुम् अशक्यः, आत्मीयो सम्बन्धः स्वजात्यः

संसर्गोऽस्ति, किमु? मम लवस्य चन्द्रकेतोः वा हृदयमेकाग्रतां सावधानतां वा यथा भवति तथा सम्पादयति। सन्देहः काव्यलिंगश्चालंकारौ।

(17) 'चन्द्रिका' अहेतुरिति– इसके बाद, सारथि सुमन्त्र, इन दोनों कुमारों के परस्पर अनुराग के विषय में कहते हैं कि–

यह जो किसी भी कारण के अभाव में, अपने आप ही एक दूसरे के प्रति अनुराग होता है, इसे रोक पाने का कोई उपाय भी नहीं होता है, क्योंकि अनुरागरूपी यह सूत्र तो वस्तुतः एक दूसरे के हृदयों को मानो इसप्रकार सिल देता है अर्थात् जोड़ देता है, जिसे अलग करना सामान्य स्थिति में सम्भव ही नहीं होता है।

विशेष– (i) महाकवि ने स्वाभाविक एवं शाश्वत प्रेम को सुन्दर शैली में परिभाषित किया है।

(ii) यहाँ उत्तरार्द्ध से पूर्वार्द्ध के अर्थ का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास तथा स्नेह पर 'तन्तु' का आरोप करने से रूपक अलंकार और साथ ही इन दोनों अलंकारों की संसृष्टि, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग दर्शनीय बन पड़ा है।

(iii) ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि के जीवन में इसप्रकार का कोई स्नेहिल निःस्वार्थी मित्र अवश्य रहा होगा, जिसकी अनुभूतियों को कवि ने प्रस्तुत श्लोक में उकेरा है।

व्या.टि.–(i)जीविनाम्– जीवः अस्ति येषां तेषाम्, इति। जीव+इनि।

(ii) **सीव्यति–** √सिव् (तन्तुसन्ताने)+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iii) **पक्षपात–** पक्षेपातः, इति। अविद्यमानः हेतुः यस्य सः, नञ्।

(iv) **प्रतिक्रिया–** क्रियायाः प्रतियोगिनी क्रिया, प्रतिविधिः।

(v) **स्नेहात्मकः–** स्नेहः आत्मा यस्य सः, बहुव्रीहि समास।

संस्कृत व्याख्या– **यथा तन्तुभिः वस्त्राणि द्विधा भूतानि अपि एकीक्रियन्ते, तथैव योऽनुरागः पक्षपातरहितः, निःस्वार्थः, स्वाभाविकश्च भवति, तस्य काऽपि प्रतिक्रिया प्रतिकारो वा न भवति। यतोहि अयम् आन्तरिकः सम्बन्धः सर्वेषां प्राणिनां स्नेहवशात् जायते। स्नेहोऽयं प्राणिषु स्वयमेव देवयोगवशात् भवति, अस्मिन् पूर्वेषां जन्मनां कृत्यानि कारणानि भवन्ति, इति भावः।**

(18) 'चन्द्रिका' एतस्मिन्निति– तत्पश्चात् ये दोनों कुमार, इस स्वाभाविक रूप से होने वाले अनुराग के कारण, आपस में होने वाले युद्ध के विषय में भी संशय करते हुए कहते हैं कि–

चिकने तथा श्रेष्ठतम राजसी वस्त्रों से सुशोभित इसके शरीर पर, इसप्रकार के इन तीखे बाणों को भला कैसे छोड़ा जा सकेगा, क्योंकि इस शरीर से मिलने पर तो मेरे मन में इसके आलिंगन की अभिलाषा के कारण मेरा शरीर रोमांचित हो रहा है, तब भला मैं इस शरीर पर इन कठोर बाणों को छोडने में समर्थ कैसे हो सकूँगा?

विशेष– (i) उपुर्यक्त विचार लव और चन्द्रकेतु दोनों ने ही एक साथ ही व्यक्त किए हैं। दोनों के गहन प्रेम की व्यंजना हो रही है।

(ii) यहाँ लव द्वारा धारण किए गए मृगचर्म के लिए ही उत्कृष्ट राजसी वस्त्रों की कल्पना की गयी है, साथ ही, दोनों कुमारों का अन्तर्द्वन्द्व भी प्रदर्शित हुआ है।

(iii) 'राजपट्टकान्ते' पर में इव का अर्थ लुप्त होने से लुप्तोपमा तथा राजपट्ट के समान कान्तियुक्त होना, आलिंगन में हेतु होने से वाक्यार्थ हेतुक काव्यलिंग अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

(iv) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति व प्रहर्षिणी छन्द का सुन्दर प्रयोग।

व्या.टि.–(i) मसृणितं च तत् राजपट्टं तस्मै कान्तं मनोज्ञं तस्मिन्।

(ii) मसृण+णिच्+क्त। **कान्त–** √कमुकान्तौ+क्त, उपधा दीर्घ।

(iii) **मोक्तव्या–** √मुच्+तव्यत्। **परिरम्भण–** परि+ √रभ्+ल्युट्।

(iv) **अभिलाष–** अभि+ √लष्+घञ्। **उन्मीलत्–**उत्+ √मील्+शतृ।

संस्कृत व्याख्या– **संस्कारेण चिक्कणीकृतो यो राजपट्टः श्रेष्ठ–वस्त्रम्, तादृशे कमनीये एतस्मिन् मृदुलशरीरे मया कथमिव शराः मोक्तव्याः भविष्यन्ति। नैवेदं शरीरं सायकनिपातयोग्यं वर्तते, इति भावः। यस्य शरीरस्य प्राप्ते सति, मदीयं शरीरं परिरम्भमाणस्य आलिंगनस्य अभिलाषात् विकसत् रोमांचकानां समूहो विद्यते, इति।**

(19) 'चन्द्रिका' किमेति– इसके बाद, दोनों कुमार अपने क्षत्रिय धर्म के अनुसार आपस में प्रेमव्यवहार की अपेक्षा युद्ध को अनिवार्य मानते हुए कहते हैं कि–

इसके अलावा जो व्यक्ति पूर्णरूप से तेजस्वी हो, तो उसके साथ शस्त्र को ग्रहण करने के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय भी तो नहीं होता है अर्थात् शस्त्र का प्रयोग करना ही उसके तेज को शान्त करने का एकमात्र उपाय होता है। इसीप्रकार दूसरी बात यह भी है कि यदि शस्त्र का निशाना कोई शूरवीर नहीं बन पाता है, तो ऐसे शस्त्र को धारण करने से भी तो कोई लाभ नहीं है और यदि शस्त्र को उठा ही लिया गया है तो उसके बाद युद्ध से पराङ्मुख होने पर भला यह लव या चन्द्रकेतु क्या कहेगा? वस्तुस्थिति तो यह है कि निर्मम वीररस से युक्त वीर पुरुषों का आचरण एवं व्यवहार दोनों ही प्रेमविषयक उनके व्यवहार में बाधा पहुँचाने वाले होते हैं।

विशेष– (i) शौर्य सम्पन्न दोनों कुमारों के पराक्रमी स्वभाव एवं अन्तर्द्वन्द्व की प्रभावशाली अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) वस्तुतः यहाँ पर पराक्रमशाली वीरों के साथ ही युद्ध करने से शस्त्र को धारण करने की सार्थकता को प्रदर्शित किया गया है।

(iii) 'समय' पद का प्रयोग आचार, नियम, सिद्धान्त, मर्यादा आदि अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए हुआ है।

(iv) चतुर्थ पाद में प्रयुक्त सामान्य कथन से प्रथम तीन पादों में कहे गए, विशेष अर्थ का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार।

(v) प्रसाद गुण, लाटी रीति एवं शार्दूलविक्रीड़ित छन्द ।

व्या.टि.– (i) **जायेत–** √जन्+विधिलिङ्, आत्मने, प्रथम पु., ए.व.।

(ii) **बाधते–** √बाध्+लट्, आत्मने, प्रथम पुरुष, एकवचन।

(iii) **वक्ष्यति–** √ब्रू–(वच्)+लृट्, प्रथम पुरुष, एकवचन। कहेगा।

(iv) **आक्रान्त–** आ+√क्रम्+क्त। **उद्यत–** उत्+√यम्+क्त।

संस्कृत व्याख्या– अन्यच्च लब्धं परिपूर्णं तेजो येन तस्मिन्, अस्मिन् कुमारे शस्त्रं विना अन्या का गतिः वर्तते? नैव काऽपि, इति। अतएव शस्त्रप्रयोगस्तु कर्तव्यः खलु। अपि च यदि ईदृशः वीरः पुरुषः शस्त्रस्य लक्ष्यभूतो न भवेत्, तदा तेन शस्त्रेण को लाभः? नैव कोऽपि इति। यतोहि वीरास्तु वीराणामेव मानमर्दनार्थमेव शस्त्रं धारयन्ति, इति। अथ च आयुधे समुद्यते सति, यदि अहं युद्धात् विमुखो भविष्यामि, इति

तदा अयं कुमारः मम विषये किं कथयिष्यति? अतएव युद्धात् भिन्नः कोऽपि उपायो न अस्यां परिस्थितौ, इति भावः।

(20) 'चन्द्रिका' मनोरथस्येति– तत्पश्चात् लव को देखकर, उसके सीतापुत्र होने की परिकल्पना करके, स्वयं ही उसका निषेध करते हुए सारथि सुमन्त्र अपनी आँखों में आँसू भरकर कहते हैं कि–

हे हृदय! तुम सर्वथा विपरीत बात को सोचकर व्यर्थ ही परेशान हो रहे हो, क्योंकि पुत्ररूपी मनोरथ का, जो सीतारूपी मूल कारण था, उसे तो दुर्भाग्य द्वारा बहुत पहले ही हमसे छीन लिया गया है। इसलिए पूर्व में ही काटी गयी लता से इससमय, पुष्प की उत्पत्ति भला कैसे सम्भव है? अर्थात् यह सीता का पुत्र कदापि नहीं हो सकता है।

विशेष– (i) सीता की उपमा लता से तथा पुत्र की पुष्प से अतीव मनोरम बन पड़ी है। सुमन्त्र का भावुक हृदय प्रदर्शित हुआ है।

(ii) कवि का अभिप्राय है कि जो सीता बहुत पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो गयी है, उसके पुत्र की सम्भावना करना उचित नहीं है।

(iii) श्लोक में 'बीज' शब्द सीता के लिए तथा 'अंकुर' पद उसके पुत्र के लिए प्रयुक्त हुआ है। करुण रस की प्रभावी अभिव्यक्ति।

(iv) माधुर्य गुण, वैदर्भी रीति, दृष्टान्त अलंकार, अनुष्टुप् छन्द।

व्या.टि.–(i) **पूर्वलूनायाम्–** पूर्वा लूना पूर्वलूना, तस्याम्।√लू+क्त।

(ii) **आदितः–** आदि+तसिल्। सप्तमी के अर्थ में तसिल्।

(iii) **हृतम्–** हृ+क्त (कर्मणि)। **प्रसव–** प्र+√सू+अप् (अ)।

(iv) **उद्भवः–** उद्+√भू+ अप् (अ)।

संस्कृत व्याख्या– सुतरूपस्य अभिलाषस्य यत् सीतारूपं मूल–कारणम् आसीत्, तत्तु दुर्दैवेन प्रथमतः वै अवलुप्तम्। वस्तुतः पूर्वे लूना या लता, तस्यां लतायां वल्लर्यां प्रसूनस्य उत्पत्तिः कथं स्यात्, इति नैव कदापि इत्यर्थः। दृष्टान्तस्य शोभा वर्तते श्लोकेऽस्मिन्निति।

(21) 'चन्द्रिका' कथमेति– लव को पैदल युद्ध करते हुए देखकर, चन्द्रकेतु अपने सारथि सुमन्त्र से स्वयं भी रथ से नीचे उतरने की अनुमति माँगता है तो सुमन्त्र स्वयं को धर्मसंकट में पड़ा हुआ मानते हुए कहता है कि–

वस्तुतः मेरे समान युद्ध के नियमों को भलीप्रकार जानने वाला, व्यक्ति, यदि वीरपुरुष इस चन्द्रकेतु को रथ से उतरने के लिए मना करता है, तो भला यह कैसे सम्भव है? या फिर एकमात्र साहस प्रधान है, जिसमें ऐसे इस कार्य की अनुमति भी कैसे प्रदान कर सकता है?

विशेष– (i) महाकवि ने सुमन्त्र के अन्तर्द्वन्द्व को अत्यन्त प्रभावी अभिव्यक्ति प्रदान की है, क्योंकि चन्द्रकेतु को रथ से उतरकर अनुमति प्रदान करना, प्राणों का संकट होने से, इसके हित में नहीं है तथा ऐसा न करने पर युद्ध के नियमों का उल्लंघन होता है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में सुमन्त्र की मनःस्थिति की उलझन के अर्थ की प्रतीति होने से अर्थापत्ति अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) **अनुष्ठानम्**– अनु+√स्था+ल्युट्, ष्टुत्व सन्धि।

(ii) **प्रतिषेधतु**– प्रति+√षिध्+लोट्, प्रथमपुरुष, ए.व.। निषेध करे।

(iii) **अभ्यनुजानातु**– अभि+अनु+√ज्ञा+ लोट्, प्रथमपुरुष, ए.व.।

संस्कृत व्याख्या– यतोहि मादृशः युद्धनियमविशेषज्ञः जनः वीरपुरुषोचितम् इदम् अनुष्ठानं युद्धकार्यं केन प्रकारेण निषेधतु, अथवा केन विधिना साहसमात्रसारं कार्यम् एतत् स्वीकुर्यादिति? अनेन प्रकारेण सुमन्त्रोऽहं अतीवदुविधायां प्रपन्नोऽस्मि, किं करोमि, इत्यर्थः।

(22) 'चन्द्रिका' एष इति– अन्त में चन्द्रकेतु द्वारा युद्ध के नियमों के अनुसार रथ से नीचे उतरने का निर्णय लेने पर, सुमन्त्र उसकी वीर विषयक धर्मनिष्ठा की प्रशंसा करते हुए कहता है कि–

वस्तुतः तुम्हारा यह वीर के स्वागतयोग्य आचरण, युद्ध के नियमों के सर्वथा अनुकूल ही है। यही तो अत्यधिक प्राचीन एवं सनातन धर्म है, जिसका पालन करने का तुमने निर्णय किया है। साथ ही, रघुवंश के श्रेष्ठ वीरों के वीरोचित व्यवहार की परिपाटी भी यही है। इसलिए तुम्हारा इस विषय में यह निर्णय लेना सर्वथा उचित है, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है।

विशेष– (i) सुमन्त्र तथा चन्द्रकेतु दोनों के ही उज्ज्वल चरित्र को उद्घाटित किया गया है।

(ii) चन्द्रकेतु के वीरोचित एवं धर्मानुकूल विचारों का उत्कर्ष होने से उदात्त अलंकार तथा एक ही वस्तु का अनेक प्रकार से उल्लेख होने से उल्लेख अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, धर्मवीर रस तथा अनुष्टुप् छन्द।

व्या.टि.– (i) संग्रामे भवः, इति सांग्रामिकः। संग्राम+ठक्–इक्।

(ii) **चारित्रम्**– √चर्+इत्र(स्वार्थे)+अण्, नपु.,प्र.वि., एकवचन।

(iii) **पद्धति**– पद्भयां हन्यते, इति। पाद+√हन्+क्तिन्।

संस्कृत व्याख्या– अयं वीरस्य सम्मानरूपव्यवहारः सामरिकः नैतिकाचारोऽस्ति। एष च अतीवप्राचीनः धर्मः वीराणां शिष्टाचारो विद्यते। यतोहि इयं तावकीना स्वागतशैली रघुवंशानां श्रेष्ठानां शूराणां आचार–परम्परा खलु अस्ति। नैव विषयेऽस्मिन् संशयलेशोऽपि वर्तते।

(23) 'चन्द्रिका' इतिहासमिति– इसके पश्चात् चन्द्रकेतु अपने सारथि सुमन्त्र की उचित टिप्पणी की प्रशंसा करते हुए कहता है कि–

हे माननीय, आप ही तो वयोवृद्ध होने से रघुकुल के सभी प्रकार की परम्पराओं से पूर्णरूप से परिचित हैं तथा आपने तो इतिहास, पुराण तथा सभी धर्मशास्त्रों का गहन अध्ययन किया हुआ है। इसलिए इस सन्दर्भ में आपका परामर्श सर्वथा उचित ही है।

विशेष– (i) चन्द्रकेतु की अपने सारथि वयोवृद्ध सुमन्त्र के प्रति आदर एवं श्रद्धाभाव की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) महाकवि भवभूति के समाज में इतिहास, पुराण तथा धर्मशास्त्र की महत्ता प्रदर्शित हुई है।

(iii) इतिहास को विद्वानों ने इसप्रकार परिभाषित किया है–

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
पुरावृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते।।

(iv) इसीप्रकार पुराण के विषय में भी कहा गया है कि–

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितश्चैव पुराणं पंच लक्षणम्।।

(v) क्रिया के साथ इतिहास, पुराण का सम्बन्ध होने से तुल्ययोगितालंकार, अनुष्टुप् छन्द, प्रसादगुण का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) धर्मप्रवचनानि– धर्माः प्रोच्यन्ते यैः तानि।
(ii) रघूणाम्– रघोः अपत्यानि राघवः, तेषाम्। प्र+ √वच्+ल्युट्।
(iii) स्थिति– √स्था+क्तिन्। जानन्ति– √ज्ञा+लट्, प्र.पु.,ब.व.।

संस्कृत व्याख्या– चन्द्रकेतुः सुमन्त्रं प्रति कथयति यत् भवतः वचनं अनुपमम् अतएव ग्राह्यमस्ति। इतिहासं पुराणानि, धर्मशास्त्रस्य च व्याख्यानानि यानि सन्ति तानि सर्वाणि भवता अधीतानि। एवं च रघुवंशोत्पन्नानां नृपाणां वंशपरम्परामपि भवान् सम्यक्रूपेण जानाति। अनेककारणेन भवतः वचनं ग्राह्यमेव, इति भावः।

(24) 'चन्द्रिका' जातस्येति– तत्पश्चात् सुमन्त्र, आनन्दमिश्रित अश्रुओं के साथ प्रेमपूर्वक चन्द्रकेतु का आलिंगन करके कहता है कि–

इतनी कम आयु में भी वीर क्षत्रियधर्म का पालन करने वाले, चन्द्रकेतु के कारण इस सुमन्त्र को गर्व है। हे वत्स! चन्द्रकेतु, इन्द्र पर विजय प्राप्त करने वाले, मेघनाद को भी मारने वाले, तुम्हारे पिता लक्ष्मण को भी उत्पन्न हुए अभी दिन ही कितने हुए हैं? अर्थात् कुछ भी नहीं, किन्तु उसी लक्ष्मण के पुत्र तुम भी वीरों के समान ही, युद्ध के धर्म का पालन कर रहे हो, यह अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है और मैं समझता हूँ कि तुम्हारे इस निर्णय से आज निश्चय ही सौभाग्यवश महाराज दशरथ का वंश प्रतिष्ठा को प्राप्त हो गया है।

विशेष– (i) चन्द्रकेतु द्वारा युद्ध के परम्परागत नियमों का पालन करने से सुमन्त्र की हार्दिक प्रसन्नता अभिव्यक्त हुई है।

(ii) सुमन्त्र के सामने ही लक्ष्मण का जन्म होने के कारण, उन्हें यहाँ अत्यन्त छोटा कहा है, फिर उनके पुत्र की तो बात ही क्या है?

(iii) यहाँ कुल की प्रतिष्ठा के लिए वीरधर्म के पालन को कारण के रूप में प्रस्तुत करने से काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(iv) रावण के पुत्र मेघनाद ने इन्द्र पर भी विजय प्राप्त की थी, इसलिए उसका एक नाम 'इन्द्रजित्' भी है। उसे भी मारने से लक्ष्मण का शौर्यातिशय अभिव्यंजित हुआ है।

(v) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा वसन्ततिलका छन्द दर्शनीय।

व्या.टि.– (i) इन्द्रं जयति, इति इन्द्रजित्, तस्य (उपपद तत्पुरुष)

(ii) **इन्द्रजित्–** इन्द्र+ √जि+क्विप्, (×) तुकागम।
(iii) **अनुतिष्ठति–** अनु+ √स्था+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।
(iv) **निहन्तुः–** नि+ √हन्+तृच्, षष्ठी विभक्ति, एकवचन।
(v) **प्रतिष्ठाम्–** प्रतिष्ठति अनया, इति, प्रति+ √स्था+ अङ्(भावे)

संस्कृत व्याख्या– हे वत्स, चन्द्रकेतो! मेघनादस्य वधकर्तुः स्नेह–पात्रस्य ते पितुः लक्ष्मणस्यापि उत्पन्नस्य एतानि कियन्ति नाम दिनानि व्यतीतानि? तस्य लक्ष्मणस्य अपत्यम् असि त्वं वीरपुरुषोचितम् आचरणं करोषि, सौभाग्यवशात् दशरथस्य महाराजस्य वंशः प्रतिष्ठाम् सम्प्राप्तः।

(25) 'चन्द्रिका' अप्रतिष्ठे, इति– अपने सारथि सुमन्त्र की बात सुनकर चन्द्रकेतु अपने पारिवारिक गहन दुःख का वर्णन करते हुए कष्टपूर्वक कहता है कि–

हमारे रघुकुल में सबसे बड़े आर्य तात श्रीराम के निःसन्तान होने के कारण, इस वंश के प्रतिष्ठित न होने पर भी उनके सन्तान होने के गौरव अर्थात् सम्मान से रहित होने पर, हमारे वंश की प्रतिष्ठा भला कैसे हो सकती है? इसी सन्ताप के कारण तो हमारे तीन अन्य पिता भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न भी तो दुःख का ही अनुभव करते हैं।

विशेष– (i) चन्द्रकेतु की पारिवारिक जनों के प्रति दायित्व एवं सम्मान की भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है, क्योंकि सामान्य रूप से बड़े भाई का पुत्र ही राज्य को प्राप्त करता है। उन्हीं के निःसन्तान होने से कुल की प्रतिष्ठा भला कहाँ?

(ii) यहाँ 'त्रयः पितरः' पदों से अभिप्राय भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न से है, साथ ही, पितृगणों की भी अभिव्यंजना हो रही है।

(iii) इसीप्रकार का 'प्रतिष्ठा' पद से कोई प्रतिष्ठा नहीं है, इस अर्थ की व्यंजना होने से अर्थापत्ति अलंकार का प्रयोग भी दर्शनीय है।

(iv) राम विषयक रतिभाव के अंगभूत करुणरस के होने से रसवद् अलंकार, माधुर्य गुण, वैदर्भी रीति तथा अनुष्टुप् छन्द।

व्या.टि.– (i) **अप्रतिष्ठे–** अविद्यमाना प्रतिष्ठा यत्र तस्मिन्, बहु.।
(ii) **तप्यन्ते–** √तप्+लट्, कर्मवाच्य, प्रथमपुरुष, बहुवचन।
(iii) **ज्येष्ठ–** प्रशस्य+इष्ठन्, प्रशस्य को ज्य आदेश, गुण सन्धि।

संस्कृत व्याख्या– अस्माकं वंशज्येष्ठे श्रीरामचन्द्रे निःसन्तानत्वेन प्रतिष्ठाविरहिते सति, अस्य कुलस्य प्रतिष्ठा कथं भवितुं शक्यते? नैव काऽपि इति भावः। एतादृशेन खलु दुःखेन अस्माकं अन्येऽपि त्रि-संख्याकाः तातचरणाः भरतलक्ष्मणशत्रुघ्नाश्च प्रतिक्षणं गहनस्य दुःखस्य दाहम् अनुभवन्ति।

(26) 'चन्द्रिका' यथैन्दाविति– इसके पश्चात् चन्द्रकेतु को देखकर लव, अपने पूर्व अनुभव को ही वीर और वात्सल्य रस के अद्भुत मिश्रण से युक्त बताते हुए कहता है कि–

जिसप्रकार कुमुदिनी चन्द्रमा के उदित होने पर परम आनन्द को प्राप्त करती है, उसीप्रकार इस चन्द्रकेतु को देखकर मेरी दृष्टि अत्यधिक आनन्द को प्राप्त कर रही है, किन्तु रण–रण इसप्रकार की ध्वनि विशेष की कठोर झंकार करने वाली, इस मेरे धनुष की प्रत्यंचा के कारण गूँजते हुए, इस भारी धनुष से प्रेम करने वाली, यह मेरी दाहिनी भुजा तो फिर भी युद्ध करने की अभिलाषा ही कर रही है, धनुर्विद्या का अभ्यास करने से, जिसके आगे के भाग अर्थात् हथेली पर स्पष्टरूप से विकराल घाव विद्यमान हैं।

विशेष– (i) यहाँ उपमा प्रयोग में कुमुदिनीरूप उपमान तथा दृष्टिरूप उपमेय में लिंग–साम्य अत्यन्त आनन्ददायक बन पड़ा है।

(ii) लव का प्रभावी व्यक्तित्व उभर कर आया है, क्योंकि चन्द्रकेतु को देखकर उसके प्रभावी एवं आकर्षक व्यक्तित्व को देखकर, आनन्द की अनुभूति तथा क्षत्रियोचित आचरण के कारण इसी के साथ युद्ध करने की भुजा की अभिलाषा दोनों ही वस्तुतः दर्शनीय है।

(iii) कुछ व्याख्याकारों ने यहाँ पूर्वार्द्ध में श्रृंगार की उद्भावना को माना है, किन्तु कुमार विषयक रति होने से इस स्थल पर वात्सल्य अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, लव के चन्द्रकेतु से बड़ा होने के कारण उसका औचित्य भी असंदिग्ध है।

(iv) प्रस्तुत श्लोक में स्नेह तथा वैर, इन दोनों विरुद्ध भावों के एक साथ वर्णन होने से विषम अलंकार तथा प्रथम चरण में 'यथा' के प्रयोग से उपमा का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(v) इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा कैशिकी वृत्ति तथा उत्तरार्द्ध में ओज गुण, गौड़ी रीति और आरभटी वृत्ति एवं सम्पूर्ण श्लोक में शिखरिणी छन्द का प्रयोग हुआ है।

(vi) इसीप्रकार पूर्वार्द्ध में 'रति' नामक स्थायीभाव तथा वात्सल्य रस एवं उत्तरार्द्ध में उत्साह स्थायीभाव एवं वीररस का प्रयोग है।

(vii) 'रणत्कार' में भाषा की ध्वन्यात्मकता दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **व्रजति–** √व्रज्+लट्, प्रथमपुरुष, ए.व., प्राप्नोति।

(ii) **समुपोढ–** सम्+उप+ √वह्+क्त (सम्प्रसारण से वह्–ऊढ़)

(iii) **गुंजत्–** √गुंज्+शतृ। **धृत–** √धृ+क्त।

(iv) विकचानि विकरालानि व्रणानि मुखे यस्य सः, बहुव्रीहि।

(v) **कलहकामः–** कलहे कामो यस्य सः। बहुव्रीहि समास।

संस्कृत व्याख्या– यथा चन्द्रमसः समुदिते सति कुमुदिनी आनन्दं प्राप्नोति, तथैव अस्मिन् चन्द्रकेतौ मम दृष्टिः आनन्दम् अनुभवति। परं मम खलु अयं दक्षिणो बाहुः युद्धं कर्तुं वांछति। कीदृशोऽयं करः इति कथ्यते– रणत्कारेण इति ध्वनिना क्रूरं यथास्यात् तथा, शब्दं कुर्वन् गुरुः यत् धनुः तस्मिन् धृतं प्रेम येन सः, तथा च विकसितानि भयंकराणि दीर्घाणि शराघातक्षतानि अग्रभागे यस्य सः, एवंविधः ममायं बाहुः, इति।

(27) 'चन्द्रिका' देवस्त्वामिति– इसके बाद, वयोवृद्ध सारथि सुमन्त्र, चन्द्रकेतु के कल्याण की कामना करते हुए कहता है कि–

वे भगवान् भास्कर आपको युद्ध में प्रसन्न रखें, जो आपके कुल के प्रवर्तक अर्थात् स्वामी हैं। इसीप्रकार तुम्हारे गुरुजनों अथवा पूर्वजों के भी गुरु महर्षि वसिष्ठ आपको अभिनन्दित करें। इसके अलावा आपको इन्द्र एवं विष्णु, अग्नि तथा वायु इन सभी देवताओं के तेज एवं बल की एवं गरुड़ के तेज की भी प्राप्ति होवे। इसके साथ ही, श्रीराम तथा लक्ष्मण के धनुष की प्रत्यंचा के टंकाररूपी मन्त्र भी तुम्हें निश्चयपूर्वक विजय प्रदान करावें।

विशेष– (i) महाकवि की उक्त सभी देवों के प्रति गहन आस्था की अभिव्यक्ति हुई है, जिनके आशीर्वाद के लिए यहाँ उल्लेख हुआ है।

(ii) चन्द्रकेतु के लिए युद्ध में विजय की कामना की गयी है।

(iii) यहाँ प्रयुक्त 'मैत्रावरुण' विशेषण वसिष्ठ के लिए प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि ऋग्वेद में इन्हें मित्र तथा वरुण का पुत्र कहा गया है।

(iv) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

(v) इसीप्रकार ज्याघोषरूपी मन्त्र यह अर्थ करने पर रूपक और ज्याघोष को मन्त्र मान लेने से असम्भवद्वस्तुरूपा निदर्शनालंकार।

(vi) किसी भी कार्य की सफलता के लिए वयोवृद्ध लोगों के आशीर्वाद की भारतीय परम्परा रही है, यहाँ उसी का निर्वहण हुआ है।

व्या.टि.– (i) **मैत्रावरुणः**– मित्रश्च वरुणश्च तयोः अपत्यं पुमान्।

(ii) **धिनोतु**– √धिन्व्+ लोट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, प्रीणयतु।

(iii) **अग्निमारुत्**– अग्निश्च मारुतश्च, अग्नामरुतौ, द्वन्द्व समास।

(iv) रामश्च लक्ष्मणश्च तयोः धनुः तस्य ज्यायाः घोषः।

(v) **देयात्**– √दा+आशीर्लिङ्, प्रथमपुरुष, ए.वचन, आ–ए आदेश।

संस्कृत व्याख्या– सूर्यः देवः यः तव कुलस्य आदिपुरुषोऽस्ति, संग्रामभूमौ अवतीर्णस्य ते प्रीणयिता भवतु। यश्च तव गुरुणाम् कुलस्य ज्येष्ठानामपि गुरुः अस्ति, सः भगवान् वसिष्ठः त्वां प्रशंसतु। इन्द्रस्य विष्णोः अग्नेः मरुतः एते देवाः गरुड़श्च एतेषां सर्वेषां बलं तेऽस्तु। रामलक्ष्मणयोः धनुषः ज्यायाः घोषः तस्य च मन्त्रः त्वां विजयं ददातु।

(28) 'चन्द्रिका' वयमपीति– चन्द्रकेतु के साथ वार्तालाप के प्रसंग में लव, अपने क्रोध का कारण सैनिकों की गर्वोक्ति को बताते हुए कहता है कि–

वन में निवास करने वाले हम भी इसप्रकार के यज्ञ का विध्वंस करने वाले नहीं हैं। इसके अलावा इस संसार में ऐसा कौन व्यक्ति होगा, जो गुणों के कारण उन राजा राम का अत्यधिक आदर न करता हो अर्थात् सभी लोग उनका आदर उनके गुणों के कारण करते हैं, किन्तु फिर भी अश्वमेध यज्ञ की रक्षा करने वाले, तुम्हारे इन सैनिकों के उन वचनों से वस्तुतः सम्पूर्ण क्षत्रिय समुदाय का ही अपमान हुआ है, इसीलिए क्रोध को बढ़ाने वाले, उस कथन से ही मुझमें क्रोधरूपी विकार की उत्पत्ति हुई है अर्थात् मैं वस्तुतः अश्व की रक्षा करने वाले

सैनिकों की गर्वोक्ति के कारण ही क्रुद्ध हुआ हूँ, अन्यथा मैं तो यज्ञ करने वाले, राम के गुणों के कारण उनका आदर ही करता हूँ।

विशेष– (i) लव द्वारा चन्द्रकेतु के समक्ष, अपने क्रोध के कारण का कथन किया गया है तथा उसकी यज्ञ–प्रियता तथा गुणों का आदर करने से प्रभावी एवं स्वाभिमानी व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति भी हुई है।

(ii) श्लोक के द्वितीय चरण में राम का आदर तो उनके गुणों के कारण सभी करते हैं, इस अर्थ की प्रतीति होने से अर्थापत्ति अलंकार।

(iii) इसीप्रकार अश्वहरणरूप कार्य के कारण के रूप में, चतुर्थ चरण में प्रयुक्त, क्रोध के हेतु रूप में वर्णित करने से काव्यलिंग।

(iv) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, वीररस तथा हरिणी छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्या.टि.–(i) प्रायेण एवं विधाः, इति, एवं प्रायाः। सुप्सुपा–समास।

(ii) **क्रतुप्रतिघातिनः**– क्रतु+प्रति+ √हन्+णिनि प्र.वि., ब.व.।

(iii) **रक्षिणाम्**– √रक्ष्+णिनि(ताच्छील्ये),**आक्षेपः**–आ+ √क्षिप्+घञ्।

(iv) **व्याहारः**– वि+आ+ √हृ+घञ्। **विकृतिम्**– वि+ √कृ+क्तिन्।

(v) **अकरोत्**– √कृ+लङ्, प्र.पु., ए.व.। प्रचण्डस्य भावः तया।

संस्कृत व्याख्या– लवः कथयति– यद्यपि वयमपि यज्ञेषु विघ्नानां आधायकाः न स्मः। नैव च अस्माकं भगवति गुणवति रामे मनागपि द्वेषो वर्तते। यतोहि एवंविधम् अनेकगुणसम्पन्नं रामं कः समादरदृशा न पश्यति? सर्वे खलु दृक्ष्यन्ति एव, इति भावः। तथापि अश्वरक्षकाणां सैनिकानां मुखात् सर्वक्षत्रियेषु आक्षेपरूपां प्रचण्डाम् उक्तिं श्रुत्वा अस्माकं चित्ते इयं विकृतिः आगता, एतदेव युद्धस्य कारणमस्ति, इति।

(29) 'चन्द्रिका' ऋषयोरिति– पुनः राम को विनम्र तथा मृदुल वाणी वाला कहते हुए लव, गर्वयुक्त वाणी के विषय में कहता है कि–

ऋषियों ने मतवाले तथा गर्वयुक्त लोगों की वाणी को 'राक्षसी' कहा है, क्योंकि वह सभी प्रकार के विवादों को उत्पन्न करने वाली है और समाज में तिरस्कार एवं अपमान का कारण भी होती है।

विशेष– (i) अहंकारपूर्ण वाणी को राक्षसी बताते हुए, निन्दा की गयी है, इससे महाकवि की मृदुल वाणी की भी अभिव्यंजना हुई है।

(ii) राक्षसी वाणी का जीवन में प्रयोग, मानो अनेक प्रकार के झगड़ों को आमन्त्रित करता है, अतः उसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(iii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है।

(iv) यहाँ 'निष्कृतिः' के स्थान पर 'निर्ऋतिः' पाठभेद भी मिलता है, जिसका अर्थ दरिद्रता या दुर्भाग्य अर्थ करना होगा।

(v) वाणी के विषय में इसीप्रकार के विचार अन्यत्र भी अनेक स्थलों पर अभिव्यक्त किए गए हैं–

वाङ्माधुर्यात् सर्वलोकप्रियत्वम्। वाक्पारुष्यात् सर्वलोकाप्रियत्वम्।

व्या.टि.– (i) **उन्मत्त**– उद्+ √मद्+क्त। **दृप्त**– √दृप्+क्त।

(ii) **राक्षसीम्**– रक्षसाम् एषा, इति रक्षस्+अण्+ङीष्, स्त्री.द्वि.ए.व.।

(iii) **आहुः**– √ब्रू+लट्,प्र.पु.ब.व.। निर्+ √कृ+क्तिन्,स्त्री.प्र.,वि.ए.व.।

संस्कृत व्याख्या– **ऋषिजनाः विक्षिप्तगर्वितयोः वाणीं राक्षसोचितां कथयन्ति। सा वाणी खलु सर्वप्रकाराणां वैराणां कलहानां वा उत्पत्ति–भूमिः, कारणं वा भवति, इति। एतादृशी सा वै राक्षसी वाणी जनस्य समाजे तिरस्कारस्य अपमानस्य वा हेतुः भवति, इति।**

(30) **'चन्द्रिका' काममिति**– इसी क्रम में लव फिर से कहता है–

दैवी अर्थात् मृदुल वाणी तो कामधेनु के समान लोगों की मनोकामनाओं को पूरा करने वाली है, अकल्याणों को उनसे दूर भगाती है, यश को उत्पन्न करती है एवं शत्रुओं को नष्ट करने वाली है। इसीलिए तो विद्वान् लोग पवित्र, शान्त तथा कल्याणों को उत्पन्न करने वाली सत्य और प्रिय वाणी को कामधेनु कहते हैं।

विशेष– (i) यहाँ द्वितीय चरण में 'दुष्कृतं' या 'हिनस्ति' पाठभेद भी मिलता है, तब उसका अर्थ 'पापों को नष्ट करने वाली' करेंगे।

(ii) मृदुल वाणी को यहाँ दैवी वाणी अर्थात् सुनृतां वाचं (प्रिया एवं सत्य वाणी) की संज्ञा प्रदान की गयी है, जो वस्तुतः कामधेनु गाय के समान सभी प्रकार की कामनाओं को पूरा करने में समर्थ है।

(iii) यहाँ प्रयुक्त चारों क्रियाओं का एक ही कर्ता कारक 'सूनृतां वाक्' होने से दीपक एवं सूनृतां वाक् का कामधेनु से साम्य प्रदर्शित

होने से अभवन् वस्तुसम्बन्धरूपा निदर्शनालंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा शालिनी छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **अलक्ष्मीम्**– न लक्ष्मीः, तामिति, नञ् तत्पुरुष समास।

(ii) **दुर्हृदः**–दुष्टं हृदयं यस्य सः, बहुव्रीहि समास।

(iii) **सूते**– √सू+लट्+आत्मनेपद, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iv) **दुग्धे**– √दुह्+लट्, आत्मनेपद, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(v) **विप्रकर्षति**– वि+प्र+ √कृष्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(vi) **निष्प्रलाति**– निस्+प्र+ √ला+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– **ये धीराः जनाः सन्ति, ते सत्यां च प्रियां वाचं शुद्धां शान्तां मंगलानां च जनयित्रीं कथयन्ति, तादृशी वाक् अभिलाषं पूरयति। मृदुभाषिणां सर्वाणि कार्याणि सारल्येन भवन्ति, सा हि अकल्याणं दूरीकरोति, कीर्तिम् उत्पादयति, शत्रून् च सर्वान् विनाशयति। अनेनैव एषा 'कामदोग्ध्री', इति उच्यते।**

(31) **'चन्द्रिका' सैनिकानामिति**– इसके बाद सुमन्त्र, लव को श्रीराम के प्रति कटुभाषण न करने का परामर्श देते हुए कहता है कि–

यह ठीक है कि तुम सैनिकों के उत्तेजक तथा उच्छ्रंखल वचनों के कारण, क्षत्रियोचित स्वाभिमान से क्रोध के वशीभूत हो गए थे, किन्तु ऋषि जमदग्नि के पुत्र भगवान् परशुराम का भी दमन करने वाले, पराक्रमी श्रीरामचन्द्र के सम्बन्ध में इसप्रकार के दुराग्रहपूर्ण कटुभाषण का करना, तुम्हारे लिए किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है।

विशेष– (i) सुमन्त्र की संयत एवं गम्भीर भाषा दर्शनीय है।

(ii) 'प्रमाथ' पद का प्रयोग यहाँ 'अनर्गल' तथा 'उत्तेजना' प्रदान करने वाले वचनों के लिए किया गया है।

(iii) इसीप्रकार 'निर्बन्ध' पद का अर्थ दुराग्रहपूर्ण कटु वचनों से ग्रहण करना चाहिए।

(iv) जमदग्नि के पुत्र के दमन का उल्लेख करके, श्रीराम का अद्भुत शौर्य एवं पराक्रम व्यंग्य है।

(v) यहाँ प्रयुक्त 'ओजायितम्' में क्यङ् प्रत्यय के कारण उपमा अर्थ की अभिव्यक्ति होने से उपमालंकार का प्रयोग हुआ है।

(vi) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग।

व्या.टि.– (i) **सैनिकानाम्**– सेनायां भवाः, तेषाम्। सेना+ठञ्।

(ii) **प्रमाथः**– प्र+ √मथ्+घञ्। **ओजायितम्**– ओजस्+क्यङ्।

(iii) **जामदग्न्यः**– जगदग्नेः अपत्यम्, जमदग्नि+यञ्।

(iv) **अर्हसि**– √अर्ह्+लट्, मध्यम पुरुष, एकवचन। योग्य हो।

संस्कृत व्याख्या– एतत्तु सत्यमेवास्ति, यत् सैनिकानाम् वचनात्मकहिंसया त्वया ओजस्विक्षत्रियः इव आचरितम्, नैव अभिमानत्वात्, किन्तु जमदग्निसुतस्य परशुरामस्य विजेतरि खलु भगवति रामे यत् दुराग्रहमूलकं कटुवचनं कथितम्, तत्तु त्वत्कृते उचितं नैवास्ति न वक्तव्यमिति, भावः।

(32) 'चन्द्रिका' सिद्धमिति– राम के लिए परशुराम के विजेता पद को सुनकर लव व्यंग्यपूर्वक कहता है कि–

वस्तुतः ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने वाले, परशुराम को जीतने में कौन सी बड़ी बात है, क्योंकि यह बात तो संसार में भलीभाँति प्रसिद्ध है कि ब्राह्मण तो वाणी का ही धनी होता है, जबकि क्षत्रिय में तो भुजाओं का बल विद्यमान रहता है और परशुराम जी तो वास्तव में शस्त्र को धारण करने वाले ब्राह्मण हैं, इसलिए उनका दमन करने में उस राजा राम की कौन सी बड़ी प्रशंसा है? अर्थात् कुछ भी नहीं।

विशेष– (i) लव की तार्किक एवं व्यंग्यपूर्ण शैली प्रदर्शित हुई है।

(ii) 'सिद्धम्' पद से अभिप्राय सर्वसम्मत सिद्धान्त से है।

(iii) लव का अभिप्राय है कि यदि राम ने शूरवीर किसी क्षत्रिय को पराजित किया होता तो ही उनके पराक्रम की प्रशंसा की बात थी।

(iv) यहाँ ब्राह्मणों में भुजाओं का बल नहीं होता है, इस अर्थ की प्रतीति होने से परिसंख्यालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(v) ओज गुण, गौड़ी रीति, वीररस तथा शालिनी छन्द है।

व्या.टि.–(i) **शस्त्रग्राही**–शस्त्रं गृह्णाति तच्छीलः, इति। उप.तत्पु.।

(ii) शस्त्र+ √ग्रह्+णिनि (ताच्छील्ये)। **दान्ते**– √दम्+क्त, स.ए.व.।

संस्कृत व्याख्या– परशुरामस्य दमने नैव किमपि वीरत्वमिति कथयन् लवः आह– एतत्तु सिद्धमेव यत् ब्राह्मणानां बलं तेषां वाचि

भवति, यतोहि वाचा वै ते आशीर्वादं शापं वा दातुं शक्नुवन्ति, किन्तु क्षत्रियाणां वीर्यं तु तेषां बाहूमध्ये भवति, अतएव सः शस्त्रग्राही ब्राह्मणः परशुरामः यदि पराजितः स्यात्, तर्हि विषयेऽस्मिन् का प्रशंसा नैव काऽपि इति भावः।

(33) 'चन्द्रिका' कोऽपीति–लव की गर्वोक्ति को सुनकर, चन्द्रकेतु व्यंग्य में कहता है कि–

ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय यह कोई अद्भुत ही नवीन पुरुष, इस पृथ्वी पर विष्णु के दूसरे ही किसी अवतार रूप में अवतरित हुआ है, जिसकी दृष्टि में परम ऐश्वर्यशाली परशुराम भी वीर नहीं हैं और जो यह सभी सातों भुवनों को अभयदान प्रदान करने वाले, परम पवित्र तथा पूज्य तात श्रीरामचन्द्र के अद्भुत चरितों के विषय में भी नहीं जानता है।

विशेष– (i) लव को यहाँ व्यंग्य में विष्णु का अवतार कहा है।

(ii) चन्द्रकेतु का श्रीराम के प्रति अतीव सम्मान एवं आदरभाव अभिव्यक्त हुआ है, जो उनके सभी पराक्रमपूर्ण चरितों से परिचित है।

(iii) 'कोऽप्येषः' में अद्भुतरस, सम्पूर्ण श्लोक में प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है।

(iv) परशुराम के विषय में प्रसिद्ध है कि उन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित किया था, किन्तु अन्तिम बार राम के सामने आकर, उन्हें विष्णु भगवान् के रूप में पहचान कर वे विनम्र हो गए थे।

व्या.टि.– (i) अवतरन्ति अनेन इति, अव+ √तॄ+घञ्, अवतारः।

(ii) **पर्याप्तः**–परि+आप्+क्त। **चरित**–चर्+क्त। **वेद**– √विद्, लट्।

(iii) पुरुषरूपः अवतारः। **भृगुनन्दनः**–भृगोः नन्दनः षष्ठी तत्पुरुष।

(iv) सप्त च तानि भुवनानि तेषां समाहारः तस्य (समाहार द्वन्द्व)

संस्कृत व्याख्या– चन्द्रकेतुः कथयति– मन्ये, यत् अयं कोऽपि नवो वीरः साम्प्रतं समवतीर्णो भुवि, यो भगवन्तं परशुराममपि वीरं न मन्यते, न च तातस्य तत्र सप्तभुवनानामभयदाने प्रसिद्धानि पुण्यानि च चरितानि अपि, यो जानाति अर्थात् अहं मन्ये यत् एषः बालकः राम–

परशुरामयोः अपि पराक्रमं न जानाति, अतः एषः नवावतारो वीरतायाः प्रतीयते मे।

(34) 'चन्द्रिका' वृद्धास्ते, इति– इसी क्रम में फिर से लव व्यंग्यपूर्वक कहता है कि–

आप इन सब बातों को तो छोड़ ही दीजिए, वे श्रीराम तो वृद्धजन हैं अर्थात् आयु में हमसे अत्यधिक बड़े हैं, इसलिए उनके चरित्र पर किसी प्रकार की भी टीका–टिप्पणी करना उचित नहीं है। उन्हें तो आप वैसा ही रहने दीजिए, क्योंकि उनके विषय में क्या कहा जाए? उन्होंने तो सुन्द नामक राक्षस की पत्नी ताड़का का वध कर दिया था, अतः इसप्रकार क्षत्रिय–धर्म के विरुद्ध स्त्री का वध करने पर भी निर्दोष, निष्कलंक कीर्ति वाले, वे फिर भी इस लोक में महान् ही कहे जाते हैं।

इसीप्रकार खर नामक राक्षस के साथ युद्ध करते हुए भी, वे तीन कदम पीछे हटे थे, इससे भी उनका पराक्रम ही प्रदर्शित हो रहा है। इसके अलावा उन्होंने ही इन्द्र के पुत्र बाली का वध, पेड़ की ओट में छिपकर किया था। इससे भी उनके युद्धकौशल का ही पता चल रहा है, क्योंकि इन सभी घटनाओं से तो सामान्य व्यक्ति भी परिचित ही है, उसके लिए विशेषज्ञान की भी आवश्यकता नहीं है।

विशेष– (i) लव ने यहाँ व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग करते हुए अप्रत्यक्षरूप से श्रीराम के चरित्र की कुछ न्यूनताओं का उल्लेख करते हुए उनके पराक्रम की निन्दा की है।

(ii) लव का अभिप्राय है कि बड़े लोग कुछ भी गलती करते हैं, तो उन्हें उसके लिए कोई कहने की हिम्मत भी नहीं करता है, इसीलिए वे लोग महापुरुषों की श्रेणी में आ जाते हैं। दूसरे शब्दों में उनका तो दोष भी गुण ही हो जाता है। कहा भी गया है कि–

तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा।

(iii) 'वृद्धाः ते' में कृत्रिम सम्मान की अभिव्यक्ति के लिए, बहुवचन का प्रयोग किया गया है।

(iv) स्त्री पर तो हाथ उठाना भी क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध माना गया है, फिर उसे मार डालने की तो बात ही क्या है? इसी भाव को अभिव्यक्त किया है।

(v) लव का अभिप्राय है कि क्षत्रिय के लिए तो संग्राम में एक पग भी पीछे हटना भी अपमान व कलंक की बात होती है, फिर उन्होंने तो खर का वध करते समय तीन पग पीछे हटा लिए थे।

(vi) बाली तथा सुग्रीव की शत्रुता के मध्य राम ने सुग्रीव का साथ देते हुए, बाली का पेड़ के पीछे छिपकर बाण से वध किया था, यहाँ उसी कथा की ओर संकेत किया गया है।

(vii) राम के विषय में लव का ऐतिहासिक गहन ज्ञान व्यक्त हुआ है, क्योंकि उसने वाल्मीकि द्वारा विरचित रामायण का गहनता से श्रवण एवं मनन किया है। लव की दृष्टि में छिपकर, शत्रु को मारना भी कायरता का सूचक है।

(viii) प्रस्तुत श्लोक में इस कृति के नायक राम के चरित्र में दोषों की गणना करना कवि के दोष की श्रेणी में आता है।

(ix) प्रस्तुत श्लोक में आक्षेप अलंकार, ओज गुण, गौड़ी रीति तथा शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **विचारणीय–** वि+ √चर्+णिच्+अनीयर्।

(ii) **कौशलम्–** कुशलस्य भावः कर्म वा कुशल+अण्।

(iii) विचारणीयानि चरितानि येषां ते बहुव्रीहि समास।

(iv) **कुतोमुखानि–** कुतः मुखं यस्य तानि, बहुव्रीहि समास।

(v) इन्द्रस्य सूनोः वालिनः निधनं तस्मिन्, तत्पुरुष समास।

(vi) **अकुण्ठयशसः–** अकुण्ठं यशः येषां ते बहुव्रीहि समास।

संस्कृत व्याख्या– यतः ते रामचन्द्राः वृद्धाः सन्ति, अतएव तेषां चरितं न विचारणीयम्। अन्यथा तु 'सुन्द' नाम राक्षसस्य स्त्रियाः दमने तेषां यशो लोके कुण्ठितं नास्ति, एवमेव 'खर' नाम राक्षसेन सह युद्धमाणः यानि त्रीणि पदानि विमुखानि आसन्, एतदेव तेषां वीरत्वम्–स्ति। तथा च इन्द्रपुत्रस्य बालिनः वधस्तु अनेनैव केन प्रकारेण छलेन कृतमासीत्? सर्वे जानन्ति एव, किन्तु महतां विषये सर्वं सम्भाव्यते।

(35) 'चन्द्रिका' क्रोधेनेति– लव की राम के विषय में निन्दनीय बातों को सुनकर चन्द्रकेतु का क्रोध भड़क उठा और वह युद्ध के लिए ललकारते हुए तैयार हो गया, तो इन्हीं दोनों के क्रोध का वर्णन करते हुए सुमन्त्र कहते हैं कि–

अरे! इनका क्रोध तो भड़क उठा है, क्योंकि इन दोनों के केशों के समूह को अत्यधिक वेग से कँपाने वाला कम्पन, इनके अंगों में भी व्याप्त हो रहा है तथा इन दोनों के लाल कमल के पत्ते के समान नेत्र भी अपेक्षाकृत अधिक लाल हो गए हैं। दोनों भौंहों के टेढ़ी होने के कारण भयंकर प्रतीत होने वाले, इन दोनों के मुख, स्पष्टरूप से दिखायी देने वाले, कलंकयुक्त चन्द्रमा के समान एवं ऊपर मँडराते हुए भौंरों से भरे हुए कमल के समान शोभा को धारण कर रहे हैं।

विशेष– (i) युद्ध के लिए उद्यत लव तथा चन्द्रकेतु के क्रोधयुक्त स्वरूप का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार।

(ii) अनुभावों द्वारा क्रोधरूप स्थायीभाव का अनुमान होने से अनुमान अलंकार, मुख में चन्द्रमा तथा कमल का साम्य वर्णित होने से उपमा तथा अभवन् वस्तुसम्बन्धरूपा निदर्शना अलंकार।

(iii) ओज गुण, गौड़ी रीति, रौद्ररस तथा शार्दूलविक्रीड़ित छन्द।

व्या.टि.– (i) उद्धतं यथा स्यात्तथा, धूताः कुन्तलभराः यस्मिन् सः।

(ii) उद्भ्रान्ताः भ्रमराः यस्मिन् तस्य। उद्वटं लांछनं यस्मिन् तस्य।

(iii) कोकनदस्य छदः तस्य। सर्वेषु अंगेषु जायते, इति।

(iv) **उद्धत–** उत्+√हन्+क्त (भावे)। वेपथुः– √वेप्+अथुच्।

संस्कृत व्याख्या– सुमन्त्रः कुमारयोः क्रोधं वर्णयति– एतयोः क्रोधेन केशानां समूहः इतस्ततः चलितोऽस्ति। सर्वांगेषु च वेपथुः जातः, स्वयं रक्तकमलदलसदृशे लोचने किंचित् अधिके रक्ते भवतः। भ्रुकुटी समुत्तोलनेन मुखं च अनयोः भिन्नं सत् उत्कृष्टतया प्रतीयमानं लांछनं यस्मिन् एवंविधस्य चन्द्रस्य इव, उद्भ्रान्ताः भ्रमराः यत्र तस्य कमलस्य कान्तिं च धारयति, इति।

•••

षष्ठ अङ्क

पृष्ठभूमि– कुमार प्रत्यभिज्ञान नामक इस अंक में मध्यम पात्र विद्याधर तथा विद्याधरी के माध्यम से शुद्ध–विष्कम्भक के रूप में लव और चन्द्रकेतु के भयंकर युद्ध की तथा शम्बूक का वध करके, श्रीराम के युद्धस्थल पर आने की सूचना दी गयी है और लव और कुश के चरित्र के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन किया गया है। इन दोनों की आकृति का सीता से साम्य, सीता–परित्याग का स्थान, समय की अवधि तथा दोनों बालकों की अवस्था आदि से राम को विश्वास हो जाता है कि ये दोनों सीता के ही पुत्र हैं। यहाँ युद्ध–वर्णनों में भाषा अपेक्षाकृत दीर्घसमासयुक्त प्रयुक्त हुई है। कुछ स्थलों पर कवि ने दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी किया है, यद्यपि नाटकीय दृष्टि से ये स्थल बोझिल से प्रतीत होते हैं।

(1) 'चन्द्रिका' झणज्झणीति– इस अंक के आरम्भ में ही विमान द्वारा देवयोनि में उत्पन्न विद्याधर और विद्याधरी प्रवेश करके, लव और चन्द्रकेतु के भयंकर युद्ध के विषय में वार्तालाप करते हैं। इसी क्रम में विद्याधर इन दोनों के तुमुल–युद्ध का वर्णन करते हुए कहता है कि–

इन दोनों वीरों का फिर से अद्भुत युद्ध हो रहा है, जो सम्पूर्ण संसार के लिए भय को उत्पन्न करने वाला है, जिसमें ये दोनों कुमार कंगनों के समान 'झनझन' शब्द करते हुए, छोटी–छोटी घण्टियों वाले और अत्यधिक शब्द करती हुई विशाल धनुष की डोरी एवं धनुष के दोनों छोरों द्वारा किए गए, भयंकर कोलाहल को उत्पन्न करते हुए, अपने–अपने धनुष को फैलाकर, निरन्तर बाणों की वर्षा कर रहे हैं।

विशेष– (i) यहाँ केवल लव और चन्द्रकेतु के भयंकर युद्ध की सूचना दी गयी है, न कि इसका प्रदर्शन किया गया है, क्योंकि नाट्याचार्यों द्वारा मंच पर युद्ध के प्रदर्शन का निषेध किया गया है।

(ii) महाकवि का युद्ध विषयक सूक्ष्मज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) इन दोनों बालकों के धनुषों में छोटी–छोटी घण्टियों को बाँधा गया है, जो उसके प्रयोग से ध्वनि कर रही हैं।

(iv) 'कंकणक्वणित' में 'इव' का अर्थ लुप्त होने से लुप्तोपमा तथा वृत्यानुप्रास अलंकार, ओज गुण, गौड़ी रीति, वीररस एवं पृथ्वी छन्द और भाषा की संगीतात्मकता दर्शनीय है।

(v) धनुष के प्रयोग से उसकी 'ज्या' के टकराने से होने वाली टंकार की भयंकर ध्वनि, इसके छोरों (अटनी) की ओर से निकलती है, उसी के कारण यहाँ भयंकर कोलाहल होने की बात की गयी है।

व्या.टि.– (i) झणत्झणितं यत् कंकणं तदिव क्वणिताः किंकिण्यः यस्मिन् तत्। झणज्झण+इतच्, 'तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्' से।

(ii) **अभिवर्तते**– अभि+√वृत्+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iii) **वितत्य**– वि+√तन्+क्त्वा (ल्यप्)। **ध्वनत्**– √ध्वन्+शतृ।

(iv) **अयोधनम्**– आ+√युध्+ल्युट्। **किरतोः**– √कृ+शतृ+ष.द्वि.व।

संस्कृत व्याख्या– विद्याधरः युद्धवर्णनं करोति यत्– झणज्झण इति अव्यक्तध्वनियुक्तं यत् करकंकणं तस्य क्वणितं तादृश्यः क्षुद्र-घण्टिकाः यस्मिन् तत् शब्दं कुर्वाणः या दीर्घामौर्वी तया तादृशी धनुष्कोटिः 'अटनी', इति तया सम्पादितः करालः कोलाहलः यस्मिन् तत् धनुः विस्तृतं कृत्वा बाणान् क्षिपतोः एतयोः वीरयोः लवचन्द्रकेतोः पुनः अत्यद्भुतं, भुवनेषु भयंकरं युद्धं आरब्धं संजातम्, इति।

(2) 'चन्द्रिका' जृम्भितमिति– इसी क्रम में विद्याधर अपनी पत्नी विद्याधरी से पुनः कहता है कि–

इसके अतिरिक्त लव और चन्द्रकेतु इन दोनों के विचित्र प्रकार का मंगल करने अर्थात् उत्साहवर्धन के लिए, भयंकर एवं गम्भीर गर्जन करने वाले, मेघ के समान, युद्धभूमि में बहुत बड़े नगाड़े पर 'दुमदुम' शब्द उत्पन्न हो रहा है।

विशेष– (i) यहाँ प्रयुक्त 'दुम्–दुम्' पद वस्तुतः अव्यक्त ध्वनि का वाचक है, जो युद्धभूमि में भेरी पर प्रहार करने से उत्पन्न होती है।

(ii) नगाड़े की ध्वनि की उपमा मेघ के गम्भीर गर्जन से दी गयी है, अतः उपमालंकार, ओजगुण, गौड़ी रीति, अनुष्टुप् छन्द दर्शनीय।

व्या.टि.– (i) **स्तनयित्नोः**– √स्तन्+णिच्+इलुच्, ष.वि.,ए.वचन।

(ii) अमन्दो यो दुन्दुभिः तस्य। तत्पुरुष। दुन्दुमा+क्यष्+क्त।

(iii) **जृम्भितम्**– √जृम्भ्+क्त। **पाठान्तर**– विजृम्भितं च दिव्यस्य।

संस्कृत व्याख्या– विद्याधरः कथयति यत्– अत्र उभयोरपि मंगलार्थं उत्साहवर्धनार्थं वा मेघस्य इव महान् यो दुन्दुभिः 'भेरी' इति, तस्य 'दुम्–दुम्' इत्येवं ध्वनिरपि प्रवृत्तं सम्प्रति।

(3) 'चन्द्रिका' त्वष्ट्रयन्त्रिति– इसके बाद क्रोधित होकर चन्द्रकेतु ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया, तो उसी का वर्णन करते हुए विद्याधर कहता है कि–

विश्वकर्मा के शाणयन्त्र पर चढ़ाए गए तथा उसके परिणाम स्वरूप गोल–गोल घूमने वाले, सूर्य के प्रकाश के समान, अत्यधिक चमक वाला, मानो यह तो दोनों पलकों को खोलने वाला, भगवान् महादेव का मस्तक पर स्थित तीसरा नेत्र ही खुल गया है।

विशेष– (i) मार्कण्डेय एवं विष्णु पुराण की कथा के अनुसार– सूर्य के तीक्ष्ण तेज को कम करने के लिए, विश्वकर्मा (देवताओं के इंजीनियर) ने उन्हें शाणयन्त्र पर चढ़ाया था, यहाँ उसी की ओर संकेत किया गया है।

(ii) आग्नेयास्त्र से निकलने वाले तेज़ की भयंकरता को प्रदर्शित करने के लिए, कवि ने दो उपमानों का प्रयोग किया है, जो अत्यन्त सटीक एवं प्रभावी बन पड़े हैं, जिससे कवि का अद्भुत उपमा वैशिष्ट्य अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) पौराणिक मान्यता के अनुसार शिव के मस्तक पर तीसरा नेत्र है, जिसे वे सृष्टि का विनाश करने के लिए, प्रलयकाल में ही खोलते हैं। अतः आग्नेयास्त्र के प्रयोग से मानो प्रलयकाल ही आ गया हो, ऐसी ध्वनि प्रतीत हो रही है।

(iv) उपमा तथा सन्देह अलंकार, भयानक रस, ओजगुण, गौड़ी रीति एवं अनुष्टुप् छन्द का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.– (i) ललाटस्थस्य नीललोहितस्य चक्षुषः, षष्ठी तत्पुरुष।

(ii) **भ्रान्त**– √भ्रम्+क्त। ललाटे तिष्ठति, इति, ललाट+ √स्था+क।

(iii) **त्वष्टृयन्त्रेति**– त्वष्टुः यन्त्रं तस्य भ्रमिभिः भ्रान्तस्य मार्तण्डस्य यद् ज्योतिः तदिव उज्ज्वलः।

संस्कृत व्याख्या– विद्याधरः कथयति यत्– अये, तत् किमद्य भगवतः शिवस्य ललाटस्थितस्य आवरणयोः विघटनं जातः, अन्यथा एतावान् प्रकाशः कुतः स्यात्? अनन्तरं कीदृशोऽयं प्रकाशः इति कथ्यते– विश्वकर्मणः शाणयन्त्रस्य या भ्रमि भ्रमणं तया भ्रमणं प्रापितः, यो मार्तण्डः सूर्यः तस्य ज्योतिरिव प्रकाशयुक्तः।

(4) 'चन्द्रिका' अवदग्धेति– आग्नेयास्त्र के चलने से होने वाले, दुष्प्रभावों को स्पष्ट करते हुए विद्याधर कहता है कि–

आग्नेयास्त्र के चलने से कुछ–कुछ जले होने के कारण, चितकबरी (कर्बुरित) पताकाओं तथा चँवरों से युक्त विमानों के समूह, तो निश्चय ही, अग्नि से अपनी रक्षा के लिए, कुछ दूरी पर भाग गए हैं, जबकि नए पलाश के पुष्पों की कान्ति के समान, तेज और लपटों से युक्त, आग इन ध्वजाओं के महीन तथा सुन्दर रेशमी वस्त्रों (अंशुक) की पंक्ति को जला रही है।

विशेष– (i) प्राचीन समय में पताकाओं का निर्माण सुन्दर रेशमी वस्त्रों द्वारा किया जाता था, इसकी अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) रेशमी वस्त्रों की पताकाओं के जलने से ये कर्बुरित अर्थात् चितकबरे रंग वाली हो गयी हैं। 'अव' उपसर्ग किंचित् अर्थ में प्रयुक्त।

(iii) अग्नि की ज्वालाओं का नए पलाश के पुष्पों के साथ साम्य होने से असम्भवन् वस्तुसम्बन्धरूप निदर्शनालंकार का प्रयोग हुआ है।

(iv) इसीप्रकार प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, मंजुभाषिणी छन्द भी दर्शनीय है। यहाँ अग्नि को नए पलाश के पुष्प के समान लाल कहा है, जो अत्यन्त चित्ताकर्षक बन पड़ा है, कवि–कल्पना प्रशंसनीय है।

व्या.टि.– (i) अवदग्धानि अतः कर्बुरितानि केतु चामराणि येषां तैः।

(ii) **अवदग्ध**– अव+ √दह्+क्त। **कर्बुरित**– कर्बुर+णिच्+क्त।

(iii) **अपयातम्**– अप+ √या+ क्त। **दहति**– √दह्+लट्, प्र.पु.,ए.व।

संस्कृत व्याख्या– सम्प्रति वै किंचिद् प्रज्वलितानि 'बर्बर' ध्वनि–युक्तानि, ध्वजानां चामराणि येषां तैः विमानानां मण्डलैः पलायितमेव। अस्य आग्नेयास्त्रप्रभावेण विमानानाम् अग्रभागेषु समारोपितानां ध्वजानां प्रकीर्णानि चामराणि दग्धानि, अतएव तानि विमानानि इतः प्रयातानि। एवमेव नवकिंशुकवर्णः अग्निः इमां ध्वजांशुकपटानां पंक्तिः दाहं करोति।

(5) 'चन्द्रिका' न किंचिदिति– विद्याधर के शरीर के स्पर्श से सुख का अनुभव करने वाली, विद्याधरी से वह कहता है कि–

वस्तुतः इस संसार में जो व्यक्ति जिसका भी प्रिय होता है, वह उसके लिए कुछ न करते हुए भी, मात्र उसके साथ रहने के कारण, प्राप्त होने वाले सुखों से, उसके दुःखों को विनष्ट करता है, क्योंकि वह प्रिय पात्र तो प्रेम करने वाले, उस व्यक्ति के लिए कोई अनिर्व–चनीय पदार्थ या अनुपम धन ही होता है।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने आन्तरिक विशुद्ध प्रेम की सुन्दर एवं मनभावन मीमांसा की है, जो उनकी स्वानुभूति सी प्रतीत हो रही है। निश्चय ही, उनका किसी से ऐसा गहन प्रेम रहा होगा।

(ii) यहाँ पर अप्रस्तुत प्रियजन सीता का वर्णन होने के कारण अप्रस्तुतप्रशंसा तथा सामान्य का (सीतारूप) विशेष के साथ समर्थन से अर्थान्तरन्यास अलंकार एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **कुर्वाणः**– √कृ+शानच्, करता हुआ। सुख+ष्यञ्।

(ii) **अपोहति**– अप+ √ऊह्, परस्मैपद, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– यः कोऽपि जनः यस्य कस्यापि प्रियो भवति, सः तस्य किमपि न कुर्वन्, अनेन सह सान्निध्यमात्रेण खलु अस्य जनस्य दुःखानि दूरीकरोति, निरस्यति, इत्यर्थः। यतोहि तत् प्रियपात्रं तस्य प्रियस्य जनस्य किमपि अनिर्वचनीयं धनं वै भवति।

(6) 'चन्द्रिका' विद्याकल्पेनेति– चन्द्रकेतु के आग्नेयास्त्र के जवाब में लव ने जब वारुणास्त्र छोड़ा, तो फिर से चन्द्रकेतु ने वायव्यास्त्र का

प्रयोग किया, तब इसके द्वारा मेघों के विनाश का वर्णन दार्शनिक भाषा में करते हुए विद्याधर कहता है कि–

जिसप्रकार तत्त्वज्ञान के विवर्तों अर्थात् घट, पट आदि कल्पित नामरूपात्मक सांसारिक प्रपंचों का एकमात्र ब्रह्म में विलय हो जाता है, ठीक उसीप्रकार इस वायव्यास्त्र से उत्पन्न हुए, वायु के माध्यम से असंख्य मेघों का भी लोप कर दिया गया है।

विशेष– (i) कवि का दार्शनिक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) 'विवर्त' पद का वेदान्तशास्त्र के अनुसार प्रयोग किया गया है, क्योंकि संसार को वहाँ ब्रह्म का ही विवर्त कहा गया है।

(iii) यहाँ 'इव' के अर्थ में प्रयुक्त होने वाले 'कल्पक्' प्रत्यय के प्रयोग से तथा उत्तरार्द्ध में 'इव' पद के प्रयोग के कारण ही उपमालंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(iv) उक्त दोनों उपमाओं की सापेक्षता होने से संकर अलंकार।

(v) वायव्यास्त्र की विशेषता होती है कि इसके प्रयोग से प्रचण्ड आँधी चलने लगती है, जिससे शत्रु सेना विचलित हो जाती है।

(vi) मन्त्रों के प्रयोग से चलाए जाने वाले 'अस्त्र' होते हैं, जबकि हाथ से चलाने वाले तलवार, धनुष आदि को 'शस्त्र' कहा जाता है।

(vii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग।

व्या.टि.– (i) **भूयसाम्**– बहु+ईयस्–प्र.वि., बहुवचन।

(ii) **प्रविलयः**–प्र+वि+ √ली+अच्। ईषदसमाप्ता विद्या यस्य सः।

संस्कृत व्याख्या– विद्याधरः कथयति यत्– अहो, वायव्यास्त्र–प्रभावेण असंख्येयाः अपि मेघाः तथैव विलीनाः अभवन्, यथा तत्त्वज्ञाने सर्वेऽपि संसारभूताः विवर्ताः एकस्मिन् खलु ब्रह्मणि विलीनाः भवन्ति।

(7) 'चन्द्रिका' शान्तमिति– इसके बाद, लव और चन्द्रकेतु के युद्ध को सुनकर, उनके युद्ध को रोकते हुए, शम्बूक का वध करके लौटे हुए, श्रीराम के पुष्पक विमान से उन दोनों के बीच में ही युद्धभूमि में उतरने की सूचना देते हुए, विद्याधर कहता है कि–

अरे! महापुरुष श्रीराम के शान्तिपूर्ण वाक्यों को सुनकर, उनके प्रति अत्यधिक आदरभाव होने से युद्ध का परित्याग करके, लव शान्त

हो गया है, जबकि चन्द्रकेतु तो उनके प्रति नतमस्तक ही हो गया है। इसप्रकार अपने दोनों पुत्रों के समागम से महाराज श्रीराम का कल्याण होवे। यह कहकर ये विद्याधर तथा विद्याधरी दोनों ही निकल जाते हैं।

विशेष– (i) यहाँ तक कुछ विशिष्ट सूचनाओं को देते हुए शुद्ध विष्कम्भक पूरा हो जाता है। इस विष्कम्भक के दोनों ही पात्र विद्याधर तथा विद्याधरी मध्यम पात्र होने से संस्कृत बोलते हैं। इसीलिए यह शुद्ध–विष्कम्भक की श्रेणी में आता है।

(ii) यहाँ कोपशान्ति रामविषयक रति का अंग होकर, आने से समाहित अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(iii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा वसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त।

व्या.टि.– (i) महापुरुषेण संगदितम्, तस्मिन् गौरवः, तस्मात्।

(ii) समुपसंहृतसंप्रहारः येन सः। सुतयोः संगमः तेन, तत्पुरुष।

(iii) **संगदित**– सम्+ √गद्+क्त। **निशम्य**–नि+ √शम्+क्त्वा(ल्यप्)

(iv)**समुपसंहृत**–सम्+उप+सम्+ √हृ+क्त। **प्रणत**–प्र+ √नम्+क्त।

संस्कृत व्याख्या– महापुरुषेण रामेण सम्यक् प्रकारेण कथितम् वचांसि श्रुत्वा, तस्य गौरवेण सम्यक्रूपेण परित्यक्तः सम्प्रहारः येन सः, लवः शान्तः संजातः, चन्द्रकेतुरपि प्रणामं कृतवान्, अनेन प्रकारेण युद्ध–विरामः अभवत्। अतः पुत्रप्राप्त्या राज्ञः रामस्य कल्याणमस्तु।

(8) 'चन्द्रिका' दिनकरेति– पुष्पक विमान से उतरते हुए श्रीराम, लक्ष्मणपुत्र चन्द्रकेतु को आलिंगन के लिए बुलाते हुए कहते हैं कि–

सूर्यवंश को आनन्द प्रदान करने वाले चन्द्रमा, हे चन्द्रकेतु! तुम मेरे पास शीघ्र आओ और ठीक उसीप्रकार मुझे शीतलता प्रदान करो, जैसे हिमखण्ड व्यक्ति को ठंडक पहुँचाता है। तुम्हारे द्वारा ऐसा करने पर ही मेरे हृदय के सन्ताप की शान्ति हो सकेगी।

विशेष– (i) कवि का अभिप्राय है कि सम्पूर्ण सूर्यवंश के लिए चन्द्रकेतु उनके नेत्रों के लिए आनन्द प्रदान करने वाला एवं हृदय को शीतलता तथा शान्ति प्रदान करने वाला है।

(ii) राम की निःसन्तानता की भी अभिव्यंजना हो रही है, जिससे चन्द्रकेतु के प्रति उनका वात्सल्यभाव उभरकर आया है।

(iii) 'रभस्' पद यहाँ प्रगाढ़ आलिंगन की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है। चन्द्रकेतु को दिनकर कुल का चन्द्रमा तथा अपना पुत्र मानकर आलिंगन के लिए कहना अत्यन्त स्वाभाविक है।

(iv) 'तुहिन....शीतलैः' इत्यादि अंश में 'इव' का लोप होने से लुप्तोपमालंकार, चित्त की शान्ति से मनःताप दूर होगा, इस अर्थ के आपत्तिमूलक होने से अर्थापत्ति, 'चन्द्र' पद की दो बार आवृत्ति तथा भिन्न अर्थ होने से यमक, विरोधाभास एवं लाटानुप्रास अलंकार ।

(v) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा पुष्पिताग्रा छन्द का प्रयोग।

व्या.टि.– (i) दिनकरस्य कुलं तस्य चन्द्रः, तत्सम्बुद्धौ। तत्पुरुष।

(ii) तुहिनस्य शकलानि तानि इव शीतलानि तैः तत्पुरुष।

(iii) **अवतरन्–** अव+√तृ+शतृ, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

(iv) **एहि–** आ+√इण् गतौ+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(v) **परिष्वजस्व–** परि+√स्वंज्+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(vi) **उपयातु–** उप+√या+लोट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– रामः चन्द्रकेतुं प्रति कथयति– हे दिनकरवंश–केतो! चन्द्रकेतो! सत्वरम् आगत्य दृढं मे समालिंगनं कुरु। येन मम मनस्तापः हिमस्य खण्डवत् शीतलैः तव अंगैः शान्तिम् उपैतु, प्राप्नोतु।

(9) 'चन्द्रिका' त्रातुमिति– चन्द्रकेतु के कहने पर श्रीराम, लव के प्रभावी व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

यह बालक तो वस्तुतः सभी लोकों की रक्षा करने के लिए, मानो शरीरधारी धनुर्वेद ही बनकर मेरे समक्ष प्रकट हुआ है या फिर वेदरूपी महान् कोश की रक्षा हेतु, मानो साक्षात् क्षत्रिय–धर्म ने ही शरीर धारण कर लिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह तो वस्तुतः सभी प्रकार की शक्तियों का समुदाय या विकास ही एकत्र होकर, यहाँ आ गया हो अथवा सम्पूर्ण संसार के पुण्यों के फलों का समूह ही शरीर को धारण करके, मानो मेरे समक्ष प्रस्तुत हो गया हो।

विशेष– (i) लव के अद्भुत व्यक्तित्व को देखकर, राम को पूर्णरूप से अभिभूत चित्रित किया गया है, इसीलिए उन्होंने यहाँ उसकी अनेक रूपों में परिकल्पनाएँ की हैं। लव का चरित्र भी अभिव्यंजित हुआ है।

(ii) 'पुण्य' पद का प्रयोग यहाँ 'धर्म' अर्थ में हुआ है। साथ ही, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

(iii) 'ब्रह्म' पद वेद तथा ब्राह्मण दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि वेद तथा ब्राह्मण की रक्षा करना क्षत्रिय का धर्म है।

(iv) 'गुप्त्यै' पद में 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' सूत्र से चतुर्थी ।

(v) यह श्लोक महावीर चरित (2/41) में भी प्रयुक्त हुआ है।

(vi) चार बार 'इव' पद तथा एक बार 'वा' शब्द का उत्प्रेक्षा की अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग होने से उत्प्रेक्षालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय।

(vii) वात्सल्य से पुष्ट 'अद्भुतरस' की अभिव्यक्ति भी मनमोहक।

व्या.टि.–(i) जगतां पुण्यानां निर्माणानि तेषां राशिः, तत्पुरुष।

(ii) **कायवान्–** कायः अस्ति यस्य सः, काय+मतुप्, प्र.,ए.व.,पु.।

(iii) **परिणतः–** परि+√नम्+क्त। **संचयः–** सम्+√चि+अच्।

(iv) आविर्भूयः–आविर्+√भू+(क्त्वा) ल्यप्। स्थितः– √स्था+क्त।

संस्कृत व्याख्या– लवम् अवलोक्य रामः कथयति– अयं तु लोकानां रक्षणार्थं परिणामं प्राप्तं शरीरधारी धनुर्वेदः इव प्रतीयते अथवा वेदब्राह्मणयोः रक्षां कर्तुं शरीरं प्राप्तः क्षात्रधर्मः खल्वागतः। आहोस्वित् शक्तीनां समुदायोऽस्ति एषः। किंवा शौर्यादीनां गुणानां समूहोऽस्ति। यद्वा लोकानां पुण्यानां शुभकर्मणां राशिः वै आविर्भूय स्थितः इव, अत्र मम समक्षे, अतएव अहमबालपौरुषः बालोऽयं कोऽस्ति इति नैवावधारयामि।

(10) 'चन्द्रिका' आश्वासः, इति– श्रीराम को देखकर लव भी उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व की अपने मन में प्रशंसा करता है कि–

अहो, इस महापुरुष का तो दर्शन तथा प्रभाव दोनों ही अत्यन्त पवित्र हैं, ये तो सुख प्रदान करने वाले, श्रद्धाओं के स्थान के समान, अद्वितीय एवं उनके महान् आधार हैं। इतना ही नहीं, ये तो मुझे अलौकिक धर्म की शरीरधारिणी प्रसन्नता के समान प्रतीत हो रहे हैं।

विशेष– (i) आकृति से सुन्दर एवं मनोहर राम को यहाँ वस्तुतः आदर्श धर्म की देहधारिणी प्रसन्नता के मनोरम विकास के रूप में चित्रित किया गया है। कवि की राम के विषय में श्रद्धा, स्नेह तथा भक्ति के समूह की परिकल्पना प्रशंसनीय बन पड़ी है।

(ii) 'मूर्त्या' में 'इत्थं भूतलक्षणे' से तृतीया विभक्ति का प्रयोग।

(iii) 'इव' के कारण उत्प्रेक्षालंकार, माधुर्य गुण, वैदर्भी रीति तथा अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) आश्वासः स्नेहः भक्तिश्च तासाम्, द्वन्द्व समास।

(ii) **आयतन–** आ+√यत्+ल्युट्। **प्रकृष्ट–** प्र+√कृष्+क्त।

(iii) **प्रसादः–** प्र+√सद्+घञ्। **आश्वास–** आ+√श्वस्+घञ्।

संस्कृत व्याख्या– रामं दृष्ट्वा लवः स्वविचारान् प्रकटयति मनसि-- श्रद्धा, सद्भावनानां आश्वासः इव समाश्वासः इव, एकं महत् आयतनं गृहमिव, धर्मस्य मूर्त्या सुन्दरः प्रसादः इव अयं महानुभावः प्रतीयते, धर्मः खलु मूर्तिमान् रूपेण मम समक्षेऽऽगतः, इति प्रतीयते।

(11) 'चन्द्रिका' विरोधः, इति– इसी क्रम में फिर से अपने मन में आश्चर्य अभिव्यक्त करते हुए लव कहता है कि–

अत्यधिक आश्चर्य का विषय है कि इन महानुभाव को देखकर, मेरे मन में स्थित वैरभाव शान्त हो गया है तथा आनन्द की प्रचुरता से युक्त प्रेम के रस की मेरे हृदय में व्याप्ति हो रही है और वह युद्ध के समय की धृष्टता न जाने कहाँ चली गयी है? इसके अतिरिक्त नम्रता मुझे अपेक्षाकृत अधिक विनम्र बना रही है तथा न जाने क्या कारण है कि इन्हें देखते ही मैं स्वतः ही इनके अधीन हो गया हूँ। अन्त में स्वयं ही इसमें कारण को भी देखते हुए कहता है कि– वस्तुतः तीर्थस्थानों के समान महान् पुरुषों में भी कोई अद्भुत और बहुमूल्य उत्कर्ष होता है, जिसकी मुझे इस समय अनुभूति हो रही है।

विशेष--(i) राम को देखने पर प्रथम दृष्टि में ही लव के सम्मोहन जैसे प्रभाव की सुन्दर एवं आश्चर्यजनक अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) लव के मनोभावों को अत्यन्त सुन्दर शैली में उकेरा गया है तथा महापुरुषों की तुलना तीर्थस्थलों दी गयी है।

(iii) 'तीर्थानामिव' में 'इव' के कारण उपमा, प्रथम तीन चरणों के विशेष अर्थ का चतुर्थ चरण के सामान्य अर्थ द्वारा समर्थन करने से अर्थान्तरन्यास तथा विश्रान्ति, प्रसार आदि क्रियाओं के एकत्र प्रस्तुत करने से समुच्चय अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) माधुर्य गुण, वैदर्भी रीति तथा शिखरिणी छन्द का प्रयोग।

व्या.टि.– (i) **महार्घः–** महान् अर्घः यस्य सः। बहुव्रीहि समास।

(ii) **विश्रान्तः–** वि+√श्रम्+क्त। **निर्वृत्तिः–** निर्+√वृ+क्तिन्।

(iii) **प्रह्वयति–** प्रह्वं करोति, इति, √प्रह्व+णिच्+लट्,प्र.पु.,ए.व.।

(iv) **औद्धत्यम्–** उद्धतस्य भावः, इति। उद्धत+ष्यञ्।

संस्कृत व्याख्या– महदाश्चर्यमेतत् यत्– एतस्य महानुभावस्य दर्शनेन मम विरोधस्य भावः समाप्तिं गतः। आनन्देन च घनो रसः परां प्रीतिं च सर्वस्मिन्नपि देहे मनसि च प्रसरति। मम चित्ते यदौद्धत्यम् असीत्, तत् न जाने कुत्र गतम्। विनम्रता च मयि निरन्तरं वर्धते। अस्य महापुरुषस्य च दृष्टमात्रे खलु अहं पराधीनः इव संजातोऽस्मि। एतत् प्रतीयते यत् तीर्थानामिव महापुरुषाणामपि अतीवमूल्यवान् अतिशयो भवति, नैव विषयेऽस्मिन् संशयलेशोऽपि विद्यते।

(12) 'चन्द्रिका' व्यतिषजतीति– श्रीराम, लव के प्रति होने वाले अपने स्वाभाविक तथा आकस्मिक स्नेह के विषय में कहते हैं कि–

निश्चय ही, कोई आन्तरिक एवं अज्ञात कारण ही वस्तुतः लोगों को आपस में मिलता है, जबकि प्रेम किसी भी बाह्य कारणों की अपेक्षा नहीं करता है, क्योंकि सूर्य के उदित होने पर कमल खिलता ही है, जबकि चन्द्रमा के उदित होने पर चन्द्रकान्त मणि पिघलती ही है।

विशेष– (i) चन्द्रकान्त मणि की विशेषता है कि वह चन्द्रमा के उदय होने पर जल की बूँदों का स्रवण करती है। इसके उल्लेख से कवि का मणिविषयक गहन ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) राम के हृदय की द्रवता की उपमा के लिए, चन्द्रकान्त मणि का उपमान अतीव सुन्दर बन पड़ा है, उपमालंकार का प्रयोग हुआ है।

(iii) महाकवि ने यहाँ अपने सम्पूर्ण प्रेम–विषयक चिन्तन को प्रस्तुत किया है। विद्वानों ने इस श्लोक की प्रशंसा इसप्रकार की है–

यद्यपि बहवः सन्ति श्लोकाः भावविभूषिताः।
व्यतिषजति तत्रापि श्लोकः सर्वमनोहरः।।

(iv) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, मालिनी छन्द का प्रयोग दर्शनीय।

(v) उत्तरार्द्ध में वर्णित विशेष से, पूर्वार्द्ध के सामान्य अर्थ का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार का सौन्दर्य भी मननीय है।

व्या.टि.– (i) **व्यतिषजति**– वि+अति+√संज्, लट्, प्र.पु., ए.व.।

(ii) **संश्रयन्ते**– सम्+√श्रि++लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

(iii) **द्रवति**– √द्रु स्रवणे+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, बहता है।

(iv) **विकसति**– वि+√कष्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– अस्मिन् संसारे सर्वान् अपि पदार्थान् कोऽपि अनिर्वचनीयः आन्तरिको हेतुः परस्परं संयोजयति, इति। पदार्थानां तेषां संघटने नैव किमपि बाह्यकारणं भवति। विषयेऽस्मिन् दृष्टान्तद्वयं प्रस्तौति कविः– यथा पुण्डरीकः सूर्यस्य उदिते सति स्वतः विकसति एव। एवमेव चन्द्रमसः उदिते खलु चन्द्रकान्तमणिः द्रवितो भवति, तस्मात् जलं स्रावयति, इति भावः। अतएव कस्यचिदेव क्वचित् प्रीतिसम्बन्धो भवति, नैव सर्वत्र, सूर्यस्य स्थाने अन्यः कोऽपि कमलं विकासयितुं समर्थो नास्ति, नैव चन्द्रकान्तं द्रवितुं चन्द्रातिरिक्तो समर्थः, इत्यर्थः।

(13) 'चन्द्रिका' परिणतेति– इसके बाद, लव का आलिंगन करके उससे होने वाली आनन्दमयी अनुभूति के विषय में राम कहते हैं कि–

विकास को प्राप्त हुए, भरे–पूरे अर्थात् परिपुष्ट अंगों वाले, कमल के भीतरी पत्ते के समान पुष्ट, चिकने तथा कोमल तुम्हारा स्पर्श मुझ राम को ठीक उसीप्रकार आनन्दित कर रहा है, जैसे– चन्द्रमा की किरणों का स्पर्श या चन्दन से उत्पन्न होने वाला रस, शीतलता तथा आनन्द प्रदान करने वाला होता है।

विशेष– (i) यहाँ 'पुष्कर' पद का 'कमल' अर्थ में प्रयोग हुआ है।

(ii) प्रसाद गुण, पांचाली रीति एवं आर्या छन्द का प्रयोग।

(iii) यहाँ पर 'गर्भच्छद' तथा 'निष्यन्द' पदों के बाद 'लुप्त इव' पद के कारण दो लुप्तोपमाएँ, निरपेक्ष होने से संसृष्टि भी दर्शनीय हैं।

(iv) बालक विषयक रतिभाव होने से वात्सल्य रस का प्रयोग।

व्या.टि.– (i) **नन्दयति**– √नन्द्+णिच्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ii) परिणतं कठोरं यत्पुष्करं तस्य गर्भच्छदः इव पीनः मसृणश्च।

संस्कृत व्याख्या– लवस्य सुखदं स्पर्शम् अनुभूय रामः कथयति– पूर्णरूपेण विकसितं परिपूर्णं यत् कमलं तस्य पत्रमिव स्थूलः मसृणः, चिक्कणश्च चन्दनद्रववत् शीतलः, तव स्पर्शः मां सानन्दं करोति अर्थात् पूर्णविकसितकमलस्य मध्यभागगतपत्रवत् तव कोमलांगस्पर्शोऽस्ति, यथा चन्द्रः चन्दनश्च तयोः किरणैः द्रवैश्च आनन्दानुभूतिः जायते तथैवेति।

(14) 'चन्द्रिका' न तेजः, इति– तत्पश्चात् श्रीराम, बालक लव द्वारा किए गए, युद्ध विषयक आचरण का समर्थन करते हुए कहते हैं कि– इस संसार में तेजस्वी व्यक्ति कभी भी दूसरे के तेज को सहन नहीं कर पाता है, क्योंकि असहिष्णुता तो उसके स्वभाव में ही होती है, जो उसे जन्म से ही विधाता द्वारा प्रदान की जाती है। हम देखते हैं कि बिना रुके हुए, तपने वाले भगवान् भास्कर की किरणों को भी सहन न कर पाने वाली सूर्यकान्तमणि, उसकी किरणों (पाद–पैर) के स्पर्श से स्वयं को अपमानित सा अनुभव करके अग्नि उगलती है।

विशेष– (i) सूर्यकान्त मणि की विशेषता होती है कि अचेतन होते हुए भी, सूर्य की किरणों के स्पर्श द्वारा, उसमें से अग्नि निकलने लगती है। महाकवि का मणिविषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) नाटककार कालिदास ने भी शाकुन्तलम् में सूर्यकान्त मणि के विषय में इसीप्रकार के विचार व्यक्त किए हैं–

स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्य तेजोऽभिभवा वमन्ति।। 2/7

(iii) कवि का अभिप्राय है कि जिसप्रकार अचेतन होते हुए भी सूर्यकान्त मणि, सूर्य की किरणों के स्पर्श से, अपना अपमान समझकर, प्रत्युत्तर में आग उगलने लगती है, वैसे ही इस बालक ने भी राम के शौर्य के विषय में सुनकर, अपना वीरोचित प्रताप प्रदर्शित किया है।

(iv) राम द्वारा लव के वीरतापूर्ण कृत्य की सराहना की गयी है।

(v) उत्तरार्द्ध में प्रयुक्त विशेष द्वारा पूर्वार्द्ध के सामान्य कथन का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास, 'निकृत इव' में उत्प्रेक्षा अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति व शिखरिणी छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(vi) यहाँ प्रयुक्त 'वमति' पद के 'वमन' अर्थ के आधार पर, आचार्य दण्डी ने इस प्रयोग को 'ग्राम्य श्रेणी' में रखा है।

व्या.टि.– (*i*) **वमति**– √वम्+लट्, प्रथमपुरुष, ए.व., उलटता है।

(*ii*) **तेजस्वी**– तेजस्+विनि, तेजस्विन्, प्र.वि., ए.वचन।

(*iii*) **प्रसृतम्**– प्र+√सृ+क्त। **नियत**– नि+√यम्+क्त।

(*iv*) **विषहते**– वि+√सह+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– संसारे यः जनः तेजोगुणसम्पन्नो भवति। सः कदापि नैव अपरेषां तेजसं सोढुं शक्नोति। यतोहि तस्मिन् गुणोऽयं स्वाभाविकरूपेण जन्मतः खलु भवति, नैव सः कृत्रिमताम् आवहति। तथैव यथा सूर्यकान्तमणिः अचेतनोऽपि तेजस्विनः सूर्यस्य पादप्रहारं न सहते, अपितु तेन सह खलु अग्निं वमति, उद्गिरति वा।

(15) 'चन्द्रिका' ब्रह्मादयः, इति– लव के पास जृम्भकास्त्रों की स्थिति के विषय में सुनकर, राम प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहते हैं–

वस्तुतः ब्रह्मा आदि जो सर्वाधिक पुरातन आचार्य हैं, उन्होंने वेदों की सुरक्षा के लिए, हजारों वर्षों से भी अधिक दिनों तक घोर तप का आचरण करते हुए, अपने ही तपोरूप तेज के पुँज द्वारा, इन अस्त्रों का दर्शन किया था अर्थात् ये उन्हीं की तपस्या के परिणामस्वरूप आविर्भूत हुए थे। इसलिए सौभाग्य की बात है कि इस वत्स को भी गुप्त–मन्त्रों सहित इनके प्रयोग तथा संहार की विधि भलीप्रकार ज्ञात है।

विशेष– (*i*) जृम्भकास्त्रों के प्रादुर्भाव की परम्परा का उल्लेख किया गया है, इनकी विशेषता थी कि इनके प्रयोग से सैनिकों को जम्हाई आने लगती थी और वे सो जाते थे।

(*ii*) इन्हें विश्वामित्र ने देवों की प्रार्थना पर श्रीराम को प्रदान किया था।

(*iii*) 'परःसहस्रम्' पद में 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' सूत्र से द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

(*iv*) अद्भुत अस्त्रों का वर्णन करने से भाविक[1] तथा महापुरुषों के कीर्तन से उदात्त अलंकार और उपजाति छन्द का प्रयोग हुआ है।

---

[1]. अद्भुतस्य पदार्थस्य भूतस्याथ भविष्यतः।
यत् प्रत्यक्षायमाणत्वं तद्भाविकमुदाहृतम्।।

व्या.टि.– (i) **ब्रह्महिताय**– ब्रह्मणः हिताय, इति। 'हितयोगे च' सूत्र से चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

(ii) **तप्त्वा**– √तप्+क्त्वा, तप करके।

(iii) **अपश्यन्**– √दृश्+लङ्, प्रथम पुरुष, बहुवचन, देखा।

संस्कृत व्याख्या– चतुर्मुखब्रह्मा प्रभृतयः ये प्राचीनाः उपदेष्टारः आचार्याः सन्ति, तैः वेदशास्त्राणां रक्षार्थं वर्षाणां सहस्रात् अधिकं तपः कृत्वा स्वकीयानि खलु तपोरूपाणि तेजांसि इमानि अद्भुतानि अस्त्राणि अवलोकितानि। एषा वै एतेषाम् आविर्भावस्य कथा वर्तते।

(16) 'चन्द्रिका' आयुष्मतः, इति– इसी अवसर पर नेपथ्य से दण्डायन द्वारा युद्ध की बात सुनकर, लव का बड़ा भाई कहता है कि–

क्या कहा? चिरंजीव लव का महाराजा रामचन्द्र के सैनिकों के साथ युद्ध आरम्भ हो गया है? हे मित्र! क्या कह रहे हो? युद्ध चल रहा है, तब तो यह सुनिश्चित है कि आज इस संसार से 'राजा' शब्द ही लुप्त हो जाएगा एवं सम्पूर्ण क्षत्रिय जाति की, शस्त्ररूपी अग्नि शान्त हो जाएगी अर्थात् युद्ध करने वालों का विनाश सुनिश्चित है।

विशेष– (i) 'किमात्थ' यह वचन कुश का आकाशभाषित है, जो उसने पात्र को देखे बिना ही आकाश की ओर देखकर कहा है तथा प्रस्तुत उक्ति में उसके वीरत्व का दर्प भी अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) 'शस्त्रशिखिनः' में अभेद की स्थापना से रूपक अलंकार, ओजगुण, वैदर्भी रीति एवं वसन्ततिलका छन्द का सुन्दर प्रयोग।

(iii) कुश का क्रोधी स्वभाव एवं भ्रातृप्रेम अभिव्यंजित हुआ है।

व्या.टि.– (i) **आत्थ**– √ब्रू–आह आदेश तथा सि को थ आदेश।

(ii) **आयुष्मतः**– आयुः अस्य अस्ति, इति आयुष्+मतुप्, ष.ए.व.।

(iii) **शिखिनः**– शिखा+इनि+मतुप्, प्र.वि., बहुवचन, अग्नि।

(iv) **आयोधनम्**– आ+√युध्+ल्युट्। **सैन्यैः**– सेना+ण्यत्(भावार्थे)

संस्कृत व्याख्या– ननु किं भोः! दीर्घायुषः मम अनुजस्य लवस्य राज्ञः रामस्य सैनिकैः समं युद्धम् आरब्धम्, इति। हे सखे! किम् वदसि? तस्य युद्धं भवति, तदा तु अस्मिन् अहनि संसारे अस्मिन् 'राजा' शब्दः

खलु लोपं गच्छतु। सम्प्रति क्षत्रियजातेः शस्त्राग्न्यः चिरंशान्तिं प्राप्नुवन्तु, एतादृशं युद्धं भविष्यति, इति भावः।

(17) 'चन्द्रिका' अथेति– पुनः श्रीराम, लव के बड़े भाई कुश के शब्दमात्र को सुनकर, अपनी भावाभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं कि–

इन्द्रनील मणि के समान साँवले वर्ण वाला, यह कौन है? जो अपनी ध्वनिमात्र से ही, मुझ राम को नए–नए नीलवर्ण वाले, मेघ के गम्भीर गर्जन के समान, अत्यधिक आनन्द के कारण खिली हुई कदम्ब की कलियों से युक्त, कदम्ब के वृक्ष के समान बना रहा है।

विशेष– (i) कुश की दूर से आवाज़ सुनकर ही राम के आनन्दातिरेक के कारण हुए रोमांच का मनोरम वर्णन किया गया है।

(ii) दूर होने पर भी राम को उसका कृष्णवर्ण दिखायी दिया है, साथ ही, राम की भावुकता तथा वात्सल्य उल्लेख्य है।

(iii) महाकवि भवभूति को उपमान के रूप में कदम्ब का वृक्ष अत्यधिक प्रिय रहा है, जिसकी सुन्दर अभिव्यक्ति यहाँ भी हुई है, उपमा में लिंगसाम्य तथा भावसाम्य दोनों ही दर्शनीय हैं।

(iv) 'डम्बर' पद यहाँ 'तुल्य' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है तथा क्षण के 'समय' तथा 'उत्सव' दोनों ही अर्थ किए जा सकते हैं।

(v) 'इन्द्रमणिमेचक' में इव का अर्थ लुप्त होने से लुप्तोपमा, मुझे इसकी ध्वनि सुनने मात्र से इतना आनन्द हो रहा है, जिसका यह पुत्र है, उसे स्पर्श से कैसा सुख प्राप्त होता होगा? इस अर्थ की प्रतीति से अर्थापत्ति, प्रसाद गुण, पांचाली रीति तथा मंजुभाषिणी छन्द का प्रयोग।

व्या.टि.– (i) इन्द्रमणिः इव मेचका छविः यस्य सः, बहुव्रीहि।

(ii) नवः नीलः यः, तस्य यद्धीरं गर्जितं तस्य क्षणे बद्धाः कुड्मलाः यस्मिन् सः, तथाविधः यः कदम्बः तस्य डम्बरम्। **गर्जित–** √गर्ज्+क्त।

(iii) बद्धाः पुलकाः यस्य सः, तम्, बहुव्रीहि। **बद्ध–** √बन्ध्+क्त।

संस्कृत व्याख्या– दूरादेव खलु आयान्तं कुशं दृष्ट्वा रामः कथयति– इन्द्रमणिः इव श्यामला कान्तिः कोऽयं बालकः ध्वनिमात्रेणैव मां नवीनो यो नीलवर्णः पयोधरः तस्य धीरं यद्गर्जितं तस्य क्षणे उत्सवे वा बद्धाः मुकुलाः यस्य तथाविधस्य कदम्बवृक्षस्य सादृश्यमिव विदधाति

अर्थात् यथा मेघगर्जनेन कदम्बवृक्षाः सकोरकाः भवन्ति, तथैवास्य धीरस्य ध्वनिं समाकर्ण्य किल रोमांचितो भवामि, इत्यर्थः।

(18) 'चन्द्रिका' दत्तेन्द्राभयेति– तत्पश्चात् धनुष की टंकार करते हुए, क्रोधित कुश प्रवेश करके कहता है कि–

ऐश्वर्य सम्पन्न, भगवान् वैवस्वत मनु से लेकर, आज तक इन्द्र को भी अभयदानरूपी दक्षिणा प्रदान करने वाले तथा अत्यधिक गर्व से युक्त राजाओं के भी गर्व को चूर्ण करने वाले, अपने क्षत्रिय पराक्रम रूपी अग्नि को सदा ही प्रज्वलित रखने वाले, सूर्यवंश के राजाओं के साथ, यदि आज मेरा युद्ध होता है, तो प्रज्वलित अस्त्रों की देदीप्यमान तथा तीक्ष्ण किरणों की शिखाओं से आरती की जाने वाली, प्रत्यंचा अर्थात् डोरी से युक्त, मेरा यह धनुष निश्चय ही धन्य है।

विशेष– (i) यहाँ कुश ने राम आदि से युद्ध की सम्भावना को लेकर अपनी प्रसन्नता अभिव्यक्त की है। अतः उसका वीरत्वाधिक्य व्यंजित हो रहा है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक के आरम्भिक दो चरणों में सूर्यवंशी राजाओं की विशेषता का उल्लेख किया गया है, जो राम को गौरवान्वित करने वाला है। शेष दो चरणों में धनुष की विशेषताओं का कथन हुआ है।

(iii) 'आदित्य' पद यहाँ सूर्यवंशी राजाओं के लिए प्रयुक्त हुआ है, जो संकट की घड़ी में देवों के राजा इन्द्र के भी रक्षक होते थे।

(iv) 'अभयदक्षिणैः' एवं 'क्षत्रप्रतापाग्निभिः' पदों में रूपक अलंकार, सम्पूर्ण पद्य में ओज गुण, गौड़ी रीति व शार्दूलविक्रीड़ित छन्द प्रयुक्त।

(v) विजयदशमी आदि पर्वों के अवसर पर क्षत्रिय लोग अपने शस्त्रों की आरती करते हैं, यहाँ उसी ओर संकेत किया गया है।

व्या.टि.– (i) दत्ता इन्द्राय अभयम्, एव दक्षिणा यैः तैः, बहुव्रीहि।

(ii) दीपितः निजः क्षत्रप्रतापः एव अग्निः यैः ते, तैः, बहुव्रीहि।

(iii) **वैवस्वत–** विवस्वत्+अण्। **दृप्त–** √दृप्+क्त। √दीप्+क्त।

(iv) निराजिता ज्या यस्य तत्, धनुः। निर्+ √राज्+णिच्+क्त।

संस्कृत व्याख्या– भगवतः वैवस्वात् एतन्नाम्नः मनोः आरभ्य दत्ता इन्द्रस्य अपि अभयरूपा दक्षिणा यैः, तैः सगर्वाणां नृपतीनां दमनं कर्तुं

प्रज्वलितः निजप्रतापाग्निः यैः, तैः सूर्यवंशप्रभवैः नृपतिभिः सह यदि युद्धं भवेत्, तर्हि प्रज्वलितानां अस्त्राणां देदीप्यमानाः तीव्राः या दीधितयः तासां कोटीभिः कृता नीराजना ज्या यस्य तत् मम एतद् धनुः धन्यमस्ति।

(19) 'चन्द्रिका' दृष्टिरिति– इसके बाद, श्रीराम, कुमार कुश के शौर्यसम्पन्न स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

(1) इस बालक की दृष्टि तीनों लोकों के सभी प्राणियों की सामर्थ्य के उत्कर्ष को भी तिनके के समान तुच्छ कर रही है। (2) इसीप्रकार इसकी धीर एवं गर्व से भरी चाल भी पृथ्वी को मानो झुका सी रही है। (3) अपनी बाल्यावस्था में भी पर्वत के समान गुरुता को धारण किए हुए, यह बालक क्या साक्षात् वीररस ही है या फिर साक्षात् गर्व ही हमारे सामने आ रहा है?

विशेष– (i) कुमार कुश के पराक्रम को अभिव्यक्त करने के लिए कवि ने यहाँ तीन मनोरम कल्पनाएँ की हैं, जो उसके प्रभावशाली एवं अलौकिक व्यक्तित्व को प्रदर्शित करने वाली हैं।

(ii) यहाँ 'गिरिवत्' में उपमा, 'नमयतीव' में उत्प्रेक्षा एवं कुश को ही वीररस तथा दर्प मानने के कारण अतिशयोक्ति और 'किमयम्' में सन्देह अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(iii) इसके अलावा वसन्ततिलका छन्द, ओज गुण, गौड़ी रीति, अद्भुतरस द्वारा पुष्ट होकर वीररस का प्रभावी प्रयोग भी है।

(iv) वीररस का नाम से प्रयोग करने पर कुछ विद्वानों ने इसे दोष रूप माना है, किन्तु यहाँ वह रस के स्वरूप में प्रयुक्त नहीं है, वस्तुतः उसकी वीररस के मूर्तिमान्‌रूप में कल्पना दोषावह नहीं है।

व्या.टि.– (i) त्रयाणां जगतां समाहारः, अतृणः तृणः कृतः, तृणी–कृतः जगत्त्रयस्य सत्त्वस्य सारः यया सा, समाहार द्वन्द्व।

(ii) **दृष्टिः**– √दृश्+क्तिन्। **पौरुषम्**– पौरुषस्य भावः, पुरुष+अण्।

(iii) **दधानः**– √धा+शानच्। **एति**– √इण्+लट्, प्र.पु.,ए.व.।

(iv) **नमयति**– √नम्+णिच्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(v) **कौमारके**– कुमारस्य भावः, कुमार+अण्, स.वि., एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– रामः कुशं दृष्ट्वा कथयति– एतस्मिन् बालके पौरुष्यातिरेको वर्तते, यतोहि अस्य दृष्टिः तृणीकृतः जगत्त्रयस्य सारः यया सा अर्थात् त्रिलोक्याः सारभूतानामपि पदार्थान् एषः तृणमिव मन्यते, इति। धीरा उद्धता चास्य गतिः पृथ्वीं नमयति, इव। कौमार्यावस्थायां अपि अयं पर्वतसदृशगुरुत्वं दधानः किमु साक्षात् मूर्तिमान् वीररसः समायाति? अथवा साक्षाद्दर्पः एव आगच्छति नैव जाने, इति भावः।

(20) 'चन्द्रिका' अहो इति– इसीप्रकार कुमार कुश, श्रीराम को देखकर, उनकी परिकल्पना ऐतिहासिक महाकाव्य रामायण के महान् चरित नायक के रूप में करते हुए कहता है कि–

आश्चर्य है कि इनका आकार प्रसाद गुण अर्थात् प्रसन्नता से युक्त है और प्रभाव भी दर्शकों को पवित्र कर देने वाला है। रामायण के महाकवि महर्षि वाल्मीकि ने इन्हें अपने महाकाव्य रामायण का चरित नायक बनाकर निश्चय ही, संस्कृत वाङ्मयी भारती देवी की सभी प्रकार से श्रीवृद्धि की है।

विशेष– (i) कुश यहाँ वस्तुतः पूर्व में ही रामायण तथा उसके नायकत्व से सुपरिचित है, राम की प्रशंसा उसने इसी रूप में की है।

(ii) कवि का अभिप्राय है कि इसप्रकार के महापुरुष को चरित नायक बनाकर वाल्मीकि का महाकवित्व निश्चय ही सफल है।

(iii) 'देवीं वाचम्' से अभिप्राय यहाँ देववाणी संस्कृत से है।

(iv) वाक्यार्थ हेतुक काव्यलिंग अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग भाषा की सरलता के साथ दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **अनुभाव**–अनु+ √भू+घञ्। **पावनः**– √पू+णिच्+ल्युट्।

(ii) **अवीवृधत्**– √वृध्+णिच्+लुङ्+प्रथमपुरुष, ए.व.। बढाया है।

संस्कृत व्याख्या– अहो आश्चर्यमेतत् अस्य महानुभावस्य प्रसन्नता युक्तं रूपमस्ति, पवित्रश्च अनुभावः परिलक्ष्यते। उचितमेव रामायणनाम–महाकाव्यस्य आदिकविना वाल्मीकिना चरितनायकः एनं जनं कृत्वा भगवती वाक्‌रूपा सरस्वती संवर्धिता, नैवास्मिन् संशयलेशोऽपि वर्तते।

(21) 'चन्द्रिका' अमृतेति– पुनः श्रीराम कुश के मनोरम शरीर को देखकर, आलिंगन करने की इच्छा प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि–

इस बालक को देखकर यह व्यक्ति (राम) वस्तुतः स्नेह के कारण जल से पूरी तरह भरे हुए बादल के समान, मनोज्ञ शरीर वाले तुम्हारे आलिंगन के लिए उत्कण्ठित हो रहा है।

विशेष– (i) बालक कुश के शरीर का आलिंगन करने की इच्छा के कारण वात्सल्यरस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) 'अमृत' पद से अभिप्राय यहाँ 'जल' से ग्रहण करना चाहिए।

(iii) 'परिष्वंगाय' में 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' से चतुर्थी विभक्ति।

(iv) 'वात्सल्यात्' हेतु में पंचमी, साभिप्राय विशेषणों के प्रयोग से परिकर अलंकार तथा जीमूत इत्यादि में इव का अर्थ, समास में लुप्त होने के कारण उपमा, प्रसाद गुण, पांचाली रीति एवं अनुष्टुप् छन्द।

व्या.टि.– (i) **आध्मात**– आ+√ध्मा+क्त। **स्निग्ध**– √स्निह्+क्त।

(ii) अमृतेनाध्मातः यः जीमूतः,सः इव स्निग्धं संहननं यस्य, तस्य।

(iii) **संहन्यते**– अस्थिचर्मादिकम् अत्र, सम्+ √हन्+ल्युट्।

(iv) **वात्सल्यात्**– वत्सलस्य भावः, वत्सल+ष्यञ्, पं.वि., ए.व.।

संस्कृत व्याख्या– **अयं जनः अर्थात् रामोऽयम् वात्सल्यकारणात् जलभरितंमेघवत् स्निग्धं शरीरं यस्य तस्य तेन समालिंगनाय उत्कण्ठा–युक्तं वर्तते। एनं बालकं दृष्ट्वा ममेच्छा अस्ति आलिंगनस्य अस्येति।**

(22) 'चन्द्रिका' अंगादिति–इसके बाद, श्रीराम, कुमार कुश के आलिंगन से प्राप्त होने वाले, असीम आनन्द के अनुभव का तन्मयता के साथ अभिभूत हुए के समान वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

इस बालक के आलिंगन के बाद, मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो यह तो मेरे प्रत्येक अंग से क्षरित होकर निकला हुआ और मेरे ही स्नेह से उत्पन्न होने वाला, शरीर का सारभूत अर्थात् उत्कृष्ट अंश है। यह मानो मेरा ही देह को धारण करने वाला चैतन्य तत्त्व है, जो प्रकट होकर, मेरे शरीर के बाहर स्थित है तथा प्रगाढ़ आनन्द के कारण अत्यधिक स्पन्दनशील हृदय के रस द्वारा सिंचित हुआ यह कुमार, निश्चय ही, इस गाढ़ आलिंगन करने पर, मेरे सन्तप्त हृदय को मानो बर्फ से सींचकर भारी ठंडक पहुँचा रहा है।

विशेष– (i) पुत्र के विषय में कहा गया है कि व्यक्ति का आत्मा ही पुत्र के रूप में जन्म लेता है, (आत्मा वै जायते पुत्रः) यहाँ कवि की इसी मान्यता 'की अभिव्यक्ति हुई है। प्रस्तुत चैतन्यतत्त्व वस्तुतः आत्मा का ही वाचक रहा है।

(ii) महाकवि द्वारा पुत्र–वात्सल्य के कारण होने वाली, राम के हृदय की अनुभूति को अद्भुत शब्दावली से अभिव्यंजित किया गया है।

(iii) राम की भावुकता तथा भाषा की प्रवाहमयता दर्शनीय है।

(iv) कुश के प्रगाढ़ आलिंगन से राम को पुत्र–स्पर्श से होने वाले, आनन्द की अनुभूति होने से, अन्तस्तल में कहीं उसके अपना पुत्र होने की अनुभूति भी हुई है, जिसे यहाँ अभिव्यक्त नहीं किया गया है।

(v) कुछ ऐसा ही वर्णन कालिदास ने शाकुन्तलम् (7/19) में दुष्यन्त–पुत्र भरत के स्पर्शसुख की अनुभूति के प्रसंग में भी किया है।

(vi) यहाँ पर 'इव' द्वारा सूचित तीन उत्प्रेक्षाओं की आपस में निरपेक्ष स्थिति होने से संसृष्टि अलंकार, माधुर्य गुण, वैदर्भी रीति, वात्सल्य रस तथा मन्दाक्रान्ता छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **निजस्नेह0**– निजः यः स्नेह तस्मात् जायते, इति।

(ii) **प्रादुर्भूय**– प्रादुः+ √भू+ल्यप्। **क्षुभित**– √क्षुभ्+क्त।

(iii) **अवसिक्तः**–अव+ √सिच्+क्त। **आश्लेष**– आ+ √श्लिष्+घञ्।

(iv) **आशंसति**– आ+ √शंस्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– **रामः, कुशस्य समालिंगन् सुखानुभूय कथयति– तत् किमर्थम् अयं बालकः अंगात् प्रति अवयवात् निःसृतः स्नेहात् उत्पन्नः निजः देहस्य स्थिरोऽशः इव मुख्यरूपेण चेतनाधातुः खलु बहिः प्रादुर्भूय स्थितः इव अस्ति। एवंच सघनः यः आनन्दः तेन क्षुभितं यद् हृदयं तस्य द्रवेण आर्द्रीकृतः इव बालोऽयं वर्तते। अनेन समालिंगनेन अयं बालकः मां तुषारसेकमिव सूचयति, इव। अस्य आलिंगनेन असीमा–नन्दानुभूतिः, शान्तिः, तृप्तिः वा संजाता, इत्यर्थः।**

(23) 'चन्द्रिका' अहो प्रश्रयेति– सूर्य के तपने से लव द्वारा किए गए, वृक्ष के नीचे आसन पर बैठने के प्रस्ताव को स्वीकार करके, सभी उसके नीचे बैठते हैं तो श्रीराम मन में चिन्तन करते हैं कि–

अत्यधिक आश्चर्य का विषय है कि इन दोनों बालकों कुश तथा लव में विनम्रता का अतिशय विद्यमान है, साथ ही, इनका चलना, रुकना, उठना, बैठना आदि सभी क्रियाएँ, इनके सम्राट् होने को ही सूचित कर रही हैं।

विशेष– (i) यहाँ कवि ने भावी घटना को सूचित किया है।

(ii) दोनों कुमारों की शारीरिक चेष्टाओं तथा हावभाव से इनके सम्राट् होने का अनुमान होने के कारण अनुमान अलंकार विद्यमान है।

(iii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, अनुष्टुप् छन्द तथा आश्चर्य से परिपुष्ट होकर वात्सल्यभाव भी अभिव्यक्त हुआ है।

व्या.टि.– (i) गतिश्च स्थितिश्च आसनं च, तानि आदीनि येषां ते।

(ii) **प्रश्रयः**– प्र+√श्रि+अच्। साम्राज्यम् सम्राजः भावः कर्म वा।

(iii) **साम्राज्य०**– साम्राज्य+√शंस्+इन्, प्रथमा विभक्ति, बहुव.।

संस्कृत व्याख्या– **तयोः बालकयोः गतिविधिं विलोक्य** रामः **स्वगतम् आह– आश्चर्यमेतत् यत् अनयोः नम्रतायाः सम्बन्धेऽपि गतिः, स्थितिः आसनं चेति सर्वे खलु साम्राज्यसूचकाः भावाः सूच्यन्ते** अर्थात् **विनये सत्यपि एतैः सर्वैः एतयोः साम्राज्यभाक्त्वं संसूचितं भवति।**

(24) 'चन्द्रिका' वपुरिति– इसी क्रम में आगे राम इन दोनों कुमारों की स्वाभाविक शोभा का आलंकारिक वर्णन करते हैं कि–

जिसप्रकार अपनी निर्मल किरणों द्वारा चन्द्रमा या फिर पुष्परस की सुवासित बूँदों के माध्यम से पूर्णरूप से विकसित कमल, सुशोभित किए जाते हैं, ठीक उसीप्रकार इन दोनों बालकों के जन्म के साथ ही उत्पन्न हुए, नैसर्गिक और मनोरम हाव–भाव, इनकी मनोहारिणी शोभा को प्रदर्शित कर रहे हैं।

विशेष– (i) लव और कुश के स्वाभाविक मनोरम हावभावों की उपमा क्रमशः निर्मल किरणों तथा पुष्परस की सुगन्धित बूँदों के साथ दी गयी है, जो अत्यन्त मनभावन बन पड़ी हैं।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में 'इव' के अर्थ में प्रयुक्त 'इव' तथा 'वा' पदों के कारण दो उपमाओं के संकर का प्रयोग हुआ है।

(iii) माधुर्य गुण, वैदर्भी रीति तथा मालिनी छन्द का प्रयोग है।

(iv) दोनों बालकों को देखकर प्रतिक्षण राम के सर्वथा अभिभूत होने और इनके प्रति अपनत्व की सुन्दर अभिव्यक्ति हो रही है।

व्या.टि.– (i) वपुषा अवियुताः च ते सिद्धाः, तत्पुरुष समास।

(ii) **माकरन्दाः**– मकरन्दस्य इमे, इति, मकरन्द+अण् (तस्येदम्)

(iii) **उद्भेदयन्ति**– उद्+√भिद्+णिच्, लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– **श्रीरामः लवकुशयोः बाह्यसौन्दर्यं निरीक्ष्य आह– स्वकीया रश्मयः यथा निर्मलं चन्द्रम् अत्यधिकं विकासयन्ति, शोभते वा सः तैः किरणैः, यथा वा पुष्परसस्य इमे सुवासिताः बिन्दवः विकसितं खलु कमलं नितरां सुशोभयन्ति, तथैव एतयोः शरीरेण सम्पृक्ताः शोभा–चमत्काराः प्रतिक्षणं रमणीयतां कान्तिं वा शरीरं विकासयन्ति। एतयोः अंगेषु स्वाभाविकी शोभा विद्यते इति भावः।**

(25) 'चन्द्रिका' कठोरेति– इसके पश्चात् राम मन में इन दोनों बालकों के रघुकुल के ही होने की सम्भावना को व्यक्त करते हुए, इनके उसीप्रकार के सौन्दर्य के विषय में कहते हैं कि–

इन दोनों बालकों के कन्धे बैल के कन्धों के समान परिपुष्ट हैं तथा इनका शरीर भी युवा कबूतर के गले के समान श्यामवर्ण है। इतना ही नहीं, इन दोनों की दृष्टि भी निर्मल एवं सिंह के समान, स्थिर है, जबकि इनके मुख से निकले हुए शब्द मंगल की सूचना देने वाले, मृदंग नामक वाद्य के समान गम्भीर हैं।

विशेष– (i), लव और कुश के अद्भुत शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन किया गया है, जो प्रायः रघुवंश के बालकों में भी देखा गया है।

(ii) यहाँ पर चार वाक्यों में 'इव' का अर्थ लुप्त होने से चार लुप्तोपमाओं का तथा तिलतण्डुलन्याय से, इनके निरपेक्षभाव से होने के कारण संसृष्टि अलंकार का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(iii) संस्कृत साहित्य में कन्धों की पुष्टता के लिए, बैल के कन्धों का उपमानरूप में प्रयोग अनेक कवियों द्वारा किया गया है।

(iv) प्रसाद गुण, पांचाली रीति तथा वंशस्थ छन्द दर्शनीय हैं। इसीप्रकार उनके साँवले रंग की उपमा के लिए युवा कबूतर के गले का उपमानरूप में प्रयोग भी अद्भुत तथा मौलिक कहा जा सकता है।

व्या.टि.– (i) वृषस्य स्कन्धौ इव सुबन्धुरौ अंसौ ययोः तौ, तयोः।
(ii) कठोरः चासौ पारावतः, तस्य कण्ठः, सः इव मेचकम्।
(iii) सिंहस्य इव स्तिमितम् प्रसन्नं च तत् सिंहस्तिमितम्।
(iv) मंगलाय हितं मंगल्यं,मंगल्यमेव मांगल्यं, मृदंगः इव मांसलः।
(v) **वीक्षितम्–** वि+ √ईक्ष्+क्त। **स्तिमितम्–** √स्तिम्+क्त।
(vi) **मांसलः–** मांसं लाति इति, मांस+लच्। मंगल–यत्।

संस्कृत व्याख्या– रामः अनयोः कुशलवयोः सौन्दर्यम् अवलम्ब्य पुनः कथयति– अनयोः उभयोरपि कुमारयोः अत्यधिकं रघुकुलस्य कुमाराणां साम्यमस्ति। रघुवंशस्य कुमाराः यादृशाः भवन्ति, तादृशौ इमौ खलु, इति भावः। यतोहि अनयोः स्कन्धौ वृषस्य इव अतीवमनोहरौ पुष्टौ, यथा च युवा पारावतः कण्ठः श्यामवर्णो भवति, तथैव एतयोः द्वयोः श्यामलवर्णः अस्ति। अवलोकनं च प्रसन्नः यः सिंहः तस्य दर्शनमिव शान्तं स्थिरं च विद्यते। ध्वनिश्चापि मंगलसूचको यो मृदंगः सः इव वृद्धिम् आपन्नः स्फुटः गभीरश्च वर्तते।

(26) 'चन्द्रिका' अपि जनकेति– तत्पश्चात् इन दोनों बालकों को ध्यान से देखने पर, सीता के अंगों तथा गुणों की सम्भावना को व्यक्त करते हुए श्रीराम कहते हैं कि–

इन दोनों बालकों को तो ध्यान से देखने पर, हमें सीता के मृदुल एवं सौन्दर्य सम्पन्न अंगों तथा गुणों की छवि भी दिखायी दे रही है, क्योंकि इन्हें देखने के बाद तो ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो नए कमल के समान, पहले से परिचित, अत्यन्त सुन्दर, प्रियतमा सीता का मुख ही, मेरे नेत्रों के सामने आ गया हो।

विशेष– (i) महाकवि का सामुद्रिक शास्त्र विषयक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि मान्यता है कि पुत्र का मुख यदि माता की आकृति से मिलता जुलता होता है, तो वह सौभाग्य का सूचक है–

धन्याः पितृमुखी कन्या धन्यो मातृमुखः सुतः।

(ii) यहाँ 'अभिनव' इत्यादि में 'इव' का अर्थ लुप्त होने से लुप्तोपमा, पुनरवि में प्रयुक्त 'इव' उत्प्रेक्षासूचक होने से उत्प्रेक्षालंकार

एवं मुखसाम्य के आधार पर सीता के मुख की स्मृति आने से स्मरण अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मालिनी छन्द का प्रयोग है।

(iv) लव, कुश के प्रति राम की वात्सल्यमयी भावना के साथ अपनत्व की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

व्या.टि.– (i) शिशोः युग्मम्, इति तस्मिन्। निपुणस्य भावः, तेन।
(ii) जनकस्य सुता, तस्याः इति। निपुण+अण्। श्री+मतुप्।
(iii) **गोचरीभूतम्–** अगोचरं गोचरं भूतम्। गोचर+च्वि+ √भू+क्त।

संस्कृत व्याख्या– अत्र बालयुगले निपुणतया दर्शनेन सर्वमपि जनकसुतायाः अनुकूलं स्फुटमस्ति। यादृशी आकृतिः तस्याः आसीत्, तादृशी खलु अनयोः वर्तते। अंगविन्यासादिकं वा निपुणतया विलोकनं तत् सर्वमपि, एतत् सत्यं यत् नवीनकमलशोभाम् प्रियायाः श्रीसम्पन्नं मुखं पुनः मम लोचनगोचरीभूतं वर्तते, प्रत्यक्षे इव मम इति जानामि सा।

(27) 'चन्द्रिका' शुक्लेति– तत्पश्चात् लव और कुश के ही अंगों में सीता के पूर्वपरिचित सौन्दर्य को देखते हुए राम कहते हैं कि–

इन दोनों बालकों के मोती के समान, दाँतों की श्वेत एवं निर्मल कान्ति से युक्त, दोनों ओठों का आकार एवं विन्यास निश्चय ही, सीता के समान ही हैं तथा दोनों कानों की प्रशंसनीय आकृति भी ठीक वैसी ही है। इसके अतिरिक्त यद्यपि इनके दोनों नेत्र किंचित् लालिमा लिए हुए, मेरे समान काले हैं, किन्तु फिर भी इनका सौन्दर्य विषयक गुण सीता के समान ही है।

विशेष– (i) यहाँ कवि ने दाँतों की निर्मल कान्ति से युक्त ओष्ठमुद्रा, कान तथा नेत्रों को सौन्दर्य–साम्य का आधार बनाया है, जिससे कवि की सूक्ष्मदृष्टि तथा चित्रात्मक वर्णन शैली दर्शनीय है।

(ii) 'सौभाग्य' से अभिप्राय यहाँ सौन्दर्य से ग्रहण करना चाहिए। 'मुक्ता' के स्थान पर 'शुक्ला' पाठभेद भी मिलता है।

(iii) उपमा तथा अनुप्रास, उपजाति छन्द का सुन्दर प्रयोग है।

(iv) सीता के ओष्ठादि की सुन्दरता का वर्णन कुश–लव के ओष्ठादि में करने से असम्भवन्वस्तुसम्बन्ध रूपा निदर्शनालंकार।

व्या.टि.– (i) **सौभाग्य**– सुभगस्य भावः, सुभग+ष्यञ्।
(ii) मुक्ता इव अच्छाः च ये दन्ताः, तेषां छविः, ताभिः सुन्दरा।
(iii)ओष्ठयोः मुद्रा, षष्ठी तत्पुरुष। **कर्णपाशः**–प्रशस्तौ कर्णौ स्तः।
(iv) रक्ते च नीले च, रक्तनीले, लोहितकृष्णे च स्तः।

संस्कृत व्याख्या– मुक्ता इव विशदाः ये दन्ताः, तेषां या छविः तद्वत् मनोहरा तस्याः सीतायाः इव खलु इयम् ओष्ठमुद्रा प्रतीयते। एवमेव अनयोः शोभनौ कर्णौ च तौ एव प्रतिभातः। यद्यपि नेत्रे रक्तनीले मम सदृशे स्तः, किन्तु सौभाग्यता सौन्दर्यसम्पन्नता तु लोचनयोः, सा वै जानक्याः सदृशी विद्यते किल।

(28) 'चन्द्रिका' परामिति– इसके बाद, श्रीराम अपने नेत्रों में अश्रु भरकर कहते हैं कि–

अत्यधिक सम्पर्क के कारण उत्पन्न हुए विश्वास तथा परिचय से हम दोनों का प्रेम, अपनी पराकाष्ठा अर्थात् चरमसीमा तक पहुँच गया था, इसलिए एकान्त में पूर्णरूप से विश्वास को प्राप्त होने पर भी स्वाभाविक लज्जा के कारण, निश्चल दृष्टि वाली, उस सीता के पूर्ण गर्भ को मैंने, पूर्वकाल में ही अपनी हथेली द्वारा उदर को सहलाते हुए, की जाने वाली सहज क्रिया के माध्यम से दो भागों में विभक्त हुआ जान लिया था, जबकि उसके कुछ दिनों के बाद ही उसे यह बात पता लग पायी थी।

विशेष– (i) महाकवि का प्रसूतिविज्ञान विषयक गहनज्ञान अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि आज भी चिकित्सक गर्भ में बच्चे की स्थिति को उदर पर हाथ फेर कर जान लेते हैं।

(ii) यहाँ प्रयुक्त 'मया' एवं 'तया' का केवल एक क्रियाधर्म के साथ कर्तृत्व सम्बन्ध होने से तुल्ययोगितालंकार का प्रयोग हुआ है।

(iii) प्रसादगुण, वैदर्भी रीति तथा शिखरिणी छन्द दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) परिचयस्य विकासः तस्मात्। रहसि विस्रब्धा तस्याः।
(ii) सहजा लज्जा तया जड़े दृशौ यस्याः, तस्याः सीतायाः।
(iii) करतलेन परामर्शः तस्य कला, तया क्रियया।
(iv) **अधिगते**– अधि+ √गम्+क्त, स.वि.ए.व। परा+ √मृश्+घञ्।

संस्कृत व्याख्या– यदा आवयोः स्नेहः परिचयस्य विकासात् परां कोटिं उपेतः, तदा खलु एकान्ते विश्वासपूर्वकं स्थितायाः सीतायाः स्वाभाविकी लज्जावशात् जड़लोचनायाः अपि सत्याः करतलस्य परामर्शकलया मया पुराकाले वै गर्भग्रन्थिः द्विधा अवगता, अत्र गर्भे द्वौ जीवौ स्तः, इति मया किल परिज्ञातम् आसीत्। कतिपयदिवसानन्तरं तया सीतया एतत् अवगतं तथ्यम्। अतः एभिः चिह्नैरपि एतौ कुशलवौ सीतातनयौ खलु स्तः, इति मन्ये।

(29) 'चन्द्रिका' बाष्पेति– लव और कुश की अपने पुत्रों के रूप में विचारणा के साथ ही राम की आँखों में आँसुओं को देखकर, लव कहता है कि– हे तात, यह क्या है?

सम्पूर्ण संसार का कल्याण करने वाले, आपका यह मुख, आँसुओं की वृष्टि से गीला होकर, ओस की बूँदों से भीगे हुए, कमल की शोभा को धारण कर रहा है।

विशेष– (i) सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में आँसुओं के लिए 'बाष्प' पद का प्रयोग हुआ है, इसीलिए कवि ने यहाँ इसका प्रयोग किया है।

(ii) राम के मुख की उपमा पुण्डरीक अर्थात् श्वेत कमल से दी गयी है, जो अत्यन्त सटीक प्रतीत होती है, क्योंकि सीता के दीर्घ–कालीन वियोग से मुख की लालिमा ने उनका साथ छोड़ दिया है।

(iii) इसीप्रकार अश्रुबिन्दुओं में ओस के कणों की कल्पना भी अत्यन्त मनभावन बन पड़ी है। निदर्शना का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(iv) बालक होते हुए भी लव की सूक्ष्मदृष्टि अभिव्यक्त हुई है।

(v) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है।

व्या.टि.– (i) बाष्पाणां वर्षणं तेन। अवश्यायेन अवसिक्तं तस्य।
(ii) **वर्षणम्**– √वृष्+ल्युट्। जगतां मंगलम्। चारु+तल्+टाप्।
(iii) **अवसिक्त**– अव+ √सिच्+क्त। **नीतम्**– √नी+क्त।

संस्कृत व्याख्या– लवः कथयति रामं प्रति– लोकानां कल्याणानां कारकं भवतः इदं मुखं सम्प्रति अश्रुवृष्ट्या तुषारावसिक्तस्य श्वेत–कमलस्य मनोज्ञतां प्रापितम्, इति।

(30) 'चन्द्रिका' **विनेति**– बाल्यचापल्यवश लव द्वारा राम के अश्रुओं के विषय में पूछे जाने पर, कुश उसे समझाते हुए कहता है–

हे वत्स! तुमने तो रामायण का अध्ययन किया है, इसलिए तुम्हारे द्वारा रघुपति राम से इसप्रकार का प्रश्न करना उचित नहीं है, क्योंकि पत्नी सीतादेवी के अभाव में संसार की ऐसी कौन सी वस्तु है, जो इनके लिए निश्चय ही दुःखदायी नहीं है अर्थात् संसार की सभी वस्तुएँ इनके लिए कष्ट प्रदान करने वाली हो गयी है, क्योंकि पत्नी के नष्ट हो जाने पर, व्यक्ति को सम्पूर्ण संसार ही जंगल के समान प्रतीत होने लगता है। कहाँ तो उनका वह पहले अनुभव किया गया अत्यधिक प्रेम और कहाँ यह हमेशा के लिए रहने वाला वियोगरूपी दुःख? इसलिए उनकी मनःस्थिति को जानते हुए, तुम्हें उनसे इसप्रकार की बात नहीं कहनी चाहिए।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक में रामायण महाकाव्य से अभिज्ञतावश कुश के बड़प्पन तथा गम्भीरता की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) 'विना' के योग में 'सीतादेव्या' पद में तृतीया विभक्ति।

(iii) शाश्वत सत्य की मार्मिक अभिव्यक्ति की गयी है।

(iv) ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि को इस कृति की रचना के समय विधुर जीवन यापन करना पड़ा हो, जिस पीड़ा को यहाँ पर उन्होंने अत्यधिक मार्मिक शब्दों में प्रदर्शित किया है।

(v) श्लोक के प्रथम पाद के विशेष अर्थ का द्वितीय चरण के विशेष अर्थ द्वारा समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार दर्शनीय है।

(vi) इसीप्रकार संसार को वन के समान सूना बताने से परिणाम अलंकार भी है। उक्त दोनों का अंगांगिभाव होने से संकर का प्रयोग।

(vii) प्रसाद गुण, लाटी रीति, शिखरिणी छन्द तथा करुणरस।

व्या.टि.– (i) **अनधिगत**– नञ्+ √अधि+गम्+क्त। न अधिगतम्।

(ii) **पृच्छसि**– √प्रच्छ्+लट्, मध्यम पुरुष, एक वचन, पूछ रहे हो।

(iii) **निरवधिः**– निर्गतः अवधिः यस्य सः, बहुव्रीहि।

संस्कृत व्याख्या– **कुशः कथयति लवं प्रति– अयि, वत्स! आदि–काव्यं रामायणं सम्यग् अधीत्यापि अनधीतवत् प्रश्नं करोषि? नैवोचित–मेतत्, यतोहि किं त्वं न जानासि यत् सीतादेवीं विना रघुपतेः संसारे–ऽस्मिन् किं वस्तु दुःखस्य कारणं नास्ति? यतोहि प्रियानाशे तु संसारमिदं अरण्यमेव जायते। एतयोस्तु सीतारामयोः तावान् असीमस्नेहः आसीत्, क्व चायं निरवधिकः वियोगः, सम्प्रति अनुभूयते अनेन। स्वाभाविकमेतद् अश्रुमोचनं किमपि स्मृत्वा इति भावः। सीता दुःखदुःखितस्य भगवतः रामस्य सर्वमपि जगत् वस्तुतः क्लेशकरमेवास्ति।**

(31) 'चन्द्रिका' **प्रियेति**– यहाँ प्रयुक्त दो श्लोकों में कुश ने वाल्मीकि रामायण के दो श्लोकों को प्रस्तुत करते हुए, तदनुसार राम एवं सीता के पारस्परिक प्रेम का सुन्दर चित्रण किया है–

पिता राजर्षि जनक के द्वारा वैवाहिक संस्कार विधि द्वारा, पत्नी रूप में प्रदान की गयी सीता, वस्तुतः राम को अत्यधिक प्रिय थीं। इसके अतिरिक्त सीता के विनम्रता, सरलता तथा सुशीलता आदि गुणों के कारण, अपनी पत्नी के प्रति उनका प्रेम भी अत्यधिक बढ़ गया था।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक का पाठभेद भी मिलता है, जिसमें कवि का अभिप्राय है कि 'सीता स्वभाव से ही महान् आत्मा राम को अत्यन्त प्रिय थीं, जिस प्रेम को वस्तुतः सीता ने ही अपने गुणों के कारण बढ़ाया था।' सीता के प्रभावी व्यक्तित्व का प्रतिपादन हुआ है।

(ii) राम और सीता का अद्भुत पारस्परिक प्रेम व्यक्त हुआ है, जिसे राम के अतिरिक्त अन्य कोई भी समझने में असमर्थ था।

(iii) अनुप्रास अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, अनुष्टुप् छन्द।

(iv) 'दारा' पद हमेशा पुल्लिंग, बहुवचन में ही प्रयुक्त होता है।

व्या.टि.– (i) पित्रा कृता। रूपमेव गुणः तैः। √प्रीञ्+क्तिन्।

(ii) **अवर्धत्**– √वृध्+लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन, बढ़ा हुआ था।

संस्कृत व्याख्या– **रामस्य आज्ञया कुशः वाल्मीकि रामायणस्य श्लोकद्वयं श्रावयति– सीता रामस्य पित्रा जनकेन यथाविधिः मन्त्र–संस्कारपूर्वकं प्रदत्ता सती, प्रिया पत्नी आसीत्। तयोः च रूपगुणैः दयादाक्षिण्यादिभिः गुणैः सरलस्वभावेन चातीव प्रीतिः आसीत्।**

(32) 'चन्द्रिका' **तथैवेति**– इसी क्रम में वाल्मीकि रामायण के अग्रिम श्लोक को प्रस्तुत करते हुए कुश कहता है कि–

ठीक उसीप्रकार राम भी सीता को अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय थे, क्योंकि राम और सीता, इन दोनों का हृदय ही एक दूसरे के साथ विद्यमान इस प्रेम सम्बन्ध को समझने में समर्थ है।

विशेष– (i) पतिव्रता स्त्री का प्रेम हमेशा ही पति की अपेक्षा अधिक होता है, जिसकी ओर यहाँ कवि ने संकेत किया है।

(ii) स्वाभाविक एवं गहन–प्रेम के विषय में महाकवि की मान्यता की सुन्दर एवं तलस्पर्शी अभिव्यक्ति हुई है।

(iii) उक्त दोनों श्लोक किंचित् परिवर्तन के साथ वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड (77/26–27) में प्रयुक्त हुए हैं।

(iv) सरल भाषा, प्रसादगुण, वैदर्भी रीति, अनुष्टुप् छन्द दर्शनीय।

व्या.टि.– (i) **अभवत्–** √भू+लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन, हुआ।

(ii) **जानाति–** √ज्ञा+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, जानता है।

संस्कृत व्याख्या– यथा रामस्य सीतायां प्रीतिः आसीत् तथैव रामोऽपि तस्याः प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत्। वस्तुतः एतादृशं पारस्परिकं प्रीतिसम्बन्धं तु केवलं हृदयमेव जानाति, तत्तु नैव मुखेन वक्तुं शक्यते।

(33) 'चन्द्रिका' क्व तावानेति– कुश द्वारा श्लोकों को प्रस्तुत करने के बाद, पुरातन स्मृतियों से विचलित हुए, राम अपने नीरस जीवन का कारुणिक दृश्य प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

अत्यधिक विश्वास के कारण बढ़ा हुआ, वह प्रगाढ़ और असीम आनन्द अब भला कहाँ है? अथवा हम दोनों का वह पुराना आपसी प्रेम भी अब कहाँ? प्रियतमा के साथ अनुभव किए गए, भौतिक विषयों का गहन रसास्वादन भी अब कहाँ है? इतना ही नहीं, अब तो सुख एवं दुःख में हम दोनों के हृदयों की वह समरसता भी न जाने कहाँ चली गयी है? अर्थात् निश्चय ही, वे पुराने दिन अब नहीं हैं, हाँ ये पापी प्राण अवश्य ही अभी भी गतिमान् हैं, ये नहीं रुक रहे हैं।

विशेष– (i) सीता के वियोग में राम की आन्तरिक गहनपीड़ा की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है, जिससे उन्होंने प्राणान्त की कामना की है।

(ii) भाषा की प्रवाहमयता तथा शब्दों का सुनियोजन द्रष्टव्य है।

(iii) विशेषोक्ति एवं स्मरण अलंकार, शिखरिणी छन्द दर्शनीय।

(iv) मनमोहक दाम्पत्य–प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है, जिसमें किसी भी एक के अभाव में दूसरा जीवित ही रहना नहीं चाहता है।

(v) 'प्राणों' के लिए यहाँ 'पापी' पद का प्रयोग, न निकलने के कारण उनकी निष्ठुरता को अभिव्यक्त करने के लिए किया गया है।

व्या.टि.– (i) निर्नास्ति अतिशयः यस्मात् सः चासौ विस्रम्भः, तेन।

(ii) ऐक्यम्–एकस्य भावः, एक+ष्यञ्।

(iii) पापम् अस्य अस्ति, इति, पाप+अच्।

(iv) **स्फुरति–** स्फुर्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन। गतिमान् है।

(v) **विरमति–** वि+√रम्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन। रुक रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या– पुरातनं गहनं सीतायाः प्रेम स्मरन् रामः कथयति– प्रचुरः स्वानुभूतिविषयस्तावानानन्दो न जाने क्व गतः? क्व वा तदन्योन्यप्रेम गतम्? सम्प्रति क्व ते अतिशयिताः कौतुकक्रीड़ानुरागाः सन्ति? सुखदुःखयोः हृदययोः ऐक्यमपि न जाने अधुना कुत्र विलीनम्? वस्तुतस्तु पूर्ववर्तिनः सुखसमाचाराः इदानीं कथामात्रावशेषाः संजाताः तथापि हृदये स्थितो ममैष प्राणवायुः सम्प्रति अपि स्फुरणं करोति, एषः पापी प्राणाः न तु विरमन्ति, विरामं नाप्नुवन्ति, इत्यर्थः।

(34) 'चन्द्रिका' प्रियेति– सीता के स्मरण से उत्पन्न अत्यधिक पीड़ा से व्यथित राम फिर से कहते हैं कि–

प्रियतमा सीता के हजारों गुणों को एक के बाद एक, प्रकाशित करने में निरन्तर लगा रहने वाला, अत्यधिक कष्ट से सहन करने योग्य जो समय है, हमें अब उसी की स्मृति दिला दी गयी है, जो वस्तुतः हमारे लिए अत्यधिक कष्टकारी है।

विशेष– (i) यहाँ प्रयुक्त 'सहस्र' पद 'अनेक' अर्थ में प्रयुक्त है।

(ii) 'स्मारिताः' पद में कर्मवाच्य में णिच् तथा पुनः क्त प्रत्यय।

(iii) राम को सीता के संयोगकाल की स्मृति होने से स्मरण अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **उन्मीलन–** उत्+√मील्+ल्युट्।

(ii) **दुःसहः–** दुःखेन सोढुं शक्यः। दुर्+√सह्+खल्।

(iii) क्रमेण उन्मीलने तत्परः। प्रियायाः गुणानां सहस्राणि, तेषाम्।

संस्कृत व्याख्या– अतीव कष्टस्य विषयोऽयम् यत्– यस्मिन् काले स्वप्राणेभ्योऽपि प्रियासीतायाः सहस्रसंख्यानां गुणानां क्रमशः समुन्मीलनं भवति, सः वै समयः साम्प्रतं स्मृतिपथम् आरूढ़ः, तथा च तस्याः सर्वेऽपि सौजन्यदाक्षिण्यादिकाः भावाः सन्ति, ते सहसा मम स्मृतिपथम् उपेताः सन्तः असह्याः संजाताः, किं करवाणि? नैव जानामि।

(35) **'चन्द्रिका' तदेति–** उन्हीं पुरानी स्मृतियों के विषय में श्रीराम फिर से कहते हैं कि–

उस समय सीता की युवावस्था में एक ओर तो प्रेम एवं आपस में मिलने अर्थात् आलिंगन बद्ध होने की आकांक्षा से अत्यधिक बढ़ा हुआ कामदेव, हृदय में अत्यन्त प्रौढ़ चेष्टाओं वाला था एवं उसी समय दूसरी ओर वह सीता अपने शरीर में नारीसुलभ लज्जा के कारण, भोली–भाली सरल चेष्टाओं को करते हुए, प्रगल्भता से शून्य होकर वह प्रकाशित हो रहा था। तब उसके वक्षस्थल पर धीरे–धीरे थोड़ा सा स्थान बनाने वाले अर्थात् उभार लेने वाले, मृग के समान नेत्रों वाली, उस सीता के कली के समान मनोरम स्तन, कुछ ही दिनों में किंचित् विस्तार से युक्त हो गए थे।

विशेष– (i) सीता की बाल्यावस्था से तरुणाई में प्रवेश करने का अत्यन्त मनोरम श्रृंगारिक वर्णन किया गया है।

(ii) किंचित् किंचित् पदों के प्रयोग से भाषागत सौन्दर्य दर्शनीय।

(iii) उपमा, पर्याय अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, शिखरिणी।

(iv) बालकों के समक्ष, इसप्रकार का श्रृंगारिक वर्णन, यद्यपि दोषावह है, किन्तु राम की मनःस्थिति को दृष्टिगत रखते हुए क्षम्य है।

(v) विवाह के समय सीता केवल छः वर्ष की थीं।

व्या.टि.– (i) **ईषद0–** ईषद्+वि+√स्तृ+णिनि, नपु, प्र.वि., एकव.।

(ii) **व्यतिकरः**–व्यातिक्रियतेऽनेन असौ, इति, वि+अति+√कृ+अप्।

(iii) **स्तनमुकुलम्–** स्तनौ मुकुले इव। प्रगल्भः व्यापारः यस्य सः।

(iv) **स्फुरति–** √स्फुर्+लट्, प्र.पु., ए.व., प्रकाशित होता है।

संस्कृत व्याख्या– यस्मिन् समये सीता प्राप्तयौवना अभूत्। अवस्थायां तस्यां अभिप्रायविशेषस्य, सम्पर्केण सघनः कामः प्रगल्भव्यापारः

सन् हृदये मुग्धतया च शरीरे स्फुरन् आसीत्। तदा कतिपयैः अहोभिः तस्याः मृगलोचनायाः सीतायाः स्तनमुकुलं विस्तृतम् अभूत्। यौवनारम्भे हृदये शरीरे च कामावेशो भवति स्म, तथैव सीतायाः अपि मनसि वपुषि च ते ते भावाः तेषां च प्रभावः प्रभविष्णवो अभवन्। यतोहि पूर्वं स्तनौ च तस्याः कलिकाकारौ आस्ताम्, तौ खलु च क्रमशः विस्तृतौ संजातौ। सा अवस्था कीदृशी मधुरा आसीत्। इदानीं तस्याः अवस्थायाः स्मरणमात्रेण मम अन्तःसन्तापम् अर्पयति इव, इति, हा कष्टम् अतीव विद्यते।

(36) **'चन्द्रिका' त्वदर्थमिति–** इसके बाद राम द्वारा चित्रकूट पर्वत के मार्ग में मन्दाकिनी में विहार करते समय, सीता को लक्ष्य करके, कहे गए श्लोक को प्रस्तुत करते हुए लव कहता है कि–

यह विशाल शिलापट्ट ऐसा प्रतीत होता है कि मानो तुम्हारे बैठने के लिए ही स्थापित किया गया हो, लम्बे–चौड़े इस शिलापट्ट के चारों ओर स्थित मौलसरी (केसर) के वृक्षों में यह सामने वाला वृक्ष, मानो तुम्हारे स्वागत में इसके ऊपर पुष्पों की वर्षा कर रहा है।

विशेष– (i) यहाँ लव ने राम द्वारा कही गयी बात का, ज्यों का त्यों वर्णन किया है। कवि का अभिप्राय है कि मानो प्रकृति ने भी यहाँ पर सीता का स्वागत किया था।

(ii) उत्प्रेक्षालंकार, प्रसादगुण, वैदर्भीरीति, अनुष्टुप् छन्द दर्शनीय।

(iii) 'अभितः' के योग में द्वितीया का विधान है, किन्तु यहाँ कवि ने षष्ठी विभक्ति का प्रयोग किया है, जो आर्ष प्रयोग है।

व्या.टि.– (i) शिला एव पट्टः इति। तव खलु अर्थम्, इति।

(ii) चित्रकूटस्य वर्त्मनि, तस्मिन्। मन्दाकिन्यां विहारः, तस्मिन्।

(iii) **विन्यस्तः–** वि+नि+√अस्+क्त। **प्रवृष्टः–** प्र+√वृष्+क्त।

संस्कृत व्याख्या– अस्मिन् खलु प्रसंगे लवोऽपि चित्रकूटस्य मार्गे रामस्य उक्तिं एवं पठति– अयं सुदीर्घः शिलापट्टोऽस्ति, यस्य परितः बकुलवृक्षाः सन्ति, अस्मिन् शिलापट्टे पुष्पवृष्टिमिव कुर्वन्ति, इति मन्ये अतएव अस्मिन् शिलापट्टे उपविश्यताम्, एतत् त्वदर्थमिव विन्यस्तः इव।

(37) **'चन्द्रिका' श्रमाम्बुरिति–** लव द्वारा सुनाए गए, श्लोक से राम, सीता को स्मरण करके, उनकी स्मृति के विषय में, उनसे प्रश्न

करते हुए कहते हैं कि– हे देवि! क्या तुम पूर्व में घटे हुए उन वृत्तान्तों को स्मरण करती हो अथवा नहीं? किन्तु मैं तो इस समय तुम्हारे उस सुन्दर मुख को अपने सामने स्थित हुआ सा देख रहा हूँ, मार्ग में चलने के परिश्रम के कारण उत्पन्न हुए, पसीने द्वारा शीतल होते हुए, जिसने धीमी गति से चलती हुई गंगा के जलकणों से युक्त, वायु द्वारा चंचल किए गए, केशों के समूह से, चन्द्रमा के समान मस्तक की कान्ति को आवृत्त कर लिया गया था तथा वह कुंकुम के लेप के बिना अरुणिमा से रहित था, किन्तु फिर भी तेजोमय कपोलों से सुशोभित होते हुए, आभूषणों के अभाव में भी सुन्दरता से युक्त एवं श्रेष्ठ कानों से मनोहर प्रतीत हो रहा था।

विशेष– (i) सीता की अनुपस्थिति में भी स्मृति के आधार पर उनके मुख को सामने स्थित हुआ सा वर्णित किया गया है, अतः कवि की चित्रात्मक एवं उत्कृष्ट वर्णन शैली दर्शनीय है।

(ii) मुख के विशेषण के रूप में प्रयुक्त 'द्युति' पद यहाँ नपुंसक–लिंग है, जिसके द्युति, द्युतिनी, द्युतीनि, रूप चलेंगे।

(iii) यहाँ 'ललाटचन्द्र' में रूपक, 'उत्प्रेक्ष्यते' से उत्प्रेक्षा, मुख का स्मरण आने से 'स्मरण' तथा अन्तिम दो पंक्तियों में कुंकुमलेप के बिना कपोलों की उज्ज्वलता तथा आभूषणों के अभाव में सौन्दर्य का वर्णन करने से विभावना आदि अलंकारों का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) प्रसाद गुण, गौड़ी रीति एवं पृथ्वी छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्या.टि.–(i) श्रमाम्बुभि शिशिरीभवत्। प्रसृताः मन्दाः ये मन्दाकिन्याः मरुतः तैः तरलिताः अलकाः तैः व्याकुलाः ललाटचन्द्रस्य द्युतिः यस्मिन्।

(ii) निराभरणौ सुन्दरौ श्रवणपाशौ ताभ्यां मुग्धम्।

(iii) **उत्प्रेक्ष्यते–** उत्+प्र+ √ईक्ष्+कर्मणि लट्, प्रथमपुरुष, एकव.।

(iv) **कलंकित–** कलंक+इतच्। **प्रसृत–** प्र+ √सृ+क्त।

(v) **तरलित–** करोति अर्थ में तरल शब्द से णिच् होकर क्त।

संस्कृत व्याख्या– सीतायाः शोकात् खिन्नमनः रामः तां सम्बोध्य कथयति– किं त्वं पूर्ववृत्तान्तं स्मरसि? न वा, किन्तु अहं तु एवंविधं तव मुखं पुरतः खलु स्थितः पश्यामि, इति यत्, मार्गे चलनेन उत्पन्नेन

श्रमजलेन स्वेदबिन्दुभिः शिशिरीभवत्, शीतलमिव सम्पन्नं आसीत्, यो मन्दाकिन्याः पवनः तेन चांचल्यं प्रापिताः ये तव अलकाः, तैः व्याकुलाः ललाटरूपस्य चन्द्रस्य द्युतिः यस्य तत्, कुंकुमचिह्नरहितौ कपोलौ यस्य, आभूषणरहितौ अपि सुन्दरौ कर्णपाशौ, ताभ्यां मुग्धं एवंविधं तव मुखं पुरतः विद्यमानमिव पश्यामि, इति।

(38) 'चन्द्रिका' चिरमिति– इसप्रकार सीता को याद करके, राम निश्चेष्ट के समान, अत्यन्त ग्लानि के साथ फिर से कहते हैं कि–

यदि व्यक्ति विदेश में गया हुआ है तो भी अनेक बार उसका स्मरण करके, अपने मन में ही प्रियजन की काल्पनिक मूर्ति का निर्माण करके, सामने ही स्थापित किया हुआ सा प्रेमीजन स्मरण करने वाले दूसरे प्रेमी को सान्त्वना नहीं देता है, ऐसा नहीं है, अपितु सान्त्वना प्रदान करता ही है, जबकि पत्नी के दिवंगत होने पर तो, उस विधुर व्यक्ति के लिए, यह सम्पूर्ण संसार ही मानो शोभाहीन पुराना वन हो जाता है और उसके बाद, उस वियोगी का हृदय, भूसी के ढ़ेर में लगी हुई अग्नि पर रखा हुआ मानो सुलगता ही रहता है।

विशेष– (i) कवि का अभिप्राय है कि यदि प्रेमी जीवित है और विदेशादि में प्रवास पर गया हुआ है, तो भी उसका वियोग सह्य है, किन्तु प्रेमी के मरने पर तो उसके वियोग में मन को बहलाने का कोई उपाय ही नही है, तब तो यह संसार जीर्ण वन के समान हो जाता है।

(ii) राम की आन्तरिक पीड़ा की सुन्दर अभिव्यक्ति की गयी है, जो लव और कुश की माता सीता को त्यागने के, इन दोनों के मनो–मालिन्य को दूर करके, भविष्य में राम के निकट लाने में सहायक सिद्ध होगी, कवि ने यह प्रसंग विशेष प्रयोजनवश नियोजित किया है।

(iii) राम की विरहदशा की पीड़ा का चित्रण करने के लिए, 'तुष' के ढ़ेर में लगी हुई अग्नि की उत्प्रेक्षा अत्यन्त प्रभावी बन पड़ी है, जो अत्यन्त विस्तृत और गहन अर्थ को अपने में संजाए हुए है, क्योंकि भूसी की अग्नि की विशेषता होती है कि वह लम्बे समय तक अन्दर ही अन्दर सुलगती रहती है, जल्दी से बुझती नहीं है।

(iv) हितोपदेश में भी इन्हीं भावों को अभिव्यक्त किया गया है–

गृहं हि गृहिणीहीनम्, आरण्यसदृशं मतम्।

(v) प्रस्तुत कृति के प्रणयन से पूर्व कवि के विधुर जीवन की स्वयं की अनुभूति की भी अभिव्यंजना हो रही है।

(vi) प्रसाद गुण, लाटी रीति, शिखरिणी छन्द, उत्प्रेक्षालंकार।

(vii) विरह वस्तुतः दो प्रकार का होता है, प्रवासजन्य एवं मरण जन्य, इनमें यहाँ मरणजन्य विरह के परिणाम स्वरूप होने वाले, संसार के जीर्ण अरण्य होने तथा असह्य दाह की बात की गयी है।

(viii) प्रस्तुत श्लोक को विद्वानों ने 'कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते' इत्यादि की व्याख्या में उत्कृष्ट उदाहरण रूप में स्वीकार किया है।

व्या.टि.– (i) प्रियः चासौ जनः। जीर्णं च तद् अरण्यम्। कर्मधारय

(ii) **ध्यात्वा**– √ध्यै+ क्त्वा। **निर्माय**– निर्+ √मा+क्त्वा (ल्यप्)

(iii) **निहितः**– नि+ √धा–हि आदेश+क्त। **जीर्ण**– √जॄ+क्त।

(iv)**उपरत**–उप+ √रम्+क्त। **पच्यते**– √पच्+लट्,आत्मने,प्र.पु.ए.व।

संस्कृत व्याख्या– रामः कथयति– प्रवाससमये सुदूरं गत्वा कल्पनाभिः प्रकल्प्य समक्षे स्थापितः इव प्रियजनः आश्वासं प्रददाति वै, किन्तु कलत्रे पंचत्वम् उपगते, तु एतत् जगत् जीर्णम् अरण्यमिव प्रतिभाति। अनन्तरं च हृदयमपि तुषाग्नीनां राशाविव परिपक्वं जायते अर्थात् प्रवासे प्रियजनः प्रकल्पितमूर्तिः सन् धैर्यं ददाति, किन्तु पत्न्याः परलोके गते तु सर्वोऽपि संसारः प्राचीनं जनशून्यम् अरण्यमिव विभाति।

(39) 'चन्द्रिका' वसिष्ठः, इति– इसी बीच नेपथ्य से वसिष्ठ आदि गुरुजनों के आगमन की सूचना दी जाती है, तदनुसार–

अरुन्धती के साथ महर्षि वसिष्ठ, आदिकवि वाल्मीकि, महाराज दशरथ की सभी रानियाँ, राजर्षि जनक, ये सभी महानुभाव लव और चन्द्रकेतु आदि बालकों के युद्ध विषयक समाचार को सुनकर, किसी प्रकार के अनिष्ट की आशंका के कारण भयभीत होकर, मन से शीघ्रता करते हुए, किन्तु शरीर के वृद्ध होने से तेज गति से न चल पाने के कारण, शिथिल शरीर वाले एवं हड़बड़ाहट में बिखरी हुई जटाओं से युक्त, आश्रम के दूर स्थित होने से, वृद्धावस्था के कारण पीड़ित अंगों द्वारा, अत्यधिक देरी से युद्धस्थल पर आ रहे हैं।

विशेष– (i) कवि का अभिप्राय है कि यद्यपि उक्त सभी वृद्ध लोग बालकों को युद्ध से रोकने के लिए रणभूमि में शीघ्र ही पहुँचना चाहते हैं, किन्तु अपनी वृद्धावस्था के कारण विवश थे।

(ii) आगमन के विलम्ब में 'जरा' को कारण रूप में प्रस्तुत करने से काव्यलिंग अलंकार, प्रसादगुण, वैदर्भीरीति व शिखरिणी छन्द।

(iii) 'गात्रैः' में 'इत्थं भूतलक्षणे' से तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है, साथ ही, यहाँ पर जटाओं के बिखरने की बात से, उनके मन की उद्विग्नता, व्याकुलता तथा अस्तव्यस्तता भी अभिव्यक्त हुई है।

व्या.टि.–(i)दशरथस्य महिष्यः,शिशोः कलहः तम्। भयेन सहिताः।

(ii) त्वरितानि मनांसि येषां ते। विश्लथाः जटाः येषां ते।

(iii) **आकर्ण्य**– आ+ √कर्ण्+णिच् (क्त्वा) ल्यप्।

(iv) **आश्रमतया**– आश्रम+तल्+टाप्, स्त्री. तृ. वि., एकवचन।

(v) **ग्रस्तैः**– √ग्रस्+क्त, तृ.ब.व.। जरया ग्रस्तानि तैः, इति।

(vi) **आगच्छन्ति**– आ+ √गम्+लट्, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

संस्कृत व्याख्या– नेपथ्ये वसिष्ठादीनाम् आगमनं संसूच्यते, बालकानां युद्धस्थले– कुलगुरुः वसिष्ठः, महामुनिः भगवान् वाल्मीकिः, कौसल्यादयः महाराजदशरथस्य महिष्यः, राजर्षिः जनकश्च, इत्येते अरुन्धत्या सह शिशुजनकलहं श्रुत्वा, भीता इव वृद्धावस्थया शिथिल–शरीराः आश्रमस्य च दूरतया विश्लथजटाः, त्वरितचेतसः सन्तोऽपि गमनशैथिल्यात् चिरेण आयान्ति।

(40) 'चन्द्रिका' सम्बन्धेति– नेपथ्य से महर्षि वसिष्ठ एवं राजर्षि जनक आदि सभी वृद्धजनों के आने के समाचार सुनकर, उन सभी का सामना न कर पाने से, अपराधबोध से ग्रस्त राम कहते हैं कि–

रघु तथा जनक, इन दोनों वंशों के बीच में विवाह सम्बन्ध की अभिलाषा होने के कारण, प्रसन्न मन वाले महर्षि वसिष्ठ आदि पूजनीय लोगों से अधिष्ठित, सीता और राम आदि अपनी सन्तानों के विवाह सम्बन्धी मंगलमय उत्सव पर, उन वर एवं वधूओं के पितृजन दशरथ तथा जनक आदि के मिलन को देखकर तथा इस समय सीता के निष्कासनरूपी भयंकर हत्याकाण्ड के घटित हो जाने पर, इसप्रकार के

पुत्री विषयक वियोग से दुःखी, पिता दशरथ के मित्र जनक को देखते हुए, घोर अपराधी मैं राम, आज भला क्यों हजारों टुकड़ों में विदीर्ण नहीं हो जाता हूँ अथवा कठोर हृदय राम के लिए क्या करना दुष्कर है, इसलिए वह तो इन सबका भी सामना कर ही लेगा।

विशेष– (i) विशेषरूप से निरपराध पुत्री सीता के परित्याग करने तथा वन में अनाथ के समान विनष्ट होने से दुःखी तथा क्रुद्ध हुए जनक के समक्ष जाने में राम की गहन पीड़ा, अपराधबोध, लज्जा, डर और संकोचादि अनेक भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) **महावैशस**– इस पद का यहाँ विशिष्ट प्रयोजन की अभि-व्यक्ति के लिए प्रयोग किया गया है, क्योंकि स्वयं राम भी निरपराध सीता के इसप्रकार निष्कासन को घोर हिंसा के रूप में मानते रहे हैं।

(iii) इसीप्रकार यहाँ प्रयुक्त 'किं दुष्करम्' पद से 'राम के लिए तो सभी कुछ सुकर है, कुछ भी दुष्कर नहीं है' इस अर्थ की प्रतीति से अर्थापत्ति तथा हृदय के विदीर्ण होने का कारण होते हुए भी, उसके विदीर्ण न होने से विशेषोक्ति अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं शार्दूलविक्रीड़ित छन्द है।

(v) वस्तुतः श्रीराम, सीता परित्याग रूप घटना के बाद, अपने गुरुजनों का भी सामना करने में स्वयं को पूर्णतया असमर्थ पा रहे हैं, इसीलिए उन्होंने अपने हृदय के विदीर्ण होने की कामना की है।

व्या.टि.– (i) सम्बन्धस्य स्पृहणीयतया प्रमुदिताः तै, तत्पुरुष।

(ii) **स्पृहणीयता**– √स्पृह्+अनीयर्+तल्+टाप्, स्त्रीत्व विवक्षा में।

(iii) **प्रमुदितैः**–प्र+ √मुद्+क्त, तृ.ब.व। **वृत्ते**– √वृत्+क्त, स.ए.व.।

(iv) **दुष्करम्**–दुस्+ √कृ+खल्, नपु., प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

(v) **पितृसखम्**– पितृ+सखिन्+टच् (समासान्त, राजाह. सूत्र से)

(vi) **जुष्टे**– √जुष्+क्त, सप्तमी विभक्ति, एक वचन।

संस्कृत व्याख्या– **सम्प्रति राजर्षेः जनकस्य दर्शनं केन प्रकारेण कर्तुं शक्नोमि, इति विचिन्त्य कथयति– विवाहसमये सम्बन्धस्य** उत्तमतया ज्येष्ठाः कुलगुरुवसिष्ठादयः सर्वेऽपि प्रमुदिताः आसन्। तातयोः दशरथजनकयोः संगमं अवलोक्य, महान् चासौ आनन्दः मया अनुभूतः

खलु। अद्य ईदृशीं दशां प्रपन्नोऽहं प्रियपितृमित्रं तातं श्रीजनकं पश्यन् कथं विदीर्णो न भवामि? अथवा अधिकं किम्? रामेण किं दुष्करमस्ति? एषः भाग्यहीनो रामः सर्वं किल सोढुं शक्नोति।

(41) 'चन्द्रिका' अनुभावेति– इसी क्रम में नेपथ्य से राम को देखकर, उनकी माताओं के मूर्च्छित होने की सूचना देते हैं कि–

केवल प्रभावमात्र से शोभायुक्त रामभद्र को अकस्मात् ही देखकर, पूर्व में कौशल्या आदि द्वारा होश में लाए हुए, राजर्षि जनक द्वारा होश में लायी गयीं कौशल्या आदि माताएँ, व्याकुल होकर फिर से अत्यधिक मूर्च्छा को प्राप्त हो रही हैं।

विशेष– (i) सूखे राम की दयनीय शारीरिक स्थिति को देखकर, राजर्षि जनक तथा राम की माताओं के बार–बार मूर्च्छित होने की सूचना दी गयी है, जिससे इनकी शोक की विपुलता सूचित हुई है।

(ii) पवर्ग के प्रचुरता से प्रयोग होने से वृत्त्यानुप्रास अलंकार।

(iii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मंजुभाषिणी छन्द का प्रयोग।

(iv) राम यहाँ केवल तेजोमयी 'छाया' मात्र ही शेष रह गए हैं, इससे करुणरस की गहन अभिव्यंजना भी हो रही है।

(v) शाकुन्तलम् में भी नाटककार कालिदास ने दुष्यन्त के वियोग में शकुन्तला को लावण्यमयी छाया से युक्त ही कहा है–

केवलं लावण्यमयी छाया त्वां न मुंचति। सप्तम अंक

व्या.टि.– (i) अनुभावमात्रेण समवस्थिता श्रीः यस्य सः।

(ii) प्रथमं प्रबुद्धः जनकः, तेन प्रबोधिताः। प्रकृष्टो मोहः तम्।

(iii) **अनुभाव**– अनु+ √भू+घञ्। **वीक्ष्य**– वि+ √ईक्ष्+क्त्वा(ल्यप्)।

(iv) **समवस्थित**– सम्+अव+ √स्था+क्त। (आ को इ आदेश)

(v) **उपयान्ति**– उप+या+लट्, प्र.पु.,ब.व.। प्र+ √बुध्+णिच्+क्त।

संस्कृत व्याख्या– तदनन्तरं नेपथ्ये रामस्य मातरः मोहं गताः, इति संसूचयति– केवलं प्रभावमात्रेण यस्मिन् शोभा सम्प्रति विद्यते, रामस्य शुष्कं तं शरीरं आकस्मिकमेव अवलोक्य, जनकः राममातरश्च सर्वेऽमी मोहं न जहति, पुनः पुनः मोहमुपयान्ति, इति भावः, अनेन तेषां शोकगहनता सूच्यते।

(42) 'चन्द्रिका' जनकानामिति– इसप्रकार षष्ठ अंक के अन्त में श्रीराम अपने मन को कठोर करके, इन सभी शोकाकुल गुरुजनों को लक्ष्य करके, इनका स्वागत करने के लिए तैयार होकर कहते हैं कि–

जनक तथा रघुकुल के राजाओं के लिए, जो सीता पूर्णरूप से वंश का कल्याण करने वाली थी, उसी जानकी के प्रति भी दया से पूर्णतया शून्य तथा पापी मुझ राम पर आपको सहानुभूति या स्नेह के कारण, उनके व्यर्थ होने से, दया करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जो अपराध मेरे द्वारा किया गया है, वह वस्तुतः क्षम्य नहीं है।

विशेष– (i) विद्वानों ने प्रस्तुत अंक को लव और कुश की पहचान कराने के कारण, अभिज्ञान शाकुन्तलम् के सप्तम अंक की भावभूमि पर विरचित स्वीकार किया है।

(ii) श्रीराम का अपराधबोध तथा गुरुजनों के प्रति गहन आदर भाव अभिव्यक्त हुआ है। भाषा की प्रवाहमयता भी देखने योग्य है।

(iii) यहाँ पर करुणा की व्यर्थता में राम की निर्दयता एवं पापकारित्व को हेतु बताया गया है, अतः काव्यलिंग अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, अनुष्टुप् छन्द का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) सीता के पवित्र चरित्र को स्वयं राम द्वारा ही उद्घाटित किया गया है, जो विशेषरूप से ध्यातव्य है।

व्या.टि.– (i) **गोत्रमंगलम्–** (जनकरघूणाम्) गोत्रयोः मंगलमिति।

(ii) तत्र+अपि+अकरुणे–दीर्घ, यण् सन्धि, अ+अ–आ, इ को य्।

(iii) **अकरुणे–**अविद्यमाना करुणा यस्मिन्, सः तस्मिन्, बहुव्रीहि।

संस्कृत व्याख्या– तत्र समागतान् सर्वानपि गुरुजनान् शोकाकुलान् उद्दिश्य रामः कथयति– या सीता जनकानां रघूणां च वंशयोः कृते सम्पूर्णं खलु मंगलम् आसीत्, तस्याम् अपि सीतायां एवं अकरुणे पापमये रामे नैव भवद्भिः करुणायाः दयायाः वा आवश्यकता अस्ति। यतोहि अहं भवतां सर्वेषां वै अपराधी अस्मि, ईदृशं मां दण्डय, इति भावः। अपराद्धोऽहं सर्वं सहिष्ये, इति भावः।

•••

सप्तम अङ्क

पृष्ठभूमि– प्रस्तुत सप्तम अंक का मुख्य उद्देश्य दो वियुक्त हृदयों का, बारह वर्ष के बाद, मिलन कराना है, इसीलिए महाकवि ने इसका नाम 'सम्मेलनम्' रखा है। वस्तुतः सीता के परित्याग का मुख्य कारण 'लोक' रहा है, जिसकी सहानुभूति तथा सहमति के अभाव में लोकाराधक राम, सीता को फिर से स्वीकार नहीं कर सकते हैं, इसलिए कवि ने यहाँ नाटक में भी एक अन्य नाटक अर्थात् गर्भांक की कल्पना करके इसे पूरा किया है, जिसके लिए सर्वप्रथम तो वाल्मीकि के प्रभाव से ब्राह्मण, क्षत्रिय, सभी नागरिक, प्रजा, दैत्य, नाग, स्थावर, जंगमात्मक समस्त प्राणिसमूह को एकत्र किया है।

उसके बाद अप्सराओं द्वारा अभिनय किए गए, इस गर्भांक नाटक में गंगा और पृथ्वी के वार्तालाप के माध्यम से सीता की पूर्ण पवित्रता से अवगत कराते हुए, उक्त सम्पूर्ण प्राणिसमुदाय की स्वीकारोक्ति करायी गयी है और अन्त में राम का सीता एवं उसके दोनों पुत्रों लव एवं कुश के साथ मिलन कराकर, नाटक को सुखान्त किया है। यहाँ नाटक में नाटक अर्थात् गर्भांक की कल्पना, कवि की सर्वथा मौलिक रही है। इसीप्रकार राम और सीता तथा उनके दोनों पुत्रों लव, कुश के जीवन में, उनके मिलन में, महर्षि वाल्मीकि का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इस अंक में भी महाकवि ने करुणरस की सुन्दर, मनभावन तथा तलस्पर्शी सृष्टि की है।

(1) 'चन्द्रिका' राज्येति– अंक के आरम्भ में लक्ष्मण प्रवेश करके, रंगशाला में सभी दर्शकों के बैठने की यथोचित व्यवस्थाओं को करने की सूचना देने के बाद, राम के शुभागमन के विषय में कहता है कि–

राज्यरूपी आश्रम में निवास करते हुए भी, अत्यधिक कष्ट प्रदान करने वाले, मुनियों के व्रत का पालन करने वाले आर्य श्रीराम, महर्षि वाल्मीकि के प्रति अत्यन्त आदरभाव होने के कारण, इधर रंगशाला की ओर ही आ रहे हैं।

विशेष– (i) वस्तुतः सीता के परित्याग के बाद, राम ने राजकार्य चलाते हुए भी, अपने जीवन तथा रहन–सहन को आश्रम में निवास कर रहे मुनियों के समान त्यागमय बना लिया है, क्योंकि उन्हें सांसारिक भोगविलासों से पूर्णतया विरक्ति हो गयी है।

(ii) महर्षि वाल्मीकि के प्रति राम के अत्यधिक आदरभाव की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है, क्योंकि राजकार्य में अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी वे महर्षि वाल्मीकि के आमन्त्रण पर, रंगशाला में नाटक देखने के लिए यहाँ आए हैं।

(iii) राज्य के उपभोग में भी आश्रम के जीवन का वर्णन होने से विरोधाभास अलंकार, जिसमें सीतावियोग के कारण भोगों में अनासक्ति भाव लेने पर, इस विरोध का परिहार स्वतः ही हो जाता है।

(iv) इसीप्रकार वाल्मीकि आश्रम की ओर न जाने के कारणों के रहते हुए भी, उधर जाने रूप कार्य के होने पर विशेषोक्ति अलंकार।

(v) प्राचीन समय में राजा भी ऋषियों का अत्यधिक आदर करते थे, इस भाव की प्रभावी अभिव्यक्ति हुई है।

(vi) सीता के त्याग के बाद, राम ने अपने जीवन को तपोमूलक बना लिया था, जिसकी ओर यहाँ संकेत किया गया है।

(vii) कालिदास ने भी राजा के कार्य को आश्रमरूप में वर्णित किया है– अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाऽप्याश्रमे सर्वभोग्ये। (अभि.–2/14)

(viii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग।

व्या.टि.– (i) राज्यमेव आश्रमः तत्र निवासः यस्य सः।

(ii) प्राप्तं कष्टं मुनीनां व्रतं येन सः। वाल्मीकेः गौरवः तस्मात्।

(iii) आ समन्तात् श्राम्यन्ति, जनाः अस्मिन्, आ+√श्रम्+अप्।

(iv) निवसनं **निवासः**, भावार्थे घञ्, नि+√वस्+घञ्।

(v) **अभिवर्तते**– अभि+√वृत्+लट्, आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– महाराजः रामोऽयं राज्यमेव आश्रमः तत्र स्थितोऽपि मुनिवत् कष्टव्रतपालनेन, शिथिलांगोऽपि भगवतः वाल्मीकेः गौरवात् इतः रंगशालां प्रति आगच्छति, इति।

(2) 'चन्द्रिका' विश्वम्भरेति– इसके बाद, गर्भांक नाटक में सूत्रधार प्रवेश करके, राम द्वारा परित्याग की गयी, सीता के प्रसव–वेदना से अत्यधिक पीड़ित होने पर, आत्मघात हेतु गंगा नदी में कूदने की सूचना देते हुए कहता है कि–

सम्पूर्ण विश्व का भरण–पोषण करने वाली, पृथ्वी की पुत्री देवी सीता, महाराज राम द्वारा भयंकर वन में त्याग दिए जाने के कारण, प्रसव की भयंकर वेदना से अत्यन्त पीड़ित होकर, अपने आपको गंगा में गिराकर अपने प्राणों का त्याग कर रही हैं।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक के साथ गर्भांक की प्रस्तावना समाप्त हो जाती है, जो सामान्य नाट्य प्रस्तावना से सर्वथा भिन्न है।

(ii) 'विश्वंभरा' पद का प्रयोग यहाँ सप्रयोजन किया गया है।

(iii) सीता की अपने जीवन से घोर–निराशा व्यक्त हुई है।

व्या.टि.– (i) विश्वं बिभर्ति इति, तस्याः विश्वंभरायाः आत्मजाः।

(ii) महत् वनम्, इति तस्मिन्। विश्व(म्)+√भृ+खच्(अ)+टाप्।

(iii) **विमुंचति**– वि+√मुच्+लट्, प्रथमपुरुष, ए.व.। छोड़ रही है।

संस्कृत व्याख्या– पृथिव्याः पुत्री, देवी सीता, भयंकरे महावने परित्यक्ता, प्रबलप्रसववेदनया आत्मानं गंगादेव्यां निपातयति, इति।

(3) 'चन्द्रिका' समाश्वसिहीति– इसके बाद गर्भांक नाटक के अन्तर्गत ही गंगा और पृथिवी दोनों देवियाँ, सीता के सौभाग्य की प्रशंसा करते हुए कहती हैं कि–

हे मंगलमयी जनकनन्दिनि! तुम धैर्य धारण करो, क्योंकि तुम सौभाग्य से वृद्धि को प्राप्त हो रही हो अर्थात् तुम बधाई की पात्र हो। वस्तुतः तुमने गंगा के जल के भीतर, रघुकुल की प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाले, दो पुत्रों को जन्म दिया है।

विशेष– (i) 'दिष्ट्या वर्धसे' वाक्य यहाँ 'तुम्हें बधाई है' इस अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है।

(ii) यहाँ रघुवंश को धारण करने वाले, पुत्रों को जन्म देने को, सीता के सौभाग्य की वृद्धि के कारणरूप में प्रस्तुत किया है, अतः वाक्यार्थ हेतु काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(iii) इसीप्रकार 'कल्याणि' तथा 'वैदेहि', ये दोनों पद साभिप्राय प्रयुक्त होने से परिकर अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं अनुष्टुप छन्द, उत्साह और आश्चर्यभावों का प्रयोग भी दर्शनीय है।

(iv) उल्लेखनीय है कि सम्पूर्ण सप्तम अंक में कवि ने वाल्मीकि के प्रभाव के कारण अधिकाँशतः अनुष्टुप् छन्दों का ही प्रयोग किया है।

व्या.टि.– (i) **प्रसूता–** प्र+ √सू+क्त+टाप्।

(ii) रघुवंशस्य धरौ, इति रघुवंशधुरौ। धरति, इति धरः, √धृ+अच्।

(iii) **अन्तर्जले**–जलस्य अन्तः, अन्तर्जलम्, तस्मिन्,इति। अव्ययी.।

संस्कृत व्याख्या– हे मंगलमयी, जनकनन्दिनि! धैर्यम् अवलम्बस्व सौभाग्यवशात् त्वं वृद्धिं गता असि, यतोहि त्वं भाग्यवती, त्वया गंगायाः सलिलमध्ये रघुवंशस्य यशोवर्धकौ द्वौ तनयौ जनितौ।

(4) 'चन्द्रिका' सोढश्चिरमिति– इसके बाद, पृथ्वीदेवी तथा भगवती भागीरथी के मध्य वार्तालाप में पृथ्वीदेवी, राम द्वारा अपनी पुत्री के त्यागरूपी दुःख को असह्य बताते हुए कहती हैं कि–

अपनी पुत्री सीता के राक्षसों के मध्य में निवास को तो मैंने, लम्बे समय तक किसीप्रकार सहन कर लिया था, किन्तु राम द्वारा इस प्रकार निरपराध सीता का घोर जंगल में परित्याग करने के दुःख को मैं किसी भी प्रकार से सहन नहीं कर पा रही हूँ।

पृथ्वी के दुःखाभिव्यक्ति के प्रत्युत्तर में भागीरथी कहती हैं कि–

इस संसार में ऐसा कौन सा प्राणी है, जो कर्म के फल की परिपक्वता की ओर बढ़ते हुए अर्थात् फलोन्मुख भाग्य के द्वारों को बन्द करने में सक्षम हो अर्थात् यह जो कुछ भी हुआ, सब कुछ भवितव्यता के तहत ही हुआ। इसीलिए उसे टाल पाना, किसी के लिए भी सम्भव नहीं था, उसमें राम को दोषी ठहराना भी उचित नहीं है।

विशेष– (i) उक्त दोनों श्लोकों को कवि ने संवादात्मक शैली में प्रस्तुत किया है, क्योंकि यहाँ पर प्रथम दो चरणों को, पृथ्वी के कथन रूप में प्रयोग किया गया है, जबकि बाद में प्रयुक्त दो चरण, भागीरथी गंगा के वाक्य के रूप में आए हैं।

(ii) महाकवि की भाग्यवादिता भी प्रदर्शित हुई है।

(iii) 'भाग्य में लिखे हुए को कोई नहीं टाल सकता है' इस अर्थ की प्रतीति होने से अर्थापत्ति तथा उत्तरार्द्ध में प्रयुक्त सामान्य अर्थ द्वारा पूर्वार्द्ध में प्रयुक्त विशेष अर्थ का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार, प्रसाद गुण तथा वैदर्भी रीति का प्रयोग दर्शनीय है।

(iv) भाग्य की प्रबलता के विषय में संस्कृत साहित्य में अनेकानेक उक्तियाँ मिलती हैं, जैसे– विधिरहो बलवानिति मे मतिः, आदि।

व्या.टि.– (i) **सोढः–** √सह्+क्त। **त्यागः–** √त्यज्+घञ्। ज्–ग्।

(ii) **सुदुःसह**–सु+दुर्+ √सह्+खल्। **पिधातुम्**–अपि+ √धा+तुमुन्।

(iii) **ईष्टे–** √ईश्+लट्, आत्मनेपद, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– अस्याः सीतायाः बहुकालपर्यन्तं निशाचरस्य रावणस्य निवासे वसनं मया दीर्घकालं यावत् मर्षितम्, किन्तु एषः द्वितीयः परित्यागस्तु सर्वथा सोढुम् अशक्यमेव वर्तते। अनन्तरं गंगा, पृथ्वीं प्रति कथयति– असारे खल्वस्मिन् संसारे को नाम प्राणी कर्म–फलप्रदानतत्परस्य भाग्यस्य मार्गान् अवरोद्धुम् समर्थो भवति, इति नैव कोऽपि इति भावः। इन्द्रवज्रा वृत्तम्, अर्थान्तरन्यासोऽलंकारः।

(5) 'चन्द्रिका' न प्रमाणीकृतः, इति– इसी वार्तालाप के मध्य पृथ्वीदेवी फिर से रघुकुल की देवी गंगा से कहती हैं कि–

हे गंगे! आप स्वयं ही इस विषय पर विचार कीजिए कि क्या इन आपके रामभद्र ने यह उचित किया, जो बाल्यावस्था में अपने द्वारा किए गए, उस पाणिग्रहण को भी प्रमाणरूप में स्वीकार नहीं किया और न ही, यह तो विश्व का भरण–पोषण करने वाली पृथ्वी की पुत्री है, इस बात को भी त्यागने से पहले चिन्तन किया तथा न ही यह राजर्षि जनक की पुत्री है, इसको, न देवताओं में अग्रणी अग्निदेव को, यहाँ तक कि सीता के पातिव्रतत्व को और न ही इसके गर्भ मे पल रही

उनकी, अपनी सन्तान को भी प्रमाणरूप में स्वीकार किया, अपितु इन सभी की उपेक्षा करके, उन्होंने तो क्षणभर में ही इसे, हिंसक जीवों से भरे हुए, भयावह जंगल में मरने के लिए छोड़ दिया।

विशेष– (i) महाकवि की तार्किक शैली दर्शनीय है, साथ ही, सीता की माता पृथ्वी की गहन अन्तःवेदना की अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) 'पाणिः' से अभिप्राय यहाँ पाणिग्रहण संस्कार से ग्रहण करना चाहिए। भारतीय संस्कृति एवं परम्परा के अनुसार जिसे अग्नि की साक्षी में ग्रहण किया जाता है।

(iii) महाकवि का भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम व्यक्त हुआ है।

(iv) पाणि, जनक, अग्नि आदि का एकमात्र क्रिया प्रमाणीकृतः से सम्बन्ध होने के कारण तुल्ययोगिता अलंकार तथा अनुप्रास अलंकार।

(v) साथ ही, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग।

व्या.टि.– (i) अप्रमाणं प्रमाणं कृतः, इति। प्रमाण+च्वि+ √कृ+क्त।

संस्कृत व्याख्या– वसुन्धरा, भगवतीं भागीरथीं प्रति आह– हे भगवति! गंगे! युष्माकं रामभद्रस्य कृते इदं सर्वं सीतापरित्यागरूपं कार्यं वस्तुतः सर्वथा अयुक्तमेव आसीत्, यतोहि प्रसंगेऽस्मिन् तेन नैव क्षणमपि चिन्तितम्। तदेव साधयति, इति बाल्यावस्थायां तादृशेन तेन गृहीतः पाणिः अपि न प्रमाणीकृतः। बाल्यावस्था तु सर्वथा पूता खलु भवति। न च अहं धरित्री किल प्रमाणिता, मम सन्ततिः दुश्चरित्रा भवितुं कथम् अर्हति? न कदापि, इति। न च तेन परमतपस्वी जनकोऽपि परिगणितः। वस्तुतः एवंविधस्य महामतेः तपस्विनः पुत्री कीदृशी भवेत् इति न विचारितवान् सः। न च अग्निः विषयेऽपि चिन्तितम्, सर्वेषां पावनानापि पदार्थानां पावनो वह्निरपि सीता विशोधकः, लंकायाम् आसीत्। नैव च सीतायाः या वृत्तिः पतिव्रताचरणं वा न ध्यातं किल। एवं च संसारे सर्वे प्राणिनः सन्तानार्थं नानाविधान् क्लेशान् अंगीकुर्वन्ति, इति, किन्तु अनेन वै सन्तानस्यापि चिन्ता न कृता। किमेतत् सर्वम् उचितं रामस्य कृते? भवती खलु कथयतु?

(6) 'चन्द्रिका' घोरमिति– तत्पश्चात् भगवती गंगा, पृथ्वी को समझाते हुए कहती हैं कि– आप तो इस सम्पूर्ण संसार का शरीर ही

हो, फिर इसप्रकार अनजान सी होकर अपने ही जामाता राम पर कुपित क्यों हो रही हो?

तुम ही थोड़ा धैर्यपूर्वक विचार करो, सम्पूर्ण संसार में सीता का अपयश चारों ओर फैल गया था और जो यहाँ से हजारों मील दूर लंकाद्वीप में सीता की विशुद्धि विषयक अग्नि परीक्षा की गयी थी और उन्हें निर्दोष सिद्ध किया गया था, उस सम्पूर्ण प्रक्रिया पर भला यहाँ के लोग किसप्रकार विश्वास कर सकते हैं? जबकि ईक्ष्वाकु कुल के राजाओं का तो सुदीर्घकालीन कुलपरम्परा से ही यह धन है कि अपनी प्रजा के सभी लोगों को प्रयत्नपूर्वक प्रसन्न रखा जाना चाहिए। इसलिए इस विषम परिस्थिति में वह बेचारा बालक राम, भला क्या करता? इसलिए उसने इस विकट परिस्थिति में सीता का त्याग करना ही उचित मानकर, इसप्रकार का कृत्य कर दिया।

विशेष– (i) अभिप्राय है कि परिस्थितियों से विवश होकर ही राम को इसप्रकार का निर्णय लेना पड़ा। भगवती गंगा ने राम के पक्ष में सुन्दर एवं तार्किक शैली में वकालत की है।

(ii) लोकनिन्दारूप एक कारण के रहते हुए, लोकानुरंजनरूप दूसरे कारण का उल्लेख करने से समुच्चय अलंकार का प्रयोग है।

(iii) इसीप्रकार 'किं स वत्सः करोतु?' द्वारा वचनभंगिमा के कारण 'राम को परिस्थिति से बाध्य होकर यह कार्य करना पड़ा' इस अर्थ की प्रतीति होने से पर्यायोक्ति अलंकार का प्रयोग भी दर्शनीय है।

(iv) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग।

(v) कुलदेवी गंगा की राम के प्रति तार्किक सहानुभूति तथा उनके प्रति गहन अपनत्व भी प्रदर्शित हुआ है।

व्या.टि.– (i) **समाराधनीयः–** सम्+आ+ √राध्+अनीयर्।

(ii) **श्रद्धातु–** श्रत्+ √धा++लोट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iii) **विशुद्धिः–** वि+शुध्+क्तिन्(भावे)। **विततम्–** वि+ √तन्+क्त।

संस्कृत व्याख्या– सम्पूर्ण संसारे अतीवदारुणा निन्दा प्रसृता आसीत्। या च लंका नाम्नि द्वीपे तस्याः विशुद्धिः अग्नौ सम्पन्ना, ताम् अग्निशुद्धतां प्रति अत्र अयोध्यायां लोकः केन प्रकारेण विश्वसितुः?

यतोहि इक्ष्वाकुकुले उत्पन्नानां राज्ञां एतत् कुलधनमस्ति, यत् ते वंशपरम्परया आयातं अखिलः जनः सर्वाप्रजा इत्यर्थः समाराधनीयः इति, अनेन कारणेन एतादृशौ विषमपरिस्थितौ सः तादृशः धर्मसंकटापन्नः विवशो वराकः रामभद्रः सीतात्यागमन्तरा किं कुर्यात्? अर्थात् सीतायाः परित्यागे लोकरंजनमेव कारणं मुख्यरूपेण आसीत् इति भावः।

(7) 'चन्द्रिका' दह्यमानेनेति– इसके बाद, पृथ्वीदेवी, राम और सीता के प्रेम के सम्बन्ध में प्रमाण प्रस्तुत करते हुए कहती हैं कि–

यदि सूक्ष्मदृष्टि से विचार किया जाए तो, आज भी वह राम यदि जीवित है तो उसके पीछे अत्यधिक संतप्त हृदय से दुर्भाग्यवश पुत्री सीता का त्याग करके, अद्भुत तथा अलौकिक धैर्य को धारण करना एक कारण है तथा प्रजाओं के रंजन के कारण प्राप्त होने वाले, पुण्यों का प्रभाव ही दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण हैं।

विशेष– (i) राम द्वारा अपने जीवन को धारण कर पाने में मुख्यरूप से दो कारणों को प्रस्तुत किया गया है।

(ii) अभिप्राय है कि राम ने स्वेच्छा से सीता परित्याग नहीं किया है, अपितु हृदय पर पत्थर रखकर भारी मन से इसे अंजाम दिया है, जिसे यहाँ दह्यमानेन मनसा द्वारा कहा गया है।

(iii) कार्य एवं कारण के अलग–अलग प्रदेश में वर्णित होने से असंगति अलंकार तथा करुणरस का प्रयोग दर्शनीय है।

(iv) इसीप्रकार 'जीवति' पद के साथ 'च' अव्यय द्वारा अलौकिक धैर्य और प्रजाओं के पुण्यों का 'समुच्चय' होने के कारण समुच्चय अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है।

व्या.टि.– (i) लोकात् उत्तरेण, इति। प्रजानां पुण्यानि तैः।

(ii) **दह्यमानेन–** √दह्+शानच्, कर्मवाच्य, तृतीया, एकवचन।

(iii) **जीवति–** √जीव्+लट्, प्र.पु.,ए.व.। **विहाय–** वि+ √हा+ल्यप्।

संस्कृत व्याख्या– सः खलु रामः सन्तप्यमानेन हृदयेन दुर्भाग्यवशात् पुत्रीं सीतां परित्यज्य, लोकातिशायिना असाधारणेन वा धैर्येण प्रकृतिश्रेयोभिः च प्राणान् स्वान् धारयति, इति। अन्यथा तु सः निश्चयमेव मृत्युमेव आप्नुयात्, इति अभिप्रायः।

(8) 'चन्द्रिका' जगन्मंगलमिति– सीता द्वारा स्वयं को अभागिनी बताकर, अपना तिरस्कार करने पर, गंगा एवं पृथ्वी दोनों ही देवियाँ उसे कहती हैं कि–

हे पुत्री! संसार का कल्याण करने में सक्षम, तुम अपने आपको अनाथ कहकर स्वयं को अपमानित क्यों कर रही हो? ऐसा करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है, क्योंकि जिस तुम्हारे शरीर के सम्पर्कमात्र से ही, हम दोनों पवित्र देवियों की पवित्रता में भी उत्कृष्टता आ जाती है, ऐसी तुम स्वयं को अनाथ तथा अपवित्र भला कैसे कह सकती हो?

विशेष– (i) सीता को सम्पूर्ण संसार का कल्याण करने वाली तथा गंगा और पृथ्वी की पवित्रता में भी वृद्धि करने वाली कहा गया है, जिससे सम्पूर्ण संसार के समक्ष उसकी पवित्रता सिद्ध हुई है। यही महर्षि वाल्मीकि के इस गर्भांक के आयोजन का मुख्य उद्देश्य भी है।

(ii) यह राम की प्रजा के ऊपर तीखा व्यंग्य भी है, क्योंकि जिस सीता की पवित्रता के महत्त्व को गंगा और पृथ्वी जैसी पवित्र देवियाँ भी स्वीकार करती हैं, उसी सीता की पवित्रता पर वह सन्देह करती है, जिससे राम–सीता दोनों के प्रति प्रजा के अन्याय की व्यंजना हुई है।

(iii) साथ ही, इसीकारण यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार भी है।

(iv) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं अनुष्टुप् छन्द दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) जगतः मंगलम्, इति। यस्याः संगः तस्मात्।

(ii) **अवमन्यसे–** अव+√मन्+लट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(iii) **प्रकृष्यते–** प्र+√कृष्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संस्कृत व्याख्या– हे सीते! त्वं तु विश्वस्य मंगलस्य कारणमसि, तदा कथम् आत्मानं एवं विगर्हितं मन्यसे? तव तु नाम्नः श्रवणमात्रेणैव लोकाः पवित्राः भवन्ति, अतएव अनेन प्रकारेण त्वया स्वं नैव तिरस्करणीयः। यस्याः तव संसर्गात् आवयोः द्वयोरपि पवित्रत्वं प्रकृष्टतरं भवति, इति। अनेन त्वं नैव एवं आत्मानं निन्दां कुरु, इति भावः।

(9) 'चन्द्रिका' कृशाश्वेति– इसी अवसर पर नेपथ्य में हुए कोलाहल को सुनकर, पृथ्वी तथा गंगा दोनों देवियाँ कहती हैं कि–

ठीक है, हम समझ गयी हैं। वस्तुतः ये तो जृम्भक नामक अस्त्र प्रकट हो रहे हैं, इसी क्रम में वे इस अस्त्रों की गुरुपरम्परा का उल्लेख करते हुए कहती हैं कि– ये अस्त्र सर्वप्रथम कृशाश्व के पास थे, वहाँ से ये विश्वामित्र को प्राप्त हुए और विश्वामित्र ने इन्हें श्रीराम को प्रदान किया था। यही वस्तुतः इन शस्त्रास्त्रों की परम्परा है।

विशेष– (i) प्रस्तुत कृति में इन अस्त्रों का अत्यधिक महत्त्व रहा है, क्योंकि इनसे लव और कुश को पहचानने में अत्यन्त सहायता प्राप्त हुई है। यही कारण है कि इनकी इस परम्परा का यहाँ अनेकशः उल्लेख किया गया है।

(ii) उदात्त अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, अनुष्टुप् छन्द।

व्या.टि.– (i) **गुरुक्रमः**– गुरूणां क्रमः। कुशिकस्य अपत्यं पुमान्।

(ii) **प्रादुर्भवन्ति**– प्रादुस्+√भू+लट्, प्र.पु., ब.व.। कुशिक+अण्।

संस्कृत व्याख्या– अवगतौ आवाम्, एतानि जृम्भकास्त्राणि प्रादुर्भवन्ति, येषाम् अस्त्राणां गुरुपरम्परा इयम् अस्ति यत्– सर्वप्रथमः कृशाश्वः, ततः कौशिकः, ततो रामः, इति। तानि खलु शस्त्राणि जृम्भकैः सह कलकलध्वनिना प्रज्वलितम् आस्ते, इति भावः।

(10) 'चन्द्रिका' देवि सीते, इति–ये ही जृम्भकास्त्र नेपथ्य में प्रकट होकर, सीता को नमन करते हुए कहते हैं कि–

हे देवि सीता! आपको हमारा प्रणाम है, क्योंकि आपके दोनों छोटे–छोटे पुत्रों के ही हम आश्रय हैं, इसलिए आप हमें इन दोनों के पास रहने की अनुमति प्रदान कीजिए। वस्तुतः चित्र देखने के समय से ही महाराज श्रीराम ने हमें इन दोनों पुत्रों को पूर्व में सौंप दिया था।

विशेष– (i) प्रस्तुत श्लोक प्रथम अंक चित्रदर्शन से सम्बन्धित है, जब जृम्भकास्त्रों का दर्शन कराते हुए राम ने सीता से कहा था कि– 'इसके बाद ये अस्त्र तुम्हारी सन्तति को स्वतः ही प्राप्त हो जाएँगे।'

(ii) 'नमः' पद के योग में 'नमः स्वस्तिस्वाहा' इत्यादि सूत्र से 'ते' पद में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

(iii) इसीप्रकार 'दर्शनात्' में दर्शनकालात् अर्थ लेकर अपादान में पंचमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है तथा 'ययोः' पद में चतुर्थी के अर्थ में

षष्ठी का प्रयोग हमेशा के लिए न सौंपने अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए हुआ है, क्योंकि इन दोनों बालकों के पास ये अस्त्र धरोहर ही है।

(iv) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है।

व्या.टि.– (i) रघूणाम् उद्वहः। **आलेख्य**– आ+ √लिख्+यत्।

(ii) **दाता**– √दा+तृच्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, देने वाला।

संस्कृत व्याख्या– हे देवि सीते! तुभ्यं नमः, यतोहि तव एतौ पुत्रकौ कुशलवौ, अस्माकं अवलम्बभूतौ स्तः, चित्रदर्शनकालादेव, तस्मिन् काले खलु रामचन्द्रः ययोः तव सुतयोः कुशलवाभ्यां प्रदायकः अस्ति, इति शेषः।

(11) 'चन्द्रिका' नमः, इति– इसे सुनकर गंगा और पृथ्वी दोनों ही देवियाँ, जृम्भकास्त्रों को प्रणाम करती हुई कहती हैं कि–

हे श्रेष्ठरूप धारण करने वाले, आप लोगों को नमस्कार है। आप द्वारा हमारे पुत्रों को ग्रहण करने से हम सभी धन्य हैं। आप तो उचित समय पर ध्यान किए जाने पर, हमारे इन दोनों बालकों लव और कुश के पास में आ जाया कीजिएगा, आपका कल्याण हो।

विशेष– (i) पृथ्वी तथा गंगा इन दोनों देवियों द्वारा प्रणाम करने से जृम्भकास्त्रों की महिमा में अभिवृद्धि हुई है।

(ii) देवता होने की दृष्टि से इन दोनों ने जृम्भकास्त्रों के मंगल की कामना की है। नमः के योग में वः में चतुर्थी का प्रयोग हुआ है।

(iii) 'परिग्रहात्' में हेतु अर्थ में पंचमी विभक्ति का प्रयोग है।

(iv) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है।

(v) यहाँ पर अन्वय करते समय 'ध्यातैः' के बाद 'भवद्भिः' पद का अध्याहार करना होगा। ध्यातै (भवद्भि) वत्सयोः उपस्थेयम् (कर्मवाच्य)

व्या.टि.– (i) **परमास्त्रेभ्यः**– परमाणि अस्त्राणि, तेभ्यः (कर्मधारय)

(ii) परिग्रहणं तस्मात्, इति। परि+ √ग्रह्+अप्(भावे), प.वि.,ए.व.।

(iii) **ध्यातैः**–√ध्यै+क्त, तृ.वि.,ब.व.। **उपस्थेयम्**–उप+ √स्था+यत्।

संस्कृत व्याख्या–गंगापृथ्वीदेव्यौ सप्रणामं जृम्भकास्त्रान् देवान् प्रति कथयतः यत्– अस्त्रदेवेभ्यः नमस्क्रियते, युष्माकं स्वीकृत्याः वयं धन्याः संजाताः, कदापि कस्मिंश्चिदपि समये एतौ पुत्रकौ भवतां ध्यानं

कुर्याताम्, तदा भवद्भिः उपस्थातव्यम्, इति। इदानीं तु भवन्तः स्व स्थानं अलंकुर्वन्तु। युष्माकं कल्याणम् अस्तु।

(12) 'चन्द्रिका' क्षुभितेति– मंच पर अभिनय किए जाते हुए, इस दृश्य को देखकर, श्रीराम अपनी अनुभूति के विषय में कहते हैं कि–

इस समय तो आश्चर्य तथा प्रसन्नता के संयोग से टकरायी हुई, शोक की लहरें अपेक्षाकृत अधिक क्षुब्ध होकर, मेरी कुछ विचित्र सी अर्थात् अवर्णनीय दशा को बना रही हैं, क्योंकि सर्वप्रथम तो हमारी कुलदेवी गंगा के जल में, सीता के गिरने से आश्चर्य की उत्पत्ति, पुनः जल में ही कुश और लव को सीता द्वारा जन्म देने से आनन्द की अनुभूति और अब सीता की इस दशा के कारण करुणा के भाव मेरे मन को न जाने कैसा विचित्र सा बना रहे हैं?

विशेष– (i) यहाँ पृथ्वी एवं गंगा की अनुकम्पा से विस्मय तथा पुत्र–प्राप्ति से सर्वथा निराश होने पर पुत्रलाभ से परमानन्द की उत्पत्ति हुई है। करुणा में शोक के सागर का आरोप होने से रूपकालंकार।

(ii) यहाँ प्रयुक्त सन्दर्भ से अभिप्राय प्रसंग से है।

(iii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है।

व्या.टि.– (i) विस्मयश्च आनन्दश्च तयोः सन्दर्भः, तेन जर्जराः।

(ii) **करुणोर्मयः–** करुणस्य ऊर्मयः। **क्षुभित–** √क्षुभ्+क्त।

संस्कृत व्याख्या– रामः ईदृशीं वस्तुस्थितिं अवलोक्य कथयति– **अधुना आश्चर्यम्, हर्षः, तयोः संग्रथनेन विशीर्णाः करुणायाः** ऊर्मयः **प्रचलिताः सत्यो मम कामपि विचित्राम् अवस्थां कुर्वन्ति, इति** अर्थात् **सीता देवी गंगायां पतिता, इति आश्चर्यम्, तत्र खलु पुत्रौ** समुत्पन्नौ, **अनेन आनन्दः, हन्त! कीदृशी इयं दशा सीतायाः इति करुणा।** एवं **मिलित्वा सर्वैः अमीभिः तत्त्वैः मम कापि विचित्रा दशा क्रियते।**

(13) 'चन्द्रिका' एषा, इति– इसके बाद, सीता द्वारा, उन दोनों देवियों से यह कहे जाने पर कि– 'इन दोनों पुत्रों के क्षत्रियोचित संस्कार कौन कराएगा?' राम अत्यन्त दुःख के साथ कहते हैं कि–

मेरे लिए यह अत्यधिक कष्ट का विषय है कि महर्षि वसिष्ठ के शिष्य तथा रघुकुल में उत्पन्न राजाओं के कुल को आनन्द प्रदान करने

वाली सीता भी अपने पुत्रों के संस्कार कराने वाले को प्राप्त नहीं कर पा रही हैं।

विशेष– (i) संस्कारों को लेकर पुत्रवती सीता की दयनीय दशा के मार्मिक पक्ष का उद्घाटन किया है, साथ ही, तात्कालिक समय में संस्कारों के महत्त्व को भी प्रतिपादित किया गया है।

(ii) कवि का अभिप्राय है कि सीता इसप्रकार के श्रेष्ठ एवं उच्च कुल की वधू है, फिर भी आज वह अपने पुत्रों के संस्कार के लिए, किसी आचार्य को प्राप्त करने में असमर्थ है, क्योंकि उसके इन पुत्रों को, इनके पिता का आशीर्वाद ही प्राप्त नहीं है।

(iii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है।

(iv) यहाँ पर वसिष्ठ शिष्याणां, रघूणां वंशनन्दिनी आदि पद अपने में विशेष अर्थों को संजोए हुए हैं, अतः साभिप्राय प्रयुक्त होने से परिकर अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(v) 'कष्टं' पद यहाँ राम की मर्मान्तक वेदना की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है। करुणरस का प्रवाह भी हृदयद्रावक है।

व्या.टि.– (i) वशिष्ठस्य शिष्याः, तेषाम्। शासितुं योग्यः, शिष्यः।

(ii) **नन्दिनी–** √नन्द्+णिच्+णिनि+ङीप् (णिच् लोप)। शास्+क्यप्

(iii) **संस्कर्तारम्–** सम्+ √कृ+तृच्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

(iv) **विन्दति–** √विदलृ+लट्, प्रथमपुरुष, ए.व.। प्राप्त कर रही है।

संस्कृत व्याख्या– महर्षिवसिष्ठशिष्याणां रघूनां वंशः तस्मिन् उद्भवानां राज्ञां कुलस्य नन्दिनी एषा सीता अपि स्व पुत्रयोः संस्कर्तारं आचार्यं न लभते, विषयेऽस्मिन् चिन्तिता विद्यते, इति। महत्कष्टमेतत्।

(14) 'चन्द्रिका' वसिष्ठेति– सीता द्वारा अपने दोनों पुत्रों के संस्कार के सम्बन्ध में चिन्ता व्यक्त करने पर, गंगा कहती हैं कि–

हे पुत्री, तुम्हें तो इस विषय में लेशमात्र भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तुम्हारा दूध छोड़ देने के बाद, इन दोनों को मैं महर्षि वाल्मीकि को सौंप दूँगी और यह ठीक भी है क्योंकि–

इस समय महर्षि वसिष्ठ रघुकुल के आचार्य हैं, इसलिए वे ही इन दोनों बालकों के ब्राह्मणोचित अर्थात् वेदादि अध्यापन करना एवं

क्षत्रियोचित अर्थात् धनुर्वेद का अभ्यास कराना आदि कार्यों को सम्पन्न करेंगे।

विशेष– (i) प्राचीन समय में क्षत्रिय बालकों को वेदों के अध्ययन के साथ–साथ धनुर्वेद की शिक्षा भी अनिवार्य थी, इस ओर संकेत किया गया है।

(ii) प्रस्तुत पद्य कुछ संस्करणों में उपलब्ध नहीं है, किन्तु इसी के बाद प्रयुक्त श्लोक में वाल्मीकि को रघुवंश तथा जनकवंश दोनों का ही गुरु कहा गया है। अतः उनके कहने पर महर्षि वसिष्ठ यह कार्य स्वतः ही सम्पन्न करा देंगे, यह अर्थ भी किया जा सकता है।

(iii) महर्षि वसिष्ठ को यहाँ उक्त दोनों ही कोटि का आचार्य माना है। आचार्य का लक्षण धर्मशास्त्र में इसप्रकार दिया गया है–

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः।
सकल्पं सरहस्यं वा तम् आचार्यं प्रचक्षते।।

(iv) वसिष्ठ पद रघुवंशियों के पुरोहित की संज्ञा में रूढ़ रहा है।

(v) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है।

व्या.टि.– (i) **वसिष्ठः**– अतिशयेन उषितः, इति वसिष्ठः।

(ii) आचार्यते/स्वयमाचरति अन्यान् शिष्यान् च आचारयति/आ समन्तात् चारयितुं विनेयान् शिष्यान् वेदाध्ययनादिषु योजितुं योग्यः।

(iii) ब्रह्म च क्षत्रं च ब्रह्मक्षत्रे, तयोः कृत्यम् इति। द्वन्द्व, तत्पुरुष।

(iv) **आचार्यः**– आ+√चर्+कर्ता अर्थ में ण्यत्। **कृत्य**– √कृ+यत्।

संस्कृत व्याख्या– **भगवती भागीरथी सीतायाः चिन्तायाः समाधानं कुर्वन्ती कथयति**– **हे सीते! नैव विषयेऽस्मिन् लेशमात्रिकी खलु** चिन्ता **कार्या, यतोहि महर्षिः वसिष्ठः किल रघुकुलस्य कुलगुरुः अस्ति**। सः एव च अनयोः **बालकयोः कुशलवयोः ब्रह्मक्षत्रकृत्यम् अर्थात्** ब्राह्मण–**क्षत्रियोचितं शास्त्रशस्त्रोचितं विधिद्वयं सम्पादयिष्यति, इति।**

(15) 'चन्द्रिका' यथेति– इसके पश्चात् भागीरथी, वाल्मीकि को रघु तथा जनक के कुलों का सामान्य गुरु बताते हुए कहती है कि–

जिसप्रकार रघुवंशी राजाओं के महर्षि वसिष्ठ गुरु हैं तथा जनकवंशी नृपतियों के ऋषि शतानन्द गुरु हैं, ठीक उसीप्रकार महर्षि

वाल्मीकि तो इन दोनों ही कुलों के गुरु हैं। इसलिए इन दोनों बालकों को माता का दूध छोड़ने के बाद वाल्मीकि के पास छोड़ना सर्वथा उचित ही है और ये ही इन दोनों के शास्त्रीय विधि से दोनों प्रकार के संस्कार भी करने में सक्षम हैं।

विशेष– (i) 'प्राचेतस्' पद यहाँ महर्षि वाल्मीकि के लिए प्रयुक्त हुआ है, प्रचेतस्+अण्।

(ii) 'आंगिरसः' का प्रयोग ऋषि शतानन्द के लिए किया है।

(iii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है।

व्या.टि.– (i) वसिष्ठश्च आंगिरसश्च तौ, द्वन्द्व समास।

(ii) अंगिरसः गोत्रापत्यं पुमान्, आंगिरसः। अंगिरस्+अण्।

(iii) गृणाति इति गुरुः अथवा गिरति शिष्यस्य अज्ञानमिति।

संस्कृत व्याख्या– **येन प्रकारेण रघुकुलानां नृपतीनां जनककुलजानां च राज्ञाम् एतयोः द्वयोरपि कुलयोः वसिष्ठशतानन्दौ गुरू स्तः। तेनैव प्रकारेण महर्षिः वाल्मीकिः अपि एतयोः कुलयोः गुरुः अस्ति। अतः सः वै अनयोः बालकयोः ब्राह्मणक्षत्रियोचितशास्त्रीयविधिं कर्तुं शक्नोति, इति अभिप्रायः। अतः चिन्ता मा करणीया।**

(16) 'चन्द्रिका' एतौ हीति– तत्पश्चात् लक्ष्मण, अपने बड़े भाई राम से इन दोनों बालकों को उन्हीं के पुत्र बताते हुए, पाँच कारणों को प्रस्तुत करते हैं कि–

सर्वप्रथम तो ये दोनों बालक जन्म से ही वीर हैं। **द्वितीय,** इन दोनों बालकों को जन्म से ही जृम्भकास्त्र सिद्ध हैं, जो केवल आपके पुत्रों को ही मिल सकते हैं। **तृतीय,** महर्षि वाल्मीकि के पास ये स्वतः ही पहुँच गए हैं। सीता को भी मैंने वन में उन्हीं के आश्रम के निकट छोड़ा था। **चतुर्थ,** ये दोनों बालक आपके समान ही मनोहर आकृति से सम्पन्न हैं और **पंचम**, सीता को त्यागे हुए बारह वर्ष हो गए हैं और ये दोनों भी इतनी ही आयु वाले हैं।

विशेष–(i)कवि की तार्किक एवं तथ्यात्मक शैली प्रदर्शित हुई है।

(ii) कुश–लव के राम के पुत्र होने में पाँच तर्क प्रस्तुत किए हैं।

(iii) उक्त पाँच कारणों द्वारा राम के पुत्ररूप कार्य का अनुमान होने से अनुमान अलंकार का प्रयोग भी दर्शनीय है।

(iv) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है।

व्या.टि.–(i) जन्मनः सिद्धानि अस्त्राणि, ययोः तौ, तथोक्तौ।

(ii) प्राप्तः प्राचेतसः याभ्यां तौ। आर्यस्य तुल्या आकृतिः ययोः तौ।

(iii) द्वादशः अब्दः ययोः तौ तथाभूतौ। बहुव्रीहि समास

(iv) **सिद्ध**– √सिध्+क्त। **प्राप्त**– प्र+ √आप्+क्त।

संस्कृत व्याख्या– **यतोहि एतौ संदृश्यमानौ द्वावपि शूरौ, जन्मनः प्रभृति प्राप्तौ जृम्भकास्त्रौ, उपगतवाल्मीकी वै एतौ, पूज्यतमस्य भवतः रामस्य तुल्यौ आकारौ, आयुषापि खलु एतौ द्वादशवर्षीयौ स्तः। अनेन कारणेन एतौ भवतः पूज्यरामस्य किल पुत्रौ प्रतीयेते।**

(17) 'चन्द्रिका' मन्थादिति– इसके बाद, लक्ष्मण मंच के दृश्य को देखकर आश्चर्यपूर्वक कहते हैं कि–

देखिए यह भगवती भागीरथी का जल, मथानी द्वारा मथे गए, जल के समान, अत्यधिक क्षुब्ध हो रहा है तथा आकाश देवताओं और ऋषियों द्वारा पूर्णरूप से व्याप्त हो गया है। निश्चय ही, यह दृश्य अत्यन्त आश्चर्य को उत्पन्न करने वाला है, क्योंकि पूजनीया सीतादेवी भगवती गंगा तथा पृथिवी इन दो देवियों के साथ, गंगा के जल के भीतर से ऊपर की ओर आ रही हैं अर्थात् प्रकट हो रही हैं।

विशेष– (i) कवि ने आकाश का देवर्षियों से व्याप्त होने व गंगा के जल से दो देवियों एवं सीता के प्रकट होने से अतीव चमत्कार–जनक दृश्य को प्रस्तुत किया है, अतः अद्भुतरस का परिपाक हुआ है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक को विद्वानों ने महाकवि की नवनवोन्मेष–शालिनी प्रतिभा का अद्भुत निदर्शन स्वीकार किया है।

(iii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं इन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग है।

(iv) रामचरित के चित्रण में यहाँ कवि महर्षि वाल्मीकि से भी आगे बढ़े हुए प्रतीत होते हैं, क्योंकि आदिकवि तो केवल कवि ही थे, किन्तु भवभूति तो कवि और नाटककार दोनों ही हैं।

(v) 'मन्थनादिव' में उत्प्रेक्षालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्या.टि.– (i) **देवर्षिभिः**– देवाश्च ऋषयश्च इति, द्वन्द्व समास।

(ii) **मन्थात्**– मन्थनं एव मन्थः, √मन्थ्+घञ् (भावे), प्र.वि., ए.व.।

(iii) **क्षुभ्यति**– √क्षुभ्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन। हिल रहा है।

(iv) **उपैति**– उप+ √इण(गतौ)+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(v) **गांगम्**–गंगायाः इदम्, गंगा+अण्। **व्याप्तम्**–वि+ √आप्+क्त।

संस्कृत व्याख्या– **लक्ष्मणः आश्चर्यं करोति एतत् दृष्ट्वा यत् गंगायाः इदं जलं मथनात् विक्षुब्धमिव भवति, आकाशं च देवैः ऋषिभिः च व्याप्तं विद्यते, अस्यां खलु परिस्थितौ इयम् आर्या सीता, देव्या गंगया पृथिव्या च सह जलादुपरि समायाति, प्रकटिता भवति, इत्यर्थः।**

(18) 'चन्द्रिका' अरुन्धतीति– इसी क्रम में नेपथ्य से, गंगा तथा पृथिवी, इन दोनों देवियों द्वारा अरुन्धती को सीता सौंपे जाने की सूचना इसप्रकार दी जाती है–

सम्पूर्ण विश्व द्वारा वन्दना करने योग्य, पूजनीया अरुन्धती को हम गंगा और पृथिवी, दोनों ही एक साथ मिलकर, यह सीता सौंप रहे हैं। इसलिए हे देवी! आप हमारी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए, इस सीता को ग्रहण करके, हमें सन्तुष्ट करने की कृपा करें।

विशेष– (i) गंगा और पृथ्वी दोनों ही देवियों ने महर्षि वसिष्ठ की पत्नी अरुन्धती से पवित्र चरित्र (व्रता) वाली, सीता को स्वीकार करने की विनम्र प्रार्थना की है। प्रस्तुत दृश्य सहृदय को अत्यन्त भावुक एवं आनन्दित करने वाला है।

(ii) अरुन्धती की गरिमा एवं महिमा का भी उल्लेख हुआ है।

(iii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है।

(iv) सम्पूर्ण दर्शकसमूह के समक्ष, सीता की पवित्रता की सिद्धि करना तथा बाद में, अरुन्धती के माध्यम से राम को सीता सौंपना ही, महाकवि के इस दृश्य का मुख्य प्रयोजन रहा है।

(v) यद्यपि 'जुष्' धातु सेवन करने के अर्थ में प्रयुक्त होती है, किन्तु यहाँ इसका प्रयोग 'प्रसन्न करने से ग्रहण' करना चाहिए।

(vi) यहाँ प्रयुक्त 'तव' पद में षष्ठी का प्रयोग हुआ है, क्योंकि दानभाव को छोड़कर, सभी प्रकार के अर्पण में षष्ठी का विधान है।

व्या.टि.– (i) **जुषस्व**– √जुष्+लोट्, आत्मने, मध्यमपुरुष, ए.व.।
(ii) **वन्द्या**– √वन्द्+ण्यत्+टाप्। **अर्पिता**– √ऋ+णिच्+क्त+टाप्।
(iii) **पुण्यव्रता**– पुण्यं व्रतं यस्याः सा। गंगा च पृथ्वी च ते।

संस्कृत व्याख्या– पुनर्नेपथ्ये देव्यौ कथयतः यत्– हे लोकवन्दनीये! ऋषिवसिष्ठपत्नि! अत्रागच्छ, आवां गंगापृथिव्यौ समीपम्, त्वं आवयोः एतत् प्रियं कार्यं कुरु, यतोहि आवाभ्याम् एषा पुण्यशीला वधूः सीता तुभ्यं समर्प्यते, गृहाण एनाम्।

(19) 'चन्द्रिका' त्वरस्वेति– इसी क्रम में दर्शकों के बीच बैठे हुए, राम मूर्च्छित हो जाते हैं तथा मंच पर सीता और अरुन्धती दोनों प्रवेश करती हैं एवं तब अरुन्धती सीता से कहती हैं कि–

हे पुत्रि! वैदेहि! शीघ्रता करो, आओ, अपनी नारी सुलभ लज्जा को छोड़कर, अत्यधिक कोमल स्पर्श वाले, अपने हाथ से, मेरे पुत्र राम को नया जीवन प्रदान करो, इनकी मूर्च्छा दूर करके जीवित करो।

विशेष– (i) यहाँ 'शालीन' पद शिष्ट एवं विनम्र अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है।

(ii) अकस्मात् ही राम के मूर्च्छित होने पर अरुन्धती, सीता को उन्हें होश में लाने के लिए प्रेरित कर रही है तथा राम के जीवन के क्षय होने की आशंका से उनकी हड़बड़ाहट भी अभिव्यक्त हुई है।

(iii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है।

व्या.टि.– (i) शालीनं शीलं यस्याः सा, तस्याः भावः, ताम्।
(ii) **सौम्यस्पर्शेन**– सौम्यः स्पर्शः यस्य सः, तेन।
(iii) **त्वरस्व**–√त्वर्+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन, शीघ्रता करो
(iv) **मुंच**–√मुच्+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन, छोड़ो।
(v) **एहि**– आ+√इण् गतौ+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन, आओ।
(vi) **जीवय**–√जीव्+णिच्+लोट्, मध्यमपुरुष, ए.व., जिलाओ।

संस्कृत व्याख्या– हे पुत्रि! जानकि! त्वरां विधेहि, व्रीड़ां शालीनतां च त्यज, आयाहि, मृदुस्पर्शेन स्वहस्तेन मम प्रियसुतं इमं रामभद्रं जीवितं कुरु, समुच्छ्वसन्तं सम्पादय, इत्यर्थः, सम्प्रति एषः मूर्च्छितो वर्तते।

(20) 'चन्द्रिका' नियोजयेति– तत्पश्चात् अरुन्धती जगत् के स्वामी श्रीराम को आदेश देते हुए कहती हैं कि– हे रामभद्र! अब आप सुवर्ण द्वारा निर्मित सीता की प्रतिमा की पवित्र आधारभूत साक्षात् सहधर्मिणी अपनी प्रियपत्नी सीता को ही अपने अश्वमेध यज्ञ में समाज की धार्मिक मर्यादा का पालन करते हुए नियुक्त करो।

विशेष– (i) राम को स्वर्णनिर्मित सीता की मूर्ति के स्थान पर साक्षात् सीता को ही बैठाने का निर्देश दिया गया है।

(ii) इसका उद्देश्य वस्तुतः सम्पूर्ण लोकों के समक्ष सीता की पवित्रता सिद्ध करने तथा राम को फिर से उन्हें सौपना रहा है।

(iii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति एवं अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है।

(iv) 'प्रतिकृति' वस्तुतः धातु, काष्ठ तथा रंगों से चित्र में बनायी जाती है, यहाँ इसका अभिप्राय सीता की स्वर्णमयी प्रतिकृति से है।

(v) इसीप्रकार प्रतिकृति के विपरीत अर्थ में 'प्रकृति' पद का प्रयोग किया गया है, क्योंकि सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा का मूल आधार तो जीवित सीता का शरीर ही रहा है।

(vi) अपने श्रेष्ठ आचरण द्वारा पति को प्रसन्न करने वाली स्त्री को यहाँ 'प्रिया' कहा गया है। वस्तुतः मूल सीता के साथ अश्वमेध यज्ञ को पूरा करने का निर्देश दिया गया है।

व्या.टि.– (i) **नियोजय**– नि+√युज्+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।
(ii)**प्रतिकृतेः**–प्रति+√कृ+क्तिन्,ष.,ए.व., **प्रकृतिम्**–प्र+√कृ+क्तिन्।

संस्कृत व्याख्या– हे जगत्पते! रामभद्र! त्वम् इदानीं धर्मानुसारं स्वसहधर्मिणीमिमां सीतां स्वर्णनिर्मितायाः सीतायाः स्थाने यज्ञे नियोजय, यतोहि स्वर्णनिर्मिता सीता तु प्रतिकृतिः विद्यते, इयं खलु प्रकृतिरेव।

(21) 'चन्द्रिका' पाप्मेभ्यश्चेति– नाटक के अन्त में महर्षि वाल्मीकि द्वारा यह पूछे जाने पर कि हे रामभद्र! बताओ, इसके अलावा तुम्हारा क्या प्रिय करूँ? तो राम भरतवाक्य के रूप में कहते हैं कि–

इस संसार की माता भगवती गंगा के समान, यह मंगलमय और मनोरम कथा, जगत् के सभी पापों को दूर करने वाली और पुण्यों में वृद्धि करने वाली हैं। इसके अलावा शब्दब्रह्म के जानने वाले, महर्षि

वाल्मीकि ने अभिनय आदिकों द्वारा इसे भलीप्रकार प्रदर्शित भी किया है, जबकि महाकवि भवभूति द्वारा इसे कुछ दूसरे ही रूप में बदल दिया गया है। इसप्रकार की इस रामायणरूपी वाणी की विद्वान् लोग सम्यक्‌रूप से विवेचना करते हुए इसका पूर्णतया रसास्वादन करें।

विशेष– (i) यहाँ 'अभिनय' से अभिप्राय आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक चार प्रकार के अनुकरणों से ग्रहण करना चाहिए।

(ii) 'पुनाति' से अभिप्राय पापों को दूर करके पवित्र करने से है।

(iii) प्रसादगुण, वैदर्भीरीति एवं शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग।

(iv) वैयाकरणों ने परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी इन चार प्रकार की वाणी को वाग्ब्रह्म या शब्दब्रह्म की संज्ञा प्रदान की है।

(v) वस्तुतः शब्दब्रह्म के ज्ञाता वाल्मीकि की वाणी की मार्मिकता को शब्दब्रह्म के वेत्ता नाट्यकवि भवभूति ही समझने में समर्थ हैं।

(vi) यहाँ कवि का अभिप्राय है कि रामायण की कथा के समान, संसार में समादृत, प्रतिष्ठित, पाप का नाश करने वाली तथा पुण्यों को बढ़ाने वाली, उत्तररामचरित की यह कथा भी विश्व का कल्याण करे।

व्या.टि.– (i) विन्यस्तं रूपं यस्याः सा ताम्।

(ii) शब्दः एव ब्रह्म, तद् वेत्ति इति शब्दब्रह्मवित्, तस्य।

(iii) **पुनाति**– √पू+लट्,प्र.पु.,ए.व.। **वर्धयति**– √वृध्+णिच्+लट्।

(iv)**विन्यस्त**–वि+नि+ √अस्+क्त,**परिणताम्**–परि+नम्+क्त+टाप्।

संस्कृत व्याख्या–लोकस्य जननी इव भागीरथी इव च, कल्याण–रूपा रुचिरा च, सा एषा रामायणकथा, पापेभ्यः पवित्रयति, कल्याणानि च पुष्णाति, विद्वांसः अवस्थानुकारैः प्रदर्शितस्वरूपां वेदतत्त्वार्थज्ञस्य बुद्धिमतः महाकवेः रूपान्तरं प्राप्ताम् इमां तां प्रसिद्धां भारतीं विचारयन्तु सम्यक्तया, इत्यर्थः।

•••

श्लोकानुक्रमणिका

30. अहेतुः पक्षपातो यः	5 / 17
31. अहो प्रश्रययोगेपि	6 / 23
32. अहो प्रासादिकं रूपं	6 / 20
33. अंगादंगात्सृत इव	6 / 22
34. आगर्जद्गिरिकुंजकुंजर	5 / 6
35. आयुष्मतः किल लवस्य	6 / 16
36. आलिम्पन्नमृतमयैः	3 / 39
37. आविर्भूतज्योतिषां	4 / 18
38. आविवाहसमयाद् गृहे	1 / 37
39. आश्च्यातेन नु	3 / 11
40. आश्वास इव भक्तीनां	6 / 10
41. आसीदियं दशरथस्य	4 / 16
42. इङ्गुदीपादपः सोऽयं	1 / 21
43. इक्ष्वाकुवंशोऽभिमतः	1 / 44
44. इतिहास पुराणं च	5 / 23
45. इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो	1 / 1
46. इयं गेहे लक्ष्मी	1 / 38
47. इदं विश्वं पाल्यं	3 / 30
48. इह समदशकुन्ता	2 / 20
49. ईदृशानां विपाकोऽपि	3 / 3
50. उत्पत्तिपरिपूतायाः	1 / 13
51. उपायानां भावाद्	3 / 44
52. ऋषयो राक्षसीमाहुः	5 / 29
53. ऋषीणामुग्रतपसां	1 / 50
54. एको रसः करुण एव	3 / 47
55. एतत्पुनर्वनमहो	2 / 22
56. एतद्वैशसवज्रघोर	4 / 24
57. एतस्मिन्मदकलमल्लि	1 / 31
58. एतस्मिन्मसृणितराज	5 / 18
59. एतानि तानि गिरिनिर्झर	1 / 25
60. एते त एव गिरयो	2 / 23
61. एते ते कुहरेषु गद्‌गद	2 / 30
62. एतौ हि जन्मसिद्धास्त्रौ	7 / 16

63. एषा वसिष्ठशिष्यानां	7 / 13
64. एषः वः श्लाघ्यसम्बन्धी	4 / 9
65. एष सांग्रामिको न्यायः	5 / 22
66. एषा वसिष्ठशिष्याणां	7 / 13
67. कठोरपारावतकण्ठ	6 / 25
68. कण्डूलद्विपगण्डपिण्ड	2 / 9
69. कतिपयकुसुमोदगमः	3 / 20
70. कन्यां दशरथो राजा	1 / 4
71. कन्यायाः किल पूजयन्ति	4 / 17
72. कथं हीदमनुष्ठानं	5 / 21
73. करकमलवितीर्णैः	3 / 25
74. करपल्लवः स तस्याः	3 / 41
75. कामं दुग्धेविप्रकर्षे	5 / 30
76. किं चाक्रान्तकठोर	5 / 19
77. किं त्वनुष्ठानित्यत्वं	1 / 8
78. किमपि किमपि मन्दं	1 / 27
79. किरति कलितकिंचित्	5 / 2
80. किसलयमिव मुग्धं	3 / 5
81. कुवलयदलस्निग्धश्यामः	4 / 19
82. कृशाश्वः कौशिको रामः	7 / 9
83. कृशाश्वतनया ह्येते	5 / 15
84. कोऽप्येष संप्रति नवः	5 / 33
85. क्रोधेनोद्धतधूतकुन्तल	5 / 35
86. क्लिष्टो जनः किलः जनैः	1 / 14
87. क्व तावानानन्दो	6 / 33
88. क्षुभिताः कामपि दशा	7 / 12
89. गुंजत्कुंजकुटीरकौशिक	2 / 29
90. गृहीतो यः पूर्वं परिणय	3 / 40
91. घोरं लोके विततमयशो	7 / 6
92. चतुर्दश सहस्राणि	2 / 15
93. चिर ध्यात्वा ध्यात्वा	6 / 38
94. चिराद्वेगारम्भी प्रसृत	2 / 26
95. चूडाचुम्बितकंकपत्र	4 / 20

162. पौलस्त्यस्य जटायुषा	3/43
163. प्रकृत्यैव प्रिया सीता	6/31
164. प्रतनुविरलैः प्रान्तो	1/20
165. प्रत्युप्तस्येव दयिते	3/46
166. प्रसाद इव मूर्तस्ते	3/14
167. प्रियप्राया वृत्तिर्विनय	2/2
168. प्रियागुणसहस्राणां	6/34
169. बाष्पवर्षेण नीतं वो	6/29
170. ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय	1/15
171. ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय	6/15
172. भ्रमिषू कृतपुटान्त	3/19
173. भो भो लव महाबाहो	5/7
174. मनोरथस्य यद्बीजं	5/20
175. मन्थादिव क्षुभ्यति	7/17
176. महिम्नामेतस्मिन्विनय	4/21
177. मा निषाद प्रतिष्ठां त्वं	2/5
178. मुनिजनशिशुरेकः	5/3
179. मेघमालेव यश्चायं	2/24
180. म्लानस्य जीवकुसुमस्य	1/36
181. य एव मे जनः पूर्व	4/7
182. यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि	3/8
183. यत्रानन्दाश्च मोदाश्च	2/12
184. यत्सावित्रैर्दीपितं	1/42
185. यया पूतमन्यो निधिरपि	4/10
186. यस्यां ते दिवसास्तया	2/28
187. यथा तिरश्चीनमलातशल्यं	3/35
188. यथा वसिष्ठांगिरसौ	7/15
189. यथेच्छाभोग्यं वो	2/1
190. यथेन्दावानन्दं व्रजति	5/26
191. यदस्याः पत्युर्वा रहसि	4/14
192. यदि नो सन्ति सन्त्येव	4/28
193. यदृच्छासंवादः किमु	5/16
194. यं ब्रह्माणमियं देवी	1/2

195. येनोद्गच्छद्बिसकिसलय	3/15
196. योऽयमश्वः पताकेयं	4/27
197. राज्याश्रमनिवासोऽपि	7/1
198. रे हस्त दक्षिण मृतस्य	2/10
199. लीलोत्खातमृणाल	3/16
200. लौकिकानां हि साधूनां	1/10
201. वज्रादपि कठोराणि	2/7
202. वत्सायाश्च रघूद्वहस्य च	4/32
203. वपुरवियुतसिद्धाः	6/24
204. वयमपि न खल्लेवं प्रायाः	5/28
205. वसिष्ठ एव ह्याचार्यो	7/14
206. वसिष्ठाधिष्ठिता देव्यो	1/3
207. वसिष्ठो वाल्मीकिर्दशरथ	6/39
208. वितरति गुरुः प्राज्ञे	2/4
209. विद्याकल्पेन मरुता	6/6
210. विना सीतादेव्या किमिव	6/30
211. विनिवर्तित एष	5/8
212. विनिश्चेतुं शक्यो न	1/35
213. विरोधो विश्रान्तः	3/11
214. विलुलितमतिपूरैर्बाष्प	3/23
215. विश्वंभरा भगवती	1/9
216. विस्रम्भादुरसि निपत्य	1/49
217. वीचीवातैः शीकरक्षोद	3/2
218. वृद्धास्ते न विचारणीय	5/34
219. वेलोल्लोलक्षुभितकरुणो	3/36
220. विश्वंभरात्मजा देवी	7/2
221. व्यतिकर इव भीमः	5/13
222. व्यतिषजति पदार्थान्	5/12
223. व्यर्थं यत्र कपीन्द्रसख्यम्	3/45
224. शम्बूको नाम वृषलः	2/8
225. शान्तं महापुरुषसंगदितं	6/7
226. शान्तं वा रघुनन्दने	4/25
227. शिशुर्वा शिष्या वा	4/11

228. शुक्लाच्छदन्तच्छवि	6/27
229. शैशवात्प्रभृति पोषितां	1/45
230. श्रमाम्बुशिशिरीभवत्	6/37
231. स एष ते वल्लभशाखि	2/6
232. सतां केनापि कार्येण	1/41
233. सन्तानवाहीन्यपि	4/8
234. समयः स वर्त्तत इवैष	1/18
235. समाश्वसिहि कल्याणि	7/3
236. सम्बन्धस्पृहणीयता	6/40
237. सम्बन्धिनो वसिष्ठादीन्	1/16
238. स राजा तत्सौख्यं स च	4/12
239. सर्वथा व्यवहर्तव्यं	1/5
240. स सम्बन्धी श्लाघ्यः	4/13
241. सस्वेदरोमांचितकम्पिता	3/42
242. संख्यातीतैर्द्विरदतुरग	5/12
243. सिद्ध ह्येतद्वापि वीर्यं	5/32
244. सीतादेव्या स्कवरकलितैः	3/6
245. सुहृदिव प्रकटय्य	5/15
246. सैनिकानां प्रमाथेन	5/39
247. सौढश्चिरं राक्षसमध्यवास	7/7
248. सोऽयं शैलः ककुभ	1/33
249. स्निग्धश्यामाः क्वचिद	2/14
250. स्नेहं दयां च सौख्यं च	1/12
251. स्नेहात्सभाजयितुमेत्य	1/7
252. स्पर्शः पुरा परिचितो	3/12
253. स्मरसि सुतनु तस्मिन्	1/26
254. हा हा देवि स्फुटति	3/38
255. हा हा धिक्परगृहवास	1/40
256. हृदि नित्यानुषक्तेन	4/2

•••

(ख) उत्तररामचरित के सम्भावित लघु प्रश्न

- उत्तररामचरितम् के लेखक का नाम?
- उत्तररामचरितम् में कुल प्रयुक्त अंकों की संख्या?
- महाकवि भवभूति की उपाधि का उल्लेख कीजिए?
- महाकवि भवभूति की तीन कृतियों के नाम?
- उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक का नाम?
- उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक का नाम?
- उत्तररामचरितम् के सप्तम अंक का नाम?
- उत्तररामचरितम् के चतुर्थ अंक का नाम?
- महर्षि अगस्त्य की पत्नी का नाम?
- सीता को वन में छोड़ने के लिए कौन आया?
- राम का जनस्थान में आगमन क्यों हुआ?
- जनस्थान में राम का ध्यान किसने रखा ?
- प्रसववेदना होने पर सीता ने स्वयं को कहाँ डाल दिया?
- गंगा प्रवाह में डालने पर सीता ने कितने पुत्रों को जन्म दिया?
- पुत्रों को जन्म देने पर सीता को कहाँ ले जाया गया?
- सीता के पुत्रों के नाम लिखिए?
- सीता के पुत्रों को धनुर्वेदादि की शिक्षा किसने प्रदान की?
- लोपामुद्रा ने सीता का ध्यान रखने के लिए किसे कहा?
- लोपामुद्रा ने राम का ध्यान रखने के लिए किसे कहा?
- वासन्ती ने किसकी रक्षा के लिए राम का आह्वान किया?
- जनस्थान में किसका वध करने के लिए राम आए?
- सीता के कान से गजशावक ने किस लता के पत्र को खींचा?
- गजशावक की रक्षा के लिए राम कहाँ गए?
- किसकी कृपा से सीता अदृश्य हो सकी?
- शम्बूक वृत्तान्त को किसके मुख से सुना गया?
- पुत्रों को जन्म देने के बाद सीता को पाताल में कौन ले गया?
- सीता का त्याग किए तथा तृतीय अंक की घटना में कितना समय व्यतीत हुआ था?

- समुद्र पर पुल बनाने वाला नल किसका पुत्र था?
- पक्षिराज जटायु के कुल का नाम?
- जनस्थान किस राक्षस का निवास स्थान था?
- लक्ष्मण की पत्नी का नाम?
- निषादराज के साथ राम का परिचय किस वृक्ष के नीचे हुआ?
- भरत की पत्नी का नाम?
- शत्रुघ्न की पत्नी का नाम?
- ऋष्यशृंग के आश्रम से राम को सन्देश देने कौन आया?
- चित्रदर्शन में कितने पर्वतों के नाम का उल्लेख हुआ?
- चित्रदर्शन के चित्रकार का नाम?
- राम की बहन का नाम?
- राम के बहनोई का नाम?
- सीता की ननद का नाम?
- जनक, कौशल्या आदि किसके यज्ञ में गए?
- ऋष्यशृंग का यज्ञ कितने वर्षों तक चला?
- रघुकुल के गुरु का नाम?
- चित्रदर्शन में वसिष्ठ ने राम को क्या सन्देश भेजा?
- जनस्थान की पश्चिम दिशा में स्थित पर्वत का नाम?
- कुँजवान् पर्वत किसके द्वारा अधिष्ठित था?
- दण्डकारण्य के पास स्थित आश्रम के ऋषि का नाम?
- सिद्ध शबर तापसी का नाम?
- दण्डकारण्य में स्थित सरोवर का नाम?
- अश्वमेध यज्ञ के ऋत्विक् का नाम?
- जनक ने किस द्वीप में स्थित तपोवन में तपस्या की?
- शान्ता का विवाह किसके साथ हुआ?
- दशरथ की कितनी सन्तान थीं?
- शान्ता किसकी पुत्री थी?
- दशरथ ने शान्ता को किसे गोद दिया?

•••

(ग) उत्तररामचरित में प्रयुक्त छन्द सूची

1. **अनुष्टुप्–** इसे श्लोक भी कहते हैं। इसका लक्षण इस प्रकार है–

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पंचमम्।
द्वि चतुः पादयोर्ह्स्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

अर्थात् इस छन्द के प्रत्येक चरण में आठ वर्ण होते हैं और प्रत्येक चरण में पाँचवाँ वर्ण लघु तथा छठा वर्ण गुरु होता है। इसके अलावा दूसरे और चौथे चरणों में सातवाँ वर्ण लघु और पहले, तीसरे चरणों में सातवाँ वर्ण गुरु होता है। इस छन्द का यहाँ कुल नब्बे बार प्रयोग हुआ है–1/1, 2, 3, 4, 5, 6, 8, 10, 12, 13, 16, 17, 19, 21, 22, 32, 41, 43, 46, 47, 48, 50, 51, 2/5, 7, 8, 12, 15, 17, 18, 19, 24, 3/1, 3, 9, 10, 14, 17, 29, 33, 34, 46, 4/2, 7, 9, 25, 27, 28, 29, 5/7, 15, 17, 20, 21, 22, 23, 25, 29, 31, 6/2, 3, 5, 6, 10, 20, 21, 23, 29, 31, 32, 34, 36, 42, 7/1, 2, 3, 5, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 18, 19, 20 =**90**

2. **आर्या– लक्षण–**

यस्या पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पंचदश साऽऽर्या।।

अर्थात् इस छन्द के प्रथम पाद में 12 दूसरे में 18 तथा तीसरे में पुनः 12 तथा चौथे पाद में 15 मात्राएँ होती हैं। प्रस्तुत कृति में इसका केवल दो बार प्रयोग हुआ है– 3/41, 6/13 =02

3. **इन्द्रवज्रा–"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः"**

इन्द्रवज्रा छन्द में तगण, तगण, जगण और अन्त में दो गुरु के क्रम से कुल 11 वर्ण होते हैं। प्रस्तुत कृति में इसका केवल सात बार प्रयोग हुआ है–1/11, 44, 2/3, 4/8, 7/4, 16, 17=**07**

4. **उपजाति–** उपेन्द्रवज्रा एवं इन्द्रवज्रा के मिश्रण से उपजाति छन्द का निर्माण होता है। प्रस्तुत नाटक में इसका कुल सात बार ही प्रयोग हुआ है– 1/15, 2/6, 3/35, 42, 4/16, 6/15, 27 =**07**

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः,
उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौः।
अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौ,
पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।।

इसके किसी एक चरण में उपेन्द्रवज्रा तो दूसरे चरण में इन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग करते हैं। इन्द्रवज्रा छन्द में तगण, तगण, जगण और अन्त में दो गुरु के क्रम से कुल 11 वर्ण होते हैं। उपेन्द्रवज्रा छन्द में जगण, तगण, जगण तथा अन्त में दो गुरु(**जतजास्ततो गौः**) वर्णों के क्रम से कुल ग्यारह वर्णों का प्रयोग किया जाता है। हैं।

5. **द्रुतविलम्बित– द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ।**

इस छन्द के प्रत्येक चरण में एक नगण, दो भगण तथा एक रगण प्रयोग होने के कारण इसमें कुल बारह अक्षर होते हैं, इसके पाद के अन्त में विराम होता है। इस छन्द का यहाँ कुल दो बार प्रयोग हुआ है–3/27, 4/15, =**02**

6. **पुष्पिताग्रा–**

अयुजि नयुगरेफतो यकारो।
युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।

इस छन्द के प्रथम और तृतीय चरणों में नगण, नगण, रगण, यगण के क्रम से कुल 12 वर्ण तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणों में नगण, जगण, जगण, रगण और अन्त में एक गुरु के क्रम से कुल 13 वर्ण होते हैं। इस छन्द का यहाँ कुल पाँच बार प्रयोग हुआ है–3/18, 20, 4/4, 5/5, 6/8, =**05**

7. **पृथ्वी– जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः।**

अर्थात् इस छन्द में जगण, सगण, जगण, सगण, यगण तथा अन्त में लघु, गुरु के क्रम से कुल 17 वर्ण होते हैं तथा आठवें अक्षर पर यति का प्रयोग होता है। इस छन्द का यहाँ कुल पाँच बार प्रयोग हुआ है–3/1, 37, 5/5, 6/1, 37,=**05**

8. **प्रहर्षिणी– म्नाशाभि र्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्।**

इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, नगण, जगण, रगण तथा अन्त में एक गुरु कुल 13 वर्ण होते हैं तथा तीन और दस पर यति होती है। इस छन्द का यहाँ कुल आठ बार प्रयोग हुआ है– 1/30, 31, 40, 49, 2/39, 3/39, 5/1, 18 =**08**

9. **मंजुभाषिणी– सजसा जगौ च यदि मंजुभाषिणी।**

इस छन्द के प्रत्येक चरण में एक सगण, एक जगण, एक सगण, एक जगण अन्त में एक गुरु प्रयोग होता है, इस कारण इसे 'मंजुभाषिणी' कहा जाता है। इसमें कुल तेरह अक्षर होते हैं तथा पाँच और आठ पर 'विराम' का प्रयोग करते हैं। इसका यहाँ कुल छः बार प्रयोग हुआ है– 1/18, 3/4, 6/4, 17, 41, 51 =**06**

10. **मन्दाक्रान्ता– मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ युग्मम्।**

इसके प्रत्येक चरण में एक मगण, एक भगण, एक नगण, और दो तगण तथा अन्त में दो गुरु का प्रयोग होता है तथा चार, छः एवं सात अक्षरों पर यति का प्रयोग किया जाता है, तो उसे मन्दाक्रान्ता छन्द कहते हैं। इसमें कुल सत्रह अक्षर होते हैं। इस छन्द का यहाँ कुल तेरह बार प्रयोग हुआ है– 1/33, 2/13, 14, 25, 3/6, 15, 36, 38, 4/26, 5/12, 6/9, 22, 7/6 =**13**

11. **मालभारिणी–**

विषमे ससजा गुरु समे चेत्सभरा येन तु मालभारिणीयम्।

इसके विषम चरणों में सगण, सगण, जगण अन्त में दो गुरु के क्रम से तथा सम चरणों में सगण, भगण, रगण तथा अन्त में दो गुरु वर्णों का इसप्रकार कुल ग्यारह वर्णों का प्रयोग करते हैं। इस छन्द का यहाँ केवल एक बार प्रयोग हुआ है– 5/8=**01** ।

12. **मालिनी– ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।**

इसके प्रत्येक चरण में नगण, नगण, मगण, यगण, यगण के क्रम से कुल पन्द्रह वर्णों का प्रयोग होता है। इस छन्द में माधुर्य गुण की प्रधानता रहती है। इस छन्द का यहाँ कुल सोलह बार प्रयोग हुआ है–1/24, 26, 27, 2/20, 21, 3/5, 19, 23, 25, 48, 5/2, 3, 13, 6/12, 24, 26 =**16**

13. रथोद्धता– रान्नराविह रथोद्धता लगौ।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में एक रगण, एक नगण, एक रगण और अन्त में एक लघु और एक गुरु का प्रयोग होने के कारण इसमें कुल ग्यारह अक्षर ही होते हैं। पद के अन्त में विराम का प्रयोग करते हैं। इसका यहाँ कुल तीन बार प्रयोग हुआ है– 1/34, 37, 45 = 03

14. वंशस्थ– जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में जगण, तगण, जगण और पुनः रगण के क्रम से प्रयोग होने के कारण इसमें कुल बारह अक्षर होते हैं। इसके पाद के अन्त में 'यति' का प्रयोग करते हैं। इस छन्द का यहाँ कुल एक बार प्रयोग हुआ है– 6/25=**01**

15. वसन्ततिलका– उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

अर्थात् इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः तगण, भगण, जगण, जगण और अन्त में दो गुरु वर्ण होते हैं तथा एक चरण में वर्णों की संख्या कुल चौदह होती है। इस छन्द का यहाँ कुल सत्ताईस बार प्रयोग हुआ है– 1/7, 9, 14, 25, 36, 2/10, 11, 22, 23, 3/7, 8, 11, 12, 21, 26, 28, 47, 4/6, 23, 29, 5/10, 11, 24, 33, 6/7, 16, 19, =**27**

16. शार्दूलविक्रीड़ित– इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और अन्त में एक गुरु वर्ण के क्रम से कुल 19 वर्ण होते हैं। 12 एवं 7 वर्णों पर यति होती है।

लक्षण– सूर्याश्वैर्मस्जास्तताः स गुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।।

इस छन्द का यहाँ कुल पच्चीस बार प्रयोग हुआ है– 1/39, 2/9, 16, 28, 29, 30, 3/16, 37, 43, 45, 4/1, 5, 17, 20, 22, 24, 5/6, 14, 19, 27, 34, 35, 6/18, 40, 7/21 =**25**

17. शालिनी– मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, तगण, तगण और अन्त में दो गुरु के क्रम से कुल 11 वर्ण होते हैं। प्रस्तुत नाटक में इसका कुल पाँच बार प्रयोग हुआ है। 1/42, 3/2, 4/18, 5/30, 32 =**05**

18. शिखरिणी– रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।

इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण, भगण होते हैं। अन्त में लघु और गुरु होता है। कुल 17 वर्ण होते हैं तथा 6 और 11 पर यति होती है। इस छन्द का यहाँ कुल 30 बार प्रयोग हुआ है–1/28, 29, 35, 38, 2/1, 2, 26, 27, 3/13, 30, 40, 44, 4/3, 10, 11, 12, 13, 14, 21, 5/9, 16, 26, 6/11, 14, 28, 30, 33, 35, 38, 39 =**30**

19. हरिणी– नसमरसला गः षड्वेदैर्हयै र्हरिणी मता।

इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, सगण, मगण, रगण, सगण और एक–एक लघु और गुरु के क्रम से कुल 17 वर्ण होते हैं तथा 6, 4, 7 पर यति होती है। इसका छन्द का यहाँ कुल 9 बार प्रयोग हुआ है–1/20, 23, 2/4, 3/22, 24, 31, 32, 4/19, 5/28 =**09**

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हमारे विवेच्य उत्तरराम चरितम् में महाकवि ने कुल उन्नीस छन्दों का प्रयोग किया है। इनमें भी इन्हें सर्वाधिक अनुष्टुप् छन्द प्रिय रहा है, तभी तो इन्होंने कुल 258 श्लोकों में 90 स्थलों पर इसका प्रयोग किया है। इसके बाद उन्हें शिखरिणी तथा वसन्ततिलका अधिक प्रिय रहे हैं। बड़े छन्दों में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द को इन्होंने केवल पच्चीस बार ही प्रयोग किया है।

•••

(घ) उत्तररामचरित में प्रयुक्त अलंकार सूची

(1) अतिशयोक्ति–

सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते।

अर्थात् उपमेय के निगरण द्वारा उपमान का अभेद ज्ञान होना अर्थात् अध्यवसाय की सिद्धि होना ही अतिशयोक्ति अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ निम्न स्थलों पर हुआ है– 1/28, 38, 2/13, 3/5, 12, 23, 26, 38, 4/13, 27, 6/6।

(2) अनुमान–

अनुमानं तु विच्छित्या ज्ञानं साध्यस्य साधनात्।

अर्थात् हेतु के माध्यम से साध्य के चमत्कारभूत ज्ञान होने पर ही अनुमान अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ निम्न स्थलों पर हुआ है– 1/29, 5/13, 35 ।

(3) अपह्नुति–

प्रकृतं प्रतिषिध्यान्यस्थापनं स्यादपह्नुतिः।

अर्थात् उपमेय का निषेध करके जब उपमान का आरोप किया जाता है, वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ एक बार ही हुआ है– 3/34 ।

(4) अर्थान्तरन्यास–

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्र सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।।

अर्थात् साधर्म्य अथवा वैधर्म्य द्वारा सामान्य का विशेष से या फिर विशेष का सामान्य से समर्थन किया जाए तो, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ निम्न स्थलों पर हुआ है– 1/18, 41, 2/1, 11, 19, 3/10, 4/11, 12, 18, 5/17, 19, 6/11, 12,14, 30, 7/4।

(5) अर्थापत्ति–

दण्डापूपिकयान्यार्थागमोऽर्थापत्तिरिष्यते।

दण्डापूपिका न्याय से अन्य अर्थ का ज्ञान होने पर अर्थापत्ति अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ निम्न स्थलों पर हुआ है– 3/8 , 4/14, 5/28, 6/40, 7/4।

(6) अप्रस्तुतप्रशंसा–

अप्रस्तुतप्रशंसा सा स्यादप्रक्रान्तेषु या स्तुतिः।
तन्मुखेन प्रस्तुतस्य निन्दा यत्र प्रतीयते।।

जहाँ अप्रस्तुत पदार्थों की प्रशंसा इसप्रकार की जाए कि उसी के द्वारा प्रस्तुत पदार्थ की निन्दा की प्रतीति भी हो रही हो, तो वहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार होता है।इस अलंकार का प्रयोग यहाँ निम्न स्थलों पर हुआ है– 1/10, 39, 2/2, 7, 19।

(7) असंगति–

कार्यकारणयोर्भिन्नदेशतामसंगतिः।

अर्थात् कार्य और कारण की अलग–अलग स्थानों में स्थिति होने पर असंगति अलंकार होता है।इस अलंकार का प्रयोग यहाँ एक बार ही हुआ है– 4/14।

(8) आक्षेप–

आक्षेपः स्वयमुक्तस्य प्रतिषेधो विचारणात्।।

'स्वयं किसी बात को कर्तव्यरूप में कथन करके, पुनः विचार करके, उसका निषेध करना ही आक्षेप अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ निम्न स्थलों पर हुआ है– 3/ 26, 5/34 ।

(9) उत्प्रेक्षा–

सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।

उपमेय की उपमान के साथ सम्भावना ही उत्प्रेक्षालंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ निम्न स्थलों पर हुआ है– 1/2, 18, 31, 41, 48, 2/6, 9, 24, 26, 27, 3/4, 13, 14, 15, 18, 23, 28, 33, 36, 37, 38, 39, 46, 47, 4/3, 7, 8, 12, 19, 5/6, 14, 6/9, 10, 13, 14, 19, 22, 26, 36, 38, 7/17 ।

(10) उपमा–

प्रस्फुटं सुन्दरं साम्यमुपमेत्यभिधीयते।

कवि प्रतिभा से प्रदर्शित किया गया साम्य ही उपमा कहलाता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ निम्न स्थलों पर हुआ है– 1/5, 9, 20, 24, 29, 30, 36, 40, 45, 47, 49, 2/4, 24, 3/1, 4, 7, 9, 15, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 25, 27, 28, 30, 35, 36, 37, 40, 41, 42, 43, 47, 4/2, 3, 4, 5, 6, 7, 10, 15, 16, 17, 19, 21, 29, 5/1, 3, 4, 5, 8, 9, 13, 18, 26, 6/1, 2, 3, 6, 8, 11, 17, 19, 24, 25, 28, 7/21।

(11) काव्यलिंग–

हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंगमुदाहृतम्।

जहाँ वाक्य अथवा पदार्थ को किसी बात के हेतुरूप में प्रस्तुत किया जाए, वहाँ काव्यलिंग अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ निम्न स्थलों पर हुआ है– 1/5, 6, 8, 11, 17, 30, 33, 35, 39, 44, 2/5, 10, 13, 21, 37, 3/ 3, 10, 20, 21, 23, 24, 41, 44, 4/13, 25, 5/1, 7, 16, 18, 24, 6/20, 29, 42, 7/3।

(12) तुल्ययोगिता–

नियतानां सकृद्धर्मः सा पुनस्तुल्ययोगिता।

जब केवल प्रकृत या केवल अप्रकृत वस्तुओं का एक ही साधारणधर्म के साथ सम्बन्ध होता है, उसे यहाँ तुल्ययोगिता अलंकार कहा गया है।इस अलंकार का प्रयोग यहाँ निम्न स्थलों पर हुआ है– 1/5, 6, 8, 11, 17, 30, 33, 35, 39, 44, 2/5, 10, 13, 21, 37, 3/48, 4/13, 25, 5/1, 7, 16, 18, 24, 6/20, 39, 42, 7/3।

(13) दीपक–

अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकन्तु निगद्यते।

जब प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत अर्थात् उपमेय और उपमान का एक ही धर्म से सम्बन्ध बताया जाता है, तो वहाँ दीपक अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ निम्न स्थलों पर हुआ है– 1/12, 26, 4/5।

(14) दृष्टान्त–

दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्।

अर्थात् दो वाक्यों में धर्मसहित, वस्तु का अर्थात् उपमान और उपमेय का बिम्बप्रतिबिम्बभाव वर्णित करने पर दृष्टान्त अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ निम्न स्थलों पर हुआ है– 1/13, 14, 2/4, 3/29, 5/20।

(15) निदर्शना–

अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः निदर्शना।

दो वस्तुओं का आपस में सम्बन्ध सम्भव न होकर भी बिम्बप्रतिबिम्बभाव का बोध कराने पर निदर्शना अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ निम्न स्थलों पर हुआ है– 1/22, 34, 46, 3/34, 5/11, 27, 30, 35, 6/4, 27, 29।

(16) पर्याय–

एकं क्रमेणानेकस्मिन् पर्यायोऽन्यस्ततोऽन्यथा।

जहाँ एक ही वस्तु का अनेक प्रकार की वस्तुओं में या अनेक प्रकार की वस्तु, एक वस्तुरूप में होती है, या वर्णित की जाती है, तो वहाँ पर्याय अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ निम्न स्थलों पर हुआ है– 5/15, 6/35।

(17) परिणाम–

विषयात्मतयारोप्ये प्रकृतार्थोपयोगिनि।
परिणामो भवेत्तुल्यातुल्याधिकरणो द्विधा।।

यदि आरोप्य पदार्थ उपमेय के रूप से ही प्रस्तुत कार्य में उपयोगी हो, वहाँ पर परिणाम अलंकार होता है। यह तुल्याधिकरणक तथा अतुल्याधिकरणक रूप से दो प्रकार का होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ इन स्थलों पर हुआ है– 1/37, 3/30, 6/30।

(18) परिसंख्या–

प्रश्नादप्रश्नतो वाऽपि कथिताद्वस्तुनो भवेत्।
तादृगन्यव्यपोहश्चेच्छाब्द आर्थोऽथवा तदा।।
परिसंख्या चतुर्भेदा दर्पणे समुदीरिता।।

(क) प्रश्न करके अथवा (ख) बिना प्रश्न किए ही, (ग) शब्द के सहयोग से या (घ) अर्थ के सामर्थ्य से किसी वस्तु का अन्य किसी

वस्तु से 'व्यवच्छेद' (भिन्नता) जब प्रदर्शित किया जाता है, तब 'परिसंख्या' नामक अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ इन स्थलों पर हुआ है– 4/11, 5/32।

(19) पुनरुक्तवदाभास–

आपाततो यदर्थस्य पौनरुक्त्येन भासनम्।
पुनरुक्तवदाभासः स भिन्नाकारशब्दगः।।

सामान्य दृष्टि से देखने पर जहाँ अर्थ की पुनरुक्ति प्रतीत हो, वहाँ भिन्न रूप वाले समानार्थक शब्दों में पुनरुक्तवदाभास अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ केवल एक स्थल पर ही हुआ है– 1/9।

(20) भाविक–

अद्भुतस्य पदार्थस्य भूतस्याथ भविष्यतः।
यत् प्रत्यक्षायमाणत्वं तद्भाविकमुदाहृतम्।।

भूत या भविष्य की अद्भुत वस्तु का प्रत्यक्षरूप से वर्णन ही भाविक नामक अलंकार है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ इन स्थलों पर हुआ है– 1/15, 18, 2/17, 3/37।

(21) यथासंख्य––

यथासंख्यं क्रमेणैव क्रमिकानां समन्वयः।

अर्थात् पदार्थों के उपनिबद्ध क्रम से ही उनमें परस्पर समन्वय या सम्बन्ध स्थापित करने पर यह अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ इन स्थलों पर हुआ है– 3/ 25, 42 ।

(22) यमक–

सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यंजनसंहतेः।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते।।

जहाँ पर अलग–अलग अर्थ वाले स्वर और व्यंजन के समूह की एक ही क्रम से आवृत्ति हो, तो वहाँ यमक अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ एक बार ही हुआ है– 5/7 ।

(23) रूपक–

तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।

अत्यधिक सादृश्य के कारण, प्रसिद्ध भेद वाले, उपमान और उपमेय का अभेद–वर्णन ही रूपक अलंकार कहलाता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ इन स्थलों पर हुआ है– 1/15, 30, 36, 51, 2/29, 3/16, 17, 26, 35, 4/7, 13, 29, 5/9, 10, 17, 29, 33, 6/16, 18 ।

(24) विभावना–

विभावना विना हेतुर्कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते।

अर्थात् बिना कारण ही कार्य की उत्पत्ति होना ही विभावना–लंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ इन स्थलों पर हुआ है– 1/6, 7/37।

(25) विरोधाभास–

विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः।

अर्थात् दो वस्तुओं में वस्तुतः विरोध न होते हुए भी, जब आपस में विरोध का आभास होता है तो यह अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ इन स्थलों पर हुआ है– 1/43, 2/28, 3/12, 31, 34, 6/35, 7/1 ।

(26) विशेषोक्ति–

सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिर्निगद्यते।

अर्थात् हेतु के उपस्थित होने पर भी यदि फल का अभाव वर्णित किया जाए, तो विशेषोक्ति अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ इन स्थलों पर हुआ है– 1/6, 3/1, 31, 32, 6/33।

(27) विषम–

गुणौ क्रिये वा चेत्स्यातां विरुद्धे हेतुकार्ययोः।
यद्वारब्धस्य वैफल्यमनर्थस्य च सम्भवः।।
विरूपयोः संघटना या च तद्विषयं मतम्।

यदि कार्य और कारण के गुण या क्रियाएँ, आपस में विरुद्ध होते हैं अथवा आरम्भ किया हुआ कार्य तो पूरा न हो, अपितु कुछ अनर्थ आ पड़े या फिर दो विरुद्ध पदार्थों का मेल हो रहा हो, तो वहाँ विषम

अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ इन स्थलों पर हुआ है– 1/10, 22, 2/2, 3/31।

(28) व्यतिरेक–

उपमानाद यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः।

अर्थात् जब उपमान की अपेक्षा उपमेय के गुणों की अधिकता वर्णित की जाए, तो व्यतिरेक अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ इन स्थलों पर हुआ है– 3/44, 45 ।

(29) श्लेष–

श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते।

अनेकार्थक शब्दों के द्वारा जब अनेक अर्थों का बोध होता है, तो उसे श्लेष अलंकार कहते हैं। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ केवल दो स्थलों पर हुआ है– 1/1, 3/40 ।

(30) सन्देह –

सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः।

प्रस्तुत उपमेय में अप्रस्तुत उपमान का संशय यदि कवि प्रतिभा द्वारा कल्पित किया जाता है, तो वहाँ संदेह अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ इन स्थलों पर हुआ है– 1/35, 3/11, 5/16, 6/3 ।

(31) संकर–

अविश्रान्तिजुषामात्मव्यंगांगित्वं तु संकरः।

अर्थात् जहाँ अलंकारों के अपने स्वरूप में अवस्थित रहते हुए भी आपस में उपकार्योपकारक भाव रहता है, वहाँ संकर अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ इन स्थलों पर हुआ है– 1/8, 9, 15, 20, 29, 41, 2/27, 29, 3/5, 26, 4/4, 13, 15, 19, 29, 5/4, 9, 13, 18, 6/11, 26, 35 ।

(32) संसृष्टि–

सेष्टा संसृष्टिरेतेषां भेदेन यदिह स्थितिः।

जो इन अलंकारों की आपस में निरपेक्ष रूप से एक साथ स्थिति होती है, वह संसृष्टि मानी गयी है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ एक बार ही हुआ है– 3/ 23।

(33) समुच्चय–

समुच्चयोऽयमेकस्मिन् सति कार्यस्य साधके।

अर्थात् जहाँ एक ही कार्य का साधक एक ही होने पर, दूसरा कार्य अपने आप ही अर्थात् स्वतः सिद्ध हो जाए, वहाँ समुच्चय अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ इन स्थलों पर हुआ है– 1/9, 11, 19, 2/12, 3/45, 4/5, 7/6।

(34) सहोक्ति–

सहार्थस्य बलादेकं यत्र स्याद्वाचकं द्वयोः।

सा सहोक्तिर्मूलभूतातिशयोक्तिर्यदा भवेत्।।

'सह' शब्द के बल से जहाँ पर एक शब्द दो अर्थों का वाचक होता है, वहाँ पर सहोक्ति अलंकार होता है, किन्तु उनके मूल में अतिशयोक्ति का होना आवश्यक है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ एक बार ही हुआ है– 3/6 ।

(35) स्मरण–

'सदृशानुभवाद् वस्तुस्मृतिः स्मरणमुच्यते।'

'पूर्व में अनुभव की गयी वस्तु की स्मृति, सादृश्य के अनुभव से होना ही स्मरण अलंकार कहा गया है।' इस अलंकार का प्रयोग यहाँ एक बार ही हुआ है– 5/4।

(36) स्वभावोक्ति–

स्वभावोक्तिरसौ चारु यथावद्वस्तुवर्णनम्।

जिस वस्तु का उसी रूप में अत्यधिक चमत्कार के साथ यदि वर्णन किया जाता है तो वहाँ सगासोक्ति अलंकार होता है। इस अलंकार का प्रयोग यहाँ इन स्थलों पर हुआ है– 1/27, 2/14, 16, 20, 221, 25, 29, 30, 3/16, 21, 23 4/1, 4, 26।

•••

उत्तररामचरित में प्रयुक्त सूक्तियाँ–

(ङ) उत्तररामचरित में प्रयुक्त सूक्तियाँ–

- अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोकास्तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिनः।
- अपि ग्रावा रोदत्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।
- अव्याहतान्तःप्रकाशा हि देवताः सत्वेषु।
- अहो! अनवस्थितो भूतसन्निवेशः।
- आपातदुःसह स्नेहसंवेगः।
- ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।
- एते हि मर्मच्छिदः संसारभावाः, येभ्यो बीभत्समानाः, संत्यज्य सर्वान् कामानरण्ये विश्राम्यन्ति मनीषिणः।
- कर्त्तव्यानि खलु दुखितैर्दुःखनिर्धारणानि।
- कियच्चिरं वा मेघान्तरेण पूर्णचन्द्रदर्शनम् ?
- को नाम पाकाऽभिमुखस्य जन्तुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे?
- गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः।
- जितमपत्यस्नेहेन।
- तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः।
- तारामैत्रकं चक्षूरागः।
- तीर्थोदकं च वह्निश्च नाऽन्यतः शुद्धिमर्हतः।
- तेजस्तेजसि शाम्यतु।
- ते हि नो दिवसा गताः।
- दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति।
- धेनुं धीरः सुनृतां वाचमाहुः।
- न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते।
- न रथिनः पादचारमभियुंजन्ति।
- न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषां विषहते।
- नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि।
- पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।
- पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति।
- पुराभूतः शोको विकलयति मां नूतन इव।

- प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः।
- प्रसवः खलु प्रकृष्टपर्यन्तः स्नेहस्य।
- प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति।
- प्रियाशोको जीवः कुसुममिव धर्मो ग्लपयति।
- बाष्पविश्रामोऽप्यन्तरेषु कर्त्तव्य एव।
- भवति ननु लाभो हि रुदितम्।
- भूयसां जीविनामेव धर्म एषः, यत्र स्वरसमयी कस्यचित्प्रीतिः, यत्र लौकिकानामुपचारस्तारामैत्रकं चक्षूराग इति।
- महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः।
- यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्त्वे दुर्जनो जनः।
- रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते।
- लतायां पूर्वलूनायां प्रसूनस्योद्भवः कुतः?
- वीराणां समयो हि दारुणरसः स्नेहक्रमं बाधते।
- वृद्धास्ते न विचारणीयचरिताः।
- संकटा ह्याहिताऽग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता।
- सतां सद्भिः संगः कथमपि हि पुण्येन भवति।
- सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं परम्।
- सत्संगजानि निधनान्यपि तारयन्ति।
- सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति।
- सर्वमतिमात्रं दोषाय।
- साक्षात्कृतधर्माणो महर्षयः।
- सर्वसाधारणो ह्येष मनसो मूढग्रन्थि– रान्तरश्चेतनावतामुपप्लवः संसारतन्तुः।
- सानुषंगाणि कल्याणानि।
- सिद्धं ह्येतद्वाचि वीर्यं द्विजानां बाह्वोर्वीर्यं यत्तु तत्क्षत्रियाणाम्।
- सुलभसौख्यम् इदानीं (तावत्) बालत्वं भवति।
- स्नेहश्च निमित्तसव्यपेक्षः इति विप्रतिषिद्धमेतत्।
- हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम्।
- हन्त! पण्डितः संसारः।
- हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम्।

•••

(च) भवभूति विषयक प्रशस्तियाँ

- स्पष्टभावरसा चित्रैः पादन्यासैः प्रवर्तिता।
  नाटकेषु नटस्त्रीव भारती भवभूतिना।।
  (धनपालकृत 'तिलकमंजरी', प्रस्तावना, श्लोक–30)
- भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरंगिणी।
  रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति।।'
  (क्षेमेन्द्रकृत 'सुवृत्ततिलक, 3/33)
- भवभूतेः सम्बन्धाद्, भूधरभूरेव भारती भाति।
  एतत्कृतकारुण्ये, किमन्यथा रोदिति ग्रावा?'
  (गोवर्धनाचार्य, 'आर्यासप्तशती, 1/36)
- 'सुकविद्वितयं मन्ये, निखिलेऽपि महीतले।
  भवभूतिः शुकश्चायं, वाल्मीकिस्त्रितयोऽनयोः।।' (भोजप्रबन्ध–191)
- 'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।'
  (व्याख्याकार घनश्याम के अनुसार)
- 'रत्नावलीपूर्वकमन्यदास्तामसीमभोगस्य वचोमयस्य।
  पयोधरस्येव हिमाद्रिजायाः परं विभूषा भवभूतिरेव।।'
  (जल्हणकृत 'सूक्तिमुक्तावली' से उद्धृत)
- भवभूतिमनादृत्य निर्वाणमतिना मया।
  मुरारिपदचिन्तायामिदमाधीयते मनः।।
  (सूक्तिमुक्तावली और शार्गंधरपद्धति' से उद्धृत)
- 'मान्यो जगत्यां भवभूतिरार्यः सारस्वते वर्त्मनि सार्थवाहः।
  वाचं पताकामिव यस्य दृष्ट्वा, जनः कवीनामनुपृष्ठमेति।।'
  (उदयसुन्दरीचम्पू)
- 'भवभूइजलणिहिणिग्गदकव्वामयरसकरणा इव फुरंति।
  जस्स विसेसा अज्ज वि वियडेसु कहाणिबेसेसु।
  (वाक्पतिराजकृत गउडवहो, 799)
- बभूव वल्मीकभवः कविः पुरा, ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
  स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया, स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः।।''
  (राजशेखर–बालरामायण, 1/16)
- कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते (अज्ञात)
- भव्यां यदि भवभूति तात कामयसे तदा।

भवभूतिपदे चित्तमविलम्बं निवेशय।।' (अज्ञात)

- 'कवयः कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकविः।' (अज्ञात)
- 'सुबन्धौ' भक्तिर्नः क इह रघुकारे न रमते?
  धृतिर्दाक्षीपुत्रे हरति हरिचन्द्रोऽपि हृदयम्।
  विशुद्धोक्तिं शूरः प्रकृतिमधुरा भारविगिरः
  तथाप्यन्तर्मोदं कमपि भवभूतिर्वितनुते।।
  (सुदुक्तिचरितामृत से उद्धृत)

•••

डॉ. राकेश शास्त्री द्वारा लिखी हमारे प्रकाशन की पुस्तकें

Tanuj lal

शीघ्र ही प्रकाश्यमान अन्य पुस्तकें—

(क) **मालविकाग्निमित्रम्** अनुवाद 'चन्द्रिका' व्याख्या
(ख) **विक्रमोर्वशीयम्** विस्तृत भूमिका, अनुवाद 'चन्द्रिका' व्याख्या
(ग) **कुमार सम्भवम्** (पंचम सर्ग) अनुवाद 'चन्द्रिका' व्याख्या
(घ) **ऋतुसंहारम्** विस्तृत भूमिका, अनुवाद 'चन्द्रिका' व्याख्या
(ङ) **रघुवंशम्** (13, 14 सर्ग) विस्तृत भूमिका, अनुवाद 'चन्द्रिका'
(च) **रसगंगाधर** (प्रथम आनन) अनुवाद 'चन्द्रिका' व्याख्या
(छ) **दशरूपकम्**, भूमिका, अनुवाद डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या

---

i) **ऐतरेय ब्राह्मण**, तीन खण्डों में, सायणभाष्य सहित, अनुवाद।
ii) **तैत्तिरीय उपनिषद्**, शांकर-भाष्य सहित 'चन्द्रिका' व्याख्या
iii) **शांखायन आरण्यकम्**,विस्तृत भूमिका, पदच्छेद, हिन्दी अनुवाद।
iv) **गोपथ ब्राह्मणम्**, दो खण्डों में भूमिका, 'चन्द्रिका' व्याख्या
v) **मुण्डकोपनिषद्** शांकर-भाष्य सहित 'चन्द्रिका' व्याख्या
vi) **निरुक्त**, तीन खण्डों में, (दुर्गाचार्य टीका सहित अनुवाद)
vii) **स्वर-चन्द्रिका**, वैदिक स्वरों की सरल मीमांसा ।
viii) **कौशीतकि गृह्यसूत्र**, विस्तृत भूमिका, हिन्दी अनुवाद।
ix) **शांखायन श्रौतसूत्र**, विस्तृत भूमिका, हिन्दी अनुवाद।
x) **शांखायन गृह्यसूत्र**, विस्तृत भूमिका, हिन्दी अनुवाद।
xi) **पारस्कर गृह्यसूत्र** दो खण्डों में भूमिका, 'चन्द्रिका' व्याख्या
xii) **कथामालिका** संस्कृत कथाओं का संग्रह मौलिक।
xiii) **पंचतन्त्र** सम्पूर्ण विस्तृत भूमिका, अनुवाद 'चन्द्रिका' व्याख्या
xiv) **साहित्यदर्पणम्** भूमिका, अनुवाद डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या
xv) **रसगंगाधर**, भूमिका, अनुवाद डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या
xvi) **ऋक्चन्द्रिका** ऋग्वेद के चयनित सूक्तों की सरल व्याख्या।
xvii) **ध्वन्यालोक**, दो खण्डों में भूमिका, अनुवाद 'चन्द्रिका' व्याख्या
xviii) **गोभिल गृह्यसूत्र**, विस्तृत भूमिका, पदच्छेद, हिन्दी-अनुवाद
xix) **पदपाठ की सरल विधि** , छात्रोपयोगी संस्करण।